a Samaj Fo

Digitized by Gurukul Kangri Col

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

130336

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकर

माघ : २०५१ [विक्रमाब्द] : जनवरी : १९९५ [ईस्वी]

Vol. 27
1995
1, 2, 3, 4
Vol. 27

मकर संक्रान्ति अंक

'प्रकर' का सत्ताईसवें वर्ष में प्रवेश अंक

स्वर : विसंवादी—भारतीय गणतन्त्रकी विडम्बना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंक सामग्री

स्वर : विसंवादी

भारतीय गणतंत्रकी विडम्बना — १ — वि. सा. विद्यालंकार

अध्ययन : शोध

अस्तित्ववादी अलगावका अन्तर्व्यूह और नयी कविता —डॉ. हनुमन्त राय नीरव — ५ — डॉ. पूरनचंद टंडन

नाट्य प्रशिक्षण : स्वरूप और दिशाएं —डॉ. विश्वभावन देवलिया — ६ — डॉ. भानुदेव शुक्ल

व्यंग्य-विवेचन—डॉ. श्यामसुन्दर घोष — ८ — डॉ. तेजपाल चौधरी

हिन्दी : भाषा : अनुवाद

मानक हिन्दी—डॉ. ब्रजमोहन — १० — डॉ. अम्बाप्रसाद सुमन

भाषा और भाषिकी—डॉ. देवीशंकर द्विवेदी — १२ — डॉ. सुरेशकुमार

तुलनात्मक साहित्यमें अनुवादकी भूमिका (लेख) — १४ — डॉ. मायाप्रकाश पाण्डेय

संस्मरण

निकट मनमें—अजितकुमार — १८ — डॉ. हरदयाल

उपन्यास

दिल्ली दूर है—शिवप्रसाद सिंह — २१ — डॉ. शत्रुघ्नप्रसाद

युद्धस्थल—मिथिलेश्वर — २६ — डॉ. उत्तम एल. पटेल

कहानी

यह कहानी नहीं है—शंकरदयाल सिंह — २८ — डॉ. त्रिभुवन सिंह

श्रेष्ठ आंचलिक कहानियां—ऋता शुक्ल — ३३ — डॉ. तपेश्वरनाथ

महाप्रयाण—सुदर्शन मजीठिया — ३६ — डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री

नाटक

सांच कहूं तो ..—डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय — ३७ — डॉ. भानुदेव शुक्ल

काव्य

कंदीलें—सम्पादक : राजनन्दन मिश्र — ४० — प्रो. फूलचन्द मानव

इतने दिनों तक—कुन्दन माली — ४२ — डॉ. प्रयाग जोशी

यथार्थके आसपास—गिरीश पाण्डेय — ४३ — डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ

समयधारा—शकुन्तला सेठ — ४३ — डॉ. रामानन्द शर्मा

छायागाछ—चिरंजीलाल — ४४ — डॉ. प्रयाग जोशी

आहट—नौरतन भंडारी — ४५ — ,, ,, ,,

बैंक : हिन्दी

बैंकोंमें प्रयोजनशील हिन्दी—अनिलकुमार तिवारी — ४७ — डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोध, अध्ययन,
विवेचन-समीक्षा
की मासिक पत्रिका

प्रकर

सम्पादक
विद्यासागर विद्यालंकार

सहायता
प्रकाशवती

वर्ष : २७ अंक : १
माघ : २०५१ जनवरी : १९९५

शुल्क

आजीवन	१०००.००
वार्षिक	१००.००
एक प्रति	१०.००

'प्रकर' मासिक
ए-८/४२, राणा प्रताप बाग,
दिल्ली-११०००७
दूरभाष : ७११ ३७ ६३

शुल्क बैंक ड्राफ्ट अथवा मनिआर्डरसे 'प्रकर' के नामसे ही भेजें दिल्लीसे बाहरके चैक स्वीकार करनेमें असमर्थ रहेंगे.

स्वर : विसंवादी

भारतीय गणतन्त्रकी विडम्बना

भारतीय राजनीतिकी एक विशेषता है कि प्रचार माध्यमसे ही ऐसी व्यापक बद्धमूल लोक-धारणाएं बना दी जातीहैं कि वे राजनीति और इतिहास के 'चरम सत्य' के रूपमें ग्रहण होतीहैं। ऐसीही एक धारणा यह है कि स्वतन्त्रता-प्राप्तिसे पूर्वके 'अहिंसक सत्याग्रह और असहयोग' का परिणाम था कि ब्रिटिश शासन-पद्धतिकी नींव कमजोर हो जानेसे ब्रिटेन इस देशके लोगोंको सत्ता सौंप-कर देश छोड़कर चला गया। हमारी धारणा इसके विपरीत है। हमारी मान्यता यह है कि इस देशमें विभिन्न क्षेत्रोंमें मुक्तिको साकार रूप देनेके लिए बिखरे रूपमें जो क्रान्तिकारी एवं सशस्त्र प्रयत्न हो रहेथे वे द्वितीय विश्वयुद्धके आते-आते आकार और प्रभावकी दृष्टिसे व्यापक रूप धारण करने लगेथे और द्वितीय विश्वयुद्धकी समाप्ति तक जन-चेतना इन क्रान्तिकारी और सशस्त्र प्रयत्नों और निरन्तर उनके संगठित होते जानेकी प्रवृत्ति उत्पन्न हो गयीथी। सन् ४२ का व्यापक आन्दोलन 'अहिंसक सत्याग्रह और असहयोग' का रूपान्तर नहीं था अपितु उस आन्दोलनका आधार सत्याग्रह न होकर 'करो या मरो' का प्रेरणात्मक रूप था एवं शस्त्र-संग्रह और उसके सफल प्रयोग तथा पारस्परिक सहयोग द्वारा नये संगठनकी भूमिका तैयार करना और नये नेतृत्वकी खोज था। इस प्रवृत्तिको प्रोत्साहन सुभाषचन्द्र बोसकी सेनाओंके भारत-प्रवेशसे भी मिलाथा और यही स्वतन्त्रता-प्राप्तिके लिए नयी दिशामें प्रयत्नोंका समारम्भ था। इसी प्रवृत्तिका एक छोटा-सा विस्फोट नौ-सेनाके सैनिकोंका विद्रोह था। द्वितीय महायुद्धसे थकी-हारी ब्रिटिश सत्ताने इन संकेतोंकी उपेक्षा न कर तत्काल भारतके संबंधमें नयी परन्तु इस देशको सदाके लिए पंगु बना देनेकी नीतियोंपर चिन्तन शुरू कर दिया तथा पंगु बनानेमें समर्थ ऐसे दल और उसके नेताओंको सत्ता हस्तान्तरित करनेकी दिशामें नयी नीतियोंके निर्धारण और कूट-मुद्राएं अपनाने का अपना सुपरिचित और अभ्यस्त मार्ग पकड़ा।

उस समय स्वतन्त्रता आन्दोलनका प्रभावशील दल कांग्रेस थी और उसका नेतृत्व गांधी-नेहरूके हाथोंमें था। परन्तु ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंको पूरा आभास था कि मानसिक और व्यावहारिक स्तरपर ये दोनों व्यक्तित्व एक दूसरेके पूरक न होकर भिन्न, बल्कि विपरीत दिशाओंमें भी मोड़े जा सकते हैं। इस ब्रिटिश नीतिको कार्य रूपमें परिणत करनेके लिए माउंटबेटन दम्पती सबसे अधिक उपयुक्त समझा गया। यह दम्पती भी, विशेषतः लार्ड माउंटबेटन द्वितीय विश्व-युद्धके समय इस स्थितिको भांप चुकेथे कि ब्रिटिश हित साधनेमें सहायक केवल नेहरू हो सकतेहैं, गांधी नहीं। ब्रिटिश धारणाका आधार नेहरूका वह व्यक्तित्व और मानसिकता थी जिनका निर्माण ब्रिटेनमें ही वहांकी शिक्षा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीक्षा, वहांके परिवेशसे हुआथा और जो भारतीय तत्त्वोंसे दूर हटकर 'इंडियन' बन चुकाथा अर्थात् जिसके मन-बुद्धि केवल ब्रिटिश चिन्तन-व्यवहार-आदर्श और ब्रिटिश संलग्नतासे ही निष्ठापूर्वक परिचालित होतेथे, जबकि गांधीमें भारतीय तत्त्वोंकी प्रधानता थी। माउंटबेटनने इस स्थितिको व्यावहारिक रूप प्रदान किया और राजनीतिक स्तरपर स्वतन्त्रता प्रदान करनेके लिए आयोजित वार्ताओं-चर्चाओंमें नेहरूको प्राथमिकता दी और गांधीकी स्थिति 'अन्यथासिद्ध' हो गयी। स्वयं गांधीजीने इस स्थितिको अनुभव किया और विभिन्न रूपोंमें राजनीतिक भाषाका प्रयोग करते हुए व्यक्त भी किया।

इस स्थितिने देशकी अपनी चिन्तन शक्तिपर निर्भर होने और अपने युगोंके अनुभवोंको आधार बनाकर अपने भविष्यका निर्माण करनेका आधारही समाप्त कर दिया। भावी निर्माणका आधार ब्रिटिश और यूरोपीय चिन्तन और उनके अनुभव बने। इसे आधुनिकताका वरदान माना गया, इस वरदानको यूरोपके समकक्ष विश्व राजनीतिका 'चमकता सितारा' बननेका सौभाग्य-मार्ग बताया गया। इसी मनोवृत्तिकी पृष्ठभूमिमें इस देशका संविधान बना, इस देशको 'भारत अर्थात् इंडिया' का गौरवपूर्ण अंग्रेजी-हिन्दीका संयुक्त नाम दिया गया और घोषित किया गया यह एक 'सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न समाजवादी धर्मनिरपेक्ष लोकतन्त्रात्मक गणराज्य' है। क्योंकि संविधान अंग्रेजीमें बना, इसलिए मूल नाम है "सावरेन सोशलिस्ट सेक्युलर डैमोक्रैटिक रिपब्लिक"। यह अंग्रेजी मूलका समाजवादी धर्मनिरपेक्ष संविधान अंग्रेजीभाषियोंमें तथा यूरोपमें प्रचलित ईस्वी सन् की २६ जनवरी १९५० को अंधकारपूर्ण अर्द्धरात्रिमें यूरोपीय परम्पराके अनुसार लागू किया गया और उसी अन्धकार की मनोवृत्तिके कारण आजतक यह सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न बननेके स्थानपर अमरीकी व्यापारका गढ़ और इस प्रकार नकलचियोंके समान दूसरोंके संकेतपर पश्चिमी नृत्योंके अंग-प्रदर्शनकी शैलीपर आत्म-समर्पित होकर आमन्त्रण देनेवाला खिलौना बन गयाहै, समाज-वादके स्थानपर शोषणके लिए 'पूंजीवादियोंके समाज' को अर्पित कर दिया गयाहै, धर्मनिरपेक्षताका स्थान धर्म-जाति-सापेक्षताने ले लियाहै, लोकका अर्थ 'शोषित प्रजा' का पर्याय मान लिया गयाहै। 'गण' का शाब्दिक अर्थ है समूह या वर्ग, अर्थात लोक--शोषित-प्रजाका शोषण करने वाले वर्गका राज्य अर्थात्; गणराज्य। हिन्दी अनुवादमें जो रूप इस नाम-पदने ले लियाहै, वह आजका स्थितिको सार्थक करताहै। देशके ऐतिहासिक युगोंमें भी गणराज्योंके उल्लेख है। मौर्य साम्राज्यसे पूर्व गणराज्य प्रचुर मात्रामें थे। 'मालवगण' की सत्ता एक सुपरिचित ऐतिहासिक तथ्य है, परन्तु उसमें भी 'गणाधि-पति' और शासक वर्ग ही सम्मिलित था। सम्राट् विक्रमादित्य ऐसे 'मालवगण' के गणाधिपति थे। पर इस गणराज्यका स्मरण अपने सुशासन, शौर्य और पूर्ण स्वाधीन राज्यके रूपमें किया जाताहै। सम्भवतः उसीकी यशोगाथासे अपनेको संबद्ध करनेके लिए कुछ आधुनिक विशेषणोंसे संयुक्तकर, साथ ही किसी स्वप्नके नये 'गणराज्य' की कल्पना कर आधुनिक रीति-नीतिके अनुकूल वोट-संग्रहका उपक्रम किया गयाहै; इस उपक्रमका उद्देश्य निर्वाचन हैं।

विशाल देशको खण्डित करके अर्थात् खण्डित देशको 'इंडिया' नामसे अलंकृत करके इस देशको जो यूरोपीय गौरव प्रदान करनेका प्रयत्न हुआहै, वह अपने भीतर कितना गौरवहीन है यह देशके निवासी प्रतिदिन अनुभव करतेहैं। देशको खण्डित करनेकी जो प्रक्रिया नेहरू साहबके नेतृत्वमें प्रारम्भ हुईथी, उसने अब वर्तमान स्थितियोंमें अपनी जड़ें गहरी जमा ली हैं। इसी विखण्डनकी मनोवृत्ति ही जाति, धर्म, वंश, सम्प्रदायके आधारपर किसी पृथक् 'स्तान', क्षेत्र, खण्ड, प्रदेश, राज्य की मांग करने लगीहै। विभाजन-विखण्डनकी इस प्रक्रियाको रोकनेकी सामर्थ्य कहीं दिखायी नहीं देती, बल्कि राजनीतिक हितों और स्वार्थोंके वशीभूत ये नवपुष्ट समुदाय (गण) इस प्रक्रिया को निरन्तर विस्तार दे रहेहैं। प्रत्येक खण्डको एक दूसरेके निकट लानेके स्थानपर, उन्हें अपने भीतर विकसित और समृद्ध बनानेके स्थानपर, ये आधुनिक विखंण्डनीय प्रवृत्तिके 'गण' विकसित करने और समृद्धिके प्रयत्नोंको कुण्ठित करनेके लिए जनसंख्या बढ़ानेके आन्दोलनोंको ही विकसित और समृद्ध कर रहेहैं। इससे उत्पन्न गरीबी और निरक्षरताके ही विकास की गतिको तीव्र बना रहेहै। गरीबी और निरक्षरता की स्थिति आरक्षणकी मांगके रूपमें परिवर्तित हो रहीहै। मण्डलीकरण आन्दोलन आरक्षणकी राजनीतिक सहायताके लिए पालथी मारकर बैठ गयाहै। स्थिति इतनी जटिल हो गयीहै कि 'धर्म' आर्थिक विकृतियों

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को संरक्षण प्रदान करताहै, 'अर्थ' धार्मिक विकृतियोंकी रक्षा करताहै, 'काम' पूरे समाजको यौनाचारमें रूपान्तरित करनेपर तुल गयाहै। कोई संवैधानिक विधान, विधि-व्यवस्था इन विकृतियोंपर नियंत्रण पाने में समर्थ नहीं है क्योंकि वे विधान और व्यवस्थाएं उन्हीं छल-छिद्रोंसे सुरक्षित हैं जो विदेशोंसे आयात किये गयेहैं। यह विदेशी आयात जहां आन्तरिक विकृतियों को संरक्षण प्रदान करताहै, वहां देशकी जीवनोपयोगी सामग्रीके निर्यातका मार्गभी निष्कंटक बनाताहै और नैतिक और भावनात्मक स्तरकी समृद्धिका अपहरण कर समुद्रकी अतल गहराईयोंमें धकेलनेकी भी व्यवस्था करताहै। इस स्तरपर देश इतना पंगु हो गयाहै, स्वयं देशवासी ही, देश परित्यागकर सुदूर चमचमाती समृद्धिको झपटनेके लिए निर्बाध पलायनके प्रवाह-प्रवेगको तीव्र गति प्रदान करनेकी होड़में आ खड़ा हुआहै। संविधानकी उद्देशिकामें मूल्योंकी परिगणना की गयीहै, संविधान लागू होनेके बादसे कौन-सा मूल्य साकार हुआहैं, इसका उत्तर पानेके लिए कितने युगों तक प्रतीक्षा करनी होगी, यह तो बता पाना संभव नहीं है, परन्तु उद्देशिकामें परिगणित मूल्य अपनी उपस्थिति मात्रसे परिहास और क्षोभ--दो परस्पर टकरानेवाली स्थितियोंसे किसीके भी मन-मतिको निस्सत्वकर देनेके लिए पर्याप्त हैं।

परन्तु अपने मन-मति कौर हृदयकी भावनाको व्यक्त करनेके लिए भाषाकी भी तो आवश्यकता है। मूल रूपसे अंग्रेज़ीमें रचित यह संविधान बतायेगा किसंघ की राजभाषा हिन्दी होगी और लिपि देवनागरी होगी। पर यह संविधानमें लिखा गयाहै, व्यवहारमें इसका भाव और अर्थ यही है कि देशकी राजभाषा अंग्रेजी ही रहेगी। पंद्रह वर्ष बाद हिन्दी राजभाषा बननीथी तो क्या हुआ, वह अवधि तो बीत गयी, आज पैंतालीस वर्ष बादभी अंग्रेजी राजभाषा है। संविधान है तो राजभाषा भी अंग्रेजी ही रहेगी क्योंकि यहभी तो व्यवस्था है कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में और अधिनियमों, विधेयकों आदिके लिए प्रयोग की जानेवाली भाषा अंग्रेजी ही होगी, केवल 'संसद् विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध' कर सकतीहै। परन्तु; अबतकके इतिहासको ध्यानमें रखते हुए यह आशंका निराधार नहीं होगी कि संसद् निकट भविष्यमें कभी किसी ऐसे उपबन्धकी व्यवस्था करेगी।

लार्ड माउंटबेटन और जनाब नेहरू साहबका विलायतमें प्रशिक्षित एवं दीक्षित और उनीके प्रति निष्ठावान् इंडियन मन संयुक्त रूपसे ऐसीही व्यवस्था कर गयेहै। सम्भवतः यह कहना उपयुक्त होगा कि इस युगलके सम्मोहनसे तथा अपनी विवशताको मनके किसी कोनेमें दबाकर, ब्रिटिश मन्त्रीमण्डलके प्रफुल्ल मन और मुक्त हास्यसे अभिभूत संविधान-सभाने, उसके दिग्गज विधि-विधान विशेषज्ञों और भारतीय राजनीतिज्ञोंकी 'क्रीम' ने अपने जीवनका सबसे बड़ा सौभाग्य मानकर इंडियन संविधानके ब्रिटिश गरिमा और यूरोपीय चिन्तनो-संस्कारोंसे परिव्याप्त इस संविधानको कृतज्ञतापूर्वक साभार सिरमाथे ग्रहण किया। अपने अतीतके आन्दोलनोंको इस रूपमें प्रभावी होते देख, ब्रिटिश सत्ता द्वारा स्वयं अपने प्रशिक्षित हाथोंको, (अर्थात् स्वयं अपनेको ही प्रकारान्तरसे पुरस्कृत कर) महिमामण्डित होते हुए पुरस्कार स्वीकार किया। परन्तु पुरस्कार स्वीकार करते समय वे इसके भावी प्रभाव, परिणामों और 'कुण्ठाग्रस्त भारत' अर्थात् इंडियाके रूपकी कल्पना करनेमें असमर्थ रहे। अभी तो हमें यही पीड़ा सहनी है, अपने और देश के भाग्यकी निडम्बनाको ही झेलना है! इसका विकल्प और प्रतिकार तो है, परन्तु देशका मन और मति अभी डावांडोल है।

समसामयिक वाङ्मय

रुपये का अवमूल्यन और उसका प्रभाव—सम्पा. डॉ. लक्ष्मीकान्त सिंघवी		पे. बै.	४०.००
विस्तारवादी चीन—जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी (परस्कृत)		जे बी आकार	८.००
कच्छ—पदमा अग्रवाल	,,	,,	८.००
एवरेस्ट अभियान—डॉ. हरिदत्त भट्ट शैलेश	,,	,,	८.००
अफ्रीकाके राष्ट्रीय नेता—जगमोहन लाल		,,	१०.००

'प्रकर' कार्यालय

'प्रकर, ए-८/४२ राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीक्षा, वहांके परिवेशसे हुआथा और जो भारतीय तत्त्वोंसे दूर हटकर 'इंडियन' बन चुकाथा अर्थात् जिसके मन-बुद्धि केवल ब्रिटिश चिन्तन-व्यवहार-आदर्श और ब्रिटिश संलग्नतासे ही निष्ठापूर्वक परिचालित होतेथे, जबकि गांधीमें भारतीय तत्त्वोंकी प्रधानता थी। माउंटबेटनने इस स्थितिको व्यावहारिक रूप प्रदान किया और राजनीतिक स्तरपर स्वतन्त्रता प्रदान करनेके लिए आयोजित वार्ताओं-चर्चाओंमें नेहरूको प्राथमिकता दी और गांधीकी स्थिति 'अन्यथासिद्ध' हो गयी। स्वयं गांधीजीने इस स्थितिको अनुभव किया और विभिन्न रूपोंमें राजनीतिक भाषाका प्रयोग करते हुए व्यक्त भी किया।

इस स्थितिने देशकी अपनी चिन्तन शक्तिपर निर्भर होने और अपने युगोंके अनुभवोंको आधार बनाकर अपने भविष्यका निर्माण करनेका आधारही समाप्त कर दिया। भावी निर्माणका आधार ब्रिटिश और यूरोपीय चिन्तन और उनके अनुभव बने। इसे आधुनिकताका वरदान माना गया, इस वरदानको यूरोपके समकक्ष विश्व राजनीतिका 'चमकता सितारा' बननेका सौभाग्य-मार्ग बताया गया। इसी मनोवृत्तिकी पृष्ठभूमिमें इस देशका संविधान बना, इस देशको 'भारत अर्थात् इंडिया' का गौरवपूर्ण अंग्रेजी-हिन्दीका संयुक्त नाम दिया गया और घोषित किया गया यह एक 'सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न समाजवादी धर्मनिरपेक्ष लोकतन्त्रात्मक गणराज्य' है। क्योंकि संविधान अंग्रेजीमें बना, इसलिए मूल नाम है "सावरेन सोशलिस्ट सेक्युलर डैमोक्रैटिक रिपब्लिक"। यह अंग्रेजी मूलका समाजवादी धर्मनिरपेक्ष संविधान अंग्रेजीभाषियोंमें तथा यूरोपमें प्रचलित ईस्वी सन् की २६ जनवरी १९५० को अंधकारपूर्ण अर्द्धरात्रिमें यूरोपीय परम्पराके अनुसार लागू किया गया और उसी अन्धकार की मनोवृत्तिके कारण आजतक यह सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न बननेके स्थानपर अमरीकी व्यापारका गढ़ और इस प्रकार नकलचियोंके समान दूसरोंके संकेतपर पश्चिमी नृत्योंके अंग-प्रदर्शनकी शैलीपर आत्म-समर्पित होकर आमन्त्रण देनेवाला खिलौना बन गयाहै, समाजवादके स्थानपर शोषणके लिए 'पूंजीवादियोंके समाज' को अर्पित कर दिया गयाहै, धर्मनिरपेक्षताका स्थान धर्म-जाति-सापेक्षताने ले लियाहै, लोकका अर्थ 'शोषित प्रजा' का पर्याय मान लिया गयाहै। 'गण' का शाब्दिक अर्थ है समूह या वर्ग, अर्थात लोक--शोषित-प्रजाका शोषण करने वाले वर्गका राज्य अर्थात्; गणराज्य। हिन्दी अनुवादमें जो रूप इस नाम-पदने ले लियाहै, वह आजका स्थितिको सार्थक करताहै। देशके ऐतिहासिक युगोंमें भी गणराज्योंके उल्लेख है। मौर्य साम्राज्यसे पूर्व गणराज्य प्रचुर मात्रामें थे। 'मालवगण' की सत्ता एक सुपरिचित ऐतिहासिक तथ्य है, परन्तु उसमें भी 'गणाधिपति' और शासक वर्ग ही सम्मिलित था। सम्राट् विक्रमादित्य ऐसे 'मालवगण' के गणाधिपति थे। पर इस गणराज्यका स्मरण अपने सुशासन, शौर्य और पूर्ण स्वाधीन राज्यके रूपमें किया जाताहै। सम्भवतः उसीकी यशोगाथासे अपनेको संबद्ध करनेके लिए कुछ आधुनिक विशेषणोंसे संयुक्तकर, साथ ही किसी स्वप्नके नये 'गणराज्य' की कल्पना कर आधुनिक रीति-नीतिके अनुकूल वोट-संग्रहका उपक्रम किया गयाहै; इस उपक्रमका उद्देश्य निर्वाचन हैं।

विशाल देशको खण्डित करके अर्थात् खण्डित देशको 'इंडिया' नामसे अलंकृत करके इस देशको जो यूरोपीय गौरव प्रदान करनेका प्रयत्न हुआहै, वह अपने भीतर कितना गौरवहीन है यह देशके निवासी प्रतिदिन अनुभव करतेहैं। देशको खण्डित करनेकी जो प्रक्रिया नेहरू साहबके नेतृत्वमें प्रारम्भ हुईथी, उसने अब वर्तमान स्थितियोंमें अपनी जड़ें गहरी जमा ली हैं। इसी विखण्डनकी मनोवृत्ति ही जाति, धर्म, वंश, सम्प्रदायके आधारपर किसी पृथक् 'स्तान', क्षेत्र, खण्ड, प्रदेश, राज्य की मांग करने लगीहै। विभाजन-विखण्डनकी इस प्रक्रियाको रोकनेकी सामर्थ्य कहीं दिखायी नहीं देती, बल्कि राजनीतिक हितों और स्वार्थोंके वशीभूत ये नवपुष्ट समुदाय (गण) इस प्रक्रिया को निरन्तर विस्तार दे रहेहैं। प्रत्येक खण्डको एक दूसरेके निकट लानेके स्थानपर, उन्हें अपने भीतर विकसित और समृद्ध बनानेके स्थानपर, ये आधुनिक विखण्डनीय प्रवृत्तिके 'गण' विकसित करने और समृद्धिके प्रयत्नोंको कुण्ठित करनेके लिए जनसंख्या बढ़ानेके आन्दोलनोंको ही विकसित और समृद्ध कर रहेहैं। इससे उत्पन्न गरीबी और निरक्षरताके ही विकास की गतिको तीव्र बना रहेहै। गरीबी और निरक्षरता की स्थिति आरक्षणकी मांगके रूपमें परिवर्तित हो रहीहै। मण्डलीकरण आन्दोलन आरक्षणकी राजनीतिक सहायताके लिए पालथी मारकर बैठ गयाहै। स्थिति इतनी जटिल हो गयीहै कि 'धर्म' आर्थिक विकृतियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को संरक्षण प्रदान करताहै, 'अर्थ' धार्मिक विकृतियोंकी रक्षा करताहै, 'काम' पूरे समाजको यौनाचारमें रूपान्तरित करनेपर तुल गयाहै। कोई संवैधानिक विधान, विधि-व्यवस्था इन विकृतियोंपर नियंत्रण पाने में समर्थ नहीं है क्योंकि वे विधान और व्यवस्थाएं उन्हीं छल-छिद्रोंसे सुरक्षित हैं जो विदेशोंसे आयात किये गयेहैं। यह विदेशी आयात जहां आन्तरिक विकृतियों को संरक्षण प्रदान करताहै, वहां देशकी जीवनोपयोगी सामग्रीके निर्यातका मार्गभी निष्कंटक बनताहै और नैतिक और भावनात्मक स्तरकी समृद्धिका अपहरण कर समुद्रकी अतल गहराईयोंमें धकेलनेकी भी व्यवस्था करताहै। इस स्तरपर देश इतना पंगु हो गयाहै, स्वयं देशवासी ही, देश परित्यागकर सुदूर चमचमाती समृद्धिको झपटनेके लिए निर्बाध पलायनके प्रवाह-प्रवेगको तीव्र गति प्रदान करनेकी होड़में आ खड़ा हुआहै। संविधानकी उद्देशिकामें मूल्योंकी परिगणना की गयीहै, संविधान लागू होनेके बादसे कौन-सा मूल्य साकार हुआहैं, इसका उत्तर पानेके लिए कितने युगों तक प्रतीक्षा करनी होगी, यह तो बता पाना संभव नहीं है, परन्तु उद्देशिकामें परिगणित मूल्य अपनी उपस्थिति मात्रसे परिहास और क्षोभ--दो परस्पर टकरानेवाली स्थितियोंसे किसीके भी मन-मतिको निस्सत्वकर देनेके लिए पर्याप्त हैं।

परन्तु अपने मन-मति कौर हृदयकी भावनाको व्यक्त करनेके लिए भाषाकी भी तो आवश्यकता है। मूल रूपसे अंग्रेज़ीमें रचित यह संविधान बतायेगा किसंघ की राजभाषा हिन्दी होगी और लिपि देवनागरी होगी। पर यह संविधानमें लिखा गयाहै, व्यवहारमें इसका भाव और अर्थ यही है कि देशकी राजभाषा अंग्रेजी ही रहेगी। पंद्रह वर्ष बाद हिन्दी राजभाषा बननीथी तो क्या हुआ, वह अवधि तो बीत गयी, आज पैंतालीस वर्ष बादभी अंग्रेजी राजभाषा है। संविधान है तो राजभाषा भी अंग्रेजी ही रहेगी क्योंकि यहभी तो व्यवस्था है कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में और अधिनियमों, विधेयकों आदिके लिए प्रयोग की जानेवाली भाषा अंग्रेजी ही होगी, केवल 'संसद् विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध' कर सकतीहै। परन्तु; अबतकके इतिहासको ध्यानमें रखते हुए यह आशंका निराधार नहीं होगी कि संसद् निकट भविष्यमें कभी किसी ऐसे उपबन्धकी व्यवस्था करेगी।

लार्ड माउंटबेटन और जनाब नेहरू साहबका विलायतमें प्रशिक्षित एवं दीक्षित और उसीके प्रति निष्ठावान् इंडियन मन संयुक्त रूपसे ऐसीही व्यवस्था कर गयेहै। सम्भवतः यह कहना उपयुक्त होगा कि इस युगलके सम्मोहनसे तथा अपनी विवशताको मनके किसी कोनेमें दबाकर, ब्रिटिश मन्त्रीमण्डलके प्रफुल्ल मन और मुक्त हास्यसे अभिभूत संविधान-सभाने, उसके दिग्गज विधि-विधान विशेषज्ञों और भारतीय राजनीतिज्ञोंकी 'क्रीम' ने अपने जीवनका सबसे बड़ा सौभाग्य मानकर इंडियन संविधानके ब्रिटिश गरिमा और यूरोपीय चिन्तनो-संस्कारोंसे परिव्याप्त इस संविधानको कृतज्ञतापूर्वक साभार सिरमाथे ग्रहण किया। अपने अतीतके आन्दोलनोंको इस रूपमें प्रभावी होते देख, ब्रिटिश सत्ता द्वारा स्वयं अपने प्रशिक्षित हाथोंको, (अर्थात् स्वयं अपनेको ही प्रकारान्तरसे पुरस्कृत कर) महिमामण्डित होते हुए पुरस्कार स्वीकार किया। परन्तु पुरस्कार स्वीकार करते समय वे इसके भावी प्रभाव, परिणामों और 'कुण्ठाग्रस्त भारत' अर्थात् इंडियाके रूपकी कल्पना करनेमें असमर्थ रहे। अभी तो हमें यही पीड़ा सहनी है, अपने और देश के भाग्यकी निडम्बनाको ही झेलना है! इसका विकल्प और प्रतिकार तो है, परन्तु देशका मन और मति अभी डावांडोल है।

समसामयिक वाङ्मय

रुपये का अवमूल्यन और उसका प्रभाव—सम्पा. डॉ. लक्ष्मीकान्त सिंघवी		पे. बै.	४०.००
विस्तारवादी चीन—जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी (परस्कृत)		जे बी आकार	८.००
कच्छ—पदमा अग्रवाल	,,	,,	८.००
एवरेस्ट अभियान—डॉ. हरिदत्त भट्ट शैलेश	,,	,,	८.००
अफ्रीकाके राष्ट्रीय नेता—जगमोहन लाल		,,	१०.००

'प्रकर' कार्यालय

'प्रकर, ए-८/४२ राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नए महत्वपूर्ण प्रकाशन

भारतीय संस्कृति कोश / पं० लीलाधर शर्मा पर्वतीय — मूल्य 450/-

वेद, वेदांग, दर्शन, उपनिषद्, पुराण, ज्योतिष, इतिहास, कला, अध्यात्म, खगोल आदि से सम्बन्धित भारतीय संस्कृति के विभिन्न पक्षों की सर्वांगपूर्ण व्याख्याओं का विश्वकोश।

अंग्रेज़ी-हिन्दी पारिभाषिक शब्दकोश / डा० हरदेव बाहरी — मूल्य 400/-

अंग्रेज़ी के 85000 तकनीकी शब्दों के हिन्दी पर्याय दिए गए हैं जो रेलवे, बैंक, बीमा और सभी सरकारी कार्यालयों में हिन्दी के काम करने में सहायक सिद्ध होंगे।

का के लागू पांव / डा० भगवतीशरण मिश्र — मूल्य 200/-

गुरु तेगबहादुर के जीवन के राष्ट्र को समर्पित संघर्ष के क्षण और तत्पश्चात् लोमहर्षक बलिदान की गाथा और गुरु गोविन्दसिंह के आरम्भिक जीवन के अछूते और प्रेरक प्रसंगों पर आधारित एक पठनीय उपन्यास।

युगपुरुष अंबेडकर / राजेन्द्रमोहन भटनागर — मूल्य 200/-

डा० अंबेडकर के जीवन पर आधारित उपन्यास जिसमें रोचक भाषा में जीवन की संवेदनाओं, अछूते प्रसंगों, और राष्ट्रीय आन्दोलन के चित्रण हैं।

नीता मुझे माफ कर दो / उपेन्द्रनाथ अश्क — मूल्य 60/-

अश्क जी मानव मन के विश्लेषण प्रेम की विभिन्न भंगिमाओं के चित्र प्रस्तुत करने में दक्ष हैं। यह उपन्यास उनकी इसी ख्याति को जीवंत करता है।

इज्ज़त की जिन्दगी / जियालाल आर्य — मूल्य 45/-

आज के सच पर आधारित कहानियां जिनमें जीवन से जुड़े प्रसंग और समस्याएं चित्रित हैं।

क्रान्तिकारी लोहिया / राजेन्द्रमोहन भटनागर — मूल्य 60/-

इस उपन्यास में डा० लोहिया के जीवन संघर्ष की प्रेरणाभरी कहानी है जिसमें उनके व्यक्तित्व की सही तस्वीर उभरकर सामने आती है।

व्यावसायिक संप्रेषण / डा० अनूपचन्द्र पु० भायाणी — मूल्य 100/-

सरकारी कार्यालयों, बैंकों, रेलवे, डाक-तार और सभी व्यावसायिक संगठनों में हिन्दी के पत्राचार के लिए बेजोड़ आदर्श संदर्भ ग्रंथ जिसमें पत्रों आदि के अनेकों नमूने दिए गए हैं।

साहित्यिक सुभाषित कोश / हरिवंशराय शर्मा — मूल्य 300/-

भारतीय वाङ्मय, दर्शन, धर्म और साहित्य से और देश-विदेश के चुने हुए महापुरुषों के 8400 से ऊपर सुभाषित और सूक्तियां जो जीवन की विभिन्न स्थितियों के लिए मार्गदर्शक है, इस ग्रंथ में संग्रहीत है।

शब्दार्थ विचार कोश / आचार्य रामचन्द्र वर्मा — मूल्य 350/-

इसमें सार्थक शब्द समूहों को इस प्रकार विवेचित विश्लेषित किया गया है कि शब्दों के अर्थ-भेद स्पष्ट होते जाते हैं और पाठक के शब्द भण्डार से अपूर्व वृद्धि हो जाती है।

शब्द परिवार कोश / डा० बदरीनाथ कपूर — मूल्य 150/-

सामान्य कोश परम्परा से हटकर बना यह कोश विशेष शब्दों के पूरे परिवार को लेकर मूल शब्द के साथ-साथ उनसे बने शब्दों के अर्थों की भिन्नता आदि का विवेचन प्रस्तुत करता है।

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्तित्ववादी अलगावका अन्तर्व्यूह और नयी कविता[1]

लेखक : डॉ. हनुमन्त राय नीरव
समीक्षक : डॉ. पूरनचन्द टंडन

अस्तित्ववादी चिन्तकोंकी मान्यता है कि मनुष्य की मूलभूत समस्या अलगावकी समस्या है। ईश्वरकी मृत्युको स्वीकार करनेसे वह सम्पूर्ण संसारमें अपने आपको अकेला अनुभव करताहै। जीवनके सभी कार्य-कलापोंका भार उसीके कंधोंपर आ जाताहै। वह अपना संरक्षक, नियामक स्वयं बन जाताहै। किन्तु इस गुरुतर कार्यका विचार ही उसके अपने अस्तित्वको ढक देताहैं और वह समस्त संसारसे कटकर अलगावकी स्थितिमें पहुंच जाताहै। डॉ. हनुमन्त राय नीरवने अलगावकी इस स्थितिको किर्केगार्द, नीत्शे, हेडेगर, कार्ल यास्पर्स तथा सार्त्रके उद्धरणों द्वारा व्याख्यायित करके इसे भारतीय मनीषियोंकी धारणाओंसे सम्बद्ध करनेका महत्त्वपूर्ण कार्य कियाहै। अलगावकी विचारधाराको पूर्णता प्रदानके लिए उन्होंने अस्तित्ववादी अलगावके साथ-साथ मार्क्सवादी अलगावकी अवधारणाका भी विस्तृत परिचय दियाहै। दोनों विचारधाराएं परस्पर विरोधी होती हुईभी एक दूसरेकी पूरक बनकर व्यक्त हुईहैं।

मनुष्यके अपने कुछ स्वार्थ होतेहैं, जो जगत्की वास्तविकताके धरातलपर अन्योंके स्वार्थोंसे टकरातेहैं। व्यक्ति अपनी इच्छानुसार जगत्के व्यवहारमें परिवर्तन नही कर सकता, इसीकारण कभी-कभी उसे अपनी योजनाओंमें असफलताका सामना करना पड़ताहै। मनुष्य जब हारताहै तो वह अपनी आन्तरिक लज्जाके कारण दूसरोंके सामने आनेसे कतराताहै। इस प्रकार वह समाजसे अपने आपको अलग कर लेताहै। भारतीय जीवनमें यह अलगाव कहीं समाज, धर्म एवं राजनीति ने उत्पन्न कियाहै तो कहीं अर्थपर आधारित स्वार्थपूर्ण संबंधोंने।

अज्ञेयने अपनी कविताओंमें अलगावकी विभिन्न स्थितियोंको रूपायित कियाहै। उनकी रचनाओंका मनुष्य अपने 'स्व'से अलग होकर आत्म-निर्वासित हो जाताहैं। किन्तु अकेलेपनकी यह अनुभूति उसे डराती नहीं अपितु अंधकारपर अधिकार स्थापित करनेकी भावना को जागृत करतीहै। उन्होंने अकेलेपनको ईंटकी संज्ञा प्रदान कीहै। वस्तुतः अज्ञेयकी कविताएं सार्त्रकी उस कल्पनाको प्रकट करती हुई दृष्टिगोचर होतीहैं जिसमें वैयक्तिक ईकाई अपनेमें अन्योंको संगठितकर समूह-निर्माणकी ओर प्रयत्नशील होगी। किन्तु सार्त्रका यह दिवा-स्वप्न, स्वप्न बनकर ही रह गया। अज्ञेयकी रचनाएं स्वप्नको वास्तविकतामें बदलनेमें असमर्थ ही हैं। डॉ. नीरवने अज्ञेयके अलगाव-बोधका वर्णन करके अपरिहार्य नियतिके रूपमें ओढ़े हुए अलगाव-बोधके नकाबको उतारनेका प्रयास दियाहै। इसी प्रकार उन्होंने मुक्तिबोधके एक ऐसे कवि-चिन्तक रूपको प्रस्तुत कियाहै, जो अजनबीपन, विफलता, हताशा आदि मनःस्थितियोंको सामाजिक विद्रूपताकी देन मानते हुए उन्हें प्रगतिका एक नवीन आयाम प्रदान करतेहैं।

मुक्तिबोध प्रारम्भसे ही सत्यका अन्वेषण करनेके लिए प्रयत्नशील रहेहैं। उनकी दृष्टि 'स्व' के साथ-साथ जन-चेतनासे जुड़ी हुईहै। यही कारण है कि उन्होंने व्यक्तिवादकी संकीर्णताका अतिक्रमण कर जन-समुदायके विकासके लिए परिवेशकी विषमताओंके भयावह चित्र अंकित कियेहैं ..

'नगरकी व्यथाएं/ सभाओंकी कथाएं/ मोर्चोंकी तड़प और/ मकानोंके मोर्चे/ मीटिंगोंके मर्म-राग/

---

१. प्रकाशक : नीरव प्रकाशन, १४६/३१, मोहल्ला महाजन, झज्झर रोड, रोहतक-१२४००१। पृष्ठ : १६०; डिमा. ९३; मूल्य : ११०.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंगारोंसे भरी हुई/ प्राणोंकी गर्म राख।'···(चांदका मुंह टेढ़ा है)

उनका काव्य-नायक अज्ञेय आदि अन्य कवियोंके नायकोंके समान भीड़से अलग होकर स्थितियोंका आकलन नहीं करता अपितु अन्योंके मध्य रहकर सत्यकी खोज करताहै। वह अलगावकी स्थितिमें भी जीवन जीताहै। अलगावको शाश्वत या अनतिक्रमणीय न मानकर, व्यवस्थामें परिवर्तन उपस्थित करके उसकी समाप्तिमें विश्वास रखताहै। इस प्रकार डॉ. नीरवने मुक्तिबोधके अलगावको मार्क्सवादी अलगावकी धारणा के अनुरूप एक ओर सामाजिक बुराईका रूप प्रदान कियाहै, दूसरी ओर अस्तित्वकी धारणाओंके अनुरूप उसका समाधान व्यक्तिगत न मानकर सामाजिक माना है।

डॉ. हनुमन्त राय नीरवने परिवेशसे अलगावको दो रूपोंमें देखाहै...(i) प्राकृतिक परिवेशसे अलगाव तथा (ii) समाजगत परिवेशसे अलगाव। अज्ञेय तथा उनके समवर्ती कवियोंका मत है कि प्रकृतिके विस्तार के समक्ष मनुष्य अपने आपको अत्यन्त लघु समझता है। उसका अस्तित्व प्राकृतिक उपादनोंके नीचे ढक कर या तो खो जाताहै या प्राकृतिक परिवेशमें कैद हो जाता है...'सारा जंगल/ एक छोटे-से/ पोखरको/ दबोचकर/ खड़ाहै //' अतः प्रकृतिसे उसका अलगाव होना निश्चित है। नयी कविताके परवर्ती कवियोंने समाजसे मानवीय अस्तित्वके संघर्षका बर्णन विभिन्न परिस्थितियोंके संदर्भमें कियाहै। लक्ष्मीकांत वर्मा, सर्वेश्वरदयाल, कैलाश वाजपेयी आदि कवि अलगावकी यंत्रणासे छुटकारा पानेके लिए, मृत्युके वरणकी बात करतेहैं। डॉ. नीरवने इसी तथ्यको विभिन्न उद्धरणोंसे प्रकाशित कर नयी कविताको 'जीवनसे कोसों दूर ले जानेवाली कविता' कहकर सम्बोधित कियाहै। यह कहनेमें रंच मात्र भी संकोच नहीं होता कि डॉ. नीरवकी यह मान्यता पूर्णतः सार्थक है।

नयी कविताके तथाकथित क्षणवादका संप्रत्यय भी मानवीय लघुताके बोधके साथ जुड़ा हुआहै। मानवीय इतिहास, संस्कृति और चेतनाके विराट् सन्दर्भमें वैयक्तिकताके नकारात्मक विस्फोटकी उपलब्धि है एकाकी, निस्संग, अप्रतिबद्ध, सन्दर्भ और परम्परासे विमुक्त यह क्षण जिसे प्रत्येक नया कवि जीना और भोगना चाहताहै। डॉ. नीरवने अपनी कृतिमें इसका स्थान-स्थानपर स्पष्ट उल्लेख कियाहै। पश्चिममें खण्डित चेतनाका यह अनुभव शताब्दिके पूर्वार्द्धमें होनेवाली परिवेशीय संघटनाओंकी प्रतिध्वनि था जिसके आधार पर क्षणका घोर वैयक्तिक दर्शन अस्तित्ववादियों या टी. एस. इलियट, वाल्ट व्हिटमेन, डी. एम. लारेन्स, अथवा काफकामें खूब ध्वनित हो चुकाहै।

आजका युग मोह-भंगकी जड़ता तथा विफलताके बोधका, उसके दंशका, दिशाहीन अनास्थाका, टूटन और बिखरावका युग है। ऐसे पीड़ित युगकी यह खाद ही आजके कविकी मानसिकताका पोषण कर उर्वर बनातीहै। हमारी गलाकाट सामाजिकता अब प्रतिद्वन्द्विताकी निर्लज्ज सामाजिकता बन गयीहै। नैतिकता का पतन, मूल्योंका ह्रास मानवीय आत्माका विघटन, चारित्रिक छल-कपट, वचन और कर्मका षड्यन्त्र, हत्या और प्रवञ्चना आदि कितने ही अवमूल्यन अब मूल्यवान् हो बैठेहैं। धनकी चकाचौंध, भुखमरी और बेरोजगारी, चरित्रहीन राजनीति, सामाजिक-आर्थिक विसंगति तथा बिखरते टूटते पारिवारिक परिवेश...सबके सब कवि विद्रोहको जन्म देतेहैं। इन सभी स्थितियोंसे जन्म लेती त्रासद एवं घातक स्थितियोंको अलगावके अन्तर्व्यूहके रूपमें डॉ. नीरवने अत्यन्त प्रभावी एव प्रामाणिक ढंगसे चित्रित कियाहै। कुल मिलाकर यह एक पठनीय, प्रेरक एवं सामयिकताका गहन बोध कराने वाली महत्त्वपूर्ण कृति है। बहुत कम कार्य शोधके माध्यमसे होकर निष्ठासे पूर्ण होतेहैं। ऐसेही विलक्षण दुर्लभ आलोच्य एवं शोध-कर्मोंमें इस कृतिको भी देखा जाना चाहिये। बधाई □

नाट्य प्रशिक्षण : स्वरूप और दिशाएं[१]

लेखक : डॉ. विश्वभावन देवलिया
समीक्षक : डॉ. भानुदेव शुक्ल

रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुरके हिन्दी विभागने जयशंकर प्रसाद जन्मशतीके प्रसंगमें मार्च १९९१ को 'विश्वविद्यालयोंमें नाटक और नाट्यकला का व्यावसायिक प्रशिक्षण' विषयपर एक संगोष्टी आयोजित कीथी। इस संगोष्ठीके आलेखोंके साथ विषयसे

२. प्रकाशक : हिन्दी विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म. प्र.)। पृष्ठ : ४ + ९९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बद्ध कुछ और आलेख एकत्र कर डॉ देवलियाने यह पुस्तक तैयार कीहै।

पुस्तकमें प्रारंभमें गोष्ठीकी कार्यवाहीकी रिपोर्टके साथ तेरह आलेख हैं। लेखकोंकी मुख्य चिन्ता यह रही है कि विश्वविद्यालयीन स्तरपर भी नाटकका अध्यापन कविता अथवा उपन्यासके समान ही होताहै। कम प्राध्यापकही दृश्यकाव्यकी दृश्यात्मक सूक्ष्मताओंसे अपने छात्रोंको अवगत करा पातेहैं। इस शोचनीय स्थितिमें सुधारके लिए अनेक उपयोगी सुझाव भी प्रस्तुत किये गयेहैं। सम्पादक डॉ. देवालियाने एक नौ सूत्री सुझाव दियाहै जो महत्त्वपूर्ण है किन्तु शिक्षाके लिए उपलब्ध साधनोंके विचारसे यह कम व्यावहारिक सिद्ध होगा। डॉ. आनन्द गौतमने नाट्य प्रशिक्षणके लिए स्वतन्त्र विषयकी आवश्यकता प्रकट करते हुए इसका दस प्रश्न-पत्रोंका पाठ्यक्रम भी सुझावके रूपमें दियाहै। विभु-कुमारकी माँग हैं प्रसादजीके नाटकोंके बजाए राधेश्याम कथावाचक अथवा मुन्शी अजमेरीके नाटकों को पाठ्यक्रममें रखा जाये। विभुकुमारके अनुसार प्रसाद मूलतः कवि थे, नाटककार नहीं। प्रसाद जन्म-शतीके प्रसंगमें तो यह विचार अधिक अटपटा हैं। उल्लेख योग्य तथ्य यह भी है कि भारतके शीर्षस्थ रंगकर्मी इब्राहीम अल्काज़ी तथा शान्ता गाँधी प्रसादको महत्त्वपूर्ण नाटककार मानते रहेहैं।

डॉ. सुरेशचंद्र शुक्ल 'चन्द्र', डॉ. बालेन्दुशेखर तिवारी तथा डॉ. भानुदेव शुक्ल नाटककी वर्तमान पढ़ाईके स्वरूपसे असंतुष्ट हैं। डॉ. चन्द्र रंगमंचकी तकनीककी जानकारी दिये जानेकी माँग करतेहैं। डॉ. भानुदेव शुक्लका सुझाव है कि नाटक पढ़ानेके लिए आवश्यक तैयारीवाले प्राध्यापकोंकी कमीको ध्यानमें रखकर इन शिक्षकोंकी सेवाएं एकाधिक विश्वविद्यालयों को उपलब्ध करायी जायें।

डॉ. गिरीश रस्तोगीका कहना है—"नाटक एक स्वतन्त्र विधा है और प्रस्तुतीकरण भी एक स्वायत्त कला है।" बात सही है। और इसका आशय भी यही है कि नाटककी पढ़ाईमें 'प्रस्तुतीकरणकी सामान्य जानकारीसे अधिक सम्बन्धकी अपेक्षा करना अन्याय है। डॉ. रस्तोगीने एक लेखमें, और संभवतः एक ही विषयकी पढ़ाईके रूपमें, दोनोंको ले लियाहै। इससे बात कभी-कभी उलझी भी है। सूरके गीतोंके काव्यपक्ष तथा संगीत पक्ष साथ लिये जा सकतेहैं, किन्तु इस चेष्टामें निर्णय उलझाये भी जा सकतेहैं।

डॉ. सत्यदेव त्रिपाठीने वर्तमान स्थितियोंमें नाट्य-शिक्षणमें प्रस्तुतीकरणकी सुविधाएं न होनेसे मध्यम मार्ग सुझायाहै। उन्होंने नाटकीय वाचनका सुझाव दियाहै जो कक्षाओंमें सुलभ भी हैं। साथ ही उनका आग्रह है कि प्रयास यही होने चाहियें कि नाटकके साथ संचार माध्यमोंके शिक्षण भी सुलभ कराये जायें। डॉ. त्रिभुवननाथ शुक्लने भी दृश्यात्मक कलाओंको राष्ट्रीय एकता एवं साम्प्रदायिक सद्भावको बढ़ानेवाला बताते हुए इनके शिक्षणके साथ संगीतके शिक्षणको भी जोड़ दियाहै। इस प्रकारवे नाट्य-प्रशिक्षणपर बात करते हुए इसकी सीमाओंसे भटके भी हैं। यही आग्रह या भटकाव, शरच्चन्द्र चतुर्वेदीके लेखमें भी हैं जो संगीत की शिक्षाको आवश्यक बतातेहैं। यहाँ हम स्पष्ट करदें कि अनेक विश्वविद्यालयोंमें संगीत स्वतंत्र विषयके रूपमें स्वीकृत है, कि संगीत-शिक्षाके लिए हो अनेक महा-विद्यालय, निजी संस्थाएं तथा एक विश्वविद्यालयभी है। अर्थात् संगीतकी शिक्षामें कोई उल्लेखनीय कमी नहीं है जबकि नाट्य-शिक्षणके लिए समुचित व्यवस्थाएं बहुत कम हैं यद्यपि नाटककी पढ़ाई अधिकांश विश्व-विद्यालयमें होतीहै।

डॉ. सुरेश अवस्थीने व्यावहारिक दृष्टिके साथ विश्वविद्यालयीन शिक्षामें नाटकके सही शिक्षणकी आवश्यकता प्रकट करते हुए इंगलैण्ड और अमरीकाके उदाहरण दियेहैं। डॉ. अवस्थी ने समुचित शिक्षणमें बाधाओं···प्रशिक्षित शिक्षकोंकी कमी, रंगशालाओंके निर्माणमें साधनोंकी कमी, आवश्यक उपकरणों एवं साज-सज्जाकी सामग्रीकी कमी आदिपर ध्यान दियाहै। वे जानतेहैं कि इन कमियोंके रहते नाटकके सही शिक्षण की बात असंगत है। नाट्य-शिक्षणकी उपयोगिताके विचारसे इसके लिए अधिक शासकीय अनुदानकी मांग आवश्यक हैं। साथही, नाट्य-शिक्षणके सही विकासके लिए अव्यावहारिक मांगोंसे भी बचनेकी आवश्यकता है जो प्रच्छन्न रूपसे विभिन्न लेखोंमें उभरीहैं। जबकि कुछेककी माँगें तो नाट्य-शिक्षाको समाप्तिकी ओर ले जानेवाली भी सिद्ध हो सकतीहैं। अतिरिक्त उत्साह न तो स्थायी होताहै और न ही उपयोगी सिद्ध हो पाताहै।

एक निश्चित विषयसे सम्बद्ध होनेसे लेखोंमें विचारोंकी पुनरावृत्तियाँ हैं, जो स्वाभाविक भी हैं। तब भी, नाटक तथा नाट्यसे उपयोगी प्रशिक्षणकी ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्यान खींचनेका संगोष्ठीके संयोजकों एवं आलेखोंके लेखकोंके प्रयास सकारात्मक हैं। संवादका यह प्रारम्भ हैं, इसे आगे बढ़ानेके प्रयास होने चाहियें। ▭

व्यंग्य विवेचन[1]

लेखक : डॉ. श्यामसुन्दर घोष
समीक्षक : तेजपाल चौधरी

यह व्यंग्यकी त्रासदी ही है कि उसे अभी तक अपना कोई प्रबल प्रवक्ता नहीं मिल पाया। छायावाद से लेकर नयी कविता तक और नयी कहानीसे लेकर सहज कहानी तक सभी साहित्यिक आन्दोलन अपने-अपने वकीलोंके बयानोंके सहारे खड़े हुएहैं। किन्तु व्यंग्यकी बात अलग है। उसका कोई प्रवक्ता तो है ही नहीं, अपने-अपने खेमेके लेखकोंको श्रेष्ठ व्यंग्यकार घोषित करने और बाहरके लेखनको अपरिपक्व बताने की प्रवृत्तिको ही समीक्षा मान लिया गयाहै। स्पष्ट है व्यंग्यकी सही समीक्षाकी अत्यन्त आवश्यकता है, जो व्यंग्य-विषयक भ्रान्तियोंको दूर करे और सही लेखनको प्रोत्साहित करे। डॉ. श्यामसुन्दर घोषके व्यंग्य विवेचनसे ये आशाएं बंधतीहैं।

दूसरे, व्यंग्यको प्रात-प्रतिघात भी बहुत झेलने पड़ेहैं। किसीने उसे नकारात्मक लेखन कहकर चिढ़ाया है तो किसीने उत्तेजनाके क्षणोंका प्रलाप। किसीने उसे दैनिक समाचार पत्रकी तरह क्षणभंगुर और अस्थायी कहकर उसकी शाश्वतताको नकारा है, तो किसीने उसे केवल हास्यका सहजीवी मान लियाहै। ये स्थितियाँ इसलिए उपजीं कि व्यंग्यको सैद्धान्तिक समीक्षाका सशक्त आधार नहीं मिला और व्यंग्य समीक्षाके सुनिश्चित मानदण्ड स्थापित नहीं हो पाये। फलस्वरूप आजकी व्यंग्य-समीक्षाने 'विकृतियोंपर प्रबल प्रहार कियाहै', 'बखिया उधेड़ दीहै' 'पर्दाफाश कियाहै' से एक कदमभी आगे नहीं बढ़ पायी। डाक्टर श्यामसुन्दर घोषके 'व्यंग्य विवेचन' में यत्रतत्र व्यंग्य समीक्षाके मानदण्ड बिखरे हुएहैं। उन्हें सुनियोजित 'काव्य शास्त्रीय' स्वरूप देकर एक बड़े अभावकी पूर्ति कीजा सकती है।

'व्यंग्य विवेचन' का आवरण पृष्ठ एक दृष्टिमें व्यंग्यकारकी स्थिति और सामाजिक भूमिकाको व्यक्त कर देताहै। व्यंग्यकार शंकरकी भांति अपना त्रिशूल ऊपर उठाये आकाशकी ओर देख रहाहै। त्रिशूलका बीचका शूल पेनके निबकी नोकवाला है जो कागजोंकी परतें बेधकर पार हो गयाहै। त्रिशूलसे डमरू बंधा हुआ है और निकट हीं चन्द्रमाकी कला भासमान है। कहने की आवश्यकता नहीं कि व्यंग्यकार विषपायी शंकरकी भांति कदम-कदमपर विषके घूँट पीताहै, समाजके 'अशिव' तत्त्वपर आघात करताहै और डमरूकी ध्वनिसे अलसाये समाजके मनमें चेतनाका संचार करताहै। चन्द्रमाकी कला जीवनके सौन्दर्यका प्रतीक है। व्यंग्यकार साहित्यकार ही तो हैं, 'सौन्दर्य' उसका प्राप्य है, अभिगम्य है। यह बात दूसरी है कि उसके लिए सौन्दर्य का अर्थ नारीकी मोहकता या प्रकृतिकी रोचकता नहीं, मानव मूल्योंकी प्रतिष्ठा है।

श्यामसुन्दर घोष यों भी व्यंग्यका उद्देश्य व्यंग्य-बोधकी तुष्टिको ही मानतेहैं। (पृ. १३८)। यह सही भी है। व्यंग्यकारका उद्देश्य सामाजिक आक्रोशको हवा देकर विध्वंसकोंकी फौज खड़ी करना नहीं है। वह तो पाठककी चेतनाको स्पर्शकर उसे आनन्द मात्र प्रदान करताहै। यह स्वानुभूत सत्य है कि हम जिसे सामाजिक दुरवस्थाके लिए उत्तरदायी मानतेहैं, उसे अनावृत होते देख अन्त:सुखका अनुभव करतेहैं। यही व्यंग्यका काव्यानन्द है, व्यंग्यका सौन्दर्य बोध है।

प्राय: कहते हुए सुना गयाहै कि व्यंग्य दूसरे दर्जे का साहित्य है। प्रथम वर्गका साहित्य कविता है या अन्य ललित विधाएं हैं, जो जीवनमें सौन्दर्यकी खोज करतीहैं। डॉ. घोष कहतेहैं कि व्यंग्यकार भी तो यही सब करताहै। हाँ, वह अच्छाइयोंके संरक्षणके लिए बुराइयोंकी खोज करताहै। यह एक अप्रिय कार्य है, पर अवाँछनीय तो नहीं। क्या कीटनाशकोंका प्रयोग पौधेके लिए उतना ही महत्त्वपूर्ण नहीं, जितना खाद-पानी देना। (पृ. ५२)।

डॉ. श्यामसुन्दर घोष व्यंग्यको हल्का-फुल्का लेखन नहीं मानते। उनकी दृष्टिमें व्यंग्य एक गंभीर मनोभाव और गम्भीर मनोदशा है। वे लिखतेहैं 'व्यंग्य एक परिपक्व और स्थायी मानसिकताकी उपज है।—यह अनुभवकी ऊष्माकी उपज है।' (पृ. २५)। आगे उन्होंने

---

१. प्रकाशक : पराग प्रकाशन, ३/११४ कर्ण गली, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-११००३२। पृष्ठ : २६२; डिमा. ९४; मूल्य : १७५:०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहाहै कि 'व्यंग्यका' पौधा यथार्थकी गहरी जानकारियों, मानवीय रिश्तों तथा मनोभावों और पुष्ट परिपक्व संवेदनाओंकी भूमिपर उगताहै। (पृ. २७)। वास्तवमें जीवनकी विकृतियाँ इतनी स्पष्ट और सहज संवेद्य नहीं होती कि सामान्य व्यक्तिकी, बाह्य आवरण को छूकर लौट आनेवाली दृष्टि उनके तल तक पहुँच सके। मिथ्याचरण, आडम्बर और मुखौटावृत्ति ऊपरी सतहपर इतनी शालीन होतीहैं कि उसके नीचे छिपी वास्तविकताको देखनेके लिए विशिष्ट तलदर्शी व्यंग्य दृष्टिकी आवश्यकता होतीहै। उस तक पहुँचनेमें ही व्यंग्यकारकी प्रतिभाकी पहचान निहित है।

डॉ. घोषने व्यंग्यके विधा होनेके प्रश्नपर भी विचार कियाहै। स्पष्ट है, व्यंग्यकार अपनी बात किसी न किसी साहित्य रूपके माध्यमसे कहताहै। वह माध्यम निबन्ध हो सकताहै, कहानी हो सकतीहै, उपन्यास नाटक-कुछ भी हो सकताहै। ऐसी रचनाओंमें सम्बद्ध विधाके तत्त्व गौण हो जातेहैं और व्यंग्य सब तत्त्वोंसे ऊपर, रचनाका प्राणतत्त्व बनकर खड़ा हो जाता है। 'राग दरबारी' में औपन्यासिकता कहाँ है ? न कथानकमें, न पात्रोंमें, न परिवेशमें, न शैलीमें। इस कोटि की रचनाओंको अधिकसे अधिक व्यंग्य-उपन्यास, व्यंग्य नाटक आदि कह सकतेहैं। (देखिये 'व्यंग्य और व्यंग्य विधा' पृ. २५-२६)।

श्यामसुन्दर घोष व्यंग्यको समसामयिक सन्दर्भोंके लिए अनुकूलतम विधा मानतेहैं। वस्तुतः आज सम्पूर्ण व्यवस्था जिस प्रकार क्षत-विक्षत हुईहै, जीवन-मूल्य जिस प्रकार टूटेहैं, ऋजुता और सरलताके ऊपर मुखौटा वृत्ति जिस प्रकार हावी हुईहै, साहित्यकारके सारे शस्त्र कुंठित हो गयेहैं। अब व्यंग्य ही एक मार्ग रह गयाहै जो समाजको दिशा दे सकताहै, न भी हो तो कमसे कम चिन्तनशील पाठकको यह प्रतीति तो करा ही सकताहै कि विकृतियाँ कहाँ है, कितनी हैं और उनसे संघर्ष करना कितना आवश्यक हो गयाहै। इसीमें व्यंग्यकी सार्थकता भी निहित है।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक है कि आज की मूल्यहीनताके युगमें व्यंग्य भी प्रभावहीन होता दिखायी देने लगाहै। श्यामसुन्दर घोष भी इस तथ्यसे अनभिज्ञ नहीं हैं। न ही व्यंग्यकी क्षमताको लेकर उनके मनमें कोई भ्रान्ति ही है। वे लिखतेहैं, अपने समाजमें आज व्यंग्य लिखना समय और शक्ति नष्ट करना भी है। लोग इतनी मोटी खालके हैं कि चोट खाकर भी हें-हें करते रहतेहैं। मेरे विचारसे व्यंग्य ऐसे लोगोंके लिए नहीं है।' (पृ. ६०)।

डॉ. घोषकी यह निराशा अकारण नहीं है। एक समय था जब व्यंग्य सुनकर लोग तिलमिला उठतेथे। साहित्यिक कृतियोंपर प्रतिबन्ध लगा दिये जातेथे। व्यंग्य लिखना या विकृतियोंकी सीधी आलोचना करना निर्भीकताकी बात मानी जातीथी; पर अब बात कितनी भी कटु हो अनसुनी कर दी जातीहै। आप व्यंग्य लिखते रहिये परवाह किसे है !

श्यामसुन्दर घोष आजके व्यंग्यकी स्थितिसे भी निराश हैं। 'व्यंग्यतन्त्र : एक मुखबन्ध' में वे लिखतेहैं —"बोतलमें खालिस पानी हो, और उसे ही बार-बार पीना पड़े और बहकनेका अभिनय करना पड़े, तो इससे बढ़कर त्रासदी और दुर्भाग्य क्या हो सकताहै। यही दशा हिन्दी हास्य-व्यंग्य लेखकोंकी है। अन्दर बोध नहीं है। आग और तेजी नहीं है और व्यंग्य लिखना पड़ रहाहै। मैं ऐसे लोगोंपर बराबर तरस खाताहूँ।'

श्यामसुन्दर घोष एक निष्पक्ष और निर्भीक आलोचक हैं। बल्कि उनका यह रूप सैद्धान्तिक समीक्षकसे भी अधिक प्रखर है। विवेच्य ग्रन्थके उत्तरार्धमें उन्होंने सात व्यंग्यकारों और छतीस व्यंग्य कृतियोंकी समीक्षा कीहै। इस लम्बी सूचीमें कई उल्लेखनीय नाम नहीं हैं' और कई अनुल्लेखनीय नाम हैं। जो नहीं हैं, डॉ. घोष ने उनकी उपेक्षा की है ऐसा मानना उचित नहीं होगा। इस भागमें जो बात बरबस ध्यान खींचतीहै वह है बड़े से बड़े व्यंग्यकारकी दृष्टि और मान्यताओंकी तीखी आलोचना। एक पुराने लेखमें शरद जोशीके विषयमें वे लिखतेहैं—'शरद जोशीमें प्रतिभा है, इसमें संदेह नहीं और वे लिखनेका ढंग भी जानतेहैं। पर वे अपनी प्रतिभाका कोई सार्थक उपयोग नहीं कर पाते। इसलिए वे अच्छी रचनाओंके साथ बुरी रचनाओंका इस प्रकार ढेर लगाते जा रहेहैं कि विश्वास करना कठिन हो रहाहै कि ये दोनों प्रकारकी रचनाएं एक ही लेखककी हैं।" (पृ. १५४)। आगे वे लिखतेहैं कि शरद जोशी व्यंग्यके क्षेत्रमें काफी अहिंसक स्वभाव विकसित कर रहेहैं।

उधर परसाईके व्यंग्यकी खूबियोंका उल्लेख करते-करते वे यह कहनेसे भी नही चूकते कि राजनेताओंमें जयप्रकाश नारायण और मोरारजी देसाई ही परसाईके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यंग्यका प्रमुख निशाना रहेहैं। जगजीवनराम और चरणसिंह जैसे लोगोंकी ओर उन्होंने मुड़कर भी नहीं देखा। न ही इन्दिरा गांधीके 'अनुशासन पर्व' पर कुछ लिखा। श्यामसुन्दर घोष लिखतेहैं—'जब इतिहासको गलत ढंगसे देखनेका प्रयत्न किया जाताहै तो ऐसा ही होताहै।'' (पृ. १८३)।

वैसे रवीन्द्रनाथ त्यागीके सम्बन्धमें घोषजीकी दृष्टि सर्वथा निष्पक्ष नहीं है। वे उनके लाडले व्यंग्यकार हैं। संभवतः इसीलिए वे त्यागीजीकी 'अहिंसकता' की आलोचना नही करते। उल्टे लिखतेहैं—यदि आप तेज तर्रार आक्रामक व्यंग्यके शौकीन हैं तो आपको दूसरा दरवाजा देखना पड़ेगा। त्यागी व्यंग्यका चौपाल नहीं लगाते···ये हिन्दीके अभिजात व्यंग्यकार हैं।' संभवतः राजनीतिकी विकृतियोंको अनदेखा कर हिन्दी अध्यापकों, मोटी महिलाओं और यहाँ तक कि खानसामाओं तक पर व्यंग्य कर सकतेहैं।

श्यामसुन्दर घोषके एक अन्य चहेते व्यंग्यकार हैं—शंकर पुणतांबेकर। हिन्दी प्रदेशसे अलग-थलग सुदूर अहिन्दी प्रदेशमें रहकर उत्कृष्ट विशुद्ध बुद्धिगम्य व्यंग्य लिखनेवाले इस व्यंग्यकारके लिए श्यामसुन्दरके ये शब्द सत्य हैं···''सच तो यह है कि पुणतांबेकरने इन 'टुकड़ों' के रूपमें हिन्दी व्यंग्यको जो चीज दी है, वह अपूर्व हैं। उनकी यह देन बड़ी ऐतिहासिक और विशिष्ट है।' (पृ. १७४)।

'व्यंग्य-विवेचन' की कुछ रचनाएं पुरानी हैं, उनमें से कुछ अप्रासंगिक भी हैं। संभवतः कुछका उपयोग 'फिलर' के तौरपर भी हुआहै। फिरभी यह कृति एक निष्ठावान् समीक्षकके लेखनसे परिचय करातीहै—यह क्या कम है? डॉ. श्यामसुन्दर घोषमें 'व्यंग्य विवेचन' लिखनेकी आचार्य स्तरकी क्षमता है। यदि वे इस ग्रन्थको व्यंग्यकारकी 'डायरी' के रूपमें न लिखकर शास्त्रीय ग्रन्थके रूपमें लिखते, तो यह व्यंग्य जगत्के लिए, अधिक मूल्यवान् होता। ▭

हिन्दी : भाषा : अनुवाद

मानक हिन्दी[1]

लेखक : डॉ. ब्रजमोहन

समीक्षक : डॉ. अम्बाप्रसाद 'सुमन'

भारतीय आर्य-संस्कृतिमें अहाँ गुरुको साक्षात् परब्रह्म माना गयाहैं, वहाँ यहभी कहा गयाहै कि 'दोषा वाच्या गुरोरपि''। डॉ. ब्रजमोहनकी पुस्तक '**मानक हिन्दी**' उपर्युक्त दोनों सिद्धान्तोंके आलोकमें अपना चमकीला अस्तित्व रखतीहै।

'मानक हिन्दी' पुस्तक लिखनेसे पहले डॉ. ब्रजमोहन ने हिन्दी-व्याकरण तथा हिन्दी-शब्दार्थ विज्ञानपर लगभग १८ पुस्तकोंका अध्ययन तो कियाही, साथमें अनेक कहानियाँ, उपन्यास और निबन्धभी पढ़ेहैं। उनमें से शब्द-प्रयोग तथा वाक्य-रचनाकी भूलें नोट कीहै। उन अशुद्धियोंका निराकरण करनेकी दृष्टिसे पुस्तकको चार प्रकरणोंमें विभक्त किया गयाहै···(१) **शब्द प्रकरण (२) वाक्य प्रकरण (३) अंगरेजीका प्रभाव (४) उपसंहार।**

विद्वान् लेखकने जहाँ आचार्य रामचन्द्र वर्मा और आचार्य किशोरीदास वाजपेयीसे प्रेरणा लीहै, वहाँ उनकी पुस्तकोंमें वाक्य-रचनाकी अशुद्धियोंपर भी तर्क-संगत उँगली रखीहै। भाषा-शुद्धिकी दृष्टिसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तक की हिन्दी-वाक्य-रचनाको पाठकोंके

---

१. प्रका. : राजकमल प्रकाशन, १ बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली। पृष्ठ : १८६; डिमा. ९३; मूल्य : १००.०० रु. (सजिल्द)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समक्ष प्रस्तुत कर दियाहै। लेखककी इस निर्भीकता तथा सारस्वत निष्ठाका मैं हार्दिक अभिनन्दन करता हूं। लेखकने श्रद्धापूर्वक ज्ञानकी रेखाको आगे बढ़ाया है।

प्रत्येक मनुष्यके मस्तिष्कमें दो गोलार्द्ध हैं···(१) दक्षिण गोलार्द्ध जिसमें भाव-तन्तु प्रबल हैं। (२) वाम गोलार्द्ध, जिसमें विचार-तन्तु प्रबल हैं। डॉ. ब्रजमोहनके मस्तिष्क के वाम गोलार्द्धके तन्तु अपेक्षाकृत अधिक प्रबल हैं। एक गणितज्ञके वाम गोलार्धके तन्तु प्रबल होते ही हैं। डॉ. ब्रजमोहन एक विख्यात गणितज्ञ होनेके साथ हिन्दी शब्द-दर्शनके भी पंडित सिद्ध होतेहैं। उनकी अन्य प्रकाशित कृतियाँ इसका प्रमाण हैं।

पुस्तककी भूमिकामें लेखकने उत्तरप्रदेशकी हिन्दी भाषाके स्वरूपको स्पष्ट करते हुए लिखाहै कि पूर्वका आदमी कहताहै·· **हम जाइब**, मध्य भागका कहताहै ··**हम जइहैं**। पश्चिमका कहताहै··**हम जाएँगे**।

शब्द प्रकरणमें **शब्द** और **पद** का अन्तर तो बताया ही गयाहै, साथमें **पर्यायवाची शब्द, समानार्थी शब्द, तदर्थी शब्द** और **समार्थी शब्द** भी उदाहरण देकर समझाये गयेहैं। यह एक नयी बात हिन्दीके पाठकोंके लिए हैं। अनेक संज्ञा और विशेषण शब्दोंकी अर्थ-भेदक रेखाओंको स्पष्ट किया गयाहै, जैसे **इच्छा, चाह, अभिलाषा, उत्कंठा** आदिकी अर्थच्छवियोंका स्पष्टीकरण।

संज्ञा शब्दोंके लिंग-प्रयोगपर भी प्रकाश डाला गया है। पूर्वी उत्तरप्रदेशकी हिन्दीमें **दही** स्त्रीलिंग है, तो पश्चिमी उत्तरप्रदेशकी हिन्दीमें **दही** पुंलिंग है। ऐसे अनेक शब्दोंके उदाहरण प्रस्तुत किये गयेहैं।

हिन्दीके जिन विख्यात लेखकोंने सर्वनामोंके अशुद्ध प्रयोग कियेहैं, उनके उदाहरण देकर, फिर उनके शुद्ध प्रयोग बताये गयेहैं। जैसे—

'सच्चा आनन्द तो मुझे **मेरे** काममें मिलताहै।" ···(अध्यापक पूर्णसिंह, मजदूरी और प्रेम) शुद्धरूप—"सच्चा आनन्द तो मुझे **अपने** काममें मिलताहै।"

विशेषणोंके प्रयोगके सम्बन्धमें विद्वान् लेखकने सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह बतायीहै कि एक साथ कई प्रकारके विशेषताओंके समय किस विशेषणको प्रथम, किसे द्वितीय और किसे तृतीय स्थानपर रखना चाहिये। लेखककी मान्यता इसके सम्बन्धमें इस प्रकार है ··(१) सम्बन्धवाचक विशेषण (२) संख्यावाचक विशेषण (३) गुणवाचक विशेषण। उदाहरण—"**उसकी दोनों काली** दवातें गिर पड़ीं"
(१) (२) (३)

लेखककी मान्यता है कि **और, किन्तु, अथवा** आदि तो अव्यय हैं, लेकिन **तो, ही, भी, भर, तक** आदि निपात हैं।

संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, विभक्ति, अव्यय, निपात, समास आदि सभीके प्रयोगोंको व्याकरण और अर्थविज्ञानकी दृष्टिसे स्पष्ट किया गयाहै।

'वाक्य-रचना' में योग्यता, आकाँक्षा, पूर्णता, संक्षिप्ति, पुनरुक्ति आदिको विस्तारपूर्वक निर्दशित किया गयाहै।

हिन्दीपर अंगरेजीका प्रभाव किस रूपमें पड़ रहाहै—इसके भी उत्तम उदाहरण मिलतेहैं। भविष्यके लिए मार्ग-दर्शन भी है।

आचार्य रामचन्द्र वर्मा और आचार्य किशोरीदास वाजपेयीके कथनोंकी कुछ अशुद्धियोंकी ओर इंगित करते समय लेखक कुछ अधिक खींच-खांच करताहुआ मालूम पड़ताहै।

क्रियाके कर्मवाच्यके सम्बन्धमें लेखक पं. कामताप्रसाद गुरुके पास बैठ रहाहै, आचार्य किशोरीदास वाजपेयीके पास नहीं। **कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य** और **भाववाच्य** के सम्बन्धमें आचार्य वाजपेयी अधिक स्पष्ट हैं, पं. गुरुके कथन तो भ्रान्तिमूलक है।

'**कर्मवाच्य**' से तात्पर्य है कि जो क्रिया लिंग-वचन में कर्मके अनुसार है और '**कर्तृवाच्य**' से तात्पर्य है कि जो क्रिया लिंग-वचनमें कर्ताके अनुसार है अर्थात् क्रियाके रूपपर बल है।

(१) मोहनने अमरूद खाया। (२) मोहनने **रोटी** खायी।" इनमें **खाया, खायी** क्रियाएं कर्म **अरुखद** और **रोटी** के लिंग-वचनके अनुसार हैं। अत उपर्युक्त दोनों वाक्योंकी क्रियाएँ कर्मवाच्यकी मानी जायेंगी।

(१) "लड़का पत्र **लिखता** है।"

(२) "लड़की पत्र लिखतीं है।"

इन दोनों वाक्योंकी क्रियाएं कर्ता लड़का, **लड़की** के लिंग-वचनके अनुसार हैं, अतः इन वाक्योंकी क्रियाएं कर्तृवाच्यकी हैं। 'कर्तरि प्रयोग' और 'कर्तृवाच्य' एक ही बात है। जो 'कर्मणि प्रयोग', है, वही कर्मवाच्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक अन्य लेखकोंकी भाषामें जहाँ अशुद्धियां निकालताहै, वहाँ अपनी पुस्तकमें भी दो-तीन अशुद्धियाँ कर गयाहै।

पृष्ठ १३ पर लेखक '**अद्यन्त**' के स्थानपर 'आद्योपान्त' लिखताहै। पृष्ठ ३७ पर **संवाद** को 'सम्वाद' के रूपमें लिखाहै। **ऊष्म** और **अन्तःस्थ** वर्णोंके साथ 'म्' का प्रयोग नहीं होगा। 'म्' का प्रयोग तो पवर्ग के साथ होताहै—जैसे **खम्भा, कम्बल आडम्बर, पम्पापुर** आदिमें।

पृष्ठ १९ पर लेखक लिखताहै—"रास्तेमें उन्हें पपीहेके बोल सुनाई दिये। × × × "अल्लाह तेरी बरकत"X X X "सीताराम दशरथ।" ऐसी मिलती-जुलती ध्वनि पपीहा नहीं करता, तीतरको तो माना जा सकताहै।

ऐसी कुछ सामान्य-सी भूलें पुस्तकमें मुझे मिली हैं। सर्वांगीण दृष्टिसे पूरी पुस्तक महत्त्वपूर्ण और उपादेय है। हिन्दीके लेखकों तथा पाठकोंके लिए नया शब्द-दर्शन प्रस्तुत करतीहै।

कुछ दृष्टियोंसे 'मानक हिन्दी' आचार्य रामचन्द्र वर्मा की 'अच्छी हिन्दी' से आगे एक चरण-न्यास है। हिन्दी व्याकरण और शब्दार्थ विज्ञानके क्षेत्रमें हमें नये आलोकके दर्शन करातीहै। इस गंभीर चिन्तनके लिए विद्वान् लेखक हिन्दी पाठकोंके लिए श्रद्धेय रहेंगे। हिन्दी शब्दार्थ-दर्शनमें इस पुस्तकका अपना विशिष्ट स्थान रहेगा। ▭

भाषा और भाषिकी[1]

लेखक : डॉ. देवीशंकर द्विवेदी

समीक्षक : डॉ. सुरेशकुमार

डॉ. देवीशंकर द्विवेदीकी पुस्तक 'भाषा और भाषिकी' का आपने मूल प्रकाशन वर्ष (१९६४) के लगभग तीस वर्ष बाद, संशोधित तथा परिवर्धित रूपमें प्रथम राधाकृष्ण संस्करणके रूपमें पुनः प्रकाशित होना भाषाविज्ञान के अध्यापकों और अध्येताओं दोनोंके लिए समान रूपसे स्थागत योग्य है।

पुस्तक चार खंडोंमें विभक्त है। 'भाषा' खंडमें भाषाका अर्थ, भाषाकी परिभाषा, भाषा और वाक्, भाषाकी उपव्यवस्थाएं, भाषाकी उत्पत्ति, भाषा : एक वैज्ञानिक दृष्टि—इन शीर्षकोंके अतिरिक्त भाषाके सम्बन्धमें व्यवस्थित जानकारी दी गयीहै। 'भाषिकी' खंडमें भाषिकी क्या है, भाषिकीका उपयोग, भाषिकी की शाखाएं, भाषिकीका अन्य विषयोंसे सम्बन्ध, रूपान्तरी प्रजनक व्याकरण, स्वनवैज्ञानिक सिद्धान्त, लिप्यंकन—इन विषयोंका संक्षिप्त और विशद विवेचन है। 'परिशिष्ट' खंडमें भाषायी आदान, व्याकरणिक प्रक्रियाएं, शंकाएं और समाधान----इन तीनके अंतर्गत भाषा-अध्ययनके कुछ विशेष मुद्दोंका विवेचन है। 'शब्दावली' खंडमें लेखककी ओरसे प्रस्तावित भाषाविज्ञानकी पारिभाषिक शब्दावली (हिंदी-अंगरेजी, अंगरेजी-हिन्दी) दी गयीहै। अंतमें उपयोगी शब्दानुक्रमणिका है जो हिन्दी की शास्त्रीय पुस्तकोंमें भी कम ही दिखायी देती है।

पुस्तकका मुख्य प्रतिपाद्य है भाषा-विश्लेषणकी वर्णनात्मक (डिस्क्रिप्टिव) तकनीकके संरचनात्मक प्रारूप (स्ट्रक्चरल मॉडल) का, आधुनिक भाषाविज्ञानके आंग्ल-अमरीकी स्कूलसे समर्थित, परिचय देना। विषय प्रतिपादनमें लेखककी शब्दावली भी उसी प्रकारकी है तथा उद्धृत आधार ग्रन्थभी आंग्ल-अमरीकी स्कूलके हैं। वस्तुतः भाषा-विश्लेषणका संरचनात्मक उपागम, भाषा-अध्ययनकी आधारभूत तकनीक हैं और भाषाविज्ञानके विद्यार्थीके लिए इस तकनीकसे, सही परिदृश्यमें, परिचित होना आवश्यक है। इस दृष्टिसे लेखकने 'भाषा' खंडमें स्वानिकी, सीमान्तिकी, स्वानिमी, मर्षस्वानिकी, व्याकरण मर्षविज्ञान, वाक्यविज्ञान----इन शीर्षकोंमें भाषा-गठनकी उपव्यवस्थाओंका संक्षिप्त, विशद, प्रामाणिक और सोदाहरण विवेचन प्रस्तुत कियाहै। इसी प्रकार 'भाषा : एक वैज्ञानिक दृष्टि' में भाषाके सम्बन्धमें शैक्षिक जगत्में प्रचलित अनेक भ्रान्तियोंका निवारण करनेके साथ 'भाषा को भाषाके रूपमें' देखनेकी भाषान्तर्वती दृष्टिपर पाठक का ध्यान केन्द्रित किया गयाहै, और इस प्रकार विषयज्ञान सम्बन्धी एक गंभीर अपेक्षाकी पूर्ति की गयीहै। इस जानकारीके अभावमें भाषा विषयक चर्चा शास्त्रीय कसौटीपर खरी नहीं उतर पाती।

"भाषिकी" खंडमें, रूपान्तरी प्रजनक व्याकरण, स्वनवैज्ञानिक सिद्धांत, लिप्यंकन—ये तीन अध्याय,

---

१. प्रका. : राधाकृष्ण प्रकाशन, २/३८ अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : ३०८; डिमा. ९३, मूल्य : १५०.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा "परिशिष्ट" खंडमें भाषाथी आदान, व्याकरणिक प्रक्रियाएँ—ये दो अध्याय विषय ज्ञानमें समुचित रूपसे वृद्धि करतेहैं। इनमें भी भाषाके आधुनिक वैज्ञानिक अध्ययनकी उपयोगी सूचनाएँ संकलित हैं।

पुस्तककी जो शक्ति है वही दूसरे छोरसे इसकी सीमा भी। यह पुस्तक भाषाकी संरचनात्मक विश्लेषण की तकनीकपर बल देते हुए एककालिक भाषा विज्ञान की समझ पाठकमें विकसित करना अपना लक्ष्य मानती है जो उचित ही है। ऐसी स्थितिमें भाषाकी उत्पत्ति, जैसे परिकल्पना-प्रधान, पुरातनपन्थी और लोकप्रिय विषयोंका समावेश संगीत प्रतीत नहीं होता। यह भी द्रष्टव्य है कि विषय-व्याप्तिकी दृष्टिसे इसका क्षेत्र वही है जो तीस साल पहले अपने प्रथम प्रकाशनके समय था, और इसलिए यह सीमित सन्दर्भमें ही विषयज्ञान करा पातीहै। विगत तीन दशकोंमें जहाँ भाषा-अध्ययन संबंधी जानकारी बढ़ी है वहाँ उसे प्रतिपादित करनेकी शैली और विधान भी बदलेहैं। "अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान" शीर्षकसे भाषा-अध्ययनका एक पूरा क्षेत्र विकसित हो गयाहै। परन्तु इस पुस्तकमें इसका कोई उल्लेख नहीं। भाषिकीकी शाखाएँ, "भाषिकीका अन्य विज्ञानोंसे सम्बन्ध" में ऐसी नवीन सूचनाएँ प्रस्तुत की जा सकतीथीं।

पुस्तकका दूसरा उल्लेखनीय पहलू है भाषा विज्ञान की पारिभाषिक शब्दावलीके विकाससे लेखकका योगदान। यह योगदान स्वतंत्र कोटिका है तथा भारत सरकार द्वारा स्थापित-संचालित वैज्ञानिक तकनीकी शब्दावली आयोगके ढाँचेसे बाहर है। यह इस दृष्टिसे स्वागत योग्य है कि इससे हिन्दीमें भाषाविज्ञानकी पारिभाषिक शब्दावलीके विकासमें सहायता मिलीहै। तथापि इस सम्बन्धमें लेखकके कथनसे "द्विवेदी बनाम आयोग" की जो गन्ध मिलतीहै वह वस्तुस्थितिको सही परिप्रेक्ष्यमें प्रस्तुत नहीं करती। लेखक द्वारा प्रस्तावित अनेक शब्द आयोग द्वारा १९९२ में संशोधित-परिवर्धित रूपमें प्रकाशित शब्दावलीमें आ गयेहैं, जैसे 'आब्स्ट्रएण्ट' के लिए 'अवरोधी' 'फार्म' के लिए 'आकृति'। लेखक इसका नोटिस शायद इसलिए नहीं ले सका कि उसकी पुस्तक भी लगभग तभी प्रकाशित हुई, तथा लेखकको आयोगका प्रकाशन संभवतः ठीक समयपर न मिल सका और वह १९७३ के संस्करणके आधारपर अपनी टिप्पणी कर गया। तथापि लेखक द्वारा 'मर्ष विज्ञान' (मार्फोलिजी) और "सीमान्तिकी" (सिमेन्टिक्स) जैसे शब्दोंका निर्माण अंग्रेजी शब्दोंके रूप साम्यसे ही अधिक प्रेरित प्रतीत होताहै, चाहे लेखक इस विचारसे सहमत न हो।' "मर्ष" का अपना ऐसा कोई अर्थ नहीं जिसे "रूप" से जोड़ा जा सके; इसे, वर्तमान अर्थमें 'मार्फ' के सहारे ही समझाजा सकताहै। 'सिमेन्टिक्स' को सीमांतवर्ती होनेके कारण 'सीमांतकी' कहना उचित मान लिया जाये तो अन्य अनुशासनोंमें भी इसी प्रकारके सीमांतवर्ती क्षेत्रोंको 'सीमान्तकी' का सामान्य नाम दियाजा सकताहै। तब तो इसकी पारिभाषिकता ही खतरेमें पड़ जायेगी।

पुस्तकके उपर्युक्त आलोच्य पक्षोंका संकेत केवल पाठकोंकी जानकारीके लिए है और इसी समीक्षा तक सीमित है। इससे पुस्तकके महत्त्वपर कोई प्रतिकूल टिप्पणी नहीं बनती। पहले भी कहाजा चुकाहै, भाषा विश्लेषणकी आधारभूत तकनीकके रूपमें संरचनात्मक-प्रारूपका प्रामाणिक विवेचन तथा भाषाविज्ञानके कतिपय प्रमुख पक्षों—रूपांतरी प्रजनक व्याकरण, स्वन-वैज्ञानिक सिद्धांत, व्याकरणिक प्रक्रियाएँ, लिप्यंकन, भाषायी आदानका सिद्धांतपुष्ट निरूपण, भाषाविज्ञानके, समस्त अध्येताओंके लिए समानरूपसे उपादेय हैं। ऐसी श्रेष्ठ पुस्तकके प्रणयनके लिए लेखक बधाईका पात्र है।

पुस्तककी छपाई-सफाई प्रशंसनीय है, परन्तु मूल्य अध्येताओंके सामर्थ्यसे बाहर। आशा है, इससे आधे मूल्यपर इसका छात्रोपयोगी संस्करण शीघ्र प्रकाशित होगा, जिससे अधिकाधिक संख्यामें छात्रों और अन्य पाठकोंको विषयका सही ज्ञान प्राप्त करनेमें सहायता मिलेगी। ▭

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलनात्मक साहित्यमें अनुवादकी भूमिका

—डॉ. मायाप्रकाश पाण्डेय

तुलनात्मक साहित्यका उद्देश्य है साहित्यका एक विस्तृत परिप्रेक्ष्यमें अध्ययन करना, देश व समाजके बिखरते मानवीय मूल्योंमें एकताका संधान करना। तुलनात्मक साहित्यके लिए आवश्यक है कि इसके अध्ययनमें एकसे अधिक भाषाओंके साहित्य-रूपोंका समावेश किया जाये। विशेषतः उस साहित्यका जो राष्ट्रीय परिधिके बाहर विकसित हो रहाहै। ऐसी परिस्थितिमें जबकि भारतका पश्चिमीकरण होता जा रहाहै, पाश्चात्य देशोंकी सभ्यता, संस्कृति हावी होती जा रहीहै। "आज देशमें पाश्चात्य सभ्यता, भोगवादिता एवं स्वार्थपरताकी प्रवृत्ति प्रबल होती जा रहीहै। सम्मिलित कुटुम्ब-व्यवस्था टूट रही है, व्यक्तिवाद पनप रहाहै। पुरानी पीढ़ीके प्रति नयी पीढ़ीमें आदर भावना एवं सेवा भावना कम होती जा रहीहै। तरुण वर्ग अपने अधिकारोंके प्रति अधिकाधिक जागृत है। उसमें निजी जिजीविषाका तत्त्व सर्वोपरि है। मानव-मूल्य, नैतिक मूल्य एवं जीवन-मूल्य पर्याप्त वेगसे संकुचित हुए हैं और बदलेभी हैं। तुलनात्मक अनुसंधानके द्वारा अनेक समानतापरक तथ्यों एवं सत्यों को स्थापित करके भारतीय संस्कृतिकी मूलभूत एकता (वसुधैव कुटुम्बकम्) की भावनाको पुनः चरितार्थ किया जा सकताहै।" तुलनात्मक साहित्य परिवार व राष्ट्र को जोड़नेके उद्देश्यको लेकर चल रहाहै। इसका लक्ष्य बिखरावबाद, अलगाववादको दूर करके ऐक्य स्थापित करने तथा लोगोंको इस दिशामें पुनर्जागृत करनेका है।

वैश्विक एकताकी चर्चाके लिए आवश्यक है कि वैश्विक साहित्य-रूपोंका ज्ञानार्जन किया जाये, परन्तु यहाँ भाषाका प्रश्न उठताहै। विश्वसाहित्यकी जानकारी प्राप्त करनेके या तो विश्वकी सभी भाषाओंकी जानकारी हो, जो संभव नहीं है, अथवा विश्वकी सभी भाषाओंकी उत्तम रचनाओंके विश्व भाषामें अनुवाद हों। समय-सीमाको देखते हुए सभी भाषाओंको सीखना व्यक्तिकी शक्तिके बाहर है। अब या तो किसी वैश्विक भाषाका निर्माण हो, अथवा अनुवादके माध्यम से उन कृतियोंको पाठक तक पहुंचाया जाये। इसलिए विश्वमें अनुवादकी प्रवृत्ति दिनोंदिन विकसित हो रही है। अनुवाद द्वारा ही विश्वकी कृतियोंका अनेक भाषाओंमें आवागमन संभव हो सकताहै।

अनुवाद मूल भाषा तथा उसके साहित्यके क्षेत्रको विकसित करताहै। विश्वके प्रत्येक देशकी भाषा और संस्कृतिमें काफी भिन्नता है। प्रत्येक देशमें विभिन्न बोलियाँ तथा उपबोलियां हैं। उन बोलियों-उपबोलियों से न केवल देश, प्रदेश अपितु उसी देश व प्रदेशके लोग भी अपरिचित रह जातेहैं। मानवीय एकता, पारस्परिक प्रेम बनाये रखनेके लिए अन्य राष्ट्रों व प्रदेशोंके लोगों की विशेषताओंसे परिचित होनेके लिए अनुवाद एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है। अनुवाद ही वह माध्यम है जो व्यक्तियोंको पर-राष्ट्रोंकी सभ्यता, संस्कृति और रहन-सहनसे परिचित कराताहै। जिसके फलस्वरूप व्यक्ति कुछ ग्रहण करताहै, परस्पर आदान-प्रदानकी प्रक्रिया प्रारम्भ होतीहै और इस प्रक्रियासे विश्वबन्धुत्व, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना सुदृढ़ होतीहै। अनुवादको ज्ञानार्जनका प्रमुख और महत्त्वपूर्ण साधन माना जाता है।

अनुवादकी परम्परा बहुत पुरानी है। संभव है कि मानवने जबसे सार्थक ध्वनियाँ बोलना, लिखना व समझना शुरु किया होगा तभीसे उसे पारस्परिक व्यवहार व आदान-प्रदानके लिए किसी-न-किसी रूपमें अनुवाद की आवश्यकता अनुभव हुई होगी। चूंकि मानव समाज में रहताहै तो उसे परस्पर बातचीत तो करनी ही होतीहै और उस समय भी रही होगी। आज विश्वमें हजारों भाषाएं, / बोलियाँ लिखी व समझी जातीहैं। स्पष्ट है कि दो या उससे अधिक भाषाओंवाले देशोंमें अनुवाद द्वारा ही यह कार्य संभव हो सकताहै।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय साहित्य मूलतः एक है। इस अवधारणा की पुष्टि अनुवाद द्वारा ही होतीहै। देशकी संस्कृति, एकता और अखण्डताको बचाये रखनेके लिए यह आवश्यक है कि देशकी सभी भाषाएं, विभिन्न भाषा-भाषी लोगोंकी साँस्कृतिक अभिव्यक्तिका माध्यम बनें। अनुवाद ही एक ऐसा माध्यम है जो दो भाषाओंमें लिखे जा रहे साहित्योंके बीच सेतुका काम करताहै। साहित्य किसीभी मानव जातिके परिवेश तथा चिन्तनकी पहचान करनेका एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है। यहाँ अनुवाद इस साहित्यको अपने देश-काल, वातावरणके आधारपर अपनी भाषामें रूपायित करताहै और उस परिवेश तथा चिन्तनसे स्व-भाषा-भाषी पाठक वर्गको परिचित कराताहै, जिसके फलस्वरूप एक नयी दिशा अस्तित्वमें आतीहै। यही कारण है कि सांस्कृतिक सामाजिक, और राजनीतिक जो भी परिवर्तन आये उनमें अनुवादोंकी भी प्रमुख भूमिका रहीहै।

अनुवादके संदर्भमें डॉ. विश्वप्रकाश गुप्त लिखते हैं कि—"अनुवाद आज सामाजिक, साहित्यिक, व्यावसायिक, वैज्ञानिक एवं राष्ट्रीय समस्याओंमें जितना उपयोगी प्रासंगिक एवं महत्त्वपूर्ण समझा जाने लगाहै, उसका मूल कारण 'ऐक्य भावना' तो है ही, उसका व्यावसायिक पक्ष भी है। राज्यों, संस्कृतियों, देशों, विचारधाराओं तथा साहित्यके परस्पर आदान-प्रदानके साथही वैज्ञानिक तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी आदि विषयों एवं क्षेत्रोंके विकास तथा संचारका मुद्दा भी अनुवाद से गहरे जुड़ा हुआहै।...हम विश्व साहित्य, संस्कृति एवं प्रगतिसे अनुवाद द्वारा ही जुड़ सकतेहैं। विश्वके सभी देशोंमें 'अनुवाद' को अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गयाहै। भारत जैसे बहु-सांस्कृतिक एवं बहु-भाषिक समाज तथा देशमें तो अनुवाद यों भी अत्यन्त प्रासंगिक है।"

वैसे तो अनुवाद अन्ततः अपूर्णताकी अनुभूति ही माना जाताहै। एक भाषामें व्यक्त भावों व विचारों को उसीके अनुरूप दूसरी भाषामें ले आना असंभव तो नहीं किन्तु कठिन कार्य अवश्य है। जिस परिवेशसे अनुवादक परिचित नहीं है उसके साथ सही न्याय कर पाना उसके लिए दुष्कर है, वह कृति (जिसका वह अनुवाद कर रहाहै) हास्यास्पद भी हो सकतीहै। एक युग विशेषके रचनाकारकी पुनरावृत्ति सरलतासे नहीं हो सकती। जब कोई कवि या रचनाकार एक लम्बी अवधिके बाद अपनी पुरानी अनुभूतियोंकी आवृत्ति करनेमें स्वयं असमर्थ हो जाताहै, तो किसी एक युगके कवि या रचनाकारकी अनुभूतियोंकी पुनरावृत्ति करना और वह भी दूसरेके द्वारा असंभव-सा लगताहै। फिर भी अनुवाद उस कृति या रचनाके देश-कालमें आने वाले व्यवधानोंको पार करते हुए उस कवि या रचनाकारकी अनुभूतियोंको वाणी देताहै। यह अवश्य है कि उस दी हुई अनुभूतिके साथ पाठक जो अपना तादात्म्य स्थापित करताहै वह पूर्ण, अंशतः पूर्ण या फिर अपूर्ण भी हो सकताहै।

अनुवाद केवल भाषान्तरण नहीं है। केवल भाषान्तरण निर्जीव माना जाताहै, और इसलिए संवेदना रहित अनुवादको अनुवाद नहीं कहा जा सकता। उदाहरणके लिए 'कपड़े पहने हुए पुतलेको मनुष्यकी संज्ञा नहीं दी जा सकती।' अतएव अनुवाद उसे ही कहा जा सकताहै जो सीधे-सीधे और सरलतासे पाठककी समझ में आ जाये। अनुवाद विभिन्न भाषा-भाषियोंको वाणी प्रदान करताहै। इसका क्षेत्र अथाह समुद्रकी भाँति बहुत विशाल है। अनुवाद एक ऐसा शीशा है जिसमें मूल रचना व कृतिका हूबहू प्रतिबिम्ब उतर आताहै। और इसीलिए सफल अनुवाद उसे ही कहतेहैं जो अनुवाद जैसा नहीं लगता। स्पष्टता ही अनुवादका प्रमुख गुण है।

इस प्रकार अनुवाद कोई यांत्रिक कार्य भी नहीं है। यदि ऐसा होता तो आज पूरा अनुवाद-कार्य कम्प्यूटरोंके माध्यमसे हो सकताथा। अनुवाद एक ऐसे व्यक्ति का कार्य है जो प्रतिभा संम्पन्न हो।

अनुवाद करते समय इस बातका पूरा-पूरा ध्यान रहे कि उस मूल रचनाका भाव अनूदित रचनामें उपस्थित रहे। जैसाकि अमरीकी कवि राबर्ट फ्रॉस्ट कहते हैं 'जब हम कविताका अनुवाद करतेहैं तो उसमें से कविता खो जातीहै।' यह सही है, अनुवादक कविताके भावको तो सुरक्षित रख लेताहै किन्तु उसमें से कवित्व गायब हो जाताहै। काव्य अनुवादमें जितना सुरक्षित रहताहै उससे कहीं ज्यादा खो जाताहै। संभवतः इसीलिए क्रोचेने कहा होगा कि 'काव्यके अनुवादका आस्वादन करना, उबाला हुआ पानी पीनेके समान है।' यदि काव्य शुद्ध भी हो तो भी आस्वाद तो कम ही होगा। कभी-कभी अनुवाद इतना अच्छा हो जाताहै कि मूल रचना उसके सामने फीकी पड़ने लगतीहै। बेकफोर्ड की एक कृतिका हेन्ले ने अनुवाद किया और ज्योर्ज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लुईने उसे देखकर व्यंग्यमें कहा—'अनुवादकी अपेक्षा मूल रचना कम अच्छी है।' फिरभी अनुवाद उस रचनाके कथ्य तथा भावको तो ग्रहण करता ही है, जिसके द्वारा पाठक उस रचनाके संदर्भमें मोटे तौरपर परिचय प्राप्त करता है।

तुलनात्मक साहित्यमें अनुवादका बहुत बड़ा योगदान रहाहै। अनुवाद पुरानी सभ्यताके विकासमें अपनी भूमिका निभाता रहाहै। अनुवाद द्वारा ही एक भाषामें कही बातको दूसरे भाषा-भाषी तक पहुंचाया जा सकता है। इसके साथ ही एक और महत्त्वपूर्ण कार्य होताहै वह यह कि जिस भाषामें अनुवाद किया जाताहै वह भाषा भी विकसित होतीहै। उसके आधारपर गृहीत नये शब्द, नये बिम्ब, नये प्रतीक, और नये मुहावरे व कहावतें अनूदित होकर भाषाको औरभी समृद्ध बनातीहैं। इसके द्वारा ही एक भाषा दूसरी भाषाके निकट पहुंचतीहै, एक देश, प्रदेश व प्रान्तकी सभ्यता दूसरे देश, प्रदेश व प्रान्तकी सभ्यतासे परिचित होतीहै, जिसके फलस्वरूप परस्पर संबंध प्रगाढ़ होताहै। तभी एक नयी सभ्यताका जन्म होताहै।

हमारे यहां साहित्यिक अध्ययनके क्षेत्रमें जिस तुलनात्मक अध्ययनकी नवीन पद्धतिका विकास हुआहै उसमें अनुवादकी प्रमुख भूमिका है। यह संभव नहीं कि सभी अपनी मातृभाषाके अतिरिक्त अन्य भाषाओंका भी उतना ही परिचय प्राप्त कर सकें। मातृभाषाके अतिरिक्त अंग्रेजीका ज्ञान एक सीमा तक प्राप्त किया जा सकताहै किन्तु इसके अतिरिक्त अन्य तीसरी भाषा से परिचित लोग बहुत कम दिखायी देतेहैं। ऐसी स्थिति में तुलनात्मक अध्ययनमें कठिनाई आतीहै। इन परिस्थितियोंमें अन्य भाषा व साहित्यका ज्ञान प्राप्त करने के लिए अनुवाद ही एक माध्यम है जो अन्य भाषा व साहित्यका ज्ञान उपलब्ध कराताहै।

गन्तव्य स्थानकी निर्धारित ट्रेन यदि छूट जाये तो उसके बाद वाली ट्रेनसे अपने गन्तव्य स्थानपर पहुंचने में ही बुद्धिमत्ता है। आशय यह है कि मूल भाषा यथा—बंगाली, मराठी, फ्रेंच, जर्मन, ग्रीक आदि भाषा सीखना यदि संभव न हो सके तो उनके अनुवादको ही पढ़ लेना चाहिये। अनुवादकी परम्परा हमारे यहां एक लम्बे समयसे है। यहां संस्कृत ग्रन्थोंके तथा अन्य भाषाओंके अनुवाद विभिन्न भाषाओंमें होते दिखायी देतेहैं। उत्तर रामचरितम्, पंचतंत्र, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, महाभारत, रामायण, नीतिशतक, वैराग्यशतक, शृंगारशतक, गीता व बाइबिल आदि धार्मिक व साहित्यिक ग्रन्थोंके अन्य भाषाओंमें अनुवाद हुएहै। आधुनिक राष्ट्रभाषा गठनके कारण सभी भारतीय भाषाओंका अनुवाद हिन्दीमें हो रहाहै तत्पश्चात् हिन्दीसे उनका अनुवाद अन्य भारतीय भाषाओंमें किया जा रहाहै। ऐसे भी लेखक हैं जो सर्जन भी करतेहैं और स्वयं ही उसका अनुवाद भी। कुछेक ऐसे भी रचनाकार हैं जो अपनी रचनाके मात्र भारतीय भाषाओंके अनुवादसे संतुष्ट नहीं होते, वे उस रचनाका अनुवाद अंग्रेजीमें भी करवातेहैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अज्ञेय आदि रचनाकार स्वयंभी अंग्रेजीमें अनुवाद कर लिया करतेथे और अपनेही निर्देशनमें औरों से भी करातेथे। बंगलाके सुप्रसिद्ध रचनाकार रवीन्द्रनाथ ठाकुर और शरच्चन्द्रने अनुवादके ही बलबूतेपर सारे देशमें ख्याति अर्जित की। उनसे प्रेरणा ग्रहण करके अन्य भाषा भाषी लेखक अपनी-अपनी भाषाओंमें लिखने लगे। इस प्रकार शनैः शनैः संस्कृत साहित्य, अंग्रेजी और दूसरी भाषाओंके साहित्य हिन्दी भाषामें आने लगे। इस क्षेत्रमें लखनऊ स्थित 'भुवनवाणी ट्रस्ट' नामक संस्थाने जो कदम उठायेहैं, अधिक सराहनीय है। उसने भारतीय भाषाओंकी सुप्रसिद्ध एवं सर्वश्रेष्ठ कृतियोंके हिन्दी अनुवाद उनकी मूल रचनाओंके साथ प्रकाशित कियेहैं जिनके अन्तर्गत निम्न रचनाओंका समावेश किया गयाहै—कृत्तिवास कृत 'रामायण' (बंगला), २—'अेंळुत्तच्छन कृत 'महाभारत'(मलयालम), ३—प्रकाशराम कुर्यगामोकृत 'रामावतारचरितम्' (कश्मीरी), ४—'बाइबलसार' (सालोमनके नीतिवचन)५—श्री 'रूस्वा' कृत 'शरीफजाद'(आर्यपुत्र, उर्दू), ६—'जपुजी तथा सुखमनी साहब' गुरुमुखी मूल पाठ तथा 'गीता' के यशस्वी अनुवादक खा. ब. ख्वाजा दिलमुहम्मद कृत उर्दू पद्यानुवाद (गुरुमुखी), ७—'सिर्रे अक्बर' (दाराशिकोह कृत ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तरीय, श्वेताश्वतर) की फारसी व्याख्याका हिन्दी अनुवाद, ८—'जादे सफर' (इस्लामी हदीस), ९—'तिरक्कुरल', नागरीमें मूल, हिन्दी गद्य पद्यानुवाद(तमिल), १०—'श्रीरामविजय', श्रीधर स्वामी कृत सानुवाद (मराठी), ११—भानुभक्तकृत 'रामायण' (नेपाली)।

इसके अतिरिक्त 'कम्ब रामायण' (तमिल), 'पम्परामायण' (कन्नड़), 'रंगनाथ रामायण'(तेलुगु), 'माधव-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कंदली रामायण' (असमी), 'मोल्लु-रामायण', (तेलुगु), 'गिरधर रामायण' (गुजराती), तुंचत 'अेळुत्तच्छनकृत 'अध्यात्म रामायण' (मलयालम) 'वैदेहीश-विलास', उपेन्द्र मंज (ओड़िआ), स्वामी केसलोक' (सिंधी), श्रीधर स्वामीकृत 'श्री हरिविजय' (मराठी), श्री गुरु ग्रंथ साहब' (गुरुमुखी, 'गुजश्तः लखनऊ', मौ. शरर (उर्दू) 'लल्लद्यद' (कश्मीरी), दाराशिकोहकृत ५० उपनिषदों की फारसी-व्याख्या, पदम-भगतकृत 'रुक्मिणीमंगल' (राजस्थानी), 'रियाजुस्सालिहीन' (हदीस), 'जाद सफर' (अरबी), 'रामचरित मानस' तुलसीकृत, संस्कृत पद्यानुवाद तथा बंगला लिपिमें लिप्यन्तरण एवं बंगला पद्यानुवाद—आदिका कार्य भी भुवनवाणी ट्रस्ट, लखनऊ द्वारा हो रहाहै।" संभवतः ये ग्रन्थ भी प्रकाशित हो गये होंगे।

तुलनात्मक साहित्यके क्षेत्रमें कार्य करनेवालोंके लिए अनुवादकी प्रवृत्ति बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इनमें विभिन्न भाषाओंके साहित्यों, साहित्यकारों, साहित्यिक कृतियों आदिकी तुलना करनेमें अनुवाद बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआहै। इतना ही नहीं, इस संदर्भमें यह भी कहा जा सकताहै कि बिना अनुवादके तुलनावादियोंकी गाड़ी चल ही नहीं सकती। इसलिए तुलनात्मक साहित्यमें अनुवादका बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान माना जाता है। तुलना साहित्यमें अनुवादका बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान माना जाताहै। तुलनात्मक साहित्यकी कार्यपद्धतिकी सहायतासे हम भारतीय साहित्यके इतिहास की अवधारणाको संपूर्ण 'इकाई' के रूपमें विकसित कर सकतेहैं। इसके अतिरिक्त पाश्चात्य साहित्यके अपने अध्ययनको व्यापक तथा गंभीर बना सकतेहैं। अपने इन उद्देश्योंकी प्राप्तिके लिए तुलनात्मक साहित्य के अन्तर्गत विभिन्न भाषाओंमें रचित साहित्य एवं उससे जुड़ा हुआ अनुवादका महत्त्वपूर्ण स्थान है। अनुवादके संदर्भमें विल्हेम वन हम्बोल्टने लिखाहै कि 'अनुवाद किसीभी साहित्यके लिए उसके उपयोगी तत्त्वों में से एक है। यह इसलिए आवश्यक तत्त्व है कि वह दूसरी भाषा न जाननेवालोंके कला स्वरूपका तथा मानव जातिका परिचय कराताहै जो उनके लिए संभव नहीं था, और किसीभी राष्ट्रके लिए यह महत्वपूर्ण है, यह इसलिए भी महत्त्वपूर्ण तत्त्व है कि वह अपनी (अर्थात् अनुवादकी) भाषामें निहित अर्थ और अभिव्यक्तिके सामर्थ्यका विस्तार करताहै।' यहाँ काका कालेलकरका सहज ही स्मरण हो आताहै, उन्होंने अनुवादकको 'संस्कृतिका दूत/राजदूत' कहाहै। अनुवाद संसारके सांस्कृतिक सम्पर्कका महत्त्वपूर्ण साधन है। यह स्वदेशकी सर्जन प्रवृत्तिको प्रोत्साहित करताहै जिसके फलस्वरूप मर्यादित दृष्टिका विस्तार होताहै, और विभिन्न क्षेत्रोंमें विभिन्न प्रजाओं द्वारा प्राप्त की हुई सिद्धिका दर्शन कराताहै। अनुवादको 'कस्टम हाउस' की उपमा दी गयीहै। जिस प्रकार कस्टम हाउसके अधिकारीकी थोड़ी-सी असावधानीसे चोरीका माल बाहर आ सकताहै, उसी प्रकार 'अनुवाद' में यदि अनुवादक जरा-सा भी चूक गया तो अर्थका अनर्थ हो सकताहै।

तुलनात्मक साहित्यके लिए आदर्श स्थिति यही मानी जा सकतीहै कि अध्ययन करनेवाला एकसे अधिक भाषाओंसे परिचित हो, जैसाकि आर्नाल्डने लिखाहै —"अपनी भाषामें रचित साहित्यके अतिरिक्त किसी दूसरी भाषाके साहित्य, जो अपेक्षाकृत उच्च कोटिका हो, से भलीभाँति परिचित होना प्रत्येक आलोचकके लिए आवश्यक है।" इस प्रकार विभिन्न भाषाओंमें रचित साहित्यकी सहायतासे आलोचक अध्ययनका एक सामान्य प्रतिरूप तथा उसके पारस्परिक संबंधोंका पता लगा सकताहै किन्तु अपने अध्ययनको संपूर्णता प्रदान करनेके लिए उसे कहीं न कहीं अनुवादोंपर निर्भर रहना ही पड़ेगा। अध्ययनकी प्रारंभिक अवस्थामें और बादमें अन्तिम निष्कर्षमें पहुंचानेके लिए उसे अनुवादों से सहायता मिलतीहै और अन्ततोगत्वा मूल अध्ययन का संपूर्ण चरित्र उसके समक्ष उद्घाटित हो जाताहै। अनुवाद कभी-कभी तो मूल रचनासे भी अधिक ख्याति प्राप्त कर लेताहै। बंगलाके सुप्रसिद्ध उपन्यासकार शरच्चन्द्र और रवीन्द्र बाबूके उपन्यासोंके अनुवाद भारतके दूसरे प्रान्तोंमें इस प्रकारसे घुल-मिल गयेहैं कि उत्तर प्रदेश, गुजरात, आंध्र प्रदेश आदि प्रान्तोंमे उन्हें उसी भाषाका उपन्यासकार मान लिया जाताहै।

अतएव तुलनात्मक साहित्यके लिए, खासकर भारतके संदर्भमें, अनुवाद कलासे परिचित होना बहुत ही आवश्यक है।

तुलनात्मक साहित्य व अध्ययनके अन्तर्गत अनुवाद की समस्याओंसे भी आन्तरिक परिचय होताहै। तुलनावादियोंके समक्ष तीन प्रकारकी अनूदित रचनाएँ आती हैं। एक तो वे जिसमें मूल रचनाके साथ पूरी पूरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निष्ठाका निर्वाह किया गयाहो, ऐसा अनुवाद, दूसरे मूल रचनाके साथ आवश्यक छूट लेनेवाला मुक्त अनुवाद और तीसरा मूल रचनाके भाव या सार तत्त्वको केन्द्रमें रखनेवाला अनुवाद। अनुवादक जिस रचनाका अनुवाद करना चाहताहै उस रचनाका रूप और स्वरूप, उसकी भाषा, उसके संदर्भगत तत्त्व आदिपर अपने आपको केन्द्रित रखताहै, तभी वह शुद्ध अनुवाद कर पाताहै।

इस प्रकार तुलनात्मक साहित्यके क्षेत्रमें अनुवादकी अद्वितीय भूमिका रहीहै। यह तो कहा ही जाताहै कि "अनुवादके बिना तुलनात्मक साहित्य अपंग है"। तुलनात्मक साहित्यको गति देनेमें अनुवादका बहुत बड़ा योगदान रहाहै। या यों कहें कि यह बैसाखीका काम कर रहाहै, जिसके सहारे चलकर तुलनात्मक साहित्य आज इतनी ख्याति अर्जित कर सकाहै। आज कोई भी भारतीय भाषा ऐसी नहीं है कि जिसका अनुवाद हिन्दी में न हो रहाहो। इस क्षेत्रमें 'साहित्य अकादमी' बहुत बड़ा योगदान दे रहीहै। भारतीय साहित्यिक आदान-प्रदानके संदर्भमें दिल्लीसे प्रकाशित होनेवाली 'प्रकर' पत्रिकाकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह पत्रिका प्रति वर्ष 'पुरस्कृत भारतीय साहित्य' से संबंधित विशेषांक निकालतीहै जिसके अन्तर्गत पुरस्कृत रचनाओंकी विस्तारसे समीक्षा की जातीहै। फलस्वरूप तुलनात्मक अध्ययन औरभी सुगम हो जाताहै। डॉ. नजीर लिखते हैं कि—'वर्तमान युग अनुवादका युग है। भारत जैसे बहुभाषी देशमें अनुवादका महत्त्व बहुत अधिक है। विभिन्न भाषाओंसे अनुवाद कार्यका उद्देश्य भाषा और साहित्यकी समृद्धिके अतिरिक्त एक-दूसरेको समझना तथा इस प्रकारके पारस्परिक अवबोधके सहारे एक दूसरेसे अधिक निकट आनाहै।" और इसी प्रकार अनुवादका सहारा लेकर चलनेवाला तुलनात्मक साहित्य आज किसी एक देशमें नहीं अपितु विश्वभरमें एकता, भाई-चारेका संदेश दे रहाहै। ▭

संस्मरण

निकट मनमें[1]

लेखक : अजितकुमार
समीक्षक : डॉ. हरदयाल

अजितकुमार हिन्दीके उन सौभाग्यशाली लेखकोंमें से एक हैं, जिन्हें हिन्दीके एकाधिक पीढ़ियोंके अनेक साहित्यकारोंकी निकटता, स्नेह, आत्मीयता और मित्रताका अवसर मिलाहै। वे अपने 'मित्र' के रूपमें जितने समकालीन साहित्यकारोंका उल्लेख कर सकते हैं उतनोंका शायद ही कोई रचनाकार कर पाये। मेरा तात्पर्य उस मित्रतासे नहीं है, जो सुविचारित रणनीति और सुनिर्मित समीकरणोंका सुरूप नाम नहीं होता है। अतः अजितकुमार संस्मरण लिखनेके लिए अत्यन्त उपयुक्त व्यक्ति है। और उनकी यह उपयुक्तता 'दूर वनमें' तथा 'निकट मनमें' के संस्मरणोंसे सर्वथा सिद्ध हो गयीहै। जो उनके इन दोनों संस्मरण-संग्रहोंको पढ़ेगा, वह चाहेगा कि अजितजी अपने 'वन' और 'मन' में पड़े और संस्मरणोंको अपना आलस्य छोड़कर शब्दबद्ध करें। हमारी यह समीक्षा उनके दूसरे संस्मरण-संग्रह 'निकट मनमें' तक सीमित है।

'निकट मनमें' बच्चन, मास्ति, वेंकटेश अय्यंगार, अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, लक्ष्मीनारायण लाल, धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय, और देवीशंकर अवस्थीसे सम्बन्धित संस्मरण संगृहीत

---

१. प्रका. : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : ९६; डिमा. ९२; मूल्य : ५०.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। किसीके सम्बन्धमें केवल एक संस्मरण है, किसीके सम्बन्धमें तीन-तीन। इसका कारण विभिन्न अवसरोंका तकाजा है। जैसे, अज्ञेयपर एक संस्मरण उनके किसी एक जन्मदिनपर लिखा गयाहै और दो संस्मरण उनके निधन और उसके बादकी स्थितिपर। अजितकुमारमें सस्मरणीयोंके प्रति उनकी आयु और स्थितिके अनुसार कहीं आदरकी प्रधानता है और कहीं आत्मीयताकी। आदर और आत्मीयताका अनुपात भी अलग-अलग है। यदि उन्होंने धर्मवीर भारतीके प्रति सर्वाधिक आत्मीयता व्यक्त की है तो लक्ष्मीनारायण लालके प्रति सबसे कम। बच्चनजीके प्रति उनमें सबसे अधिक आदर है।

अजितकुमारके विवेच्य संस्मरणोंका परिरूप एक जैसा नहीं है; आकार-भेद भी है, लेकिन अज्ञेय और संस्मरणीयके सम्बन्ध, संस्मरणीयके साहित्य और व्यक्तित्वकी मीमाँसा और कुछ अन्तरंग सूचनाएं प्रायः प्रत्येक संस्मरणमें किसी-न-किसी मात्रा और रूपमें विद्यमान हैं। फलतः ये संस्मरण बहुआयामी बन पड़े हैं। जब वे अज्ञेयके सम्बन्धमें लिखतेहैं कि '''इसमें कोई शक नहीं कि तपाकसे आगे बढ़कर हाथ मिलाना या गर्मजोशीसे गले लग जाना अज्ञेयजीके स्वभावमें न था। मैं ऐसे किसी व्यक्तिको नहीं जानता, जिसे उन्होंने 'आप' छोड़ 'तुम' कहा हो। यह भी याद नहीं आता कि कभी, किसीसे, कोई इसरार कियाहो। लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं कि वे किसीका या किसी बातका खयाल ही नहीं रखतेथे। सिर्फ यह कि उनका अपना ढंग या ढर्रा था, जो आपसमें दूध-पानी जैसा घुलमिलकर पतला बन जानेवाले ठेठ हिन्दुस्तानी कायदे से कुछ अलग था।' (पृ. ३५), तब अजितकुमार एक स्थिति हमारे सामने रखतेहैं और उसका 'मतलब' भी बतलातेहैं; लेकिन पाठकके लिए यह निष्कर्ष निकालना कठिन नहीं होता कि अज्ञेयके व्यक्तित्वमें खुलापन नहीं था, औपचारिकनाकी प्रधानता थी। अज्ञेयके व्यक्तित्वकी इस विशेषताको उन्होंने अभिधात्मक ढंगसे कहा नहीं है, लेकिन व्यंजित अवश्य कियाहै। उनके कुछ संस्मरण ऐसे भी हैं, जिनमें संस्मरणीयके व्यक्तित्व की विशेषताओंको सीध-सीधे कहाहै और उन विशेषताओंको उसके साहित्यमें प्रतिबिम्बित होता बतायाहै। गिरिजाकुमार माथुरके सम्बन्धमें उनका यह कथन इसी प्रकारका है—'जहां माथुर साहबके व्यक्तित्वमें भावुकता और व्यावहारिकता, आत्मीयता और औपचारिकता, तन्मयता और उकताहट, अनिश्चयात्मकता और दबंगपन साथ-साथ मौजूद नजर आतेहैं, यहीं उनकी कवितामें भी एक लम्बा फैलाव है, जिसके एक छोरपर गीत, दूसरेपर अकविता; इधर कोमल कल्पना, उधर कटु यथार्थ; इधर मितभाषिता, उधर प्रगल्भता; इधर प्रेमासक्ति, उधर अन्तरिक्ष अभियान वगैरह दिखायी देतेहैं।' (पृ. ४५)।

अपने संस्मरणोंमें अजितकुमार विवरणों, वर्णनों, विवेचनों और घटनाओंके माध्यमसे स्थान और व्यक्ति दोनोंको सजीव और साकार करनेमें सफल हुएहैं। 'धर्मवीर भारतीकी पष्टिपूर्तिपर उन्होंने जो संस्मरण लिखाहै, उसमें इलाहाबाद और भारतीजी दोनों सजीव और साकार हो उठेहैं। छोटी-छोटी घटनाओं या प्रसंगोंके माध्यम उन्होंने कुछ लोगोंके व्यक्तित्वको कैसे व्यंजित कियाहै, इसे स्पष्ट करनेके लिए यहां एक प्रसंग का उल्लेख आवश्यक है। जिन दिनों देवीशंकर अवस्थी जीवित थे, उन दिनों एक दिन अजितकुमारके माडल टाउन (दिल्ली) वाले घरमें कुछ लेखक इकट्ठे हुए। उस दिन दो लेखकोंके बीचकी 'तू-तू मैं-मैं' हाथापाईमें बदल गयी। अजितकुमार और देवीशंकर अवस्थीने उनका बीच-बचाव किया और चोट खायी। सारे झगड़े बीच नामवरसिंह मसनदके सहारे मौन और शान्त बैठे रहे।' जब उफान थम गया तब उन्होंने अपनी चिर-परिचित मुद्रामें एक समापक भाषण दिया, जिसका आशय यह था कि आप दोनों समझते होंगे कि ये लात-घूंसे आपने एक-दूसरेको मारेहैं! जी नहीं, ये आपने अजितकुमारको मारे हैं, उनके पुत्र बोदुलको मारे हैं, इस घरकी गृहिणी स्नेहजीको मारेहैं, देवीशंकरजी को मारेहैं, विश्वनाथजीको मारे हैं, और तो और मुझ —नामवरसिंह को मारेहैं।—आप अपनेको सभ्य कहते हैं—आपको धिक्कार है—। नामवरजीका यह सटीक और औचित्यपूर्ण अध्यक्षीय भाषण जितनी देर चलता रहा, उनकी सराहना करता हुआ मैं मन ही मन 'आप धन्य हैं' कहता रहा और देवीशंकरकी चोट पर डेटॉलका फाहा लगाते हुए अच्छी तरह समझ गया कि आदतसे मजबूर ये हमेशा चपेटमें आयेंगे और वे हमेशा बेदाग रहेंगे।' (पृ. ९४-९५)। इस घटनासे अजितकुमारने अपने निष्कर्ष निकालेहैं और नामवरसिंह के व्यक्तित्वपर सांकेतिक टिप्पणी कीहै। यह अजित-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमारके लेखनकी विशेषता है कि वे यदि किसीके व्यक्तित्व या कृतित्वपर कोई प्रतिकूल टिप्पणी करेंगे तो बचाकर मुलायम ढंगसे। लेकिन उपर्युक्त प्रसंगसे पाठक नामवरसिंहके व्यक्तित्वके सम्बन्धमें अपने स्पष्ट निष्कर्ष निकाल सकतेहैं। इस प्रसंगके उल्लेखसे मुझे ऐसा लगताहै कि अजितकुमारके मनमें नामवरसिंहको लेकर एक विरोध भाव है, चाहे बहुत हल्का-सा ही सही, तभी तो आत्रेय-सम्बन्धी एक संस्मरणमें नामवर सिंहपर यह व्यंग्यात्मक टिप्पणी कीहै—'इसलिए और अवश्य ही अन्य कारणोंसे भी, आजसे लगभग बीस-पच्चीस वर्ष पहले, श्री नामवरसिंहने परिप्रेक्ष्यको सन्तुलित करनेके विचारसे, 'कविताके नये प्रतिमान' नामक अपनी पुस्तकमें हिन्दी कविताके केन्द्रमें मुक्तिबोध के होनेकी घोषणा की थी। इधर हालमें नजर आया है कि अब शायद वे नागार्जुनको इस स्थानका अधिकारी मानने लगेहैं। यद्यपि नामवरजीपर प्रच्छन्न सौन्दर्यवादी, कलावादी आदि होनेका आरोप उनके शुभचिन्तकों द्वारा प्रायः लगाया गयाहै, पर उनके विवेकशील काव्य-चिन्तनकी यह परिणति तो शायद ही हो कि आगे चलकर वे अज्ञेयको हिन्दी कविताके केन्द्रमें पाने लगेंगे। लेकिन 'गीतात्मकता' की जिस आवश्यकतापर वे इस बीच जोर देने लगेहैं, वह प्रेम, प्रकृति, आत्मदानसे कभी जाकर जुड़ जायें तो कमसे कम मुझे तो आश्चर्य न होगा।' (पृ. ४१)।

'निकट मनमें' के संस्मरणोंमें संस्मरणीय व्यक्तियों के साथ-साथ कुछ अन्य व्यक्तियोंके व्यक्तित्वकी झलक भी हमें मिल जातीहै। सबसे अधिक झलक हमें स्वयं अजितकुमारकी मिलतीहैं। इन संस्मरणोंमें उनका जो व्यक्तित्व उभरताहै, यह अत्यन्त प्रिय और स्पृहणीय है। जो लोग अजितकुमारजीको जानतेहैं, वे यह भी जानते हैं कि वे केवल प्रश्न उठातेहैं, उत्तर खोजनेका काम वे औरोंके लिए छोड़ देतेहैं। उनके व्यक्तित्वकी यह विशेषता इन संस्मरणोंमें भी एकाधिक बार प्रकट हुईहै। अज्ञेय सम्बन्धी संस्मरण 'जीवनसे परे एक और जीवन' का अन्तिमसे पूर्वका पूरा पैराग्राफ प्रश्नमय है—'कमसे कम एक बहसको तो तुरन्त ही 'उजाले में' लाया जा सकताहै कि 'निष्प्रयास लेखन' और 'सप्रयास लेखन' क्या सचमुच कोई दो अलग-अलग तरहके लेखन होतेहैं? सप्रयासता और प्रयासहीनताका सम्बन्ध रचनासे हैं या रचनाप्रक्रियासे या रचनाकारसे? 'सावधानी' क्या रचनाको अवश्य ही क्षति पहुंचातीहै?' 'असावधानी' या 'लापरवाही' क्या सृजनात्मक शिथिलता और उदासीनाका परिणाम नहीं हो सकतीं? क्या वह एक बनावटी मुद्रा या 'सावधान असावधानी' नहीं होती? निष्प्रयास लेखन क्या बहुत बार सिलपट या घटिया लेखन नहीं हो जाता? कबीर और तुलसीका अन्तर क्या मुख्यतया 'आवेग' और 'शीतलता' का अन्तर है? तो फिर 'रामकी शक्तिपूजा' और 'गर्म पकौड़ी' वाले निरालाको हम उन दो ठिकानोंमें से किसमें टिकायेंगे?' (पृ. ४१) अजितकुमारने ये प्रश्न तो उठायेहैं, लेकिन इनके उत्तर नहीं दियेहैं।

अजितकुमारके ये संस्मरण अत्यन्त सरस हैं। इनकी सरसता एक तो उन अनुभवोंमें निहित है जिनसे ये प्रेरित हैं। इनकी सरसताका दूसरा कारण इनकी काव्यात्मक भाषा है। अजितकुमारसे सर्वथा अपरिचित व्यक्ति भी जब इन संस्मरणोंको पढ़ेगा तो वह अनुभव करेगा कि वह एक कविके द्वारा लिखा हुआ गद्य पढ़ रहाहै। इस प्रकारका गद्य एक कवि ही लिख सकताहै—'उस दिनसे एक रोज पहले मैं बेहद बेचैन था। एक फुंसी तकलीफ दे रहीथी। मशीनें—जिनके बारेमें ख्याल था कि लोगों के गिर पड़नेके बाद भी वे चलती रहेंगी—गड़बड़ करने लगीथीं। घड़ी, स्कूटर, मोटर—सबकी चाल बेढंगी थी। हर रोजकी तरह, फिर एक पुराना, जोकि ताज़ा अनुभव हुआ, लोग 'चीं' बोलते जा रहेहैं। पीछे हटने, मुंह छिपाने, असहाय होनेके जो भाव मुझे घेरते रहेथे, वे वस्तुओं, स्थितियों और लोगोंके बीच अटकते हुए अपनी जड़े जमाने लगे। सुबहसे तबीयत जो अनमनी हुई, हौल-दिली जो शुरू हुई, वह दोपहरी भर बढ़ती ही रही।' (पृ. ४८)।

अजितकुमारके इन संस्मरणोंमें दो ही बातें मुझे अखरी हैं। एक, एकाध अधूरी सूचनाएं; जैसे 'पृथ्वी-कल्प' के न प्रकाशित होनेकी बात (पृ. ४३-४४); जबकि यह 'कल्पान्तर' के नामसे कई वर्ष पहले प्रकाशित हो चुकीहै। दूसरी बात, अंग्रेजी शब्दोंका अनावश्यक प्रयोग; जैसे 'माथुर साहब की काव्य-चेतना **रोमांटिक** से **साइंटिफिक**, **इमोशनल** से **इण्टेलैक्चुअल** और **पर्सनल** से **कास्मिक** दूरियोंके बीच गश्त लगाती रहीहै।' (पृ. ४४) क्या इस वाक्यमें प्रयुक्त अंग्रेजी शब्दोंके सुबोध और प्रचलित पर्याय हिन्दीमे विद्यमान नहीं हैं? क्या हिन्दीका सामान्य पाठक इन शब्दोंके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ जानताहै ? हिन्दीमें इतके पर्याय भी विद्यमान हैं और हिन्दीका सामान्य पाठक उन्हें अंग्रेजी शब्दोंकी अपेक्षा अधिक समझता भी है; लेकिन अजितजी भी उस मानसिकतासे ग्रस्त हैं जिसके अनुसार 'अंग्रेजी अधिक सक्षम, सुबोध और वैज्ञानिक भाषा है, जबकि हिन्दी अक्षम, दुर्बोध और अवैज्ञानिक भाषा है। इस मानसिकताका इलाज भारतीयोंकी मानसिक स्वाधीनता में है, जो न जाने कब मिलेगी !

इन दो अखरनेवाली बातोंको छोड़कर ये संस्मरण ऐसे हैं जिन्हें पाठक सहेजकर रखना और बार-बार पढ़ना चाहेंगे। ▭

उपन्यास

दिल्ली दूर है[1]

उपन्यासकार : शिवप्रसाद सिंह
समीक्षक : डॉ. शत्रुघ्न प्रसाद

प्रसिद्ध उपन्यासकार डॉ. शिवप्रसाद सिंहने १३ वीं-१४ वीं सदीके संघर्षपूर्ण भारतीय जीवनपर 'कुहरे में युद्ध' और 'दिल्ली दूर है'—याने जुझौती खंड और दिल्ली खंडको एक ही उपन्यासके दो खंडोंके रूपमें प्रस्तुत कियाहै। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीके उपन्यास-चारुचन्द्रलेखका समय १३ वीं सदी है। इस प्रकार इन दोनों प्रतिष्ठित रचनाकारोंने १३ वीं सदीके सम्पूर्ण राजनीतिक-सामाजिक सांस्कृतिक संघर्ष और पीड़ाको औपन्यासिक रूप प्रदान किया है। एक ओर दोनों उपन्यासकारोंने वर्तमान युगकी चेतना एवं संदर्भ के साथ भारतके संघर्षका पुनर्सृजन कियाहै, दूसरी ओर मानवीय संवेदना और सांस्कृतिक दृष्टिके साथ स्वातंत्र्य संघर्षकी त्रासदीको चित्रितकर हिन्दीके ऐतिहासिक उपन्यासको गरिमा प्रदान कीहै।

दोनों उपन्यासकारोंकी रचनाभूमि १३ वीं सदी का उत्तर व मध्यभारत है। तथापि दोनोंके कथानक एक दूसरेसे भिन्न हैं दोनोंके नायक भिन्न हैं, दोनोंके राजनीतिक-सांस्कृतिक संघर्षके रूप भिन्न हैं। इस्लाम को समझनेकी अपनी-अपनी दृष्टि है। अन्तिम त्रासदी का रूप सर्वथा भिन्न है। दो बिन्दुओंपर दोनों मिलते हैं, दोनोंने तत्कालीन इतिहासका अनुसंधान कियाहै। डॉ. शिवप्रसाद सिंह द्वारा जुझौती एवं इसके राजा त्रैलोक्य मल्लदेव तथा सेनापति आनन्द बाशेक (श्रीवास्तव) की खोज तथा नवसृजना अपनी विशेषता है। सोरी मौला—दोनों लेखकोंके उपन्यासमें आयेहैं। 'दिल्ली दूर है' में मौलाका संपूर्ण व्यक्तित्व मानों ईरान के जरथुस्ती (पारसी धर्म), इस्लाम और हिन्दू दर्शन एवं अध्यात्मके संगमकी रचना है। एक मानवीय संस्कृतिका रचनाकार मुस्लिम सियासतका शिकार हो जाताहै। सूफी फकीर सरमद और गुरु तेगबहादुरके बलिदानकी त्रासदीका स्मरण करा देताहै। इस प्रकार दोनों रचनाकार अपनी दृष्टि एवं अपनी शैलीसे लिखते हैं, और बाण भट्टकी आत्मकथा, चारुचन्द्रलेख और कुहरेमें युद्ध तथा दिल्ली दूर है—हिन्दीके ऐतिहासिक उपन्यासकी महत्तम उपलब्धिके रूपमें रेखांकित हो रहेहैं। सच तो यह है कि डॉ. शिवप्रसाद सिंहका उपन्यास—दोनों खंड मिलकर एक हैं—मुस्लिम सियासतके अमानवीय रूप और हिन्दू संघर्षके मानवीय रूप का यथार्थवादी चित्रण कर हिन्दीके ऐतिहासिक उपन्यासको नयी दिशा-दृष्टि देनेमें समर्थ हो रहाहै।

डॉ. शिवप्रसाद सिंहने प्रायः ६५-६० वर्षोंके

---

१. प्रका. : राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०००६। पृष्ठ : ६०८; डिमा. ९३; मल्य : ३००.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुलाम वंश और खिलजी कालीन भारतके राजनीतिक-सामाजिक-सांस्कृतिक जीवनका विस्तृत फलकपर शोध-पूर्ण एवं सांस्कृतिक राष्ट्रीय दृष्टिसे जीवन्त चित्रण कियाहैं। फलतः हिन्दी समीक्षाके क्षेत्रमें हलचल है। किसीने इनके ऐतिहासिक उपन्यासों लेखनपर अचरज कियाहै, किसीने पुराणेतिहासपर लिखे उपन्यासोंपर उंगली उठायीहै, किसीने कुहरेमें युद्धकी हिन्दू चेतनाकी कटु भालोचना कीहै। किसीको इनके उपन्यासमें ब्राह्मण विरोधकी झलक मिल गयीहै। 'धर्मयुग' में प्रकाशित श्री सत्यदेव त्रिपाठीकी आलोचनाका उपन्यासकार ने १६ अप्रैल'६४ के अंकमें उत्तर भी दियाहै। समीक्षा का क्रम चल रहाहै। मैंने भी ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। 'सिद्धियोंके खंडहर' १३ वीं सदीके उदन्त-पुरी-नालन्दाके पतनसे सम्बन्धित है। तात्पर्य यह है कि मात्र मगधसे सम्बद्ध है।' हेमचन्द्र विक्रमादित्य' पर मैंने भी आलोचना सुनीहै। तथापि अपनी दिशा-दृष्टि-शैलीके अनुसार लेखन चल रहाहै। समीक्षा भी लिख रहाहूँ। एक विशेष दृष्टिके आलोचक तो मध्य-कालीन संघर्षपर पर्दा डालना चाहतेहैं। परन्तु डॉ. शिव-प्रसाद सिंहका उपन्यास मध्यकालीन स्वातंत्र्य संघर्षकी भीषणता तथा त्रासदीको दिखा रहाहै। अतः कुछ लोग अप्रसन्न हैं।

उपन्यासकारने 'कुहरेमें युद्ध' की भूमिकामें लिखा है—'इतिहासमें लौटना प्रतिगामिता है और ऐसा करने वाले वर्तमानसे टकरानेमें कतराते हैं तब तो बहसका सवाल ही नहीं है। आज यदि पूरे विश्वके साहित्यको देखें तो अतीतकी ओर दौड़ आपको हतप्रभ कर देगी। × × आजके तथाकथित आधुनिक मूल्योंके कशम-कशसे घबराकर लोग ऐसे चरित्रोंको ढूंढ़ रहेहैं जो अतीतके होते हुए भी हमारे वर्तमानके आदर्श है।"

'दिल्ली दूर है' की भूमिकामें लिखाहै—'मेरी बौद्धिक क्षमतामें जितनी भी भाषिक शक्ति है, जितनी भी समझ है और जितनी भी सदाशयता, उसीका सम्बल लेकर मैंने यह खंड भी रचाहै। मैंने इस्लामको गहराईसे समझनेकी कोशिश कीहै।'

सच है कि कालप्रवाह खंडित नहीं होता। सम्पूर्ण कालबोधके लिए कालबद्ध जीवन-बोधके लिए अतीतका परिदर्शन अपेक्षित है। अतीतका ही परिणाम वर्त्तमान है। वर्त्तमानका परिणाम भविष्य होगा। अतः काल-प्रवाह या जीवन प्रवाहको काटकर नहीं देख सकते। काल अखंड है। जीवन भी अखंड है। इस दृष्टिसे ऐतिहासिक उपन्यास उपन्यास-साहित्यका महत्त्वपूर्ण अंश है। इसीलिए डॉ. शिवप्रसाद सिंहने प्रथम खंडकी भूमिकामें लिखा है—"मैं प्रसादको अस्वीकार करना सत्यसे आंखें चुराना कहताहूं। आचार्य द्विवेदीके चारों उपन्यास मेरे संबल हैं क्योंकि प्रसाद और प्रेमचन्दकी संधिकी एक अद्भुत छटा वहां क्षण-प्रतिक्षण दिखायी पड़तीहै।" इसीलिए उपन्यासकार समकालीन जीवनसे अतीतकी ओर मुड़ गयेहैं। यह पलायन नहीं, युद्धबोध के लिए अपेक्षित बन्ध है। इन्होंने 'कुहरेमें युद्ध' में १३ वी सदीके उत्तर भारतकी भयानक स्थिति हिन्दुओंकी दुर्बलता और तुरुष्कोंकी मजहबी और क्रूर सियासत का आकलनकर भविष्यके भारतका अनुमान कर लिया है। इस अनुमानके कठोर यथार्थ और कटु सत्य को देखकर हमें रोमांच हो आताहै। उपन्यासके अन्तिम पृष्ठमें लिखा है—'आप मात्र उत्तर भारतको भी क्या एकतावद्ध कर सकतेहैं? उनकी संख्यामें निरन्तर वृद्धि होगी क्योंकि वे गुलाम बनाना छोड़ेंगे नहीं और गुलाम का रक्त, धर्म-कार्य सब वही होगा जो उनके स्वामीका है। अभी तो विदेशोंसे आये मुसलमानही सर्वत्र सत्तामें हैं किन्तु अब धीरे-धीरे धनेषणा, यशेषणासे आकृष्ट सवर्ण हिन्दू भी मुसलमान बन रहेहैं। और एक दिन धर्मान्त-रितोंकी संख्या इतनी अधिक हो जायेगी कि हम उनके विशाल सैन्य व्यूहके उद्धत धक्कोंको अमानवीय चालसे या छलसे भी रोक नही पायेंगे जैसा इस बार हमने करके दिखाया। × × लखनौतीसे मुल्तान तक, लाहौर से लेकर विन्ध्य मेखला तक सर्वत्र उनके द्वीप बन चुके हैं। × × हम निरन्तर अल्पसंख्यक होते रहेंगे।

हिन्दीके ऐतिहासिक उपन्यासकार उपर्युक्त सत्य का अहसास नहीं करा सकेहैं। समकालीन ऐतिहासिक प्रसंग—भारत विभाजनके के मूल कारणों और कटु सत्य के चित्रणका भी साहस नहीं कर सकेहैं। यह यथार्थवाद की विडम्बना है।

उपन्यासकारने १३ वीं १४ वीं सदीके मध्यदेशके रोमांचकारी संघर्षपूर्ण इतिहासको शोध और संदर्भित सार्थक परिकल्पनासे कथानकमें प्रस्तुत कियाहै। दोनों खंडोंके परिशिष्ट लेखकके शोधकार्यके प्रमाण हैं। महोबाके राजा परमालदेवके पुत्र त्रैलोक्य मल्लदेव और उनके सेनापति आनन्द बाशेकके सर्वथा उपेक्षित चरित्रोंके माध्यमसे इस संघर्षको रखाहै। इस कथानक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का विस्तार सन् १२३३ से लेकर सन् १३०५ तक है। प्रथम खंड 'कुहरेमें युद्ध' संघर्षका जुझौती खंड है। 'दिल्ली दूर है'—दिल्ली खंड है। जुझौती खंडके संघर्ष का विस्तार दिल्ली-पंजाब तक हो जाताहै। मुस्लिम सियासत याने मजहबी सियासत और हुकूमतके साथ इस्लामके रूप-स्वरूपका विस्तृत वर्णन इस खंडकी विशेषता है जिसे समझने और नियंत्रित करनेमें हमारा चरितनायक आनन्द थककर हताश हो जाताहै।

'कुहरेमें युद्ध'का कथानक अपनी केन्द्रीयता और कुशल वस्तु-विन्यासके कारण सशक्त बन गयाहै। अल्तमशका सूबेदार-सिपहसालार नुसरत तयासी ग्वालियर पर कब्जा करके कालिंजरपर हमला करताहै। त्रैलोक्य मल्लदेव तुर्क इतिहासकारकी नजरमें तलकी मलकी--का तेजस्वी एवं प्रतिभाशाली सेनापति आनन्द बाशेक लवपुर (लाहौर) जाकर फारसी भाषा तथा तुर्क रणनीतिको सीखकर आ चुकाहै। पहली बार कायस्थ वंशोद्भूत आनन्दके नेतृत्वमे युद्ध होताहै। साहस एवं शौर्यके साथ नयी रणनीतिके उपयोगसे नुसरत पराजित होताहै। पर थोड़ी असावधानीसे वह हजारोंको पकड़कर गुलाम बनाकर ले जाताहै। आनन्दकी प्रेमिका और वाग्दत्ता देविकाका अपहरण जरीदा सवारों द्वारा हो जाताहै। आनन्द जीतकर भी हारका अनुभव करताहै। नुसरत हारकर भी जीतका अहसास करता है।

इसी खंडमें पं. देवशर्मा और उसके पुत्र गंगाधर शर्मा ज्योतिष ज्ञानके आधारपर तुर्क शासनके उज्ज्वल भविष्यको देखकर व्यक्तिगत स्वार्थके लिए तुर्क सुल्तान के निकट पहुंच जातेहैं। और राजा त्रैलोक्य मल्लको युद्धसे विरतकर संधि समर्पणके लिए बाध्य करतेहैं। परन्तु राजा मंत्री तथा सेनापतिको ज्ञात है कि पहले भी स्व. राजा परमर्दि देवके प्रादूप मंत्रीने छल किया था। लखनौतीमें ज्योतिषके अनुमानके आधारपर ही बर्बर बख्तियारका स्वागत हुआथा। अतः जुझौतीके स्वाभिमानी राजा, मंत्री तथा सेनापति साहस और शौर्यके साथ स्वातंत्र्य युद्धके लिए संकल्पित होतेहैं। असमके नव-धर्मान्तरित अलीमेहरने मातृभूमिके प्रति ममताके कारण जुझौती युद्ध में सहयोग देकर आनन्दको विजयी बनायाहै। निस्सन्देह देशभक्ति ही स्नेह एवं सहयोगकी भूमि है।

इसी आनन्द बाशेकके चरित्र, उसके संघर्ष, उसकी प्रेमकथाओं और मानवीय सांस्कृतिक मूल्योंका पूर्ण प्रस्फुटन 'दिल्ली दूर है' में होताहै। दिल्ली खंड (दिल्ली दूर है) ६०० पृष्ठोंका उपन्यास है, जो उत्तर भारतकी सारी राजनीतिक गतिविधियों और सांस्कृतिक संरचनाको जीवन्तताके साथ प्रस्तुत कर देताहै। यदि दिल्ली सल्तनतकी कथा ऐतिहासिक यथार्थकी रोमांचपूर्ण गाथा है तो सूफी फकीरों बाबा फरीद एवं सीदी मौला तथा नाथ योगी--रावलगीर और ज्ञानेश्वर के द्वारा एक नयी मानवीय संस्कृतिका स्वरूप सामने आताहैं। यह भी सच है कि इन साधु-फकीरोंकी साधना जन्य मानवीय संस्कृतिका कोई प्रभाव दिल्लीके सुलतानों, युद्ध, विध्वंस और दीनपनाहीके तहत होनेवाले जुल्म-जजियापर नहीं पड़ा। हमारा चरितनायक अवश्य ही अनुप्राणित होताहै क्योंकि उसकी परम्परामें मानवीयता, सदाशयता, क्षमा और करुणाका महत्त्व है। यह भी सच है कि आनन्दके चरित्रके इस विकासमें कल्पनाका विशेष योगदान है। यह उपन्यासकारकी विशिष्ट उपलब्धि है।

जुझौतीपर फिरसे आक्रमण न हो और देविकाका उद्धार हो, इसीलिए आनन्द बाशेक सफीउल्लाह बाशा खुरासानी बनकर दिल्ली पहुंचताहै। उसका रंग-रूप, वेशभूषा और भाषा सभी खुरासानीके अनुकूल है। वह सन्देहसे परे है। इसके पहले भाभीजू पद्मरक्षिता और उसके पति मूर्तिदेव शर्मा—दोनों मुसलमान बनकर (अल्लारक्खी और मुर्तजा) दिल्लीमें यमुना किनारे नान और मिठाईकी दुकान खोलकर बाशेक (बाशा)के काममें सहयोग देतेहैं। दूसरी ओर दिल्लीके प्रतिवेशी मेवातके यादव भट्टी शालिग्राम और मल्काके नेतृत्वमें दिल्ली हुकूमतके जुल्मके प्रतिरोधमें छापामार लड़ाई लड़ते रहतेहैं। तीसरी ओर कटेहरके राजपूत पृथुराणाके नेतृत्वमें प्रतिरोध करते हुए अवसर मिलनेपर तुर्कोंको हत्याकांडका दृश्य दिखा देतेहैं। जुझौती, मेवात और कटेहर-तीन ही संघर्ष केन्द्र बच रहेहैं। दिल्लीकी सल्तनत अपार शक्ति, मजहबी सियासत और बर्बर आक्रमणके द्वारा इन तीनोंको नष्ट कर देना चाहतीहै। उपन्यासकारने तीनोंके संघर्ष और क्रमिक पराजयका मर्मान्तिक अंकन कियाहै। मेवाती तो नुसरतकी कन्या शकीलाका अपहरण कर लेतेहैं। पर आनन्द (सफीउल्लाह) यह अनुचित कर्म नहीं देख सकता। वह शालिग्राम और मल्कासे शकीलाका उद्धार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर नुसरतके पास भेज देताहै। सभी चकित हैं। देविकाके अपहरणकर्त्ताके साथ ऐसा व्यवहार आश्चर्य-जनक है। और आनन्द मेवातियोंके संगठित प्रतिरोध का परामर्श देताहै। इसी प्रकार पृथु राणाको भी। पर ये दोनों तुर्कोंके अत्याचारसे क्रुद्ध होकर उनपर उसी प्रकारका प्रहार करतेहैं। आनन्द परिणाम सोच-कर परेशान रहताहै।

सफीउल्लाह रजिया सुल्तानाका साथ देताहै जिससे हिन्दू प्रजा और स्त्रियोंकी रक्षा हो सकें। जजिया हट सके। वह मल्काके सहयोगसे रजियाके विद्रोहियोंको दबाताहै। आनन्दने हरियाणाकी ओर जजियाके लिए होनेवाले अत्याचारोंको देखाहै। रजियासे अनुरोध करताहै। पर सुल्ताना जजिया नहीं हटा पाती। आनन्दका प्रयोग असफल हुआ। वह रजियासे दूर हट जाताहै। और रजियाकी हार होती है। कैद होतीहै। मल्काके हाथों मौत भी होतीहै। आनन्दने सामान्य प्रजाकी रक्षाके लिए चंगेज खानके आक्रमणके समय लाहौरमें युद्ध करताहै। अमीरका साथ देताहै। पर तुर्क सल्तनतकी रीतिनीति नहीं बद-लती। बल्वन तख्तपर आ जाताहै, जोर-जुल्म बढ़ जाता है। जुझौतीपर आक्रमण होताहै। उधर जुझौतीमें राजा त्रैलोक्य मल्लके पुत्र वीरदेव वर्मने राजदण्ड हाथमें लेकर अमाल तथा सेनापति बाशेककी उपेक्षा की हैं। इसके बावजूद आनन्द पश्चिम जुझौतीकी रक्षा का भार लेताहै। पूर्व भाग बच नहीं पाता पुनः आनन्द सेनापति बनताहै।

मेवातीं मलूरने तुर्क आक्रमणकी भोज्य सामग्री को लूटकर एक नया प्रतिमान बनायाहै। पर आनन्द रूष्ट हो जाताहै क्योंकि तुर्क प्रतिशोध बर्बर हो जायेगा। यही होताहै। हरियाणामें नरमेधका आदेश होताहै। नरमुंडोंका मूल्य मिलताहै। आनन्द लाचार होने लगताहै। थकने लगताहै। सेनापति मकबूल से मिलकर उसकी बेटीकी शादी देविकाके पुत्र अनवरसे करानेका प्रबन्ध करताहै। संभवतः इससे जुल्ममें कमी आयी। पर खिलजी वंशके शासनमें तो जुल्मोंमें बढ़ोत्तरी हुई। अब आनन्द थक जाताहै। सीदी मौलाको भी बचा नहीं पाता, नामदेवको भी अप-मानसे बचा नहीं पाता। मृत्युके निकट आ जाताहै उसका प्रयोग असफल हो जाताहै। मृत्युके बाद राय पिथौराकी समाधिके पास अन्तिम संस्कारके लिए सुल्तानसे अनुमति नहीं मिलती। दिल्ली दूर ही रहतीहै। वह दिल्लीपर नियंत्रण नहीं कर पाता।

कथानकका दूसरा अंशप्रेमकथाओंका है। नायक आनन्दकी प्रथम प्रेमिका और वाग्दत्ता देविकाका अप-हरण हो जाताहै, चाहकर भी बचा नहीं पाता। नुसरत की बुन्देली बेगम बनना पड़ताहै वह माँ बन जातीहै। वह आनन्दको आजीवन प्यार करती रहेगी, पर अब अपना नहीं सकती। दिन रात उसीकी चिन्ता बनीहै। वह विवाह कर ले। वह एक बार देखना चाहतीहै। आनन्द भी देखना चाहताहै। पर आनन्द साहस नहीं कर पाता। नुसरतकी मौतके बादभी वह आनन्दके पास लौट नहीं सकती। वह हिन्दू विधवाके रूपमें रहेगी। मांका कर्त्तव्य पूरा कर जोगन बनेगी। आनन्दकी मृत्यु होनेपर चितामें प्रवेश करनाही है।

देविकाके अपहरणके बाद सबने दीप्तिसे विवाह कराना चाहा। वृजपाल फूफाकी भांजी है। विवाह हो जाताहै। दाम्पत्य मधुर और सरस बन जाताहै। रुचिरका जन्म होताहै। पर आनन्द घरसे बंध नहीं पाता। जुझौती और संपूर्ण देशके लिए खांड़ा उठाता चलताहै। भटकता रहताहै। तीसरी प्रेमिका चित्रकार हरशिमकी बहन नजमा है। जो अपने आपमें एक नज्म है। गरीब मुस्लिम कन्याका प्यार त्यागमय है। आनन्द उसे दूसरेसे विबाह कर लेनेकी सलाह देताहै। पर वह वियोगमें जियेगी। दर्दके सफरमें आगे बढ़ती जायेगी। आनन्दके पासही बीमारीसे मौत पा लेगी। उसे दफनकी अनुमति नहीं मिलती। इस प्रकार देविका और नजमा की प्रेमकथा वियोग-व्यथाकी अन्तहीन कथा है मानों एक विरह काव्य है। लेखक प्रेम-कथाओंके चित्रणमें पूर्णतः सफल है।

कथानकका तीसरा अंश साँस्कृतिक मूल्योंके प्रति-निधि साधु-फकीरोंसे सम्बन्धित है। नायक आनन्द युग की महान् विभूतियोंके सान्निध्यमें आताहै। लाहौरकी प्रथम यात्रामें ही बावा फरीदसे उसका सम्पर्क हुआ था। एक ओर वह तुरुष्कों-मुसलमानोंसे देश व धर्मकी रक्षाके लिए आजीवन संघर्ष करताहै। पर संस्कृतिके साधकोंके साथ निर्द्वन्द्व भावसे मिलता-जुलताहै। बाबा फरीद और सीदी मौला मुसलमान हैं। राबूल पीर और ज्ञानेश्वर नाथपंथी हैं। फरीद, सीदी मौला और राबूल पीर—तीनों साधक आपसमें सिलतेहैं। धर्म-मतों से फर्क नहीं मानते। एक ही मानवताकी चर्चा करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। आनन्दको तीनोंका प्यार मिलताहै। वह तीनोंसे अनुप्राणित होताहै। लेखक सीदी मौलाके द्वारा ईरान के जरथुस्त्री (पारसी धर्म) से धर्मान्तरित परिवारका परिचय देताहै। सीदी मौलाने अपने परिवारपर हुए अरबी जुल्म और मजबूरीमें इस्लामको अपनानेकी कहानी बतायीहै। तो भी वे इस्लामकी ऊंची साधनाके पथपर बढ़तेहैं। मजहबी सियासतसे घबराकर भारत आ गयेहैं। यहां भी वही संघर्ष है। पर उन्हें भारतकी धरतीमें शांति मिलतीहै। आनन्द और रावल पीरके द्वारा हिन्दू दर्शन तथा अध्यात्मकी जानकारी मिलती जाती है। वे अनुप्राणित होतेहैं। ये दिल्लीकी कुतबन-उल-इस्लाम मस्जिद याने मन्दिरोंको तोड़कर बनायी मस्जिद को गलत मानतेहैं। फलतः उन्हें मौतकी सजा मिलती है।

लेखकने रावल पीरके माध्यमसे चित्तौरकी रावल परम्परा तथा नाथ साधनाका गौरवपूर्ण परिचय दिया है। रावल पीर एक ओर मानवताका संदेश देतेहैं तो दूसरी ओर अत्याचारके विरुद्ध प्रतिरोधका परामर्श भी देतेहैं। उनकी सलाहपर आनन्द दूसरा घोड़ा लेकर गुजरातके युद्धमें जाताहै। घायल हो जाताहै। रावल पीर अपनेको अपराधी मानकर एकलिंगपर अंगूठा चढ़ाकर प्रायश्चित करतेहैं। रावलपीर और रावलपिंडी का सम्बन्ध भी स्पष्ट हो जाताहै। लेखकने सम्पूर्ण भारतकी तत्कालीन सांस्कृतिक साधनाको दिखानेके मोह में महाराष्ट्रके ज्ञानेश्वर और नागदेवको भी दिल्लीमें आनन्दके पास पहुंचा दियाहै। आश्चर्य हैं कि ज्ञानेश्वर आनन्दको दार्शनिक तथा अध्यात्म पुरुष समझने लगतेहैं।

अन्तमें आनन्द भारतके सपूत शायर अमीर खुसरो के पास भी पहुंच जाताहै। अमीर खुसरो एक ओर भारतको प्यार करताहै, दूसरी ओर शायर है और साथही सल्तनतका दरबारी तथा उनकी मजहबी सियासतका समर्थक है। आनन्द और आनन्दकी काव्य गोष्ठीका दृश्य भी अनावश्यक है।

यदि कथानकका विस्तार अल्तमशसे अल्लाउद्दीन खिलजी तक हो गया तो चित्तौड़का पद्मिनी-प्रसंग आयेगा ही। पर मार्मिक वर्णनकी स्थिति नहीं रहेगी। नायक भी वहां पहुंच नहीं पाताहै। अतः सूचना मात्र दी गयीहै। उपन्यासकी कथाको बल्वनके काल तक सीमित रखा जा सकताथा। इससे कथानकमें अनावश्यक विस्तार नहीं हो पाता। एक स्थान (पृ. ४५३) पर जुझौती नरेश त्रैलोक्य मल्लदेवके अन्तकी सूचना है, आगे जीवित रहतेहैं। पृ. ५७५ पर उनकी मृत्युकी पूरी जानकारी मिलती है। विरोधाभास स्पष्ट है। हाशिम के सम्बन्धमें भी यही विरोधभास है। बलवनका दूसरा आक्रमण होताहै। आनन्दके नेतृत्वमें योजना बनतीहै। तुरुष्क परेशान हो जातेहैं। मल्काका सहयोग है। वन-वासी (आदिवासी) समुदायका पूर्णतः सहयोग हैं। इसके बाद भी कैसे हार हो गयी? स्पष्ट नहीं है! केवल सूचना भर है। मकबूलको खुश करनेके बाद हरियाणा का नरमेध रुकाथा नहीं, स्पष्ट नहीं हो पाता। कथा-नककी इन त्रुटियोंके बाद भी 'दिल्ली दूर है' १३वीं सदीके भारतका प्रामाणिक ऐतिहासिक उपन्यास सिद्ध होंताहै।

उपन्यासकार आनन्दके चरित्र चित्रणमें सफल हुआहै। कायस्थ कुलभूषण आनन्द सम्बन्धी ऐतिहासिक प्रमाण अजयगढ़के पासका शिलालेख है। उसका एक श्लोक भूमिकामें आयाहै। महान् चरित्रके संकेत भी मिल गयेहैं। इसी आधारपर औपन्यासिक कल्पना और तत्कालीन परिवेशके अनुसार आनन्दका चरित्र निर्मित हुआहै। फलतः आनन्द बाशेक, सफीउल्लाह बाशा और हिन्दूखानका व्यक्तित्व प्रभावीसे अतिप्रभावी होता गया है। वह राजनीतिज्ञ है, वह अन्यतम योद्धा है, सुन्दर व्यक्तित्ववाला सहृदय प्रेमी है, सांस्कृतिक मूल्योंका त्राताहै, कलाकार-कवि तथा महान् देशभक्त है। मानों रामके समान सौन्दर्य, शील तथा शक्तिका पुंजीभूत है। कभी-कभी वह सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और सर्वशक्ति-मान-सा प्रतीत होताहै। ऐसा नायक हिन्दीके कथा साहित्य या काव्यमें नहीं आया होगा।

एक ओर वह शूद्र माना जाताहै, दूसरी ओर वह जुझौती नरेश त्रैलोक्य मल्लदेव तथा जनसामान्य एवं वनबासी बन्धुओंसे प्यार पाकर अपनी प्रतिभाके बलपर अग्रसर होताहै। जुझौती खंडमें ही उसकी रणनीति, बुद्धिमत्ता, साहस तथा वीरताका परिचय मिल जाता है। दिल्ली खंडमें उसके इन्हीं गुणोंका विकास होता है। पर यहां वह भटकता हुआ दिखायी देताहै। दिल्ली आनेपर उसे भारतीय स्वाधीनताकी व्यापक दृष्टि मिल जातीहै। पर वह सुव्यवस्थित केन्द्रीय योजना नहीं बना पाता। वह बिखरी हुई राष्ट्रीय शक्तियोंको सुदृढ़ रूपमें संगठित नहीं कर पाता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैत्रसिंहकी योजना तो व्यक्ति-परक-स्वार्थ प्रेरित थी। यदि आनन्द बल्बनके समय जुझौती, मेवाड़, कटेहर, चित्तौड़, गुजरात, उज्जयिनी आदिका संगठन कर संघर्ष में शहीद होता तो उसका चरित्र और वस्तु-विन्यास दोनों ही अधिक प्रभावी होते। पर वह तो अकेले दम पर छुटपुट युद्धोंमें शामिल होता रहताहै। रजिया सुल्तानाको प्रसन्न करनेका प्रयत्न भी व्यर्थ हो जाता है। देविकाका उद्धार तो नहीं ही कर पाता। क्या इसी हताशासे साधुओंके पास जाताहै? यह कारण तो नहीं दिखायी देता। वह मानवता और मानवीय संवेदनासे अनुप्रेणित होकर हिन्दी एवं फारसीके मिलनका समर्थक हो गयाहै। वह पृ. ५६७ पर दिल्लीपर हिन्दूका नहीं, हिन्दुस्तानीके अधिकारका सपना देखता है। प्रथम खंड और दूसरे खंडके चिन्तनमें अन्तर आ जाताहै। ऐसा क्यों? जैसे हजारीप्रसाद द्विवेदीके 'चारुचन्द्रलेख'में सारा संगठन तथा संघर्षपर विराम लग जाताहै। 'दिल्ली दूर है' में संघर्ष केन्द्रित नहीं हो पाता। अन्तमें आनन्द वृद्ध होकर थक जाताहै। पद्मा भाभीका पुत्र नीलोफर इस्लामके जोशमें उसे अपमानित करताहै। बूढ़े शेरकी मौत बड़ी मार्मिक है। देविकाका चितारोहण आत्यन्तिक रूपसे मार्मिक बना देता है। यह उपन्यासकारकी सबसे बड़ी सफलता है।

इतिहासके अनुसंधान, चरित्रकी योजना, मुस्लिम सियासतके भयानक रूप, सांस्कृतिक साधना तथा बिखरे हुए राष्ट्रीय संघर्षके अंकनकी दृष्टिसे यह उपन्यास उच्चताके शिखरपर पहुंच रहाहै। पर आनन्द का अतिमानवीय चरित्र, संघर्षका बिखरना और हताशा की त्रासदी मनको ऊपर उठाकर नीचे गिरा देतीहै। शायद यही मंतव्य भी है। इसलिए चारुचन्द्रलेख और दिल्ली दूर है—दोनोंकी त्रासदी मार्मिक बन गयी है। दोनोंकी त्रासदीका रूप भिन्न-भिन्न है। 'दिल्ली दूर है' की त्रासदी अधिक स्वाभाविक तथा यथार्थ है। इसीलिए डॉ. शिवप्रसाद सिंहकी लेखनीकी इस मुद्राका शत-शत अभिनन्दन है। राष्ट्रीय त्रासदीके महाकाव्यात्मक उपन्यासका स्वागत है। ▭

युद्धस्थल[1]

उपन्यासकार : मिथिलेश्वर
समीक्षक : डॉ. उत्तम एल. पटेल

"युद्धस्थल" मिथिलेश्वरका घटना-प्रधान सामाजिक उपन्यास है और उनका दूसरा उपन्यास है जो ग्रामीण पृष्ठभूमिपर आधारित है। उपन्यासकी कथाभूमि है—भरतपुर। जो अंधविश्वासों, मान्यताओं और सामाजिक रूढ़ियोंसे भरा हुआ गाँव है। वहाँकी एक निःसंतान विधवा और असहाय वृद्धा औरत (रामशरण बहू) को डायन करार दिया गयाहै। वह जहाँ कहीं भी जातीहै, लोग उसे डायन कहकर ताना देतेहैं। रामकथा सुनकर एक रात वह घर जा रहीथी कि थक जातीहै और दूधनाथ चौधरीके दालानके बाहरवाले चबूतरेपर बैठ जातीहै। थकावटके कारण उसे नींद आ जातीहै; किन्तु कुछ समय बाद लोगोंकी बातचीत से जग जातीहै। उसे दूधनाथ चौधरीकी पत्नीकी आवाज सुनायी पड़तीहै—"हाय दादा! अब क्या होगा? रमसरना की डायन आकर बैठ गयीहै···न जाने किसपर घात लगायीहै··· अब जरूर कुछ होगा?" (पृ. २२)। वह घर चली जातीहै। किन्तु सवेरे दुखनकी माँसे उसे पता चलताहै कि दूधनाथके लड़केके बीमार होनेका आरोप उसके माथे मढ़ दिया गयाहै। और यहाँसे शुरू होतीहै उसकी व्यथा-कथा। जिसके परिणामस्वरूप वह मानसिक यंत्रणा ही नहीं, शारीरिक यातना भी भोगतीहै। और उसी समय "आर्थिक असमानता और जातिगत विषमता के खिलाफ युद्ध लड़नेवाला गांव डायनके रूपमें मारी जा रही बेगुनाह औरतोंकी मुक्तिके लिए" अभी तक जो मौन था, युद्धका निर्माण करताहै।

उपन्यासका मुख्य पात्र है—रामशरण बहू, जो लेखकके आहत संवेदनशील मनकी पीड़ाकी संवाहिका है। तो दुखनकी माँका पात्र लेखकके सकारात्मक विकल्पकी आवाजको अभिव्यक्ति देताहै। अन्य गौण पात्रोंमें जगतनारायण सिंह व दूधनाथ चौधरीके पात्र उल्लेखनीय हैं।

---

१. प्रका. : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १८९; क्रा. ९३; मूल्य : २५.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखकका यह मानना है कि डायन होनेका आरोप बांझ और विधवा औरतोंपर ही लगाया जाताहै; क्योंकि वे निःसहाय होतीहै। इसी कारण उन्होंने रामशरणकी हत्याका वर्णन कियाहै। रामशरण घरके लिए कुछ आवश्यक सामान बाजारसे खरीदकर जब घर लौट रहेथे तब बीस पच्चीस आदमी रामशरण तथा उनके साथियों को घेर लेतेहैं तथा वे रामशरणकी हत्या कर देतेहैं। जबकि साथके लोगोंको छोड़ देतेहैं। यहाँपर लेखकने रामशरणके साथके अन्य लोगोंको क्यों छोड़ दिया गया, यह स्पष्ट नहीं किया।

रामशरणकी मृत्युके बाद उनकी बहूका एक मात्र आधार जगतनारायण सिंह थे। किन्तु जब वे निकटके गाँवमें नाटक देखने जातेहैं तो वहाँ पिस्तौल चलनेपर वे भागकर एक जंगलनुमा झाड़ीमें छिप जातेहैं। रात अंधेरी थी। वे सोच रहेथे कि वातावरण शांत हो जाये तब वे अपने गाँवकी ओर लौटें; कि अचानक उनके बायें पैरके तलेमें काँटा चुभने जैसी टीस होतीहै। यहाँतक तो ठीक है, किन्तु बादमें लेखक वर्णन करते हुए लिखते हैं—"लेकिन उधर देखतेही भयके मारे उनका हृदय जोर-जोरसे धड़कने लगा। एक काला नाग फन फैलाये उनके पास फुंफकार रहाथा। उसने जबर्दस्त वार कियाथा उनके ऊपर। खूनकी बूँदें टपकने लगीथीं।" (पृ. ६७-६८)। यह वर्णन उचित नहीं है क्योंकि अगर रात अँधेरी है तो काला नाग दिखायी तो देगा ही नहीं और वह भी झाड़ियोंमें ?

वास्तवमें रामशरण बहूको विधवा और बेसहारा दिखानेकी जल्दीमें लेखकसे ये चूक हो गयीहै। परिणाम-स्वरूप घटनाका वर्णन कृत्रिम, अस्वाभाविक व नीरस प्रतीत होताहै।

दुखनकी माँ, जो रामशरण बहूके यहाँ काम करती है और रातमें सोती भी वहीं है। वह जब दुखनकी पत्नीके प्रसूतिके दिन निकट आनेपर उसके साथ चली जातीहै। उस समयकी रामशरण बहूकी निःसहायता तथा बेबसीका लेखकने मर्मस्पर्शी मनोवैज्ञानिक चित्रण कियाहै। न जाने कब दूधनाथके आदमी उसके घर आकर उसके क्या हाल करेंगे ? क्योंकि दूधनाथके बेटेको पीलिया होनेसे उसकी दशा दिन-ब-दिन बिगड़ती ही जा रहीथी, किन्तु लोग तो यही मानतेहैं कि यह सब तो रामशरण बहूकी डायन विद्याका प्रताप है। चूँकि वह इसके पहले संयोगवश ब्रह्मबाबाके थानकमें पूजा करने जातीहै तब दूधनाथ चौधरी उसे देख लेताहै। जब ओझाओंसे वह इस बातका जिक्र करताहै तो वे उसे कहतेहैं कि आपके लड़केको खत्म करनेके लिए उसने अंतिम बाण चलायाहै।

'युद्धस्थल' में लेखकने ग्रामीणोंके मनमें सदियोंसे 'धर कर गये' तरह-तरहके अंधविश्वासों, मान्यताओं; देवासके बहाने 'खइलका' प्राप्त करते ओझाओंके काले करतूत; लोगोंके झगड़े, टूटती जमींदारी, पिछड़े वर्गोंकी जागरूकता, जातिवाद तथा गुटोंके संघर्ष, साधुओंकी स्वार्थपरताका वर्णन, विधवा नारीकी बेबसी तथा असहायताके चित्रणके लिए कियाहै। इनके अतिरिक्त गाँवमें होनेवाली बैठकोंका विस्तृत वर्णन नीरस बन गया है। वैसे लेखकने ग्रामीण परिवेशको उभारनेके लिए इसकी नियोजना कीहै; क्योंकि उनके विचारमें "गाँवकी आत्मा गाँवकी बैठकोंमें निवास करतीहै।" (पृ. १४)।

शिल्पकी दृष्टिसे उपन्यास कमजोर है। रामशरण बहू और दुखनकी माँके बीच होनेवाले अधिकतर संवाद पात्रानुकूल नहीं हैं। शब्दोंका प्रयोग भी कहीं-कहीं अनुचित है। जैसे, जगतनारायण सिंहने तेजीसे कुएँमें प्रवेश कर उन्हें निकाला (पृ. ५५) तो देशज शब्दोंका प्रयोग, जैसे महटिया, बहिला, देवास, चेमेगोइयाँ, हबेख, दिरासे, दखलियाना, लौंड़कम, थनइल, पसंघे आदि ग्रामीण-पृष्ठभूमिको सजीवता प्रदान करनेमें सहायक सिद्ध हुएहैं। लोकगीतोंका प्रयोग ऊपरसे थोपा गया प्रतीत होताहै। उपन्यासमें कहीं-कहीं बहुत सुन्दर सूक्तियाँ हैं—जैसे; (१) बहुत सारी चीजोंकी शक्ति उनसे दूर हटकर ही कम की जातीहै, सटकर नहीं। (पृ. ६२) (२) दुःखका साथी तो अँधेरा ही है। (पृ. ७०) (३) किसी भी बातकी सच्चाई उसके करीब रहकर ही जानी जा सकतीहै, उससे दूर रहकर नहीं। (पृ. ७३)।

उपन्यास वर्णनात्मक शैलीमें है। लेखकने संकेतसे बहुत कम काम लियाहै। पाठकोंकी सोचके लिए नहींवत् छोड़ाहै। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—"... आडंबरपूर्ण देवास सिर्फ एक बहाना मात्र है। ऐसे पाखंडपूर्ण स्थानोंके माध्यमसे केवल अतृप्त इच्छाओंकी पूर्ति करने और उन्मुक्त जिंदगी जीनेकी ख्वाहिश पूरी की जाती है।" (पृ. ३२)। इससे भी लेखकको संतोष नहीं हुआ तो जो बाकी बचाथा उसे 'नेपथ्य से' में बयान कर दिया।

संक्षेपमें, 'युद्धस्थल' में लेखकने डाकिन विषयक मान्यताओंको लेकर ग्राम्य-समाजके घृणित रवैयेके खिलाफ अपने मनमें जो तिक्तता और तिलमिलाहट थी, उसे अभिव्यक्त करनेका प्रयास कियाहै। ▭

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी

यह कहानी नहीं है[1]

कहानीकार : शंकरदयाल सिंह
समीक्षक : डॉ. त्रिभुवन सिंह

शंकरदयाल सिंहकी कहानियोंको समझनेके लिए उनकी साहित्यिक प्रतिबद्धताको समझना आवश्यक है जो उनके कहानीकारको निरंतर अनुशासित करती रहतीहै। उदात्त मानवीय प्रेम जिसका पर्यवसान मांसलताकी भूमिसे ऊपर उठकर जन्मभूमि अथवा मातृभूमि में होताहै, शंकरदयालजीके रचना-संसारकी मूल प्रेरक शक्ति है। उनके कहानीकारका अनगढ़ मध्यवर्गीय व्यक्तित्व सामंती मनोवृत्तिसे प्रभावित होते हुएभी अपनी जमीनसे बराबर जुड़ा रहताहै। देश-देशांतर तक फैले विविध सामाजिक जीवनकी भंगिमाओंकी धड़कनों का स्पर्श करनेवाला उसका व्यक्ति ग्रामीण संस्कृतिके खूंटेसे बंधा रहताहै जिसपर तथाकथित मर्यादाकी मजबूत गांठ है। 'प्रातः ऐसा देखनेमें आताहै कि वे अपनी कहानियोंके लिए उन्हीं विषयों और चरित्रोंको चुनतेहैं जिनसे उनका नैकट्य है। उनकी कहानियोंका कालफलक स्वयंकी उनकी जीवन-यात्रा हैं जो उनके छात्र जीवनसे लेकर आजके राजनीतिक जीवन तक फैला हुआहै। सबके साथ उनकी साझेदारी है। एक प्रकारसे उनका भोगा हुआ और देखा हुआ सत्य ही उनकी रचनाओंमें प्रस्तुत हुआहै। संभवतः वे इसीलिए संग्रहके शीर्षकके रूपमें घोषित करतेहैं कि 'यह कहानी नहीं है'। ऐसा करके जहां एक ओर वे अपनी कहानियोंके तथ्यों द्वारा चरित्रोंकी यथार्थताकी कलात्मक घोषणा करतेहैं, वहीं, दूसरी ओर वे यहभी संकेत देतेहैं कि पाठक और समीक्षक उनकी कहानियोंको मात्र शास्त्रीय निकष पर ही कसनेका प्रयास न करें। संभवतः वे कहना चाहतेहैं कि उनकी कहानियोंमें लीकसे हटकर भी कुछ और है उसे देखा-परखा जाये। रचनाकारके मन्तव्यकी देख-परख तो आवश्यक हैंही, पर वह रचना है कि नहीं, इसे भी देखना आवश्यक है। कच्चा माल जब किसी वस्तु का आकार लेताहै तो उसका बहुत कुछ उसके साथ नहीं रह जाता, उसी प्रकार रचनाकारकी रचना भी अपनी पूर्णता तक आते-आते बहुते कुछ जो यथार्थ होता है उसे पीछे छोड़ जातीहै। अतः साफ-साफ यह कहकर निकल जाना कि यह कहानी नहीं है, संभव नहीं है। यदि यह कहानी नहीं है तो क्या है, उसका उत्तर देना होगा।

कतिपय अपवादोंको छोड़कर ऐहिक भूखके चलते पराजित नारी-पुरुष पात्रोंके मानसिक अन्तर्द्वन्द्वोंसे कहानियां स्पृहणीय तो बनीहैं, पर उनपर थोपी हुई मर्यादा पाठकके हृदयमें कील बनकर चुभ जातीहै। चरित्रोंको शक्ति और स्वाभाविकता प्रदान करनेके लिए रचनाकारको परकाय प्रदेशकी स्थितिसे गुजरना पड़ताहै। निश्चित रूपसे कहानीकारने रचना क्रममें यह विकट साधना कीहै। किसी पात्रके साथ कम और किसीके साथ अधिक। जिन पात्रोंमें पूर्णकाय प्रदेशकी स्थिति दिखती है, उनमें पुरुष पराजित न होकर मन मसोस कर रह जाता है, यही कहानी है? शंकरदयाल सिंहजीने अपनी जीवन-यात्रासे तो अनुभव अर्जित कियाही है, इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने अध्ययन अर्जित ज्ञानसे भी अपनी कहानियोंको समृद्ध कियाहै। उनके अध्ययन-फलक विशाल और बहुयामी है। वे इस क्रममें केवल साहित्य और इतिहास तक ही अपनेको सीमित नहीं रखते, बल्कि वे पौराणिक जगत्की भी सैर करतेहैं। अध्ययन अर्जित ज्ञानको वे इस प्रकार अपना बना लेतेहैं कि उसे उनकी कहानियोंमें सहज ही रेखांकित कर पाना कठिन है। वे

---

१. प्रका. : प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली-११०००६। पृष्ठ : २९२; डिमा. ९३; मूल्य : १७५.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी प्रतिबद्धता और वर्तमान सन्दर्भमें अतीतको ऐसी नवीनता प्रदान कर देतेहैं कि वह उनका अपना बन जाताहै, यह कहानीं नहीं तो और क्या है।

कतिपय भोले-भाले आकर्षक युवा पात्रोंको स्त्रियां अनायास मिल जातीहैं। उनमें से कुछ ममतामयी, कुछ प्रेममयी और कुछ वासनामयी हैं जो अकारण युवा पात्रोंकी निकटता प्राप्त कर लेतीहैं। ऐसे युवा पात्रोंको कहानीकारकी सर्वाधिक आत्मीयता प्राप्त है। इस स्थितिको आत्म-सम्मोहनकी स्थितिकी संज्ञा दीजा सकतीहै। 'संत्रास' कहानीकी ममता पिछले सात वर्षों से हरीशकी अहेतुक घनिष्ठ पारिवारिक मर्यादाओंमें बंधी हरीशपर ममता बिखेरती रही जिसको पच्चीस वर्षीय ऐंग्लोइंडियन आया 'माया' का बेशर्मीके साथ हरीशको समर्पित होनेका असफल प्रयास सामान्य सामाजिक संहिताके प्रतिकूल ही कहा जायेगा। यदि 'ममता' की दुर्लभ ममता आधुनिक परिवेशमें असामान्य आदर्श के शिखरको स्पर्श करनेवाली है तो 'माया' का वासना प्रेरित मांसल आक्रमण कम चौंकानेवाला नहीं है। आजके महानगरीय जीवनमें सब कुछ संभव है, पर इस असंभवको कहानीकारने अनेक दृष्टियोंसे संभवकी संज्ञा प्रदान करनेकी चेष्टा कीहै। कहीं-न-कहीं कहानीकारके मस्तिष्कमें दक्षपुत्री 'दिति' का सन्दर्भ अवश्य है जिसका उसने अभिनव प्रयोग कियाहै भले ही वह अनजानेही हो। मरीचनन्दन कश्यपकी पत्नी दितिने संध्याकालमें ही अत्यन्त बेशर्मीके साथ पतिसे रतिदानके लिए आग्रह किया। प्रतिकूल समयमें किया गया आग्रहभी दुराग्रहके कारण फलीभूत हुआ। दितिने कश्यपका वस्त्र पकड़कर खींच लिया और ऋषि पराजित हुए। 'संत्रास' कहानीकी 'माया' लगभग सायंकालमें ही हरीशको एकांत अकेला पाकर कम बेशर्मीके साथ नहीं दबोचती पर हरीश पराजित नहीं होता और उसकी उपेक्षा करता है। माया आलिंगनबद्ध होनेके लिए संघर्ष करतीहै, पर ठीक उसी समय घटना प्रधान कहानियोंमें अपनाये जाने वाले हथकण्डोंकी भांति, ममताके प्रवेशसे कहानीका पटाक्षेप हो जाताहै। माया और हरीश दोनों सन्देहके घेरेमें आ जातेहैं तथा तिरस्कृत होतेहैं। अन्तर इतना है कि घटना ऋषिके आश्रमकी नहीं बल्कि महानगरकी है और माया 'प्रजापति' की कन्या और विवाहिता न होकर ऐंग्लोइंडियन तथा क्वांरी है। हरीश ऋषि नहीं बल्कि ग्रामीण संस्कारोंसे युक्त एक आधुनिक शिक्षित युवक है। कहानीकारकी आत्मीयता हरीशके साथ है, तभी तो वह उसके माध्यमसे 'चौथका चांद' देखनेकी सहज विश्वासी दण्ड व्यवस्थाका प्रतिफल सामने ला सकाहै। कृष्णको कलंक लगाया और आजभी ग्रामीण अंचलोंमें चौथका चांद देखनेवाले लोगोंसे विधवाओंके घर गाली सुननेके लिए ईंट-पत्थरके टुकड़ोंसे भर जाते हैं। ऐसा विश्वास है कि गाली सुन लेनेपर प्रायश्चित हो जाताहै।

ममतामयी 'ममता' द्वारा तिरस्कृत होनेपर हरीश को बचपनमें मां द्वारा कही गयी 'चौथका चांद' की बात याद आतीहै। परम्परासे चलती रहनेवाली पौराणिक कथाओं और ग्रामीण संस्कृतिकी युवकोचित नैतिकताही 'संत्रास' कहानीके ऐसे दो बिन्दु हैं जिनके अन्तरालको कहानीकारने अपनी प्रतिबद्ध कल्पना और वैयक्तिक अनुभवोंसे भरनेका सफल प्रयत्न कियाहै। 'माया' पर दिल्लीकी महानगरीय संस्कृति और 'ममता' पर परम्परित भारतीय मर्यादाका चटकीला रंग चढ़ा हुआहै। प्राय. शंकरदयाल सिंहजीकी सभी कहानियोंमें 'मोहरसिंह' जैसे अपवादको छोड़कर नारियोंके दो वर्ग मिल जायेंगे जो परम्परामें विश्वास रखनेवाली अथवा आधुनिकाएं हैं, जिन्हें युवकोचित ग्रामीण आदर्श नैतिकता के सम्मुख मुंहकी खानी पड़तीहै। इनकी कहानियोंमें गांवकी धरतीकी महक सर्वोपरि है जो सिरपर चढ़कर बोलतीहै।

प्राचीन और आधुनिक नारियोंका तद्वत् नहीं बल्कि संशोधित संस्करण ही कहानीकारको पसंद है जिसे वह बदले हुए सामाजिक जीवनमें मान्यता देता जान पड़ता है। इनकी आधुनिकाएं न तो तिरस्कारके योग्य हैं और न परम्परित मर्यादामें विश्वास रखनेवाली नारियां सीता-सावित्री ही हैं क्योंकि वे जीवनके उन्मादी दौरमें आदिम रसगंधोंका रसास्वादन कर चुकीहैं। यदि यह जीवनका सत्य नहीं तो सत्यके निकट अवश्य है जिसके कारण उनमें एक संवेदनशील सम्मोहन है और वे सरल एवं स्वाभाविक जान पड़तीहैं। चाहे वह 'यह कहानी नहीं है' कहानीकी 'शोभा' हो अथवा 'चित्रध्वनि' कहानीकी किरण।

अपने कालेज जीवनमें रूप और प्रतिभाके कारण युवकोंके हृदयमें बस जानेवाली बहुचर्चित 'शोभा' जब दिल्लीके अशोक होटलमें मिलतीहै, तो कहानीकार कहानीकार न रहकर सांसद शंकरदयाल सिंह हो जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अन्य कहानियोंमें उसकी जो निजी प्रस्तुति चरित्रों के माध्यमसे होती रही वह यहां आकर आवरणविहीन हो जातीहै। इसी तथ्यके आधारपर संभवतः कहानीकारका कहनाहै, कि 'यह कहानी नहीं है'। इस बिन्दु पर पहुंचकर चिन्तनको एक दिशा मिलतीहै जिसपर चलकर अन्य कहानियोंमें आवरणयुक्त शंकर दयालसिंह जीकी पहचान कीजा सकतीहै। शोभाकी यह स्वीकारोक्ति कि शुरुसे ही मुझे ऐसा लगताथा कि आप बड़े आदमी होंगे। जितना शान्त और रचनात्मक ब्रेन आपका था, उतना बैचमें और किसीका नहीं—आपके सामने सिगरेट नहीं पीऊंगी—मुझे याद है, पढ़ते समय आप एक आदर्श विद्यार्थी माने जातेथे—न सिगरेट पीना, न पान खाना, न चाय लेना और न लड़कियोंकी ओर झांकना। शैक्षणिक जीवनकालमें युवकोंपर गजब ढाहनेवाली 'शोभा' जैसी रूपवतीका यह कथन क्या कहानीकारके लिए साधारण पुरस्कार है? उसे तो जैसे कुछ न मिलकर सब कुछ मिल गया। उसके इस कथन में कि 'यह कहानी नही हैं' 'विश्वास करनेके पूरे अवसर है।

सहशिक्षासे वंचित, आदर्श ग्रामीण सामन्ती संस्कृति में पलनेवाले प्रतिभावान् युवकके जीवनकी यदि यह सत्य घटना नहीं है तो उसकी अनिवार्य कल्पना अवश्य है। शोभाके बादका स्वच्छन्द जीवन एक आदर्श भारतीय नारीका जीवन कदापि नहीं हो सकता, पर शंकरदयाल सिंहजीने उसे जो सन्दर्भ दे दियाहै उससे तो उसके जीवनके आदर्शपर न जाने कितने आदर्श भारतीय नारी जीवन न्यौछावर कियेजा सकतेहैं। अतीतमें लड़े गये युद्धोंमें अपने देशके लिए जासूसी करनेवाली न जाने कितनी चीनी युवतियोंने अपने रूप और यौवनकी आहुतियां दीहैं। अनिच्छित घर बसानेसे लेकर प्राणोंतक की बाजी लगानेमें वे पीछे नहीं रहीहैं। इतिहासमें विष कन्याओंके उदाहरण तो मिलते ही हैं वे अपने लिए नहीं बल्कि तथाकथित देशके लिए ही ऐसा विषम जीवन स्वीकार करतीथीं। 'शोभा' की प्रतिभा उसका रूप और यौवन सब कुछ देशके लिए समर्पित है। वह साधारण नारी न रहकर देवीकी कोटिमें पहुंच जाती है। ऐसी देवीकी प्रशंसाका पात्र होना क्या साधारण बात है। प्रशंसाका पात्र अवश्यही देवता बननेका अधिकारी है पर शंकरदयाल सिंहका कहानीकारका देवता ऐसा देवता नहीं है जो जड़, निर्जीव और मन्दिरमें स्थापित कर पूजाकी वस्तु है, बल्कि वह हाड़ मांसका बना देवतुल्य एक आदर्श युवक है जो अपने मानवीय गुणोंके कारण अनुकरणीय है।

प्रायः कहानियोंमें जिस पुरुष पात्रको कहानीकार की पक्षधरता प्राप्त है, वह कुलीन मध्यवर्गीय युवक है जो मर्यादाकी लक्ष्मण रेखा कभी भी नही लांघ पाता, पर अन्तःकरणमें नारी आकर्षणकी लालसा छिपाये रखताहै। लगताहै वह अपनेको सुन्दरियोंके आकर्षणका केन्द्र मानताहै। यही उसकी शक्तिभी हैं और सीमाभी तथा नियतिभी। उसका भोला-भाला, पर जागरूक व्यक्तित्व उसके समूचे रचना संसारका आधारफलक है जिसपर पात्र और घटनाएं आती-जाती रहतीहैं।

'चित्रध्वनि' कहानीकी किरण 'शोभा' से भिन्न है। वह कहानीकारके चुम्बकीय व्यक्तित्वके सम्पर्कमें सर्वप्रथम पेरिसमें और फिर श्रीनगरके 'डलझील' में आतीहै। पेरिसका परिचय और पुनः भारतमें आकस्मिक मिलन तथा डलझीलका अतिशय सान्निध्य यह सब कुछ घटना-प्रधान कहानीकी बनावटके निकट हैं। विचारणीय यह नहीं बल्कि यह है कि विकसित होते नारी-पुरुष सम्बन्धोंके बीचसे कौन-सी बात निकलती है। नारीके मूक निमंत्रणको पाकर जब पुरुषने 'हृदयका स्वाधिकार खो दिया' तो वह उपदेश देने बैठ गयी, पर टांगे फैला दी। 'उसने पांव बढ़ा दिये और कहा रवि तुमने मुझसे कभी पूछा नहीं—। बस कहानीकारको अवसर मिल जाताहै और वह किरणकी जबानी उसके कालेज जीवनके रोमांस तथा होस्टलके कमरेमें शरदके समक्ष किये गये पूर्ण समर्पणकी कहानी कह चलताहै। हो सकताहै आगे चल कर शरद और किरण वैवाहिक जीवनमें बंध जाते पर हैजेमें शरदकी मृत्यु हो गयी। किरण उसीकी प्रतीक्षामें जीवन बिता रहीहै। इस प्रकार सारा वातावरण करुणामय बन जाताहै। यह दूसरी बात है कि 'शोभा' की करुणासे 'किरण' की करुणा भिन्न है, पर दोनोंमें करुणा केन्द्रीयभूत है। इस कलामें कहानीकार इतना प्रवीण है कि वह बड़ी सरलतासे पतिताओंको देवी बना देताहै और अपनेको कमलपत्रकी भांति बचाये रखताहै।

नारियां ही नहीं बल्कि इनके कुछ पुरुष पात्र भी हैं जो प्रतीक्षामें जीवन काट देतेहैं और अवसर मिलने पर लाभ उठानेसे नहीं चूकते। 'अनायास' कहानीकी सुभद्रा घर-गृहस्थीवाली महिला है, पर उसके कालेजका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहपाठी दिलीप उसे भूल नहीं पाताथा, कुंवारा ही रह जाताहै। अकस्मात् बम्बईमें मिलनेपर दोनोंकी पूर्व रागवृत्तियां सचेष्ट हो जातीहैं और जूहूके होटलमें जो नहीं होना चाहियेथा, वह सब कुछ हो जाताहै। जो हुआ दोनोंकी सहमतिसे हुआ, पर हो जानेपर दोनों ही दुखी नजर आतेहैं। इस प्रायश्चित भावनाको उत्पन्न कराकर कहानीकार युगल प्रेमियोंकी पतितोंके खातेसे निकालना चाहताहै, पर क्या वह निकाल पायेगा? न निकालनेका प्रयत्न करना तो वह जीवनकी वास्तविकता होती, पर उसने उसे कहानी बना दियाहै, मानसिक धरातलपर। इस प्रकार प्रेम प्रपंचोंसे जुड़े युग-जीवन के 'विविध आयामोंको प्रस्तुत करनेका शंकरदयाल सिंह ने प्रयत्न कियाहै। ऐसी नारियां भी उनकी आंखोंके सामनेसे गुजरीहैं, जो महानगरोंकी चौड़ी सड़कोंपर बिजलीकी तेज रोशनीमें छली जाकर जीवनके अंधेरेमें डूबी नये रास्तेकी तलाश कर रहीहैं। 'मिथ्याओंके बीच' कहानीकी तारा इसी प्रकारकी अभागी नारी है।

मंत्रीजीके सद्व्यवहार और उनकी सदाशयताको देखकर ताराको लगा कि अब उसकी समाज सुधार योजनाओंको फलीभूत होनेमें कोई सन्देह नहीं रहा। मंत्रियोंके सम्बन्धमें फैली बुरी धारणाएं भी उसे निर्मूल लगीं, पर उसे वास्तविकताका बोध तब हुआ जब मंत्री जीने आदर सहित बुलाकर उसका शील हरण किया। इस घटनाकी ऐसी प्रतिक्रिया 'तारा' के मनमें हुई कि उसने इसीको अपना जीवन ही बना लिया। अनेक नेताओंकी वह अंकशायिनी बनी और उसने निश्चयकर लिया कि वह ज्वाला बनकर कामको जलायेगी। जयशंकर प्रसादकी प्रसिद्ध कविता 'प्रलयकी छाया' की 'कमला' की भांति 'तारा' ने भारतीय नारी मर्यादाके लबादेको उतार कर फेंक दियाहै। अतः कुपथपर चलकर ही वह सुपथका निर्माण करनेका संकल्प लेतीहै। क्या आप 'तारा' को पतिताकी सज्ञा देंगे? पर यह एक सामान्य नारी चरित्र नहीं बल्कि विशिष्ट अथवा असामान्य नारी चरित्र है जो राजनीतिमें पैदा हुए एक प्रकारके समाजकी पोल खोलती हुई समाजसे नारी उद्धारकी गुहार करतीहै। यह निश्चित रूपसे कहानी होते हुएभी 'कहानी नहीं है', बल्कि युगका सत्य है। इतना अवश्य है कि चित्रित प्रायः सभी नारियोंके सामने कोई न कोई ऊंचा आदर्श अवश्य है और वह आदर्श देशभक्ति अथवा सामाजिक सुधारकी भावनाओंसे जुड़ा हुआ है।

इस संग्रहकी कहानियोंमें 'मोहरसिंह' नामक कहानीकी अपनी एक अलग पहचान है। कहानीका सारा ताना-बाना मोहरसिंहको केन्द्रमें रखकर बुना गयाहै। वह केन्द्रवर्ती चरित्र है और दूसरे शब्दोंमें यह कहाजा सकताहै कि यह कहानी केन्द्रवर्ती चरित्रका रेखाचित्र है। इसमें कहानीकारकी किस्सागोई और सर्वेक्षणकी चरम परिणति देखनेको मिलतीहै। देश, काल और पात्रकी दृष्टिसे यह एक अत्यन्त चुस्त कहानी है, जबकि इसमे बिखरावके आ जानेके पूर्ण अवसर भी। प्रकृत्या इसमें बुनावटकी शिथिलताका होना स्वाभाविक है क्योंकि इसकी सारी घटनाएं और उसके घात-प्रतिघात एकही पात्र 'मोहरसिंह'से आकर जुड़तेहैं। विषय और शिल्प दोनोंही स्तरोंपर यह कहानी कई प्रश्न पैदा करतीहै। विषयके स्तरपर यह प्रश्न उठताहै कि कहानीकारका अभिप्रेत ग्रामीणोंकी मनोवृत्तिका चित्रण करनाहै अथवा जन्मभूमि और जन्मभूमिके लोगोंके प्रति अटूट प्रेमकी अभिव्यक्ति करनाहै। शिल्पके स्तरपर यह कहानी है, रेखाचित्र है, संस्मरण है, अथवा और कुछ है?

माता-पिताकी मृत्युके बाद 'रूखिया' नामसे जाना जानेवाला बालक गांवके लोगोंकी क्षुद्र मनोवृत्तिके कारण किस प्रकारकी उपेक्षा पाताहै, क्या वह कम विचलित करनेवाला प्रसंग है। ज्ञानीजीके यहां आई बारातके शामियानेमें आगे बैठ जानेके कारण उसे जिस प्रकार गालियां दी गयीं और मारा-पीटा गया उससे तो उसने गांव ही छोड़ दिया। वही 'रूखिया' जब दस-ग्यारह साल बाद मोहरसिंह चन्देलके रूपमें गांवमें लौटताहै तो लोगोंने उसे सिर-आंखोंपर उठा लिया। अकिलसिंहने आगे बढ़कर उसे सीनेसे लगा लिया और भाई बन गया। इसी ज्ञानी और अकिलके बीच बसतेहैं गांवके क्षुद्र मनोवृत्तिके लोग जिनमें न तो कोई संवेदना नामकी चीज है और न करुणा। गांजा, भांग, सुर्ती तम्बाकू खान-पान और लेमनचूसकी नैतिकता वाले ग्रामीण जब मोहरसिंहसे यह सब पा जातेहैं तो उनके लिए वह फरिश्ता हो जाताहै। यह है भारतकी स्वतन्त्रताके सपनोंका गांव जो दिल दहला देनेवालाहै। कैसा होगा इसका सुधार क्या कहानी यह प्रश्न नहीं छोड़ती? छोड़तीहै, पर इन सब कुरूपताओंके ऊपर छा जानाहै मोहरसिंहका जन्मभूमि और जन्मभूमिके लोगोंके प्रति अटूट आस्था और अपूर्व

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम। किसीभी एक व्यक्तिके हृदयमें जबतक बीज रूपमें यह प्रेम जीवित है निराश होनेकी आवश्यकता नहीं, संभवतः कहानीकार यही कहना चाहताहै।

मोहरसिंह और मोहरसिंहसे जुड़ी घटनाओंके माध्यमसे कहानीकार इस कहानीको स्वरुप प्रदान करताहै। देश और कालके जिस फलकपर मोहरसिंह को प्रस्तुत किया गयाहै उसपर उसका इतिवृत्तात्मक चित्रण भी कियाजा सकताथा। मोहरसिंह किस प्रकार अपने मां-बापको खोकर गाँवके लोगोंमें 'रूखिया', जिसे गिलहरी कहतेहैं, के रूपमें तिरस्कृत और अपमानित होताहै, परिणामस्वरुप गांव छोड़कर चले जानेपर वह किस प्रकार मोहरसिंह चन्देलके रूपमें सपेरा बनकर गांवमें लोटनेपर लोगोंमें लोकप्रियता प्राप्त करताहै, गिरे हुए अपने मकानकी मरम्मत करताहै जिसपर लोग मक्केकी खेती करने लगेथे, गाँवमें उसका आना जाना लगा रहताहै, लोग उसके आनेकी प्रतीक्षा करते रहतेहैं पर वह भ्रमणशील अपने संपेरेके जीवनका भरपूर प्रदर्शन गया जैसे मेलोंमें करके अपने स्वरूप और वाणी के आधारपर धनोपार्जन करताहै तथा अन्तमें अर्जित धन अपने गांवके ही परिचित युवकको यह कहकर सौंप देताहै कि वह उसे ले जाकर गांवमें लोगोंमें वितरित कर दे। गांवके लोगोंकी वह सूची देताहै कि किसे क्या दिया जाये और युवकसे आग्रह करताहै कि लोगोंको उसके इस स्वरूपका परिचय न दिया जाये। युवक भावविभोर हो जाताहै, वह संभवतः कहानीकार ही है और अपनी पत्नीसे कहताहै कि मोहरसिंह देवता है। इस प्रकार यह चरित्र-प्रधान कहानी बनतीहै। प्रमुख भाव कहें कि एकमात्र चरित्र मोहरसिंहको जिस प्रकार चित्रित किया गयाहै वह रेखाचित्रकी सफल प्रस्तुति है। मोहरसिंह अपनी तकरीरोंमें जो आपबीती घटनाओंका उल्लेख करताहै, वह शैलीकी दृष्टिसे पुरोदीप्ति शैली (क्लैश बैक टेकनिक) का उत्तम नमूना है। इसे रेखाचित्र कहा जाये कि इसे संस्मरणकी कोटिमें रखा जाये यह एक समस्या है। रेखाचित्रके रूपमें कहानीकारने संपेरेके जीवनको हूबहू उतार दियाहै। सड़कोंपर शिलाजीत बेचनेवाले तथा बीन बजाकर साँपोंका प्रदर्शन करनेवाले जिस अदाके साथ अपनी यशोगाथा जिस भाषा और जिस शैलीमें करतेहैं उन्हें तद्वत उतार लिया गयाहै। घटनाएं जैसे छोटे छोटे चित्र हों और उन्हें काटनेमें नहीं गयाहै तथा काटनेके बाद ऐसे क्रमसे सटाकर रख दिया गयाहै कि एक दूसरा बड़ा चित्र बन जाताहो। यह है मोहरसिंह चन्देलका रेखाचित्र। घटनाओंके क्रमको यदि कालक्रमानुसार लगा दिया जाये तो मोहरसिंहकी क्रमबद्ध कहानी बन जायेगी। क्रमबद्ध कहानी न कहकर कहानीकारने उसे कलात्मक ढंगसे प्रस्तुत करने का प्रयत्न कियाहै जिससे उसने घटनाओंके प्रस्तुतीकरणमें आत्मकथन तथा संस्मरणका सहारा लियाहै। कहानीका आरंभ कहानीकार मलूकदासकी एक प्रसिद्ध उक्ति 'अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।··· सबके दाता राम' से करताहै। इसी उक्तिके साथ कहानीका अंत भी होताहै। कहानी कालक्रमानुसार क्रमबद्ध न होकर 'मोहरसिंह चन्देलके जीवनकी बीचकी घटनासे आरंभ होतीहै। आगे चलकर वर्णनात्मक शैली में कहानीकार मोहरसिंहकी गांवमें लोकप्रियता और घरसे भागकर पुनः लौटनेके बादके स्वरूपका परिचय कराताहै। इसके बाद राधेके रूपमें कहानीकार ही मोहरसिंहसे उस समय मिलताहै, जब वह संपेरेके रूपमें पितृ-पक्षके अवसरपर पिण्डदानके लिए गयामें लगनेवाले भारी मेलेमें खेल दिखा और भाषण कर रहाथा। यह स्थल ही कहानीका हृदय है स्वाभाविकताकी दृष्टिसे, भाषाकी दृष्टिसे, प्रत्युत्पन्नमतित्वकी दृष्टिसे, खेल-तमाशा दिखाकर जनताको ठगनेवाली धूर्तताकी दृष्टिसे और प्रतिबद्धता आदिकी दृष्टिसे यह वह धुरी है जिस पर मोहरसिंह चन्देल खड़ाहै। चरमोत्कर्षपर पहुंचकर यहीं कहानी मोहरसिंह ऐसे धूर्त, झूठे और दोहरे व्यक्ति वाले एक प्रकारसे अवांछनीय व्यक्तिको महापुरुष और देवता बना देतीहै। वह 'रूखिया' से मोहरसिंह चन्देल बना, झूठी लफ्फाज़ीसे भीड़को आकर्षित कर पैसे बटोरता रहा और दलालोंका सहयोग लेनेसे भी बाज नही आया। राधे जब मोहरसिंहके साथ होटलके कमरेमें पहुंचा तो मोहरसिंहने सबसे पहले यही कहा 'राधे, तुमने आज मेरी वास्तविक जिन्दगी देख ली। ऐसी जिन्दगीका व्यक्ति क्या समाजके लिए अभिशाप नहीं है।' उसकी पोल उस समय और खुल जातीहै, जब कुछ देर बाद उस कमरेमें पहलवान-सा वह व्यक्ति भी आताहै जिसने सौ रुपयेके नोट फेंकेथे। मोहरसिंह ने बाबा चरणदासके मंदिरके लिए जनतासे सहायताकी मांग की थी और अपना कुर्ता फैला दियाथा जिसपर किसीने दस रुपएका किसीने पांचकी और किसीने अठन्नी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चवन्नीके सिक्के फेंकेथे। सौ रुपएके नोट फेंकनेवाले भी थे। इस प्रकारके तमाशबीन भीड़में अपने आदमियोंको घुसाकर अपने पैसे फेंकवाकर लोगोंमें प्रतिद्वन्दिताकी भावना पैदा करनेका घटिया तरीका अपनातेहैं। कमरे में आया पहलवान उसी प्रकारका हथकंडा था। मोहर सिंह चन्देल किस प्रकारका आदमी है, उसे समझनेमें इस प्रकारकी घटनाएं सहायता करतीहै। यह देखनेसे तो गांवके ज्ञानी और अकिलसिंह ही अच्छे आदमी जान पड़तेहैं न कि मोहरसिंह चन्देलके रूपमें 'रूखिया'। मोहरसिंह जो कुछ कर रहाहै औरोंकी भांति उसका वह स्वभाव नहीं है, बल्कि उसे परिस्थितियोंने वैसा करनेके लिए विवश कर दियाहै। असली मोहरसिंह तो वह है जो अपनी तिकड़मसे की गयी कमाईको गाँवके गरीब लोगोंकी सेवाके लिए राधेको सौंप देताहै। राधे से जब 'नीरू' यह पूछतीहै कि इतने सिक्के कहाँसे इक्ट्ठे कर लाये, तो वह कहताहै 'नीरू' ये किसी महापुरुषके हककी कमाई है जिसे हमने कभी ठीकरेसे अधिक नहीं समझाथा। आज इतने सारे पैसे उसके लिए ठीकरोंके समान है। 'इस मोहरसिंहकी बराबरी कर सकता है कोई ? नहीं कर सकता। मोहरसिंह चन्देल की रचना स्वर्गीय भगवतीचरण वर्माके विशिष्ट व्यंग्य-चरित्रोंका स्मरण दिलातीहै। 'मुगलोंने सल्तनत बख्श दो' कहानीके 'हीरो जी' का ग्रामीण संस्करण मोहर सिंह चन्देलकी संरचनामें देखा जा सकताहै। इतना अवश्य है कि मोहरसिंह वाणीसे ही नहीं अपने आचरणसे भी अपनी चारित्रिक प्रतिबद्धताको मूर्तिमान करताहै। रचनाकार अपनी सृष्टिमें इतना सचेत है कि उसकी शिल्पगत उपलब्धियोंको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इसमें कहानी शिल्पके अभिनव प्रयोग के दर्शन होतेहैं। ऐसी स्थितिमें यह कहना समीचीन नहीं हैं कि 'मोहरसिंह' कहानी नही हैं। उद्देश्यकी एकात्मकताके आधारपर हिन्दी कहानीके मूल्यांकनका आज चलन हैं जिये इस कहानीमें भलीभांति देखा जा सकताहै। शंकरदयाल सिंहकी प्रतिनिधि कहानियोंके आधारपर यह निष्कर्ष निकाला जा सकताहै कि उनके वे पात्र जो सामाजिक दृष्टिसे देखनेमें पतित जान पड़ते हैं, घृणाके नहीं बल्कि सहानुभूतिके पात्र हैं उनके ये पात्रों सामाजिक कुरीतियोंपर करारी चोट करतेहैं। स्त्री पात्रोंके प्रति कहानीकारमें आस्था विशेष जान पड़ती है। कहानियोंमें चित्रित अनाढ़, भावुक, आदर्शवादी और मर्यादासे बंधा कुलीन मध्यवर्गीय शिक्षित युवक पात्र जो संभवतः कहानीकारका प्रतिनिधित्व करताहै, को छोड़कर पुरुष पात्रोंके प्रति यथार्थवादी दृष्टि अपनायी गयीहै। 'मोहरसिंह' को उदाहरणस्वरूप देखा जा सकताहैं। सभी दृष्टियोंसे 'मोहरसिंह' एक साफ सुथरी कहानी हैं। अपनी सपाटबयानी भाषाके टटकेपन और परिवेशकी स्वाभाविकताके कारण जहां एक और इसमें पठनीयता आयीहै, वहीं दूसरी ओर यह ग्रामीण विषम मनोवृतियोंको नंगा करके रखनेमें भी सफल हुईहै। चर्चित चरित्रोंके अनुकूल प्रभावपूर्ण भाषा लिखनेकी जैसी क्षमता शंकरदयाल सिंहजी में है वैसी क्षमता उनके समकालीन कथाकारोंमें देखनेको बहुत कम मिलतीहै। वे अर्जुन द्वारा देखी गयी चिड़ियाकी आंखकी भांति अपने उद्देश्यकी सकारात्मकताके प्रति सावधान रहतेहैं और उसमें कहींसे भी संशयकी स्थिति नहीं आने देते। मोहरसिंहका जन्मभूमि और जन्मभूमिके निवासियोंके प्रति अगाध प्रेम ही उनकी अन्य कहानियों में देशप्रेमकी ऊंचाई तक विकसित हुआहै। इस प्रकार इनमें कथाकारकी अभिनव संभावनाएं दस्तक दे रहीहैं। ▭

श्रेष्ठ आंचलिक कहानियां[१]

कहानीकार : ऋता शुक्ल

समीक्षक : डॉ. तपेश्वरनाथ

प्रस्तुत कहानी-संग्रह नयी पीढ़ीकी प्रसिद्ध कथा-लेखिका ऋता शुक्लकी तेरह श्रेष्ठ आंचलिक कहानियों का (इसके 'शुभाशंसा-लेखक' डॉ. विद्यानिवास मिश्रके शब्दोंमें) "चुनकर सजाया गया गुलदस्ता" है। हिंदी क्षेत्रमें प्रायः सुविदित है कि ऋता शुक्लको अल्पवयमे ही उनकी 'क्रौंचवध तथा अन्य कहानियां' शीर्षक आमंत्रित पांडुलिपिपर युवा-लेखक-श्रेष्ठ पुरस्कार वर्षों पूर्व मिल चुकाहै। तबसे वे अनवरत इस लेखन-यात्रा में अग्रसर होती हुई 'दंश' तथा 'बाँधो न नाव इस ठाँव', 'कनिष्ठा उँगलीका पाप', 'अग्निपर्व', 'समाधन' आदि कथाकृतियाँ हिन्दी जगतमें प्रस्तुत कर अपना सशक्त

१. प्रका. : कादम्बरी प्रकाशन, शिव मार्केट, नया चंद्रावल, जवाहरनगर, दिल्ली-११०००७। पृष्ठ : [illegible] मूल्य : ७०.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, Delhi.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हस्ताक्षर बना चुकीहैं। भोजपुरकी उर्वरा भूमि उनकी जन्मभूमि एवं राँचीकी रत्नगर्भा वन्यभूमि अब उनकी कर्मभूमि है !

प्रस्तुत संग्रहकी लीला-भूमि बहुलांशमें भोजपुर अंचलमें ही घटित देहाती परिवेश है। इस जीवन-लीला के अंकनमें बाल-सुधि-पटपर खचित लोक-कथाओंकी मार्मिक छवियोंको भी चुन-चुनकर पिरोनेका उपक्रम किया गयाहै जिससे कहानियाँ संस्मरणगंधी बन गयी हैं। अंतिम कहानी 'परम सुख' इस दृष्टिसे सर्वाधिक निदर्शनीय है और उद्धरणीय है उसकी ये पक्तियाँ—"भोजपुर जनपदकी लोक-कथाओंके संकलनका मंसूबा बंधाथा, तो दुखमन काकीकी छायामूर्ति बरबस निकट आकर खड़ी हो गयीथी।'' दुखमन काकीसे कुछ कह पाती, इसके पहले ही उनकी छलछलाती आँखोंमें एक कातर प्रार्थना उभर आयीथी—'रामजी तुमको जस देंगे'।" (पृ, १४५)।

इन पंक्तियोंमें प्रथम पुरुष (कहना चाहिये—प्रथम व्यक्ति) में मुखर स्वयं लेखिका अपनी कहानीके कई पात्रोंमें से एक वाचककी मुख्य भूमिका अंगीकार कर कहानीमें प्रच्छन्न नहीं, बल्कि प्रकट रोल अदा करती गयीहैं। और, इस प्रकार पूर्ववर्ती कथालोचकोंकी इस स्थापनाको चुनौतीभी पेश करती रहीहैं कि 'कहानीकार को अपनी कहानीमें स्वयं न आकर किसी पात्र-विशेष में प्रच्छन्न भावसे—परकाय-प्रवेशी मुद्रामें—छिपकर अपनी बात कहनी चाहिये।' ऋताजी इस लुकाछिपी में विश्वास न कर—भोजपुरी निर्भीकताके साथ—सीधे कथा-मंचपर फेंटा कसकर वीरांगना देहाती ललनाके रूपमे उतर आया करतीहैं। 'मानुस-तन' नामक कहानी से भी उन्होंने ऐसाही कियाहै और 'सातवीं बेटी' में भी ऐसाही।

दूसरी लक्षणीय बात यह है कि ऋताजीके पात्र-परिवेश सब ब्राह्मण या फिर ठाकुर कुलोंके अर्थात् आजकी शब्दावलीमें, अगढ़े ही हैं। 'जीवन-मरन समान' के नायक मंगर पांडे पांडेय हैं, 'एक आहत पीड़ा' के लोहपुरुष राजेश्वर तिवारी 'तिवारी जी' हैं। 'मानुस-तन' के पंडितजी, शिशिर-सुवर्णा, 'सरबहारा' के तिलकधारी बाबा, 'चक्षुदाह' के भृगुनाथ बाबा, 'वचन-बद्धके' शिवदान काका, 'निष्कृति' के विमला दत्त पांडेय, 'सातवीं बेटी' के मिस्टर दूबे, प्रतिक्रिया'के रामवचन तिवारी व मन्नन पांडेय व [illegible] —बुधई या 'बुधइया' की ताजा होती याद—'छुटकारा' के वसंत मिसिर, 'परमसुख' के नायक गुनेसर चौबे—सबके सब ब्राह्मण हैं। अपवाद है तो 'अमरो' व 'मान-मरजाद' के ठाकुर रामजियावन सिंह।

तीसरी बात यह कि ऋताकी कहानियोंमें भारतीय समाजकी उपेक्षित-व्यथित कन्या जातिके प्रति करुणाका पारावार लहराताहै। वह जब कहतीहै कि 'कन्या' का अर्थ भूसीसे भी बदतर 'खुद्दी-चुन्नी' होतीहै (पृ. १४६), तब इस अथाह वेदनाके थपेड़ोंसे मन क्षत-विक्षत हो जाताहै। इस दृष्टिसे राजेश्वर तिवारीकी अहम्मन्यतासे आजीवन दंडित आजीकी 'एक आहत पीड़ा, 'अमरो' की अमरोका मरण-रोग, 'सातवीं बेटी' बिंदाका आत्मदाह, 'निष्कृति' की सावित्रीका अपमान, 'बचनबद्ध' की जानकी बिटियाका आत्मबलिदान आदि हृदय-विदारक तो हैं ही, इस पुरुष-प्रधान युग और समाजके थोथे मुंह पर तमाचे भी हैं।

चौथी बात यह कि इस ब्राह्मण मंडलमें भी इतनी गरीबी, फटेहाली, जड़ता, अशिक्षा, लाचारी, बेबसी, भुखमरी व बेकारी छायीहै कि इसे देख पिछड़ोंका राजनीतिक अगड़ापनभी लज्जित हो जाये और लज्जित हो जाये 'सामाजिक समता' का झूठा नारा। अर्थात् यह 'सामाजिक बदलाव' नहीं, बल्कि 'जातीय बदला' है। 'जीवन मरन समान' का मंगर पाँडे 'दरिद्रताका जीता-जागता इतिहास' (पृ. १९) है। 'सरबहारा' के तिलकधारी बाबा, सुदरसन व सिवा—तीनों पीढ़ी सर्वहारा है। सुदरसनके मँझले काका कलकत्तेमें सिपाहीगिरी करतेथे। तिकड़मबाजीमें दरोगा बन गये। पर, घूस लेते वक्त रंगे हाथों पकड़े गये और हाकिमने उन्हें नौकरीसे बर्खास्त कर दिया।' 'बाभनोंका अहं-कार ही उनके नासका कारन' (पृ. ५१) माना गया, जो ठीक ही है। यहां जात-पांतकी सटीक छीछालेदार की गयी है। बूढ़े तिवारीजीका जीवन-सत है—"लोग जात-पात चिल्लातेहैं बबुआ। हम तो कहेंगे कि परजात का साथ भला, लेकिन अपनी जातका नहीं। ये अपनी जातवाले काठ-कठोर हैं।" (पृ. ४८)।

पाँचवीं बात। इसमें अपनी माटीके प्रति प्यार है। धरती माताके प्रति अत्यंत गहरा लगाव है तथा गाँव-परिवारसे सीमातीत अपनापा प्रदर्शित हुआहै। इस दृष्टिसे उसमें शहरी बाबूकी एक पिलपिली तस्वीर [illegible] झुकी हुई गरदनवाले दफ्तरी बाबुओंकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनगी और जुएके बोझसे सकदम रहनेवाले बूढ़े बरधा की जिनगीमें मुझे तो कोई भी फरक नहीं मालूम पड़ता। हाय पैसा, हाय रुपया !' (पृ. ४९) 'सरबहारा' कहानी दमदार है। इसमें शहरीके प्रति अविश्वास और गँवईके प्रति भोलेपनका इज़हार है। विनोबाने भी दशकों पूर्व कहाथा—प्रायः शहर बेईमान है, देहात ईमानदार। ईमानदारका ठोकरें खाना स्वाभाविक युग-धर्म है। बेईमानहो दौलतकी इमारत बुलंद करता जाताहै। यहाँ दोनों नजरियें टकराने दिये गयेहैं। उसके अनुसार—'शहरकी हवा झूठा अभिमान भी सिखातीहै··।' (पृ. ४९)। एक ओर देहाती खेतीकी महिमा तो दूसरी ओर शहरी किरानीगिरीके चकाचक। सिवाका बाप शहरी किरानीगिरीकी तरफदारी करताहै तो उसका बाबा खेतीकी तारीफ। बाबा बेईमानीको बढ़ती देखकर कहतेहैं—"कलका खुद्दीचुनबा आज राजकिशोर सिंहजी है– हजार-दस हजारका नहीं, लाखोंका मालिक··और सुनरा···? पिछड़ी जातके नामपर भोंट गिनाकर सुन्नर जादव, एमेले बन गयाहै।" (पृ. ५२)। पर, बाबाकी बात सिवाके बाबूके गले नहीं उतरती। वह (सुदरसन) कहताहै—"घटते-घटते पाँच बिगहेकी आस रह गयीहै और पापियोंके दोतल्ले-तीन तल्ले उठते जा रहेहैं।···इस ईमानदारीने हमें तो **सरबहारा** बना दिया बाबू जी !" (पृ. ५२)। वह ठीक कहताहै। इस कहानीका वेधक मर्म यही तो है। और यही इसकी शक्ति भी। सिवाको जब नौकरी नहीं मिल पाती, घूस व जातिवादके कारण सरूपको मिल जातीहै, तब सचमुच 'अंधेरेकी परत दोहरी-तिहरी हो गयी लगतीहै' (पृ. ५६)। अंततः इस बदहालीसे निजात पानेके लिए लेखिकाने खेतीको ही रक्षा-कवच बनाया है। उनके अनुसार– यही क्या कम है ! जरूरत है—मिहनत और लगनकी। और, इसीलिए इसका युवा पात्र हाथोंसे—कलम छिन जानेके कारण—हलकी मूठ धर लेताहै। आरक्षणसे आहत प्रतिभाओंके लिए यह एक चुनौतीभरा प्रेरक दृष्टान्त है।

पर, गाँवमें भी अब वह बात कहाँ ? राम-राज्यकी जगह रावण-राज्य है। अलग्यौछा, ईर्ष्या, वैमनस्य, जलन—यही गाँवमे बचाहै। तभी तो 'चक्षुदाह' के भृगुनाथ बाबा त्यागी अंधा होकर भी गोतियोंकी मक्कारीका शिकार बनतेहैं और गाँव छोड़नेको विवश होतेहैं।

वहाँ सामंतवादका आतंक भी भयंकर है। तभी तो 'मान-मरजाद' के ठाकुर रामजियावन सिंह अकड़कर चलतेहैं। पर, अंततः फकीर बाबासे उन्हें शिकस्त मिलतीहै। फकीरमें फक्कड़ कबीरकी तरह सबदकी सुगंध और गंगा जलकी पवित्रता है। इस कहानीमें नयी-पुरानी पीढ़ीके द्वन्द्व, फकीरीकी महिमा और सामंतवादके ढलते सूरजकी कालिमा तथा प्रेमपूर्ण अंतर्जातीय विवाहकी महिमाका चित्रण मिलताहै। उसी प्रकार, 'वचनबद्ध' कहानीमें 'धियवनकी जय' का घोष भी मर्मस्पर्शी है। इसमें संवेदना व करुणाका प्रवाह प्रशंसनीय है। 'निष्कृति' में वर्तमान दहेज-प्रथापर प्रहार है। लड़कीके देखनेमें आजकल लड़का पक्ष द्वारा जो नाटक किया जाताहै—उसका भंडाफोड़ भी खूब हुआहै। नेता का भ्रष्ट चरित्र यहाँ भी विगर्हणीय बनाहै। एक वाक्य काफी है—'विमलादत्तजीके लिए पत्नीसे बढ़कर उनकी बहन है' (पृ. १०६)। तुलसीने 'मानस' में कलि-वर्णन करते हुए ठीक ही लिखाथा—'कोउ मानत नहिं अनुआ तनुजा ··'। इसके औरभी बिनौने उदाहरण इस आंचलिक कथामें बरकरार हैं। 'छुटकारा' कहानी के वसन्तू मिसिर और अछूत कमली तथा 'परम सुख' कहानीके नायक गुणेश्वर और उसकी बीवी सुखमनकी व्यथा-कथा इसके ज्वलंत उदाहरण हैं।

प्रश्न है कि गुनेसर अपने आप तो बनता नहीं। उसे यह भ्रष्ट व्यवस्था बनातीहै। भ्रष्ट व्यवस्थाको उधेड़ते हुए खुद गुनेसर अपने बापसे झगड़ताहै। बाप पुराने ख्यालका बाभन है। वह ईमान-धरमकी बात करता है। तब, यथार्थकी तल्खीसे दग्ध गुनेसर कहताहै—"माईका गहना-गुरिया बंधक रखकर हमने ऊंची तालीम पायी—हमको क्या मिला ? हमसे तो ढकेलू मुसहरका बेटवा कहीं बेहतर है। पढ़ाईमें अव्वल हम आये और अफसरी उसको मिली। जाकर देखिये—पटनेकी दुमंजिली इमारतमें शूट-बूट पहनकर ऐश कर रहाहै।" पटनेकी इमारतोंमें कितने अफसरोंको, नेताओं को ऐश करते देखियेगा। अतः मूल्य तो दाँवपर लगेहैं और भ्रष्टाचार वातानुकूलित होटलोंमें जश्न मना रहा है। सो, अब बेईमान गुनेसर अमीरीके घने जंगलमें खोयाहै तो उसकी साली दुखमन गरीबीके गहरे दलदल में धँसीहै। सबसे दयनीय स्थिति उस कीचड़के कमल—सुखमन काकीकी है। वह नेताजीकी कोठीकी सबसे किनारेवाली कोठरीमें अलग-थलग पड़ी रहतीहै। अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथोंसे अपनी रसोई अलग पकातीहै। और, उधर उसका पति परायी तितलियोंसे छेड़खानी करताहै, तो पुत्र विदेशी शराब ढालता रहताहै । वह कोठी नहीं, सोनेकी लंका है। गुनेसर साक्षात् रावण है। काजलकी कोठरीमें बेदाग बचना असंभव है, फिरभी सुखमन बचती जातीहै । जैसे—अशोक वाटिकाकी सीता हो। वह राजयोगके बीच संन्यासिनी है । और, यही इसके चरित्रकी रौनक है, चमक है। इस चरित्रसे भोजपुर का—'पटनेका 'मैला आँचल'—चंदन-चर्चित हो गया है। कहानीका व्यंग्य धारदार है। सारे अनर्थोंकी जड़ दौलत है। नेता और उनके बेटे इसमें गर्क हैं। नतीजा —सुखनी-दुःखनी दोनों बराबर।

लेखिकाकी व्यंग्य-शैली भी कहानियोंमें रोचकता लातीहैं। भोजनभट्ट एवं विवाहप्रिय बूढ़े मंगर पांडे, रमललबा व हरबिलसवाकी फैशनपरस्ती, बेटीबेचवा बाभनको 'म्लेच्छ श्वसुर' या 'नरकका कीड़ा' कहना शहरी बाबूको 'बूढ़ा बरधा' कहना— रंग लातेहैं। नाम-भजन व फकीरीकी महिमा उपर्युक्त कहानीमें सार्थक हुईहै। कहानी छू गयीहै।

इन सबसे अलग मनोवैज्ञानिक अंदाजकी रचना है —'मानुस-तन'। इसमें कुरूप शिशिर भाई और प्रगल्भा सुंदरी अलकाके गुप्त प्रेमकी दास्तान मनकी आँखोंसे देखी, कानोंसे अनकी और संवेदना भींगी कलम से लिखी गयीहै। पत्र-शैलीमें समाप्य यह प्रेम-कहानी दिलकश है। इसी मनोवैज्ञानिक कथा-श्रेणीमें 'एक आहूत पीड़ा' कहानीको भी परिगणित किया जा सकता है।

दो शब्द इसकी क्षेत्रीय भाषापर। आंचलिक होने के कारण स्वाभाविक ही इसमें भोजपुरी बोलीके चलते पचास प्रतिशत शब्द हैं। जो नहीं हैं, वे तद्भव और देशज हैं। मुहावरोंका भी गहरा रंग है। जादव, सिलिक, सुदरसन, बिद्या, बाभन, बेटीबेचवा, जात, परजात, सहर,जिनगी, बरधा, आकास, बेटवा, फरक, स्वारथ, सत्यानास, कारन, छोटकू, सरबहारा, गियान. जस, मनुस, सुराज, अंस आदि। इनसे स्थानीय रंग गाढ़ा हुआहै और भोजपुरकी पहचान उजागर हुईहै। अतः पूरा संग्रह ही—भाव-भाषा-शैली—सभी दृष्टियोंसे सुरूचिपूर्ण और पठनीय है। शैली वैविध्यपूर्ण है। इसमें ग्राम-रस विशेषतः परिवार-रसका अक्षय स्रोत है। मानवीय संवेदना व मानवी संबंधोंकी रागात्मक बनावट भी है। अतएव, रचनात्मक संभावनाओंके अछूते क्षितिज भी हैं, जिनमें भविष्य चाहे तो खूब रंग भरे। पर, इस हेतु आत्म-मोह व धर्ण-मोहसे बचना होगा।

कुल मिलाकर, यह संग्रह श्रेष्ठ, संग्रहणीय और स्वागत-योग्य है प्रकाशन भी साफ-सुथड़ है, पर मूल्य कुछ अधिक है। ▭

महाप्रयाण

कहानीकार : सुदर्शन मजीठिया
समीक्षक : डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री

यह पन्द्रह कहानियोंका संग्रह है। "और ये कहानियां" शीर्षक अपने वक्तव्यमें लेखकने बताया है कि इस संग्रहकी कहानियां छठवें दशककी रचनाएं हैं। इसकी पुष्टि प्रारंभकी आठ कहानियोंके अंतमें दिये उनके रचनाकालसे भी होतीहै। शेषपर रचनाकाल नहीं दियाहै। इस प्रकार लेखककी साहित्यिक विकास यात्राकी दृष्टिसे इन कहानियोंका ऐतिहासिक महत्त्व भी है। सभी कहानियां पाठकको बांधे रखतीहैं और दो-तीन कहानियांको छोड़कर, सभी कहानियां प्रभावित भी करतीहैं।

कहानियोंको तीन वर्गोंमें बांटा जा सकताहै। कुछ कहानियां जीवनके शाश्वत सत्यपर प्रकाश डालतीहैं, तो कुछ मनोभावोंका चित्रण करतीहैं और कुछ सामाजिक जीवनकी विद्रूपताओंपर व्यंग्य कर रहीहैं। शिव और शक्ति जैसी कहानीमें जीवनके इस सत्यका उद्घाटन हुआहै कि विनाशके बिना सृजन संभव नहीं। कुछ कहानियोंमें मानव मनका अच्छा चित्रण हुआहै। कर्नल दिलबाग सिंह अपनी अंधी बेटी हरचरण कौरका विवाह जब धोखा देकर लालसिंहके साथ करा देताहै तब लालसिंहके मनमें प्रतिशोधकी जो आगकी लपटें धधकती हैं उनकी गरमीका अहसास पाठकको भी 'दिलबाग सिंह की हत्या' शीर्षक कहानीमें होताहैं। या 'डाकूकी ममता' कहानीमें छोटी-सी बच्ची जब एक मासूम सवाल डाकुओंसे करतीहै तो डाकू सरदारका अन्तर्द्वंद्व पाठकके

---

१. प्रका. : सन्मार्ग प्रकाशन, १६ यू. बी. बैंग्लो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली-११०००७। पृष्ठ : ११८; क्र. ९३; मूल्य : ४५.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी मनमें हलचल पैदा कर देताहै । 'अफ्रीदियोंके देश में' कहानी पाठकको इस दुविधामें डाल देतीहै कि संकट की घड़ीमें यदि किसी पुलिस अधिकारीके प्राणोंकी रक्षा कोई अपराधी करे तो उसका प्रतिदान पुलिस अफसर कैसे दे । 'प्रणयका पुरस्कार' देवदासी प्रथा और मंदिरों में व्याप्त भ्रष्टाचारसे भी परिचय करातीहै और मल्लिका एवं अग्निमित्रके सात्विक प्रेमीसे भी । 'बच्चेके आंसू' में बाल मनोविज्ञानका चित्रण भी मार्मिक बन पड़ाहै ।

चौर्य महाविद्यालय, किस्सा एक माडर्न हीर रांझा और उसके बापका जैसी व्यंग्य कहानियां हैं । 'मुख्य-मंत्रीका डंडा' शीर्षक कहानी राजनीतिज्ञोंकी लोलुपता और फर्जी केस बनानेवाली पुलिसपर अच्छा व्यंग्य है । छुटभैये नेताओं और सरकारी अफसरोंके अन्तःसंबंध, 'चिन्ता अकबरकी, दूर किया जाना बीरबल द्वारा' कहानीमें उजागर हुएहैं । पुस्तकका नामकरण जिस कहानीके नामपर किया गयाहै वह एक चलते-पुरजे कैदीके जेलसे फरार होनेकी व्यंग्य कहानी है । संग्रहकी अंतिम कहानी 'एक सांडकी व्यथा कथा' में डेरीकी स्थापनाकी स्कीम स्वीकार होने, अच्छी नस्लकी गाएं प्राप्त करनेके लिए सांड चयन समितिका गठन करने जैसी योजनाओंसे आजादीके बाद विकसित हुई हमारी सामाजिक राजनीतिक कार्यशैलीपर तो व्यंग्य कियाही है, तीन हजार रु. रोजका चारा खाने और स्पेशल किस्मका गोबर प्रदान करनेवाले आयातित सांडसे यह कहलवाकर कि जबसे वह पब्लिक सेक्टरमें गयाहै उसकी काम करनेकी इच्छा नहीं होती (पृ. ११८) । लेखकने सार्वजनिक क्षेत्रके उपक्रमोंपर बहुत करारा व्यंग्य किया है ।

मनोभावोंका चित्रण और व्यंग्य लेखन दोनोंपर लेखकका अच्छा अधिकार है कई जगह जीवनके सत्य सूक्तिके रूपमें व्यक्त हुएहैं जैसे, 'जिन्दगीमें पहली पहली चीजोंकी तरह आखिरी चीजें भी कितनी बेश-कीमती होतीहैं । (पृ. २९) । कहानियाँ पठनीय हैं ।

नाटक

सांच कहूं तो···?[1]

नाटककार : डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय
समीक्षक : डॉ. भानुदेव शुक्ल

पुराख्यानपर आधारित 'इला' के बाद डॉ. प्रभाकर श्रोत्रियने नरपति नाल्हके लोक-काव्य 'बीसलदेव रासो' पर आधारित लोकनाट्य शैलीका नाटक 'सांच कहूं तो···' प्रस्तुत कियाहै । समीक्षासे समय-समयपर हट-कर नाट्य-रचनामें भी डॉ. श्रोत्रियने समय देना प्रारम्भ कियाहै, यह उनके नाटकोंको देखते हुए स्वागत योग्य है । सूचनाके अनुसार उनका एक और नाटक प्रेसमें है ।

पुरा कथाओंमें प्रतीक रूपमें हम अपनी सांस्कृतिक चेतनाके सर्वोत्तमको, अपने जातीय आदर्शों एवं स्वप्नों को साकार एवं क्रियाशील सजीव रूप देना चाहतेहैं । उनमें निहित आद्य-बिम्ब हमारी जातीय अनवरतताके सूचक हुआ करतेहैं । सम्पूर्ण जाति, जो सम्पूर्ण मानव जाति भी हो सकतीहै, के सामूहिक अवचेतनकी प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति पौराणिक उपाख्यानोंमें पायी जातीहै । लोककथामें इतनी व्याप्ति तो नहीं होती किन्तु उनमें भी एक बड़ा समूह अपने अनुभवों तथा

१. प्रका : किताबघर, २४ अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२ । पृष्ठ : १४+७४, क्रा. ६३; मूल्य : ३५.०० रु. ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानकारियोंको सुरक्षित रखना चाहताहै। लोककथाओं के चरित्र पुराकथाओंके चरित्रोंसे अधिक लौकिक होते हैं इसलिए हमारे अधिक निकटके चरित्र होतेहैं। लोक-कथाके नायक-नायिका पुराकथाके नायक-नायिकासे अधिक मानवीय, कम निर्वैयक्तिक, अपेक्षाकृत स्थानीय तथा काफी-कुछ सीमित हुआ करतेहैं। तथापि, इनमें सामूहिक अवचेतनकी अभिव्यक्ति, चाहे सीमित ही क्यों न हो, होती अवश्य है। इसीलिए लोक-कथाकी व्याप्ति कल्पित कथा-कहानीसे बहुत अधिक होतीहै।

डॉ. प्रभाकर श्रोत्रियने पुराकथा एवं लोककथाके प्रतीक गुणको समझा और अपने प्रथम दो नाटकोंमें समझ-बूझकर इनको स्वीकार किया। आलोच्य नाटककी भूमिका 'बात-बातमें' उन्होंने इसको स्पष्ट कर दियाहै —'पुराकथा या लोक-कथा आधुनिक लेखनके लिए एक माध्यम भर होतीहै, क्योंकि उसे परम्परा या इति-हास सम्प्रेषित नहीं करनाहै, अपना कथ्य ही सम्प्रेषित करनाहैं। इसमें सन्देह नहीं कि लोक या पुराकथाओंमें अपरिमित संभावनाएं और क्लैसिक सिद्धि होतीहै, परन्तु इन्हें तभी निचोड़ा जा सकताहै जब उनके साथ कोई दुष्टतापूर्ण या नकली व्यवहार न किया जाये।... पुरा और लोक-कथाएं हमारी सर्जनाका अक्षय स्रोत हैं। वे अपने समयमें स्थित रहते हुएभी आगामी समयोंमें खुलनेका संकेत देतीहैं, विकासकी लम्बी परम्परामें अपनेको अन्वेषित करनेकी संभावनाएं जगातीहैं।' डॉ. श्रोत्रियने 'इला' में पुराकथाकी संभावनाको निचो-ड़नेकी चेष्टा की थी, 'सांच कहूं तो...'में यह चेष्टा भिन्न रूपमें अधिक स्पष्ट दिखायी देतीहै।

समस्त रासो काव्यमे 'विसलदेव रासो' इस अर्थमें विशिष्ट है कि इसमें सामान्य मानव-मनको प्रमुखता दी गयी है। जो सहज अनुभूति इस काव्यमें अभिव्यक्त हुईहै उसका अंश मात्र भी अधिक महत्त्व प्राप्त 'पृथ्वीराज रासो' में नहीं है। डॉ. श्रोत्रियने मानवीय संवेदनामें सम्पन्न काव्यसे नाटककी कथा ली हैं। मध्य-कालीन परिवेशके काव्यमें नाटककारने सार्वकालिक तथा सार्वभौमिक अनुभूतिको देखा और अपने नाटकमें उसको सजा दियाहै। कविताके समान नाटक अनु-भूतियोंकी मार्मिकताकी व्यंजना तो नहीं कर पायाहै, यह दृश्य काव्यकी अपनी सीमा है कि उसको किसी विन्दुपर थमनेका अधिकार कदाचित् ही मिल पाताहै तथापि, लोक-नाट्यकी निर्बाध तथा अत्यंत सहज अभिव्यक्तिने इस कमीको काफी हदतक कम कर दियाहैं। नाटकमें एकान्त विरहकी व्यंजना भारतेन्दुने 'चन्द्रावली' में की थी। परिणाम यह हुआ कि वह 'नाटक' दृश्यता खो बैठाहै। डॉ. श्रोत्रियने नाटककी दृश्यात्मक-शक्तिके मूल्यपर विरहानुभूतिकी पूर्ण व्यंजनाको स्वीकार नहीं किया।

नाटक चार, तीन और सात दृश्योंवाले तीन अंकों में सम्पन्न हुआहै। अंधकारके द्वारा दृश्य-परिवर्तनकी सूचना दो गयीहै। अब, जबकि परदेवाले रंगमंचका युग कभीका समाप्त हो चुकाहै तथा प्रकाश एवं अंधकार कथानक विकासके पड़ावोंकी सूचना देने लगे हैं, तब, नाटककार अंकों तथा उनके दृश्योंमें विभाजन की सूचना देनेकी परम्परा क्यों अपनाये हुएहैं? अब तो दृश्य-परिवर्तनभी स्थूल मंच-विधानसे जुड़े दृश्यका परिवर्तन न होकर कथा-प्रवाहके खण्डोंका सूचक बन चलाहै क्योंकि प्रायः एकही 'दृश्य' में सारा नाटक सम्पन्न करानेकी चेष्टा की जातीहै। डॉ. श्रोत्रियने अंक-२ के प्रथम दृश्यको छोड़कर कहीं भी किसी विशेष दृश्य या मंच-विधानकी बात भी नहीं कीहै। लोक-नाट्यकी शैलीपर मंच-विधानमें 'अत्यंत सरल इस नाटकमें अंकोंकी व्यवस्थाकी कोई आवश्यकता थी ही नही। नाटकमें मंच-विधानके विशेष निर्देशके रूपमें एक युक्तिको हम आवश्यक मान रहेहैं—मंच दो तल वाला है जिसमें एक ढलवां रास्ता दोनोंको जोड़ताहै। दोनों तल दो अलग स्थलोंके सूचक हैं। एक साथ दो स्थानोंके कार्य-व्यापारको दिखाते हुए रंग-निर्देशक एक बारमें एक तलको सक्रिय रखेगा। दूसरे तलके पात्र अचल (फ्रीज) रहेंगे। बारी-बारीसे दोनों स्थानोंके कार्य-व्यापार दिखाकर नाटककारने कार्यकी गतिको बहुत तीव्र कर दियाहै। यह एक सरल तथा सार्थक नाट्य-युक्ति है।

मालवाके राजा भोजराज अपनी बारह वर्षीया पुत्री राजमतीका विवाह मारवाड़के अधेड़ राजा वीसलदेवसे करतेहैं। अभिमानी वींसल अपनी नव-विवाहिता रानीके सम्मुख अपने बल-वैभव आदिकी डींग हांकताहै तो राजमती उसको घमंड त्यागनेको कहती है। राजाको जब भूमण्डलमें अपने बराबरका कोई दूसरा नहीं सूझताहै तो रानी ताना मारकर बतातीहै कि संसार बहुत बड़ा है और वैभवशाली राजाओंसे भरा पड़ाहै। उदाहरणस्वरूप वह उड़ीसाके राजवैभव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का उल्लेख करतीहै। तैंशमें वीसलदेव बारह वर्षोंके लिए राजपाट छोड़कर उड़ीसासे हीरे लानेकी शपथ लेकर चला जाताहै। राजमतीके विरहसे दयार्द्र होकर एक सिद्ध योगी वीसलदेवके पास योगबलसे तत्काल पहुंचकर उसके अविवेकपूर्ण हठपर धिक्कारताहै। उड़ीसाके महाराजको जब पता चलताहै कि उनकी चाकरीमें मेवाड़ नरेश वर्षोंसे धनके लिए लगा रहाहै तो वे समझातेहैं कि हीरेसे अमूल्य तो नमक होताहै जिस पर जीवन निर्भर करताहै। वीसलकी आंखे खुलतीहैं। वह पश्चाताप करता मेवाड़ लौट आताहै। किन्तु, जो वर्ष उसने गंवा दिये वे तो लौटनेसे रहे। यह कथानक प्रकारान्तरसे महत्वाकांक्षाकी पागल दौड़में पड़े मनुष्य को मानों चेतावनी भी है। साथही, बाल-विवाहपर इसमें प्रच्छन्न आक्षेप तो निहित है ही। नरपति नाल्ह की रचनामें नारीकी दीन-दशा एवं चरम यातनाका चित्रण है जो काव्यात्मक अभिव्यक्तिमें व्यक्तिकी यातना बन गयाहै। नाटकमें वैयक्तिक पीड़ा अपेक्षाकृत मन्द है किन्तु सामाजिक प्रश्न जुड़ गयेहैं। पुरुष प्रधान समाजमें नारीकी हीन स्थितिको आजका लेखक सामान्य यथार्थ मानकर बैठनेको तैयार नहीं है।

'इला' एवं 'सांच कहूं तो ' ' की लेखन-भूमि बहुत भिन्न हैं। 'इला' में आभिजात्य प्रमुख है जबकि 'सांच कहूं तो' लोक-भूमिकी रचना है। एकमें मानों प्रसादके 'चन्द्रगुप्त' का सुसंस्कृत चिन्तन है तो दूसरेमें भारतेन्दुके 'अंधेर नगरी' का स्वाभाविक आवेग तथा सजीवता है। यह तुलना बहुत स्थूल प्रकारकी है तथापि इससे हमारे आशयको शायद कुछ समझा जा सके। 'इला' का कथानक मानव-मनकी जटिल रेखाओं से गुम्फित हैं तो इस नाटकमें अन्तर्भावनाएं भी एकदम स्पष्ट तथा अभिधात्मक हैं। लोक-कथाके पात्रोंकी सीधी सरल बुनावट तो है, साथमें निर्बाध आवेग भी है; पात्र घुट-घुटकर जीनेवाले नहीं बल्कि अपनी भावनाओंको अभिव्यक्तिमें अत्यन्त मुखर हैं। स्थूल अभिव्यक्तिको नाटककारने स्थानीय भाषा तथा उसके सटीक मुहावरों से सजाकर निखार दियाहैं। हमको इस नाटकमें 'इला' की अपेक्षा अधिक साधनाके दर्शन हुएहै।

डॉ. श्रोत्रियके अबतक प्रकाशित दोनों नाटक नारी-प्रधान हैं। 'इला' में नारी रूपमें जन्मे व्यक्तिको बलात् पुरुष बनाया गयाहै। पुरुषके शरीरमें नारी मन धड़क रहाहै। नाटकमें इस अर्द्धपुरुषकी मानसिक पीड़ाकी अभिव्यक्ति हुईहैं। 'सांच कहूं तो' में पुरुष-प्रधान समाजमें पुरुषके दर्पसे रौंदी गई नारीकी यातना के चित्रण हुएहैं। इस दृष्टिसे, स्वरूपगत भारी अन्तर के बावजूद, दोनों नाटकोंकी आधारभूमि बहुत कुछ समान है।

'इला' की समीक्षा (प्रकर—जून १९९२) के अपने शब्दोंको हम दुहरानेकी अनुमति चाहेंगे—" 'इला' में नये हिन्दी नाटककी वह विशेषता सामान्यसे अधिक दिखायी भी देतीहैं जिसमें पुरावृत्तोंमें गहन अर्थोंकी तलाश की चेष्टा प्रमुख रहीहैं, वह चेष्टा जो पुरावृत्त को समकालीन सन्दर्भोंसे जोड़तीहैं।" डॉ. श्रोत्रियके दूसरे नाटकपर हम उपर्युक्त कथनको 'पुरावृत्त' शब्दके स्थानपर 'लोककथा' शब्दके साथ दुहराना चाहेंगे। 'इला' में हमने चिन्तन-पक्षकी अधिकताको रंगमंचीय विचारसे चिन्ता योग्य मानाथा। आलोच्य नाटक रंगमंचीय प्रस्तुतिके विचारसे निर्दोष ही नहीं है बल्कि दृश्य रूपमें अधिक खुलनेवाला है। अर्थात्, डॉ. श्रोत्रिय इसमें दृश्य-काव्यकी क्षमताके प्रति अधिक सावधान तथा जानकार हैं। यहां पुरुष द्वारा प्रवंचित नारी भी सतेज तथा न्यायके लिए बोलनेवाली बनीहै। ख्यात कथानकको नाटककार अब अधिक कुशलताके साथ समकालीन सन्दर्भोंसे जोड़ सकाहै। नाटककारका दावा यहां सही है कि "लोककथाको आधुनिकता देनेकी झोंकमें उसपर कृत्रिमता लादने, उसे विकृत करने, या कथात्मक ढांचेके कान उमेठनेके बजाय मैंने उसीके भीतर से ऐसे नवीनतम संकेत पानेकी चेष्टा कीहै जो उसके संरचनात्मक स्वरूप द्वारा सहज ही प्राप्त हो सकतेहैं।"

हम डॉ. प्रभाकर श्रोत्रियके रंगमंचीय नाटकका स्वागत करते हुए आशा करतेहैं कि रंगकर्मी भी इस नाटकके साथ न्याय करेंगे। ▭

पत्र-व्यवहार करते हुए कृपया अपनी सदस्य-संख्या लिखना न भूलें। सदस्य संख्या न होने पर पत्रोत्तरमें देर हो सकतीहै।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्य

कंदीलें[1]
[संकलन]

सम्पादक : राजनन्दन मिश्र
समीक्षक : फूलचंद मानव

भारतीय कला एवं संस्कृति मंच, कलकत्ताके सौजन्यसे 'रेखायन' की प्रस्तुति कंदीलें, ग्यारह कवियों-कवयित्रियोंकी रचनाओं-कविताओंका उपहार है, जिसमें रचनाकारोंका परिचय भी (संक्षिप्त) कविताओंसे पहले, कृतिके रूपमें एक उपहार है।

कलकत्ताकी भावभूमि काव्य क्षेत्रके लिए बांग्ला, अंग्रेजीमें ही नहीं, हिंदीके लिए भी खूब उर्वर रहीहै और यहांके अनेक कवि मुख्य धारामें, देशके रचनाकारोंके साथ चलेही नहीं, कुछेकने तो आंन्दोलन भी चलायेहैं। फिर समयने उनकी कविता, लहरको स्वीकारा, यह सराहनीय बात है।

सर्वश्री छविनाथ मिश्र, सकलदीप सिंह, प्रभा-खेतान, नीलम श्रीवास्तव आदि कुछ सुपरिचित नाम हैं जिन्हें हिन्दी पाठक पहचानता-सराहता भी है। प्रत्येक संपादककी एक दृष्टि होतीहै, और दृष्टिकोण भी, उसीके अनुरूप वह रचना चयन करताहै या रचनाकारोंको जुटाताहै। औपचारिक तौरपर राजनन्दन मिश्रकी संपादकीय भूमिका, दिशा-दृष्टि संकलन में स्पष्ट नहीं, पर रचनाकार और रचनाकी प्रस्तुति इसे एक दूसरे अर्थमें उजागर कर रहीहै।

आज कविता जीवित है, या मर रहीहै, इस पर विवाद है। चौधरी आलोचकों, समीक्षकों, स्वनामधन्य कवियोंसे लेकर काव्य-समीक्षा पत्र-पत्रिकाओंके संपादक भी इस संवादसे कहीं-न-कहीं चिन्तित हैं पर कविता परम्परा, मुहावरे और उत्तर-आधुनिकतासे लेकर दोहे, शेर, लघुदीर्घ कविता तक हिन्दी साहित्य संसारमें छायीहै। सामान्य पाठककी सामान्यतः इसमें रुचि है। तभी पत्रिकाएं कविता छापना बन्द करके पुनः काव्य मोर्चा खोल रहीहैं। कवियों-कविताओंके शब्दोंमें संपादित पृष्ठ बोल रहेहैं :

> ओ ब्रह्मांड प्रसविनी ! / क्या सचमुच तुम/
> नितान्त आवश्यक हो—/ मेरे लिए, हरेकके लिए
> (पृ. १२४)
>
> उठती गिरती लहरोंके बीच/ वह मेरा खेलना/
> उसका है, या मेरा/ इन तमाम बातोंसे बेबास्ता,
> बेफिक्र/ मैं सुन रहाहूं, देख रहा, खेल रहाहूं
> (पृ. १२५)।

संपादक राजनन्दन मिश्र अपनी प्रथम, प्रारम्भिक अभिव्यक्तिमें ही जो संबोधन उठातेहैं, रचनात्मक स्तर पर उसे खरे रूपमें निभाते भी हैं। निराशा-हताशाके होते कविकी आस्था जिस ओर इंगित करतीहै, वह कवितामें आस्था और आचरणका प्रश्न है, विद्रोही भूमिकाके होते हुएभी दस शीर्षकहीन कविताएं कविको रेखांकित करतीहैं।

छविनाथ मिश्र स्थापित कवि ही नहीं, देशके संवेदनाशील हस्ताक्षरोंमें उनका नाम आताहै। शब्द-शिल्प और वाक्य रचना सहज-सपाट होते हुएभी छविनाथ मिश्रकी कवितामें तेवर हैं, चीत्कार हैं, गर्जना भी। इतिहास लिखाजा रहाहै, कविताकी आग, पारदर्शी प्रसन्नता सच मानना और पूर्णता पानेकी पुलक शीर्षक कविताएं हमारा साक्षात्कार जिस भावभूमिसे करातीहैं, वह समाज और व्यक्तिके भीतरी युद्धकी भूमि है। बाहर-भी अंदरभी जो कुछ हो रहा विभाजन है, वह हर्गिज नहीं हसीन है :

प्यार एक पूरी कविता है/ आगसे रची हुई/, पार-

---

१. प्रका. : रेखायन, ६ एच, राधानाथ चौधरी रोड, कलकत्ता-७०००१५। पृष्ठ : १५६; डिमा. ९३; मूल्य : ४०.०० रु. (पेपरबैक)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शी प्रसन्नता है। (१५२)। सन्नाटेमें/ सितार की तरह बजतीहै/ सदानीरा नदीकी तरह बहती है/ पानी पानी जैसी होतीहै, हरिण पीतेहैं/ जिसे तृण पीतेहैं। (१५१)।

कविताकी आग अंदरकी सच्चाई है, सामाजिक दुहाई है। कविके पास प्रतीक विधान, अलंकार, मुहावरा—सब है।

रामवृक्ष चंदकी कविता प्रगतिशीलतासे प्रभावित, जनवादकी कविता है। मेरा भारत महान्, ओ क्रांति के वसंत, गधादीन, में कटूक्तियां हैं, व्यंग्यकी धार है, तेजीसे निकलता तीखा प्यार है, आदमी और तोता, तलाश, हुजूर आप ही ने तो कहाथा की करुणा और क्रन्दन शब्दोंसे शीशा दिखा रहेहैं।

चेतना प्रवाह शैलीमें कविता रचनेवाली कवयित्री रीता मल्होत्रा आस्था और अनास्थाको ही उजागर नहीं करती, नया खेल ईजाद करनेकी क्षमताभी रखतीहैं :

खुबसूरत ताशके पत्तोंकी तरह/ फेंटते हुए न बांटो, सपनोंको/ —इक्के बादशाह, गुलामकी तरह/ "हाथकी सफाईका यह खेल अब बहुतोंने सीख लियाहै/ हरेकके हाथ हैं तीन इक्के/ और ताशकी गड्डीहै सिर्फ एक।" (पृ. ३)।

छोटी धारदार रचनाओंमें बात कहनेकी कला कवयित्रीके शिल्पकी खूबसूरती है कंदीलोंमें शामिल यह हस्ताक्षर इसलिए सार्थक है कि एक लौ, एक चिंगारी—मार्ग दर्शनके लिए, पाठक वर्ग तक पहुचानेके लिए उनके पास है।

सकलदीप सिंह अपरिचित आस्थाके निषेधका साक्षात्कार करवाते कवि हैं। देशकी लघु-दीर्घ पत्रिकाओंने सकलदीप सिंहकी कविताओंकी चर्चा की है। एक दशक विशेषमें चिन्तन मुद्रामें अस्तित्ववादी दिखनेवाले सकलदीप सिंह काव्य मुहावरेमें अलग पहचान बना चुकेहैं :

"अज्ञानतासे निकलकर/ ज्ञानके लोकमें आया/ गाँव छोड़कर शहर आया/ शहरसे शहर बदलता रहा/ ज्ञानी होनेकी सनद जुटाता।" (३८-३९)

रचनाओंके चयनमें कवि स्वयं चयनकार हैं। 'धारदार और अनुभूतिकार ये कुछ मोमबत्तियां टिमटिमातीहैं। बुझती नहीं, लगातार मार्ग प्रशस्त करती है।

आशा मेहरा मात्र संभावनाकी कवयित्री नहीं, अन्दर-बाहरके संघर्षके अभिव्यक्ति देती कलमकार हैं। वसंत और पतझड़/हरियाली/रेगिस्तान/समुद्रका उफान/नदीकी गहराई/पहाड़ोंमें लौटती आवाजें/सब कितना स्वाभाविक/क्या विपरीत रंगोंसे/इस दुनियांकी सजावट या एक दूसरेकी पूरक?—(पृ. ५५)। दस कविताएं प्रश्नचिह्न भी हैं—जिज्ञासाएं भी और उत्तर भी/विचार मन्थनमें चिन्तन जहां उभारपर है, कविता निखारपर है।

नीलम श्रीवास्तवने मिथक कवितामें पहल की हो, ऐसा तो नहीं, पर हां, मिथकीय कविताको उभारने, उसका चेहरा संवारनेमें इनकी कलमने कुछ क्या कर दिखायाहै, कविताके माध्यमसे कवयित्रीने यही बताया है :

किसने पाली थी एक काली बिल्ली,/ कोई नहीं जानता,/ वर्षों तक किसीने जानना भी नहीं चाहा,/ वह छिपी रहतीथी कहीं अंतरोंके कोनेमें (पृ. ६१)

सुरेशकुमार शर्मा, सुकीर्ति गुप्ता, शंकर माहेश्वरी एवं डॉ. प्रभा खेतानके सामाजिक सरोकार इनकी कविताओंमें परिलक्षित होतेहैं। महानगर, नगर, कस्बाई मानसिकता देहाती सोच और छटपटाते-कसकते इन्सान—औरतका दर्द इनकी कविताओंके केंद्रमें हैं। एक ललक, चाह है, प्रभा खेतानमें, द्वन्द्व है, सोचका परिणाम भी—

एक बार फिर मैं/अपनी कविताको, पर्त-दर-पर्त/ छीलती चली जाना चाहती/शायद कोई एक जीवित धड़कता शब्द/ सीपीके बन्द दरवाजे खोल दे (पृ. ९१)।

जीवनकी यह शैली एक परिपक्व दृष्टिकोणको उकेरतीहै।

कंदीलें हैं शब्द, कन्दीलें है अर्थ, पंक्तियां, प्रकरण-संदर्भ और काव्योक्तियां-जिनमें संकलनके तमाम कवि रोशनी देकर अन्धेरा सोखना चाहतेहैं, समाजके सामने, उभरते उजागर व्यक्तित्वमें खड़ा होना चाहतेहैं।

रेखायनका यह प्रयत्न सार्थक हो पाता यदि सम्पर्क सूत्र संपादक सहित कवियों-कवयित्रियोंका भी पाठकों तक पहुंचाया होता। क्या यह कंदील तले अँधेरा नहीं? कवि-परिचय है, कविताएं हैं, पर संपादकीय वाक्य या सम्पर्क-सूत्र रचनाकारोंको गुमनाम-संसारमें रखनेकी विवश क्यों है? दूसरी, तीसरी भाषामें रूपांतरण करनेवाले तो संवादकी स्थितिसे कंदीलें पहचान पाते। ▭

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतने दिनों तक[1]

कवि : कुन्दन माली

समीक्षक : डॉ. प्रयाग जोशी

प्रस्तुत संग्रहमें हमारे समयकी जीवन्त स्थितियोंके एकदम व्यावहारिक व सर्व संवेद्य आयामोंको छूती हुई ५६ कविताएं सम्मिलित हैं। इन कविताओंका विषय सामयिक व्यवस्था है। कविताएं न तो भाषाके मकड़-जालोंसे घिरीहैं न निपट खुश्क व्यंग्योंसे। कविताओंमें संयोजित शब्दोंमें प्रभाव पैदा करनेकी शक्ति है।

पीढियोंका जीवनके प्रति बढ़ता नकारात्मक रुख, आत्मदाही मनोवृत्ति, छीनाझपटी, आगजनी, हत्याएं, परपीड़न, घूस-फरेब, जीवन-मान्यताओंका कल्लेआम, नेकीसे नफ़रत आदि चालू स्थितियोंको कविने अपनी कविताओंमें पिरोयाहै। यह पिरोना केवल कविताकारी का हुनर दिखानेके लिए नहीं अपितु जीवनको समझने और कविताओंमें जीवन-मूल्यको स्थापित करनेके लिए है। कविताके शब्द मेरठ, संभल, जलगाँव, भिवंडी, इंदौर व थाणेके माध्यमसे उस रंजभरी कंपकंपीको स्मृतिमें जगातेहैं जो पिछले दस वर्षोंसे हमारी धरती में उठी हुईहै, जिसे शक्तिसे वशमें करना भी असंभव हो वह भाषासे थमेगा, यह संभव नहीं। परन्तु, एक कविका धर्म है संवेदनाका जल छिड़कना। ये कविताएं भरपूर संवेदनासे युक्त हैं।

कविताएं जीवनके गलत सम्बन्धोंको गहरी स्याहीसे खारिज करतीहैं। वे आत्म-मुग्धता और गलतको सहीकी तरह बर्दाश्त कर ले जानेको नकारतीहैं।

> लोग/भूले नहीं हैं/ अपना राग/ अलापना/ पराए मालकी आग तापना/ इस उस बहाने/ औरोंमें झांकना/ इधर-उधर/ उंगली उठा/ अपनी गलती ढाँपना/ ऐन वक्तपर/ मैदान छोड़/ भागना/ भूल जानेवाला/ चाहे जो हो/ आदमी/ नहीं ही होगा।

संग्रहकी कविताएं जितना मनुष्य और उसके परिवेशके 'बाह्य' को व्यक्त करतीहैं उतना ही 'अन्तस्' को भी। अनुभव, चाहे वह मानवीय मुखौटेके उतर जाने पर अपनी ही नजरोंमें अपनेको नंगा देखनेका हो अथवा भीतरके खोखलेपनको ढंकनेके लिए संवरने-सजनेकी निर्जीव बाहरी टीपटापका; आदमी होनेके भ्रममें जी जानेवाली तड़पका साक्षात्कार कराताहै। कविताओं में, इंसानियतकी पक्षधरताको निबाहनेकी अपील है—

> ब्रह्म विधानके/ खिलाफ/ खड़ा होनेवाला/ हरेक/ आखिर असुर नहीं होता/ परमेश्वर पुत्र ईसा/ आदम-हव्वाके/ खिलाफ/ लड़नेवाला/ हरदम/ शैतान नहीं होता/ स्वर्ग निकाले/ असुर या शैतान होनेसे/ महत्त्वपूर्ण है/ किसी-न-किसीके/ खिलाफ/ खड़ा होना।

कविताओंमें रामपदारथका 'तकावी' की चिन्ताओंसे घिरा चेहरा है तो भुने चनेकी पुड़ियाकी भांति देशको चबा लेनेको आतुर दरिन्दोंकी मंशाभी। रामलुभायाकी पीलियाकी चिकित्साकी समस्या है तो शातिर बनियेके सौदे-सुलुफकी भांति देशको सुलटानेकी चिन्तामें लगा राजनेता भी। भगवानके चरणामृतकी भांति राष्ट्रको गटक जानेको उत्सुक लोलुपोंकी स्मृतिभी कविताओमें है। सब जगह नवरंगीलालकी रामकहानी चल रहीहै। क्या अपूर्व स्वतंत्रता आयीहै देशमें कि इस—

> स्वतंत्रताके चलते/हमसे कोईभी/कभी-भी/कुछ भी/करवाले/निर्दोषको/सप्रमाण अंदर/दुष्टका हार्दिक समादर/सज्जनकी छीछालेदर/इस स्वतंत्रता के चलते/स्वतंत्रताकी बाबत/दो शब्द/कहना चाहेंगे आप ?

कुन्दनलालकी कविताओंको पढ़ते हुए हम स्वयंसे, निजकी व्यवस्था और सामाजिक परिवेशसे साक्षात्कार कर रहे होतेहैं। ऐसा साक्षात्कार जो हमें नयी स्फूर्ति और ताजगी देताहै। हमें चौकन्ना करताहै और हमारी जड़ताको काटताहै। ये कविताएं हमें उस वर्ग से जोड़तीहैं जिसे सदा दूसरोंके लिए ही काममें लाया जाता रहाहै। शासित होते रहनेको हमारी नियतिका आभास कराकर वे हमारे भीतर एक खीझ उत्पन्न करतीहैं जो धीरे-धीरे एक विद्रोहका आकार लेती जातीहै। दुष्यन्त कुमारकी गज़लकी पंक्ति कि 'हम नहीं हैं आदमी हम झुनझुने हैं' को कवि कुन्दन मालीने विस्तार दियाहै। वे शासक और शासितके

---

१. प्रका. : शिल्पी प्रकाशन, सी-१७७, महावीर मार्ग, मालवीय नगर, जयपुर (राज.)। पृष्ठ : ९२; डिमा. ८९; मूल्य : ४०.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अटूट रिश्तेपर सुन्दर व्यंग्य करतेहैं—

आप साज़िन्दा हैं/साज बने बजते हुए/आपके हाथों में सजते हुए/आपकी ही बदौलत/तो जिन्दा हैं/वे/जो/लगातार बजते साज हैं/उन्हींका कल था/उनका कल भी होगा/उनका ही आज है/आपने/ईश्वरकी खामीमें/सुधार किया/तो/अच्छा ही किया/बेमकसद भीड़तंत्रको/मुफीद किस्मके/साज बना दिया/मालिक/आप शायद जानते होंगे/साजों/बाजों और/तख्त-ताज़ोंमें/कायम रहाहै/अटूट रिश्ता।

संग्रहकी सभी रचनाएं वस्तु और शिल्प दोनों स्तरोंपर सशक्त हैं। हिन्दी कविताके अध्येताओंके लिए यह एक संग्रहणीय संकलन है। ▭

यथार्थके आसपास[1]

कवि : गिरीश पाण्डेय

समीक्षक : डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ

आधुनिक काव्यधाराका सम्बन्ध और बोधात्मक क्षेत्र 'निजता' से लेकर आपने सन्निवेशमें उभरती-उमड़ती वे स्थितियां बन जातीहैं जो किसी संवेदनशील हृदयसे उद्भूत होकर श्रोताको अपनी ही अनुभूतिका परिचय देतीहैं। इसी दृष्टिसे प्रस्तुत काव्य कृतिमें संकलित पचास कविताएं देखी जा सकतीहैं जो अपने पाठकको बांध पानेमें समर्थ हैं। संकलनके शीर्षककी ओर ध्यान आकृष्ट करते हुएभी कविने मार्गदर्शन कियाहै कि 'यथार्थके आसपास'···इसलिए कि यथार्थको कह पाना तो असम्भव ही है, इसलिए उसके आसपास ही कुछ कहनेका प्रयत्न कियाजा सकता है।" (कुछ अपनी भी)।

कवि श्री पाण्डेने एकबार साहित्य समाजके दर्पणवाली युक्तिको लेखनकी तुलना फोटोग्राफीसे की है और फिर अपने भावों और विचारोंको तराशने या रचनाओंके प्रोसेसकी चेष्टाका संकेत भी कियाहै। इसका प्रथम परिचय वे देतेहैं कि—मेरी कविता/सद्यः जुते हुए/गेहूंके खेतमें/कुछ विरल चिह्न (पृ.१) बनकर आतीहै। लेकिन इस तराश या प्रोसेस में गायत्री मंत्रका अनुवाद करके वे कुछ नहीं पाते मात्र बहुज्ञताके। संकलनकी छब्बीसवीं कविता ही शीर्षकका उपक्रम है—लेकिन उड़े यथार्थके आस-पास/कभी यथार्थसे दूर होते हुए/कभी यथार्थके-पास आते हुए (पृ. ४६) क्योंकि प्रेम, आसक्ति या अहंकार, भवित आशा या तिरस्कार, गरिमा, प्रभाव या विस्तार (क्रमशः उसी अर्थमें ग्राह्य अर्थाभिव्यक्ति) सभी उड़ानें भिन्न नहीं हैं। कवि आध्यात्मिक मोड़पर खड़ा हो जाताहै।

कवि वर्तमानकी यथास्थितिसे समझौता नहीं कर पाता और अपने कर्त्तव्य—'मैं जिस माटीमें रहताहूं··· (उसे) उर्वरा बनाताहूं'—में तत्पर रहताहै (पृ. ४) तभी जिन्दगीकी ऊंचाइयोंपर घर बसानेका कोई इरादा नहीं है उसका (पृ. ५) लेकिन गगनके गीत लिखना उसे बेमानी नहीं लगता। (पृ. ६-७) उसके पीछे सबसे बड़ा कारण यही है कि उसे 'जीवन यात्राके किसी अंशसे' (पृ. ८) शिकायत नहीं है क्योंकि सम्बन्धोंके बीच विकसित गांठको सहिष्णुतताकी आंच से पिघलानेके लिए तत्पर है कवि (पृ. ११)। कवि 'अधूरे परिचय', 'दर्पणोंसे', 'टूटी कलम', 'अमानत' 'सेवा', 'नयी कोंपले' में से गुजरने हुए वैयक्तिक सम्भावनाओंके संस्पर्शोंमें भी मानवीय हितोंकी सूक्ष्म व्यंजना लिये हुए, आदमी-आदमीका रिश्ता तक स्पष्ट करताहै।

रचनात्मक धरातलपर श्री गिरीश पाण्डे क्षणिकाएं, गीत और गजल विधाका आश्रय लेकर अपने आनुभूतिक चिन्तनके निकषपर इस कृतिमें काव्य-विविधा लातेहैं—यद्यपि एकही कृतिमें यह वैविध्य कृतिकारकी सर्जनात्मकताके सघन परिचयमें व्यवधान देताहै, पर उसकी मेधापर प्रश्नचिह्न नहीं लगाता। कविसे भविष्यमें आशा बंधतीहै। सादे परन्तु आकर्षक आवरणमें त्रुटिरहित मुद्रण (एकाध स्थल छोड़कर) के साथ यह कृति पठनीय सिद्ध होगी। ▭

समयधारा[1]

कवयित्री : शकुन्तला सेठ

समीक्षक : डॉ. रामानन्द शर्मा

गीत और कविताओंका प्रस्तुत सम्मिलित संग्रह

---

१. प्रका. : भारती भवन, कदम कुआं, पटना (बिहार)। पृष्ठ : ९०; डिमा. ९०; मूल्य : ४०.०० रु.।

१. प्राप्ति स्थान : कवयित्री, १२५ कूचा भोलानाथ, धौंथली बाजार, जम्मू (ज. क.)। पृष्ठ : ११६; क्रा. ९२; मूल्य : ६०.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवयित्रीको सशक्त रचनाकार सिद्ध करनेके लिए पर्याप्त है। उन्होंने जोभी वर्ण्य प्रस्तुत कियाहै, भिन्न प्रकारसे प्रस्तुत यह काव्य स्पृहणीय है। पाठक उनकी भावधारामें बह जाताहै, तलका स्पर्श नहीं कर पाता।

उनके गीतोंका प्रमुख विषय प्रकृति रहाहै। प्रकृति से उनकी सहज आत्मीयता गीतोंको मनोरमता प्रदान करतीहै। सोनचिरैया हो या पूनमकी रात, वर्षा ऋतु हो या प्रकृतिका रम्य स्वरूप, सभी उनकी लेखनीसे सजीव एवं प्रेषणीय बन गयेहैं। उनका प्रकृति-निरीक्षण मानवसे निरपेक्ष नहीं है, इसलिए वे प्रकृतिके चित्रांकन में भी मानवीय संवेदनाओं तथा लोककल्याणकी भावनाओंको विस्मृत नहीं कर पातीं। श्यामल बादलोंसे वे मात्र जलकी वर्षा ही नहीं चाहती, बल्कि तपती धरती पर शान्ति-सुधा-रसकी वर्षाकी अपेक्षा करतीहैं—

बरसो हे श्यामल घन बरसो/, दुःखसे तपती धरती पर तुम, / शान्ति-सुधा-रस बरसो। (पृ. ४)

कवयित्री सुश्री शकुन्तला सेठने अपने गीतोंको मात्र प्रकृति तक ही सीमित नहीं रखाहै, उनका विषय विस्तार बहुत व्यापक है। वे आहत समाज और पंगु मानवताके सुन्दर चित्र ही नहीं अंकित करती बल्कि प्रसुप्त भारतबासियोंको उद्बोधित भी करतीहैं। वे गीताके गायक भगवान् कृष्णका सन्देश भी देतीहैं और योगिराज कृष्णका भी। वस्तुतः भग्न और भ्रष्टको हटाकर शुद्ध मानवतावादी स्वरूप प्रस्तुत करना उनका वांछित है, जिसके लिए क्रान्ति आवश्यक है। उनका सन्देश दर्शनीय है—

तराशो नुकीले पथिक ! प्रथके पत्थर/हटाओ शिलाएं लगा पगको ठोकर/लड़ो आंधियोंसे हिमालय से बनकर/तभी है जवानी, जवानी तुम्हारी, यदि मगके पर्वत भी हमवार कर दो/सुनो मेरे गीतोंकी आवाज सुन लो। (पृ.१३)

गीतोंकी अपेक्षा कविताओंमें उनका समाज सुधारक रूप अधिक स्पष्टतासे मुखर हुआहै। वे नारीकी पतित स्थिति—द्वितीय श्रेणी नागरिकता—से खिन्न हैं, विधवा की दयनीय दशा देखकर विगलित हो जातीहैं। वे मानवको ऊंच-नीच, वर्गभेद, अस्पृश्यता आदिसे मुक्त देखना चाहतीहैं, जहां प्रत्येक प्राणी सहजतापूर्वक अभ्युदय और निःश्रेयसमें लीन हो सके। उनकी कामना है—

मेरी सूखी कलियोंको/हों तार-तार पांखुड़ियाँ/ धरतीकी तपन मिटा दे, /कर सुखमय दुःखकी घड़ियां। (पृ, ४९)

उनकी कविताओंमें मुक्त छन्दवाली कविताएं भी हैं, जहां कवयित्रीने छन्दके बन्धनको अलगकर हृदयकी मुक्त भावधारा बहायीहै। उनके हृदयका सच्चा स्वरूप यहीं स्पष्ट होता है। यहां उन्होंने तीक्ष्ण व्यंग्य का आश्रय लेकर समाजकी कुत्सित रूढ़ियों, निष्प्राण गतानुगतिकताओं और मिथ्या प्रदर्शनोंपर कटु प्रहार कियेहैं। वे धनी लोगोंके निर्धन सम्बन्धियोंको कोढ़के धब्बेकी भांति छिपाये जानेका विरोध करतीहैं, अपने वास्तविक स्वरूपसे डरनेवाले मानवका सुन्दर उद्घाटन करतीहैं, वर-विक्रेता श्वसुरसे पुत्रवधू द्वारा सेवासुश्रुषा की आशा-अपेक्षाकी खिल्ली उड़ातीहैं और आजके हृदयहीन, मस्तिष्क प्रधान एवं दीर्घोदर मानवका चित्र खींचतीहैं—

देखेगा, सुनेगा क्या ? /आंख नहीं, कान नहीं/ हाथ और पैर बस/गति ही गति है, सिर्फ गति/ और यह बड़ा-सा पेट/खा जायें सब कुछ/लील जाये विश्वको। (पृ. ८६)

यों मुक्त छन्दकी सभी रचनाएं तीक्ष्ण व्यंग्यके कारण अत्यन्त सशक्त हैं, पर 'मजदूरकी लड़की', 'धरतीकी बेटी' और 'कहानी दो बच्चोंकी' अत्यन्त धारदार और प्रभावपूर्ण हैं। मजदूरकी लड़कीके संघर्षपूर्ण एवं कष्टमय जीवनका अंकन ही नही हैं, बल्कि सफेदपोशों द्वारा उसकी अस्मितासे खिलवाड़ करनेका चित्रण मानवके हृदयको झकझोर देताहै। दो बच्चोंकी कहानीमें भाषा, जाति और धर्मके आधारपर देशको बांटनेवाले नेताओंकी जमकर खिचाई कीहै। उन्होंने स्पष्ट कहा है—

मुझे डर है उन राजनेताओंका/जिन्होंने बधिर कर दी है मानवता/जो उभार रहेहैं घृणा और द्वेष/सिंहासन पानेके मोहमें/और पिला रहेहैं मीठा जहर/सत्ताके लालचका। (पृ. १०८)

उन्होंने जनताके सेवक कहलानेवाले इन नेताओंकी संवेदनशीलतापर प्रश्नचिह्न लगाकर उन्हें मुर्दा (टेपरिकार्डर) बताया है—

आप भूखसे व्याकुल हैं, /बिलखतेहैं आपके बच्चे' / लूटतीहै स्त्रीकी लाज/आपको सान्त्वना देंगे—/ "हम आपके सेवक हैं/सेवा हमारा धर्म है/डरो

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मत हम हैं आपके साथ।" /आप गिड़गिड़ायेंगे सहायताके लिए/पकड़ेंगे उनके पांव, ठण्डे बर्फसे / /महसूसेंगे, ये तो मुर्दा हैं, /भराहै इनमें रिकार्ड- 'हम सेवक हैं जनताके।" (पृ. ९८)

सुश्री शकुन्तला सेठका सम्पूर्ण कृतित्व, चाहे वह गीत हो या कविता—एक स्वस्थ मानवतावादी दृष्टिसे परिपूर्ण है। चाहे वे प्रकृतिका चित्रण करें या समाजकी रूढ़ियोंका उद्घाटन, सहज मानवता उनकी दृष्टिसे तिरोहित नहीं होती। उनका व्यंग्य भी उन्नत समाज की रचनाके लिए है। कहा जा सकताहै कि उनका कृतित्व हृदयको रागात्मक ही नहीं बनाता, चिन्तनको विवश भी करताहै और मानवके उन्नयनमें सहायता भी करताहै। वे निश्चय ही सशक्त रचनाकार हैं। भाषा और कथ्य दोनोंपर ही उनका असाधारण अधिकार है। ▭

छायागाछ[१]

कवि : चिरंजीलाल

समीक्षक : डॉ. प्रयाग जोशी

आहट[२]

कवि : नौरतन भंडारी

समीक्षक : उपर्युक्त

कलकत्ता महानगरके रचनाकारों ने 'प्रतिध्वनि' नामसे एक प्रकाशन संस्था गठित करके १९९२ के वर्ष, दो किश्तोंमें कविता पुस्तकें प्रकाशित कीं। पहली किश्तमें तीन पुस्तकें छपीं। दूसरीमें पांच। उत्तरवर्ती किश्तमें छपी पाँच पुस्तकोंमें उपर्युक्त दो पुस्तकें भी हैं।

छायागाछ की ५६ और आहट की ४८ कविताएं, कविताओंसे ज्यादा दस्तावेज हैं। दोनों कृतियोंमें, अपनी-अपनी जीवन-शताब्दीके उत्तरार्द्धमें काव्य-रचनाके क्षेत्रमें प्रवृत्त हुए दो बुजुर्गोंके हस्ताक्षर हैं। इन दस्तावेजोंको प्रस्थान बिन्दु बनाकर उनके कृतिकारों को रचनाशील बनाये रखकर प्रकाशित करते जानेके प्रति 'प्रतिध्वनि' को वचनबद्ध रहना चाहिये।

दोनों कृतियोंके कर्ता अनुभव और गतिमें, हमारी शताब्दीमें विकसित हुई आधुनिकताके प्रत्यक्षदर्शी हैं। दोनोंने समृद्धि और विलासके समकालीन मानकोंके रूबरू होकर अपनी अस्मिताको टटोलनेका अवसर भी पायाहै और ऐहिक जीवनपर विश्वास करके जी सकने योग्य स्थिति-परिस्थिति और शिक्षाभी पायीहै। कवियोंमें, आजके विश्वकी सारी आपाधापीके केन्द्रमें स्थित मनुष्यके सत्यको व्यक्त करनेकी क्षमता भी है और सामर्थ्य भी।

चिरंजीलालकी कविताएं व्यापक क्षेत्रके अनुभवोंको आँचमें पकीहैं। वे दुर्निवार्य दुश्चिन्ताओंकी कविताएं भी कहीजा सकतीहैं। उन्होंने अनेक सामाजिक स्तरोंको छुआहै। राग-विवाद, वितृष्णा-विराग, परिवर्तनोंकी छटपटाहट और जड़ताओं-जकड़बंदियोंके बीच लटके तात्त्विक अर्थको पकड़नेका, प्रबल संघर्ष उनमें दिखायी देताहै। इसीलिए उन्हें 'दर्शन' के क्षेत्रकी कविताएं भी नहीं माना जाना चाहिये। जीवनमें सही और जरूरत भर उपयोगीको खोज पानेकी भी उनमें उतनी ही ललक है। भोग और योगकी अतियोंके बीच बिखरे सुनसानमें सारे अहंकार व कठिनाईयों-विवशताओंके साथ प्यारकी एक बूँद और संतोषका एक पल पा जानेकी चाहोंने इन कविताओंको रचवायाहै।

इस संग्रहकी, कविताओंके संसारमें आदर्श और नीतिके सारे आग्रह सीमान्त पर सरकते देखे जा सकते हैं। सरकानेकी प्रक्रियासे जुड़े दलालाध्यक्ष, तावेदार, गुर्गे और नेता भी हैं और ब्रीफकेस बिछाते बेईमान, चकलेदार और माफिया भी। कविताओंने उन ट्रकोंके शब्द-चित्र छापेहैं जिनमें कटनेको जा रही भेड़-बकरियाँ भरी हैं और उन ट्रकोंके चित्रभी जिनमें बिकनेको लड़कियाँ जा रहीहैं। महाजनों-तावेदारों, गुर्गों और दलालोंने कविताओंको भयाक्रांत किया हुआहै। वे भय और आतंककी भांति आतेहैं और भूतोंकी भांति ओझल हो जातेहैं। विशिष्टता यह कि वे कविताओंके विषय नहीं बनते और न हीं कविताएं उनके ब्यौरोंमें जातीहैं। उनकी निराकार प्रतीतिसे ही आक्रान्ति-उत्क्रान्तिका आभास हो जाताहै।

चिन्तन और दर्शनकी भंगिमाओंने कविताओंको जीवंतता दी है। चिरंजीलाल, कविताओंमें अपनेको

---

१. प्रकाशक : मधु जोशी, ३१ सर हरिराम गोयनका स्ट्रीट, कलकत्ता-७००००७। १. पृष्ठ : ६४; डिमा.९२; मूल्य : ३०.०० रु.। २. पृष्ठ : ५६; डिमा. ९२; मूल्य : ३०.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूरी तरह खोल नहीं पाते। सभ्यता और संस्कृतिके अतिरेकसे भी अधिक भयानक स्टेटसका आच्छादन उनको वेष्टित किये हुएहै। इस आच्छादनको उतार बाहर करनेमें उन्हें 'अपनी निजकी लड़ाईको सार्वजनिक' करनेका जैसा अपराध बोध जगताहै। ऐसी प्रतीतिमें हमें अभिव्यक्तिकी ईमानदारी तो दिखायी देतीहै परन्तु यथार्थ मनुष्यके छद्म खोलमें छिपे दिखनेका खेद भी होताहै। सभ्यताके सिरजे हुए आवरणोंसे बाहर निकलने का प्रयत्न करना, उस प्रयत्नको शब्दोंमें 'अभिव्यक्ति' देते जाना; जीवनके यथार्थमें ढलते जानेकी प्रक्रियाका अंग होताहै। कविता-रचनाके क्षेत्रमें उत्तरोतर आगे बढ़ते जाते कृतिकारको यह भी अनुभव होता जाताहै कि जो जीवन, मैं; एक कविके रूपमें जी रहाहूँ वही जीवन सही और निष्ठापूर्ण जीवन है। ऐसा अनुभव होनेपर कोई क्यों कहेगा कि—

> कविता !/ मैं तुम्हारी आगसे बहुत तप चुका, अब मुझे दो रिहाई।

चिरंजीलालजीसे अपेक्षाएं करनी चाहियें कि वे 'सम्भ्रांत' और 'अभिजात' की आड़में छिपे कुत्सित और तुच्छका भण्डाफोड़ करेंगे। हमारे संसारके कदाचार और मानवीय मूल्योंके स्खलनोंको अचरजके समान ग्रहण करना ठीक नहीं। कविताको या तो मानवीय सौन्दर्यका गहरा रंग देना पड़ेगा या उसको तलवारकी तरह भाजना पड़ेगा।

नौरतन भण्डारीकी कविताओंमें आत्म-विस्मरणसे उत्पन्न पश्चाताप, अपनेको खोजते रहनेकी सातत्य और 'आत्म' को पाकर उसीमें कीलित हो जानेका जड़त्व है। उनकी कविताएं अपने अंशके संसारमें बरते गये क्षेत्रोंकी कतरा-कतरा सम्वेदनाएँ उनके सारे सपाटपनेके साथ सामने लातीहैं। इस सपाटपनके भीतर कार्यशील मनुष्य अपने सारे असमंजस और बेचैन करनेवाली ऊहापोहोंके साथ मौजूद है। उसकी कविता का कैनवास ऐसा है कि उसपर कविसे अपने कार्यकारी-संसारके खण्ड अपने अलग-अलग टुकड़ोंमें चस्पां होते जातेहैं। कोई खण्ड, विडम्बनाको प्रतिबिंबित करताहै कोई विसंगतिको। कोई खण्ड, जीवनके कर्मशील पहलू को रेखांकित करताहै तो कोई किंकर्तव्य-विमूढ़ताको। सारे खण्डोंको समग्र रूपमें संग्रथित कर दिया जायें तो आजके जीवनको प्रतिबिंबित करता कोलाज निर्मित हो जाताहै। उसका प्रत्येक चित्र अपने अन्तर्विरोध और यादृच्छिक रंगसे रंगा हुआ है पर उनका समेकित प्रभाव दूसरा है—

> दुःख-सुख/घृणा-सम्मान/जो भी मिला/पिरोदिया/ एक सूत्रमें/सजा दिया/कलमसे/अब मैं नहीं/मेरे अस्तित्वको बता रहेहैं मेरे शब्द।

संग्रहके प्रारम्भकी कविताओंमें संदेह और द्वन्द्व है जो सत्यके विरुद्ध गतिमान होते जानेकी विडम्बनाके वशवर्ती होते जानेके बोधसे उत्पन्न हुआहै।

कविताओंमें जीवनके संघर्षमय दौरके अरमान और व्यवस्थित जीवनमें मैकेनिकता की उबाहीके बीच उपस्थित सतत वर्तमानको अनेक दृष्टियोंसे, अनेक कोणोंसे समझनेके प्रयत्न किये गयेहैं। वर्तमानको अनुकूल करनेके प्रयत्नोंमें कवि, कभी तो अपनेको उसीमें चिपका लेताहै और कभी अपने हाथों उसे छिटककर दूर फेंक देताहै। अनुकूलन और तालमेल, प्रतिकूलन और परे हटनेकी खींचातानीमें बहुत आगे निकल जानेपर सहसा विवेक जगता है—

> एक ही छलाँगमें/लाँघकर भी बचपन और जवानी की दहलीज/या उछाल फेंकी वक्तने/निर्मम हाथों से दहलीजके पार/गरम सलाखोंवाले पिंजरेमें/ कर दिया बंद जीवनको/काट दिये पंख।

कालबोध और दिक्ज्ञान नौरतन भण्डारीकी कविताओंकी जान है। इस बोध तक पहुंचनेकी लम्बी यात्रामें कुचले गये मिथकों और स्वप्नोंके चट्टानसे टकराकर चकनाचूर हो जानेका उन्हें रंज है। ऐहिक परिलब्धियोंके प्रति वितृष्णा और दूसरोंके अकिञ्चनत्व से उत्पन्न विवशताके प्रति संवेदनाओंकी सृष्टि भी इसी बोधकी उपज है। इस बोधको केन्द्रमें रखकर खींची गयी परिधि, भण्डारीके काव्यबोधकी सीमा है। हम, महक, जबसे देखाहै तुम्हें, तुम्हारे जानेके बाद, तुम्हारा पत्र आदि कविताएं इस दायरेके बाहरकी, कविताएं हैं। यहाँ कवि, निजी चिन्ताओं और अहम्मान्यताओंसे परास्त होकर पारिवारिक व्याप्तियोंमें ही सिमट गयाहै परन्तु इस सिमटावमें रागतत्त्व तिरोहित होनेसे बच गयाहै। कविमें, अपनेसे बाहर निकलकर संस्कृतिके साथ तदाकार होनेकी संस्कारिता है तो अपने अंतरको परत-दर परत खोलते जा सकनेका बेलोसपन भी। समुद्री ज्वार, सुबहकी लालिमा, दोपहर की किरन, सन्ध्याकी शीतल लहर, खेत-खलिहान, नीले आसमान व फलों-फलोंसे लदे पेड़ोंमें कवि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुचिरतासे ज्यादा, सचेत करनेके गुण-धर्म ढूंढताहै। वे उज्ज्वण मनकी मुक्तिके दाता भी है और गतिके अलार्म भी। प्रकृति और परिवेशको शब्द देते रहनेमें ही कविता का अस्तित्व है—

शब्द/जब प्रकट होतेहैं/मनके अन्तर्द्वारसे / तब प्रकाशपुञ्जकी तरह प्रकट / होताहै ज्ञान/सारे भूमण्डलपर/ क्षितिजोंको चीरता/एक महानायक की तरह। ▭

बैंक : हिन्दी

बैंकोंमें प्रयोजनशील हिन्दी[1]

लेखक : अनिलकुमार तिवारी
समीक्षक : डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री

राजभाषाके रूपमें हिन्दीका प्रयोग करनेकी जब मांग हुई तो सरकारी कर्मचारियोंने पारिभाषिक शब्दावली की क्लिष्टताका हौआ खड़ा किया और कार्यालयी काम-काजके लिए प्रेमचन्दकी कहानियोंकी सरल भाषाकी दुहाई देते हुए फिल्मों जैसी चलती हुई भाषाकी मांग की। तब हमारे यहांके भाषावैज्ञानिकोंका ध्यान भाषाके प्रयोजनमूलक रूपकी ओर विशेष रूपसे गया। छठे दशकमें केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगराने देशके कुछ प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिकोंके सहयोगसे इस विषयपर एक गोष्ठी भी आयोजित कीथी जिसका विवरण पुस्तकाकार उपलब्ध है। स्व. डॉ. भोलानाथ तिवारी, स्व. डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया जैसे भाषावैज्ञानिकोंने इस दिशामें कुछ औरभी प्रयास किये। आज इस विषयपर अनेक पुस्तकें उपलब्ध हैं। समीक्ष्य पुस्तकके नामसे ही स्पष्ट है कि यह प्रयोजन-मूलक हिन्दीके उस रूपको केन्द्रमें रखकर लिखी गयी है जो बैंकोंसे सम्बन्धित है। पुस्तक दो खण्डोंमें विभक्त है। विषयसूचीके अनुसार खण्ड-१ में निम्नानुसार सात अध्याय हैं—१. बैंकोंमें हिन्दीके प्रयोगकी आवश्यकता २ बैंकोंमें प्रयोजनशील हिन्दी ३. राजभाषा हिन्दी और राजभाषा अधिनियमकी पृष्ठभूमि ४. राजभाषा सम्बन्धी संवैधानिक प्रावधान ५. यथा संशोधित राज-भाषा अधिनियम १९६३, ६. राजभाषा (संघके शास-कीय प्रयोजनोंके लिए प्रयोग) नियम १९७६, और ७. राजभाषा अधिनियम एवं नियमोंकी महत्त्वपूर्ण बातें। पर पुस्तकके कलेवरमें कुछ और सामग्री भी है; जैसे "हिन्दी अधिकारियोंके कर्तव्य निर्धारित करना" शीर्षक आठवां अध्याय, जिसे विषयसूचीमें अध्याय ७ का उपशीर्षक 'हिन्दी अधिकारियोंके कर्तव्य' बना दिया है। अध्याय ५ में राजभाषा अधिनियमके अलावा संसद द्वारा पारित संकल्प १९६८, तथा जुलाई १९६८ का राजभाषा विभागका कार्यालय ज्ञापन भी दियाहै। अध्याय ४, ५ और ६ में संविधानके सम्बन्धित अनुच्छेद राजभाषा अधिनियम, राजभाषा नियम आदि ज्योंके त्यों दिये गयेहैं। अध्याय ७ में उपर्युक्त अध्यायोंकी कुछ सामग्री पुनः प्रस्तुत की गयीहै और कुछ सामग्री बैंकिंग प्रभाग, वित्त मंत्रालयकी विभिन्न बैठकोंके कार्य-विवरणोंसे उद्धृत की गयीहै। भारत सरकारका राजभाषा विभाग सरकारी कार्यालयोंमें राजभाषा नीतिके कार्यान्वयनके लिए प्रतिवर्ष वार्षिक कार्यक्रम बनाताहै जो मार्च-अप्रैलमें जारी हो जाताहै। लेखकने वर्ष १९९०-९१ तथा १९९१-९२ के वार्षिक कार्यक्रमों में विभिन्न कार्योंके लिए निर्धारित लक्ष्य उद्धृत किये

१. प्रका. : भूमिका प्रकाशन, मकान नं. ३८, गली नं. २, संत विहार, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १६३; डिमा. ९४; मूल्य : १२५.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, पर शीर्षकमें वर्ष १९९०-९१ का ही उल्लेख कियाहै (पृ. ५६)। इस पुराने कार्यक्रमके लक्ष्योंको उद्धृत करनेका कोई औचित्य लेखकने स्पष्ट नहीं किया। अध्याय ८ में हिन्दी अधिकारियोंके कर्तव्य बतानेवाला राजभाषा विभागका एक कार्यालय ज्ञापन ही दिया गयाहै। इस प्रकार खंड-१ की अधिकांश सामग्री विभिन्न स्रोतोंसे लेकर ज्योंकी त्यों उद्धृत की गयीहै। पुस्तकके मूल विषय अर्थात् 'बैंकोंमें प्रयोजनशील हिन्दी से सम्बन्धित सामग्री अध्याय 'दो' में है, जिसमें यों तो छह पृष्ठ हैं, पर मूल विषयसे सीधे सम्बद्ध सामग्री डेढ़ पृष्ठकी ही है। शेष पृष्ठोंमें परिभाषिक शब्दोंके निर्माण के बारेमें बहुप्रचारित तीन विचारधाराओंकी, हिन्दीके विकासके लिए संविधानके दिशा-निर्देशकी तथा देवनागरी लिपिके शुद्ध प्रयोगकी चर्चा की गयीहै।

पुस्तकमें दिये कई विवरण असंगत हैं। उदाहरणार्थ, राजभाषा अधिनियमकी धारा ३ (३) को पृ. ५१ पर पुनः उद्धृत करते हुए लेखकने इसमें विज्ञापन, बैठकोंकी सूचना, कार्यसूची, कार्यवृत्तको भी सम्मिलित कियाहै जो पृ. ३४ पर दिये मूल पाठमें नहीं हैं। पृ. ५७ पर लेखकने नियम १० (४) के अन्तर्गत अधिसूचित शाखाओंमें कुछ कार्य केवल हिन्दी में करनेके लिए बतायेहैं जिनमें बैठकोंकी कार्यसूची/कार्यवृत्तको भी शामिल कियाहै। यदि कार्यसूची/कार्यवृत्त धारा ३ (३) का भाग है, जैसा लेखकने पृ. ५१ पर बतायाहै, तो इसे केवल हिन्दीमें जारी करना क्या अधिनियमका उल्लंघन नहीं होगा?

"प्रारूपका अर्थ एवं उनके गुण दोष" शीर्षक खंड-२ में लगभग दो पृष्ठोंमें सैद्धान्तिक चर्चा करनेके बाद लेखकने शेष ९८ पृष्ठोंमें बैंकोंमें प्रयुक्त होनेवाले कतिपय मानक पत्रोंके नमूने दियेहैं। सुरक्षा व्यवस्था तथा हिन्दी कार्यान्वयन संबंधी निरीक्षण रिपोर्टका भी एक-एक प्रारूप दियाहै। अब लगभग सभी बैंकोंमें इस प्रकारकी सामग्री द्विभाषी तैयार कीजा चुकीहै। लेखक बैंक आफ महाराष्ट्रमें काम करताहै। वहाँभी यह सामग्री तैयार की गयीहै। कई बैंकोंने ऐसे मानक पत्रों के संकलनभी प्रकाशित किये हैं जो बिना मूल्य बांटे जाते हैं। इनका उपयोग कितना होताहै, यह अलग विषय है।

पुस्तककी अधिकांश सामग्री संकलित है। लेखकने उसे उपयोगी बनानेका अपनी ओरसे कोई प्रयास नहीं किया। मानकपत्रके प्रारंभ या अंतमें संबंधित पारिभाषिक शब्दों और/या मानक वाक्यांशोंकी सूची दीजा सकतीथी, जिससे 'बैंकोंकी प्रयोजनशील हिन्दी' का स्वरूप सामने आता और पाठकका परिचय पारिभाषिक शब्दोंके प्रयोगसे होता। संविधानके मूल अंश, राजभाषा अधिनियम आदिके सम्बन्धित अंशोंकी व्याख्या करके उनके औचित्य-अनौचित्यपर विचार कियाजा सकताथा। राजभाषा अधिनियमकी धारा ३ (३) की भावना स्पष्ट कीजा सकतीथी, उसके अन्तर्गत आनेवाले प्रपत्रोंका कार्यालयमें महत्त्व बतायाजा सकताथा और उन्हें दोनों भाषाओंमें जारी करनेकी आवश्यकता स्पष्ट कीजा सकतीथी, आदि; पर लेखकने ऐसा कुछ नही किया। इस प्रकार अपने वर्तमान रूपमें यह पुस्तक लेखक या प्रकाशक किसीकी प्रतिष्ठा नहीं बढ़ाती। हां, बिना मूल्य वितरित की जानेवाली या कम मूल्यमें उपलब्ध सामग्रीको संकलित करके १२५/- रु. में बेचनेका दोषी अवश्य बनातीहै। ▭

पुस्तकालयों में संग्रहणीय ग्रंथ

जीवन-दर्शन

शंकराचार्य : जीवन और दर्शन—वैद्य नारायणदत्त	सजि.	२०.००
महर्षि दयानन्द : जीवन और दर्शन— ,,	,,	२५.००
गुरु नानक : ,, ,, ,,	,,	३५.००
श्री अरविंद : ,, ,, —रवीन्द्र	,,	२०.००

'प्रकर' कार्यालय

'प्रकर', ए-८४१, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरकारी विभागों द्वारा स्थापित

लोक अदालतें

केन्द्र सरकारके सरकारी विभाग उपभोक्ताओंकी शिकायतें प्राप्त होनेपर समय-समयपर **'लोक अदालत'** नामसे किसी विभागीय एकल अधिकारीको **शिकायतें निपटानेका** काम सौंप देतेहैं।

वस्तुतः न्यायिक अदालतोंसे इनकी कोई समानता नहीं होती, बल्कि ये अदालतें शिकायत करनेवालोंपर शिकायतके ठीक विपरीत विभाग द्वारा गढ़े गये आरोप थोपकर उनकी आड़में समझौतेके नामपर उपभोक्ताको हुई हानिका (१) पूर्ति ही नहीं करते (२) अथवा हानिका एक अंश देकर शिकायतके आधारको समाप्त करनेका प्रयत्न करते हैं और अधिकांशतः सफल होतेहैं।

मूल शिकायत भेजने और विभाग द्वारा उन्हें स्वीकार न कर **सर्वप्रथम** उसके विपरीत गढ़े आरोप भेजे जातेहैं और शिकायतके कारण बननेवाले दोषी कर्मचारियोंको बचानेके ही उद्देश्यसे शिकायतोंको वर्षों तक लटकाया जाताहै। इस बीच विभागीय आरोपोंके मूलको कुरेदते हुए विभागीय भ्रष्टाचारके विरोधमें जो पत्र भेजे जातेहैं, न तो कभी उनका उत्तर दिया जाताहै, न चर्चा की जातीहै। अदालत नामसे गठित बैठकमें भी इन्हें टालनेका ही प्रयत्न होता है। वस्तुतः इनका लक्ष्य दोषी कर्मचारियोंको बचाना, इन कर्मचारियोंके कारण विभागको होने अथवा हो सकनेवाली हानिसे बचाने अथवा उसे कम करनेके लिए समझौतेके नामसे एकल अफसरीय अदालतका निर्णय लाद दिया जाताहै। इन अदालतोंकी **वैधानिक** स्थितिका भी किसीको पता नहीं है।

वस्तुतः सरकारी विभाग अदालतोंके नामपर शिकायतोंके आधारको दबातेहैं, सरकारी कर्मचारियोंके अपराधोंको इस प्रकार अप्रत्यक्ष समर्थन प्रदानकर शिकायत करनेवालोंको और अधिक पीड़ित करनेके सभी सम्भव उपाय किये जातेहैं।

यह सब विवरण दूरभाष (टेलिफोन) विभाग द्वारा आयोजित अदालतमें उपस्थित होनेके बाद प्राप्त अनुभवोंके आधार पर लिखा गयाहै। विभागसे हम उत्तर और शिकायतोंको दूर करनेकी कार्यवाहियोंका और दोषी कर्मचारियोंके विरुद्ध उठाये गये कदमोंका विवरण चाहतेहैं।

'प्रकर'—माघ'२०५१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'प्रकर' : जनवरी'९५ : पंजीकरण सख्या १७५८२/६९ : डाक पंजीकरण संख्या : डी एल : १९००९/९४

'पुरस्कृत भारतीय साहित्य

'प्रकर' के "पुरस्कृत भारतीय साहित्य" विशेषांक वार्षिक शृंखलाके अबतक बारह अंक प्रकाशित हों चुकेहै। इसके साथ पूरक रूपमें नवम्बर ९३ अंक भी प्रकाशित है। भारतीय साहित्यमें समग्र रूपसे जिस प्रवृत्तिके दर्शन होते हैं, उसके अन्तर्गत उसमें अपनी प्रादेशिक और क्षेत्रीय विशिष्टता होते हुए भी मूलतः समग्र भारतीय साहित्यकी एकात्मक अन्तश्चेतनाके दर्शन होतेहैं और अन्तःस्फूर्तिके समान स्रोत प्रबल रूपसे उभरकर दृष्टिगोचर होतेहैं। यह भी लक्षित किया जा सकताहै कि समग्र भारतीय साहित्य राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक प्रभावों एवं रूप-शैली-शिल्प, चिन्तन (बहुधा वादग्रस्त चिन्तन) यूरोपसे प्रचुर और आन्तरिक रूपसे प्रभावित है।

न हिन्दी, न अन्य भारतीय भाषाओंके साहित्यका इस दृष्टिसे योजनाबद्ध रूपमें अध्ययन प्रस्तुत हुआ है। उसके भारतीय साहित्यपर चेतनात्मक प्रभावकी सामान्य चर्चा भी नहीं हुई। फिरभी, 'प्रकर' संभावित अध्ययनकी चेतनाको जागृत करनेके लिए इन विशेषांकोंके माध्यमसे प्रयत्नशील है।

अबतक पूरक अंक सहित इन बारह विशेषांकोंमें विभिन्न भारतीय भाषाओंके ग्रन्थोंपर जो समीक्षा-सामग्री प्रस्तुत हुई है, उनकी संख्या इस प्रकार है :

भाषा	ग्रन्थ संख्या	भाषा	ग्रन्थ संख्या	भाषा	ग्रन्थ संख्या
असमी	१०	डोगरी	१०	मराठी	१३
उड़िया	१३	तमिल	१३	मलयालम	१०
उर्दू	३	तेलुगु	११	मैथिली	१२
कन्नड़	१३	नेपाली	९	राजस्थानी	१२
कश्मीरी	६	पंजाबी	११	संस्कृत	९
कोंकणी	११	बंगाली	९	सिन्धी	११
गुजराती	१४	मणिपुरी	१२	हिन्दी	३५

सभी अंकोंकी कुल पृष्ठ संख्या : १३००

कुल समीक्षित ग्रन्थ २२७

इन ग्रन्थोंकी समीक्षाओंसे विदेशी साहित्यके स्पष्ट, प्रबल और गहरे (अनेक बार प्रचारात्मक) प्रभावका जिस रूपमें साक्षात्कार होताहै, वह हिन्दी तथा भारतीय भाषाओंकी गहरी अनुकरणी-प्रवृत्तिका संकेत है। साहित्यिक दृष्टिके साथ वैज्ञानिक विश्लेषणके लिए यह सामग्री सहायक है।

१९८३ से अबतक प्रकाशित 'पुरस्कृत भारतीय साहित्य' विशेषांकोंके पृथक्-पृथक् मूल्य इस प्रकार है : ८३—२०.०० रु.; ८४—२०.००; ८५—२०.००; ८६—३०.००; ८७—३०.००; ८८—३०.००; ८९—३५.००; ९० - ३५.००; ९१—३५.००; ९२—४०.००; ९३—४०.०० रु.; नवम्बर' ९३—१०.००; ९४—४०.०० रु.।

अध्ययन और शोधकी दृष्टिसे यह सामग्री प्रत्येक पुस्तकालयमें संग्रहणीय है।

सभी बारह अंकोंका डाकव्यय सहित मूल्य : ३७५.०० रु.

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार : मुद्रक : संगीता कम्पोजिंग एजेंन्सी द्वारा रायसीना प्रिंटरी चमेलिया रोड, दिल्ली-६।

प्रकाशन स्थान : ए-८/४२ राण प्रताप बाग, दिल्ली-७ दूरभाष : ७११३७६३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकर

फाल्गुन २०५१ [विक्रमाब्द] :: फरवरी : १९९५ [ईस्वी]

काल यात्री है कविता

(ले. प्रभाकर श्रोत्रिय; समीक्षक डा. मूलचन्द सेठिया)

हिन्दी नाटक : विदेशी प्रभावकी परीक्षा

(ले. डा. भानुदेव शुक्ल)

राष्ट्रमें चेतनाका स्थान आत्महननको समर्पित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंक सामग्री

स्वर : विसंवादी

राष्ट्रमें चेतनाका स्थान आत्महननको समर्पित १ सम्पादक

अध्ययन : शोध

काल यात्री है कविता—प्रभाकर श्रोत्रिय ५ डा. मूलचन्द सेठिया

अस्तित्वादी पराजयका उत्सवधर्मी उद्गान और नयी कविता—डा. हनुमन्तराय नीरव ८ डा. पूरनचंद टण्डन

रीति काव्य : एक नया मूल्यांकन– डा. जगदीश्वर प्रसाद ११ डा. अशोक प्रियदर्शी

व्यंग्य अमरकोश—शंकर पुणतांबेकर १२ डा. तेजपाल चौधरी

हिन्दी साहित्यमें वैदेशिक प्रभाव

हिन्दी नाटक : विदेशी प्रभावकी परीक्षा (लेख) १५ डा. भानुदेव शुक्ल

भाषा विज्ञान : चिन्तन एवं दिशाएं

ऐतिहासिक भाषा विज्ञान और भारतका मूगोल १९ डा. राजमल बोरा

उपन्यास

यशका मूल्य—विमल मित्र; : अनुवाद : सुशील गुप्त २७ डा. मदनमोहन तरुण

मोक्ष-पथ—प्रवीन शाह ३० डा. रामदेव शुक्ल

कहानी

एक और सीता—बटुक चतुर्वेदी ३३ डा. भगीरथ बड़ोले

समकालीन चीनी कहानियां—जनुवाद : तङ पिङ, सम्पा. देवेन्द्र चौबे ३६ डा. विपिनबिहारी ठाकुर

आखिर कब तक —एस. एल. मीणा ३८ डा. बजरंग राव बाँगे

काव्य

ये असंगति—भारतभूषण ४१ डा. कृष्णचन्द्र गुप्त

सुनते हुए बारिश—रियोकान; अनुवाद : नन्दकिशोर आचार्य ४३ डा. हरदयाल

पंख बिखरे रेतपर—कुमार रवीन्द्र ४५ डा. विजय कुलश्रेष्ठ

साहित्येतिहास

राजस्थानका हिन्दी साहित्य—सम्पादित कृति ४६ डा. विजय कुलश्रेष्ठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

शोध, अध्ययन,
विवेचन-समीक्षा
की मासिक पत्रिका

प्रकर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूचना

इस अंकमें असावधानीवश अनेक स्थानोंपर फाल्गुन २०५१ के स्थानपर फाल्गुन २०५२ छप गयाहै, पाठकोंसे क्षमाप्रार्थी हैं।

राष्ट्रमें चेतनाका स्थान 'आत्महनन' को समर्पित

शीय अर्थ 'ज्ञानात्मक मनोवृत्ति' दिया गयाहै। कोशार्थ की भावना कुछ सीमित-सी प्रतीत होतीहै। हमें प्रतीत व्याप्ति अधिक व्यापक और अन्तरंग है, जबकि 'ज्ञाना- का एक अंश है। कार्यात्मक स्तरपर यह अधिक क्रिया- है। किसी भी अनभीष्ट गतिकी प्रवृत्ति होनेपर यह का प्रयत्न करतीहै और सावधान होने, चिन्तन अथवा की प्रेरणा देतीहै। वस्तुतः इस स्तरपर सैद्धान्तिक षज्ञोंके लिए छोड़कर भारतीय इतिहासके निर्माणमें त रहने और क्रमशः इस वृत्तिके क्षीण होते जानेके कारण रूप उसके अनुकरण अथवा 'नकल' तक सीमित हो जाने ना चाहतेहैं तथा चेतनात्मक वृत्तिको पुनः जागृत करनेके प्रयत्नोंके लिए अनुरोध करना चाहतेहैं।

चेतनात्मक वृत्तिके जागृत रहते समाजकी गतिशीलता अपनी मौलिकताके प्रति भी जागरूक होतीहै, जबकि अनुकरण-वृत्तिके प्रबल होनेपर आकर्षण-प्रलोभनके कारण तथा तात्कालिक लाभ एवं मनोरंजनके चक्रमें अपनी चेतनात्मक-वृत्तिकी निष्क्रियता बढ़ती जातीहैं और उसके कारण सृजनात्मक एवं मौलिक चिन्तन और कृतित्वके स्थानपर व्यक्तिकी ही नहीं, समाजकी पूरी गतिविधि और कार्यशीलता मात्र अनुकरणपर निर्भर हो जातीहै। अनुकरणके इस रूपमें केवल सामाजिक-सांस्कृतिक मौलिकता ही क्षतिग्रस्त नहीं होती, अपितु चिन्तन सहित जीवनका पूरा रूप मूलाधारसे कटकर आचार-व्यवहार-प्रवृत्ति-स्वभाव चित्र-विचित्र बन जाताहै, जोकि अपनी धरतीसे ही अपरिचित नहीं हो जाती, उससे अपरिचित भी रहना चाहतीहै। इस प्रकार पूरे समाजको दो भागोंके बांट देतीहै और यह बटवारा केवल मानसिक स्तरपर न होकर भौगोलिक रूप भी धारण कर लेताहै। यह तात्कालिक बटवारा न केवल समाजमें शासक-शासित वर्गका सामाजिक-राजनीतिक रूपका होताहै, अपितु समय पाकर यह भौगोलिक स्तरपर भी समाज-देशको खण्डित कर देताहै।

चेतनात्मक स्तरपर होनेवाले इस परिवर्तनको हम अपनेही देशमें लक्षित कर सकतेहैं और इस स्थितिके कटु परिणाम भी हम भोग रहेहैं। यह भी सत्य है कि चेतनात्मक स्तरके परिवर्तनोंकी अन्य सहयोगी प्रवृत्तियां या राजनीतिक स्थितियां भी रहीहैं जो समानान्तर रूपमें देशके चेतनात्मक रूपको पूर्ण रूपसे

वर्ष : २७ अंक : २
फाल्गुन : २०५१ फरवरी : १९९५

शुल्क

आजीवन	१०००.००
वार्षिक	१००.००
एक प्रति	१०.००

'प्रकर' मासिक
ए-८/४२, राणा प्रताप बाग,
दिल्ली-११०००७
दूरभाष : ७११ ३७ ६३

शुल्क बैंक-ड्राफ्ट अथवा मनिआर्डरसे 'प्रकर' के नामसे ही भेजें.
दिल्लीसे बाहरके चैक स्वीकार करनेमें असमर्थ रहेंगे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंक सामग्री

स्वर : विसंवादी

राष्ट्रमें चेतनाका स्थान आत्महननको समर्पित

अध्ययन : शोध

काल यात्री है कविता—प्रभाकर श्रोत्रिय

अस्तित्वादी पराजयका उत्सवधर्मी उद्गान और

नयी कविता—डा. हनुमन्तराय नीरव

रीति काव्य : एक नया मूल्यांकन– डा. जगदीश्व

व्यंग्य अमरकोश—शंकर पुणतांबेकर

हिन्दी साहित्यमें वैदेशिक प्रभाव

हिन्दी नाटक : विदेशी प्रभावकी परीक्षा (लेख) १५ डा. भानुदेव शुक्ल

भाषा विज्ञान : चिन्तन एवं दिशाएं

ऐतिहासिक भाषा विज्ञान और भारतका मूगोल १९ डा. राजमल बोरा

उपन्यास

यशका मूल्य—विमल मित्र; : अनुवाद : सुशील गुप्त २७ डा. मदनमोहन तरुण

मोक्ष-पथ—प्रवीन शाह ३० डा. रामदेव शुक्ल

कहानी

एक और सीता—बटुक चतुर्वेदी ३३ डा. भगीरथ बड़ोले

समकालीन चीनी कहानियां—जनुवाद : तङ पिङ, सम्पा. देवेन्द्र चौबे ३६ डा. विपिनबिहारी ठाकु

आखिर कब तक —एस. एल. मीणा ३८ डा. बजरंग राव बाँगं

काव्य

ये असंगति—भारतभूषण ४१ डा. कृष्णचन्द्र गुप्त

सुनते हुए बारिश—रियोकान; अनुवाद : नन्दकिशोर आचार्य ४३ डा. हरदयाल

पंख बिखरे रेतपर—कुमार रवीन्द्र ४५ डा. विजय कुलश्रेष्ठ

साहित्येतिहास

राजस्थानका हिन्दी साहित्य—सम्पादित कृति ४६ डा. विजय कुलश्रेष्ठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

शोध, अध्ययन,
विवेचन-समीक्षा
की मासिक पत्रिका

प्रकर

सम्पादक
विद्यासागर विद्यालंकार

सहयोग
प्रकाशवती

वर्ष : २७ अंक : २
फाल्गुन : २०५१ फरवरी : १९९५

शुल्क

आजीवन	१०००.००
वार्षिक	१००.००
एक प्रति	१०.००

'प्रकर' मासिक
ए-८/४२, राणा प्रताप बाग,
दिल्ली-११०००७
दूरभाष : ७११ ३७ ६३

शुल्क बैंक-ड्राफ्ट अथवा मनिआर्डरसे 'प्रकर' के नामसे ही भेजें.
दिल्लीसे बाहरके चैक स्वीकार करनेमें असमर्थ रहेंगे.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रमें चेतनाका स्थान 'आत्महनन' को समर्पित

चेतना शब्दका कोशीय अर्थ 'ज्ञानात्मक मनोवृत्ति' दिया गयाहै। कोशार्थ की दृष्टिसे शब्दकी भावना कुछ सीमित-सी प्रतीत होतीहै। हमें प्रतीत होताहै कि 'चेतना' की व्याप्ति अधिक व्यापक और अन्तरंग है, जबकि 'ज्ञानात्मक मनोवृत्ति' इस क्षेत्रका एक अंश है। कार्यात्मक स्तरपर यह अधिक क्रियाशील और सृजनात्मक है। किसी भी अनभीष्ट गतिकी प्रवृत्ति होनेपर यह उसकी निरोधक होनेका प्रयत्न करतीहै और सावधान होने, चिन्तन अथवा कार्य दिशामें परिवर्तनकी प्रेरणा देतीहै। वस्तुतः इस स्तरपर सैद्धान्तिक विवेचनका कार्य विशेषज्ञोंके लिए छोड़कर भारतीय इतिहासके निर्माणमें चेतनात्मक वृत्तिके जागृत रहने और क्रमशः इस वृत्तिके क्षीण होते जानेके कारण जड़ता और परिणामस्वरूप उसके अनुकरण अथवा 'नकल' तक सीमित हो जाने की ओर ध्यान खींचना चाहतेहैं तथा चेतनात्मक वृत्तिको पुनः जागृत करनेके प्रयत्नोंके लिए अनुरोध करना चाहतेहैं।

चेतनात्मक वृत्तिके जागृत रहते समाजकी गतिशीलता अपनी मौलिकताके प्रति भी जागरूक होतीहै, जबकि अनुकरण-वृत्तिके प्रबल होनेपर आकर्षण-प्रलोभनके कारण तथा तात्कालिक लाभ एवं मनोरंजनके चक्रमें अपनी चेतनात्मक-वृत्तिकी निष्क्रियता बढ़ती जातीहैं और उसके कारण सृजनात्मक एवं मौलिक चिन्तन और कृतित्वके स्थानपर व्यक्तिकी ही नहीं, समाजकी पूरी गतिविधि और कार्यशीलता मात्र अनुकरणपर निर्भर हो जातीहै। अनुकरणके इस रूपमें केवल सामाजिक-सांस्कृतिक मौलिकता ही क्षतिग्रस्त नहीं होती, अपितु चिन्तन सहित जीवनका पूरा रूप मूलाधारसे कटकर आचार-व्यवहार-प्रवृत्ति-स्वभाव चित्र-विचित्र बन जाताहै, जोकि अपनी धरतीसे ही अपरिचित नहीं हो जाती, उससे अपरिचित भी रहना चाहतीहै। इस प्रकार पूरे समाजको दो भागोंके बांट देतीहै और यह बटवारा केवल मानसिक स्तरपर न होकर भौगोलिक रूप भी धारण कर लेताहै। यह तात्कालिक बटवारा न केवल समाजमें शासक-शासित वर्गका सामाजिक-राजनीतिक रूपका होताहै, अपितु समय पाकर यह भौगोलिक स्तरपर भी समाज-देशको खण्डित कर देताहै।

चेतनात्मक स्तरपर होनेवाले इस परिवर्तनको हम अपनेही देशमें लक्षित कर सकतेहैं और इस स्थितिके कटु परिणाम भी हम भोग रहेहैं। यह भी सत्य है कि चेतनात्मक स्तरके परिवर्तनोंकी अन्य सहयोगी प्रवृत्तियां या राजनीतिक स्थितियां भी रहीहैं जो समानान्तर रूपमें देशके चेतनात्मक रूपको पूर्ण रूपसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवर्तित करनेके लिए क्रियाशील रहीहैं और अब भी क्रियाशील हैं। क्योंकि चेतनात्मक स्तरका परिवर्तन तत्काल नहीं होता, और इस परिवर्तन-क्रममें दीर्घ-कालीन (कभी-कभी अप्रत्याशित) प्रयत्नोंकी आवश्यकता होती है, इसलिए परिवर्तनके पक्षपाती धैर्य न रख पानेके कारण बाहुबल, राजनीतिक शक्ति और हिंसात्मक मार्ग अपना लेतेहैं। यह एक प्रकारसे मूल चेतना और विरोधी चेतनाका संघर्ष होताहै जोकि किसी तात्कालिक निर्णयपर नहीं पहुंच पाती, इसलिए दीर्घकालीन होतीहैं। इस दीर्घकालीनताका मूल्यभी मानव-समाजको ही चुकाना होताहै भौतिक रूपमें भी, मानसिक और बौद्धिक रूपमें भी। इसका मूल्य भी असाधारण होताहै, रूप भी क्रूर होताहै। यह संघर्ष न काल-सापेक्ष होताहै, न युग-सापेक्ष। इसकी अवधि न तो निर्धारित होती, न उसकी घोषणा की जा सकतीहै। तो क्या यह चेतनात्मक संघर्ष निरवधिक होताहै? मानवीय अनुभवसे तो ऐसा ही प्रतीत होताहै। किसी अहिंसक चेतनात्मक संघर्षकी कल्पना कीजा सकतीहै, उसके सुपरिणामोंका स्वागत भी हो सकताहै, परन्तु अभीतक इस रूपके संघर्षके किसी ऐतिहासिक रूपसे हम परिचित नही है, केवल इस प्रकारकी पुराकथाए अवश्य सुनी-पढ़ीहैं। हम अपनी पीढ़ीके गांधीके अहिंसक चेतनात्मक संघर्षसे परिचित हैं। गांधीजी भारतीय रूप की चेतनाका प्रतिनिधित्व करतेथे। परन्तु उनके इस चेतनात्मक संघर्षकी अनुकूल प्रतिक्रिया केवल उनके समानधर्मा वर्गमें हुई, शेष वर्ग या तो तटस्थ रहे, अथवा सक्रिय प्रतिरोध किया। अनुकूल प्रतिक्रिया न होनेसे जिस स्वतन्त्रचेता राष्ट्रकी अथवा देशकी समाजगत सामूहिक चेतनाकी उन्होंने जो कल्पना की थी, वह कल्पना केवल इतिहासमें अव्यावहारिक कल्पनाके रूपमें स्मरण की जायेगी।

गांधीजीके चेतना-परिवर्तनका एक और दुःखद प्रसंग भी है। गांधीजीने चेतना-परिवर्तनका प्रयोग कांग्रेस कल्चर और उस संगठनसे जुड़े वर्ग तक सीमित रखा। कांग्रेस और उस संगठनकी कल्चरके लिए यह सहयोग आकाशसे आ टपका, अन्यथा इससे पूर्व यह 'गाड सेव दि किंग' चेतना का संगठन था। गांधीजीके इस आशीर्वादात्मक एवं वरद हस्तको पाकर भी कांग्रेस का 'गाड सेव दि किंग' वर्ग सर्वप्रथम तो अपेक्षया अधिक क्रान्तिकारी वृत्तिके तिळक एवं उनके सहयोगियोंको कांग्रेस कल्चरमें पचा नहीं सका, इसके विपरीत वह उन्हें पूर्ण रूपसे निष्कासित करनेमें सफल हुआ। साथही गांधीजी की अहिंसात्मक चेतनामें भी क्योंकि अंग्रेजोंको मान्य स्थान प्राप्त था, यह चेतना 'गाड सेव दि किंग' वर्गको वरदान प्रतीत हुई, जिसके अन्तर्गत वे 'अंग्रेज-अंग्रेजी चेतना' को न केवल जीवित रख सके और उस चेतना का संवर्धन भी कर सके, एवं कांग्रेसका नेतृत्व भी अपने हाथमें रख सके। इसी वर्गकी कल्चरने अमरबेल की भांति कांग्रेसको आच्छादित रखा। इसी वर्गकी सहायतासे माउंटबेटन गांधीजीको कांग्रेसके नेताओंसे दूर रखनेमें सफल हुए। दो भिन्न चेतनाओंके संघर्षका यह रूप इतिहासका अविस्मरणीय प्रसंग है, उसीका परिणाम है कि अंग्रेजोंके चले जानेके अड़तालीस वर्ष बाद भी देशपर "ब्रिटिश चेतना" का राज्य है, भारतीय चेतनाका नहीं।

गांधीजीकी चेतना तथा कांग्रेस-कल्चरके नेताओंकी 'ब्रिटिश चेतना' के अन्तरको ध्यानमें रखना आवश्यक है। गांधीजी मूलतः अपने चेतनात्मक स्तरपर देशकी स्वतत्रतामें विश्वास रखतेथे जनसाधारणको आधार मानकर, जबकि कांग्रेस-कल्चरसे जुड़ा वर्ग सत्तापर अपना अधिकार चाहताथा, इसलिए प्रारम्भमें ब्रिटिश शासकोंका पूर्ण समर्थन करताथा, उसमें 'प्राप्ति' की संभावनाएं क्षीण होनेपर वह 'डोमिनियन स्टेटस' की मांग करने लगा, बादमें गांधीजीके आन्दोलनात्मक रूपोंसे प्रभावित होकर वहभी उनके स्वरमें स्वर मिला-कर उनके साथ आ खड़ा हुआ और उन्हींके नेतृत्वमें 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन', 'असहयोग आन्दोलन', तथा 'भारत छोड़ो' आन्दोलनसे आ जुड़ा। यह ध्यान देने की बात है कि सन् ४२ के 'करो या मरो' आन्दोलनके समय इन नेताओंमें हिचकिचाहटकी भावना थी, पर यह स्पष्ट होनेपर कि सत्ता प्राप्त होनेके लक्ष्य तक पहुंचनेमें किसी प्रकारकी आशंका नहीं है तो वे भी शूरवीर नेताओंके रूपमें उसमें सोत्साह सम्मिलित हो गये। उन्हें शौर्य प्रदर्शनका अवसर मिला और सत्ता हस्तान्तरित होनेके क्षणों तक वे सदेह सकुशल पहुंच गये। उनकी यह मानसिकता उनकी अन्तर्वर्ती चेतनाके रूप को उद्घाटित कर रहीथी। तत्कालीन स्थितिपर टिप्पणी करते हुए अपने समयके एक सुप्रसिद्ध भारतीय पत्रकारने लिखाथा: "वे इतना थक चुकेथे कि आगे किसी आन्दोलनको तैयार नहीं थे।" एक ब्रिटिश लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने भी अपनी पुस्तकमें इस "थकावट सिद्धान्त" का समर्थनपूर्वक उल्लेख कियाथा।

इस क्षीण चेतनाके नेता वर्गने ब्रिटिश सरकारसे उपहार में 'सत्ता' का स्वर्ग अवश्य प्राप्त किया, उसका जो मूल्य दिया वह देशको खण्डित कर गया। खण्डित चेतनाके वर्गने देशको खण्डित किया। यह तो भौगोलिक विखण्डन था, परन्तु जो स्वतन्त्रता मिली, वह भी खण्डित थी, क्योंकि खण्डित चेतनाका वर्ग देशको कभी आन्तरिक अखण्डता प्रदान नहीं कर सका। ब्रिटिश शासनका सत्ता-सूत्र उन्हें कण्ठस्थ था, सत्तापर अधिकार जमाये रखनेके लिए जन-जनको, गण-गणको विभाजित रखो, उन्हें कभी एक सूत्रमें न बंधने दो। इसलिए ऐसा 'आदर्श' संविधान प्रस्तुत किया गया जिसमें उन सभी वर्गों-जातियों-उपजातियोंको आरक्षण प्रदान कर दिया गया जिन्हें अपनेसे भिन्न-वर्गों-जातियों-उपजातियोंसे संकेत मात्रसे भिड़ाया जा सकताहै, अथवा जो नीचेके सत्ता-पद-प्रतिनिधित्वके लिए स्वयं ही भिड़ सकतेहैं और अपनी विशिष्टता बनाये रखने एवं विशेष अधिकार बनाये रखनेके लिए संघर्ष कर सकतेहैं। सत्ता उत्तराधिकारमें प्राप्त की, पूर्व सत्ताकी नीतियोंका अनुकरण किया—देशके विकास और प्रगतिके लिए नहीं। यदि ऐतिहासिक दृष्टिसे गत एक हजार वर्षकी चेतनात्मक वृत्तिसे साक्षात्कारका प्रयत्न किया जाये तो यह आभास होगा कि वह सृजनात्मक एवं रचनात्मक रूप खो चुकीथी, इसके विपरीत भारतीय चेतनाके 'आत्महंता' रूपके दर्शन होतेहैं। आत्महननकी यह प्रवृत्ति दीर्घकालीन आक्रमणों-प्रत्याक्रमणों, निरन्तर अपमानजनक हत्याकांडों, सम्पत्तिनाश, बलात्कारोंके कारण उत्पन्न हुई और इससे जो भीरुता भरा वातावरण बना, उसने पूरे समाजको हताश कर दिया। इस निराशाजनक स्थितिसे पूरे समाजमें ही 'दलित' वर्ग एक विशिष्ट रूप हो गया और उसमें अपने इतिहास और उसकी उपलब्धियोंसे कुछ प्रेरणा प्राप्त करनेकी सामर्थ्य भी नहीं रही। इसका स्थान जिस मनोवृत्तिने लिया उसे हम ऊपर 'अनुकरण' नाम दे चुकेहैं। अनुकरण मूलतः जड़ताकी स्थिति है, जिसमें चेतना निष्क्रिय हो जातीहै। दुर्भाग्य यह है गत ४८ वर्षोंका 'स्वतन्त्र भारत' और उसके सत्ताधीश इस निष्क्रियता एवं जड़ताकी स्थितिको, अनुकरणकी प्रवृत्तिको समाप्त करनेके स्थानपर इसे ही वरदान मानकर उसीको स्थायित्व प्रदान करनेके लिए प्रयत्नशील रहे। स्वयं किसी नवीन रूप अथवा कोई नवीन चिन्तन प्रदान न कर चेतनाकी जागृतिको अपना विरोधी एवं शत्रु मानकर उन प्रवृत्तियोंको नष्ट करनेके कार्यक्रमोंका आयोजन, उत्साह एवं श्रम और धन व्यय कर, करतेरहे। अब भी, वे उसी रूपको स्थायित्व प्रदान करनेपर तुले हुएहैं जो चेतना जागृत करनेका नहीं, आत्महननका मार्ग है।

सुधी पाठकोंसे निवेदन

हम 'प्रकर' की सामग्रीको नया रूप देना चाहतेहैं। उसमें कुछ अधिक विविधता चाहतेहैं जो सुपठित पाठकोंको ग्राह्य भी हो, और उन्हें आकृष्ट भी कर सके। वस्तुतः पत्रिकाका भविष्य इन्हीं पाठकोंपर निर्भर है।

इस दृष्टिसे हम आपके सुझावों और दृष्टिकोणका स्वागत करेंगे।

—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पठनीय ग्रंथ

आलोचना

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य—सम्पा. महेंन्द्र भटनागर	सजिल्द	६०.००
	विद्यार्थी संस्करण	४० ००
अन्धायुग : एक विवेचन—डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा (पुरस्कृत)	सजिल्द	५०.००
	वि. सं.	३०.००
छायावाद : नया मूल्यांकन—प्रो. नित्यानन्द पटेल	सजि.	५०.००
'प्रकर' : विशेषांक [पुरस्कृत भारतीय साहित्य' के १२ अंक, भारतीय साहित्य : २५ वर्ष, अहिन्दीभाषियोंका हिन्दी साहित्य, अन्य विशेषांक]		३७५.००

उपन्यास

अपराधी वैज्ञानिक (विज्ञान कथापर आधारित)—यमुनादत्त वैष्णव अशोक	६०.००
ये पहाड़ी लोग—यमुनादत्त वैष्णव अशोक	३०.००
सुधा (मलयालमसे अनूदित)—टी. एन. गोपीनाथ नायर	३०.००
प्रवासी (वर्माके प्रवासी भारतीयोंकी कहानी)—श्यामाचरण मिश्र	३५.००
शकुन्तला ('अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का औपन्यासिक रूपान्तर)—विराज	३०.००
संस्कृत कथाएं (हिन्दीमें प्राचीन कथाएं)—डॉ. कृष्णकुमार	२५.००

नाटक

देवयानी—डॉ. एन. चन्द्रशेखरन् नायर	२५.००
श्रेष्ठ एकांकी—डॉ. वासुदेवनन्दन प्रसाद	२५.००

जीवन-दर्शन

शंकराचार्य : जीवन और दर्शन—वैद्य नारायणदत्त	२०.००
महर्षि दयानन्द : जीवन और दर्शन— ,,	२०.००
श्री अरविंद : ,, ,, — ,,	२०.००
गुरु नानक : ,, ,, — ,,	३५.००

अन्य प्रकाशन

विस्तारवादी चीन—जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी (परस्कृत)	१०.००
कच्छ—पदमा अग्रवाल ,,	१०.००
एवरेस्ट अभियान—डॉ. हरिदत्त भट्ट शैलेश ,,	१०.००
अफ्रीकाके राष्ट्रीय नेता—जगमोहन लाल	१..००

'प्रकर' कार्यालय

'प्रकर, ए-८/४२ राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल यात्री है कविता[1]

लेखक : प्रभाकर श्रोत्रिय

समीक्षक : डा. मूलचंद सेठिया

'काल यात्री है कविता' हिन्दीके लब्धप्रतिष्ठ आलोचक डॉ. प्रभाकर श्रोत्रियके आलोचनात्मक निबन्धोंका संग्रह है। वह उनकी इसी नामकी पूर्व प्रकाशित पुस्तकका ही संशोधित-परिवर्द्धित संस्करण है, परन्तु डा. श्रोत्रियकी समीक्षा-दृष्टिमें युग-मानवकी भविष्य-चिन्ताके प्रति जो गहरा लगाव और भाव-संवेदन एवं विचार-बोधकी अद्यतन प्रवृत्तियोंको आत्मसात् करनेका जो उदग्र आग्रह रहाहै, उसके कारण यह कृति प्राचीन होकर भी नवीन प्रतीत होतीहै। यह हिन्दी कविताका इतिहास नहीं है; परन्तु इसमें हिन्दी कविताके सभी युगोंका स्पर्श किया गयाहै। आलोचकने हिन्दी कविताको एक प्रवाहके रूपमें देखना चाहाहै "कविता कोई खण्डित घटना नहीं है, यह काल और अनुभव-प्रवाहकी निरन्तरता है।' जो कविता अपनेमें युगीन यथार्थको समाहित कर समय-साक्ष्य बनतीहै, वही कविता कालजयी होतीहै। कालको लांघकर नहीं, अगस्त्यकी भांति उसका आचमन करनेवाली कविता ही कालके भालपर अपनी पहचान अंकित करतीहै। तुलसी, सूर, भारतेन्दु और निराला जैसे कवियोंने अपने अन्तस्में युगकी आग और रागको सहेजाथा, तभी वे इतने जीवन्त कवि बन सके कि उनकी वाणीमें इतिहास उतर आयाथा। डा. श्रोत्रिय एक युग-चेता आलोचक हैं और बार-बार कवितामें समय और समाजके दबावको आंकते रहतेहैं; परन्तु उनका काव्य-चिन्तन एकांगी न होकर व्यापक और बहुआयामी है। तभी तो अपनी सारी समय-संचेतनाके बावजूद यह बुनियादी सवाल उठा सकेहैं 'क्या कविता समयका उगालदान है?···क्या कविताका इतना ही काम है कि वह समयके बहावमें बहती रहे? क्या उसे समयपर अपना हस्ताक्षर नहीं करना चाहिये और जरूरी ऐतिहासिक विश्लेषणके सहारे आगामी समयके दरवाजेपर अपनी दस्तक नहीं देनी चाहिये?'

'भारतीय साहित्यकी परम्परा' के नामसे जो नया अध्याय नवीन संस्करणमें जोड़ा गयाहै, वह हिन्दी कवितासे सीधे सम्बद्ध न होकर भी उसे भारतीय साहित्यका पृष्ठाधार प्रदान करताहै। वेद, रामायण, महाभारत और कविकुल गुरु कालिदासके काव्य भारतीय मनीषाके उत्स भी हैं और सर्वोच्च शिखर भी है। "यदि हम वैदिक-औपनिषदिक साहित्यको समग्रतामें समझें तो कुल मिलाकर वह समता-पोषक, अग्रगामी और उदारचरित साहित्य है। 'रामायण' भी कोरा काव्य नहीं हैं, उसमें वाल्मीकिने 'भारतके सांस्कृतिक चरित्रकी प्रतिष्ठा कीहै। इसी प्रकार, 'महाभारत शक्ति और वेगका काव्य है। इसमें बनती हुई सभ्यताके सारे मिश्रण, तनाव, अव्यवस्था, अशान्ति और संघर्ष है।' संस्कृत ही क्यों, सभी भारतीय भाषाओंके जो प्राचीनतम और महत्तम ग्रंथ हैं, वे प्रायः रामायण या महाभारतके कथा-प्रसंगोंपर ही आधारित हैं।

हिन्दी कविताके आदिकालके सम्बन्धमें डा. श्रोत्रिय के इस मन्तव्यको अस्वीकार करनेका कोई कारण नहीं है : 'संक्रमणकी नाजुक घड़ियोंमें हिन्दी कविताको जन्म देनेका श्रेय विरक्त जैन मुनियों, सिद्धों और नाथोंको है।' कतिपय आलोचकोंने इनकी रचनाओंको धर्म प्रेरित कहकर इन्हें फूंक मारकर उड़ा देनेका प्रयास कियाहै; परन्तु, इसमें नहीं कि चारणों और भाटोंकी अपेक्षा वे हिन्दी कविताके जन्मदाता कहलानेके अधिक अधिकारी हैं। इन मुनियों और नाथ सिद्धोंकी परम्परामें प्रकट

---

१. प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशनः २/३८ अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १३६; डिमा. ९३; मूल्य : १००.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होनेवाले कबीर और जायसी जैसे कवि बाह्याडम्बरोंके द्वैतको बेधकर जिस अद्वैतकी ओर इंगित कर रहेथे, वह अनेक सम्प्रदायों और धर्मोंकी मिलनभूमि बननेकी सम्भावनाको अपनेमें समाये हुएथा। सन्तोंने वस्तुतः शब्द साधनाकी थी, शब्द क्रीड़ा नहीं। डा. श्रोत्रियकी दृष्टिमें 'भक्ति-युग वस्तुतः जन-आन्दोलन था। उनकी साधना रागका विस्तार और उदात्तीकरण थी।' अक्खड़ और फक्कड़ कबीरने चाहे बाहरसे बहुत कुछ तोड़ा फोड़ा हो, परन्तु अन्दरसे लोगोंके दिलोंको जोड़ाथा। डा. श्रोत्रियको भक्त कवियोंसे एक सही शिकायत भी है कि वे अपनी अभिव्यक्तिकी 'सामाजिक समीक्षा नही कर सके।' भक्ति युगमें ही रीति-युग छिपाथा और रीति-युगमें जो कुछ पनपा उसके बीज भक्ति युग में ही पड़ गयेथे।' भक्ति युगमें ही केशव, ब्रह्म, गंग, रहीम आदि कवियोंमें पाण्डित्य प्रदर्शन एवं रीति-निर्वाहकी प्रवृत्तियां प्रबल होने लगीथीं। सूरदास और नन्ददास जैसे अष्टछापके कवियोंने राधा-कृष्णके प्रसंगमें चुम्बन-आलिंगन आदि प्रेम-लीलाओंका जो अनावृत चित्रण कियाहै, उसमें अनंगका रंग बहुत गहरा हो गया है। भक्तिकालीन कवियों और आचार्योंने 'रीति-काल के लिए जो जाजम बिछा दीथी', उसीके कारण कालान्तरमें यह सम्भव हो सका कि 'भक्ति युगमें जो भोग-विलाससे भरा शृंगार परिधिपर बैठाथा उसे केन्द्र में बिठाया जा सके और भक्तिको परिधिकी तरह उसके पहरेपर बिछा दिया जाये।'

'काल यात्री है कविता' में भक्ति युग और रीतियुग की संक्षिप्त चर्चा है जिसमें केवल यही प्रदर्शित किया गयाहै कि भक्तियुग आध्यात्मिकता और पारलौकिकता को प्रश्रय देनेके बावजूद जनके जीवन और उसकी समस्याओंसे सीधा जुड़ा हुआथा जबकि रीति युगके कविकी चेतना ही आश्रयदाताओंकी गुलाम नहीं हो गयीथी, 'कविके साथ कविता भी दासीनुमा हो गयी थी।' भारतेन्दु युगके सम्बध्धमें डॉ. श्रोत्रियका मत है कि 'धर्म, रहस्य, रीति, राज्य—सबका सहारा छोड़कर अपने पैरोंपर खड़ा भारतेन्दु-युगका कवि अपने युगका अग्रपुरुष है।' भारतेन्दु युग केवल कविताका युग नहीं था उसमें नाटक लिखे ही नही, खेले भी गयेथे। उस युगके निबन्धकारोंमें जो जिन्दादिली थी, वह उनके लघु-लघु निबन्धोंमें जैसे छलकी पड़तीहै। उन्होंने पहली बार व्यंग्यका बड़ा सटीक प्रयोग कियाथा। 'एक व्यापक अर्थमें, भारतेन्दु युग, साम्राज्यवाद, पूंजीवाद और अनुकरणवादके विरुद्ध प्रगतिशीलताकी एक सार्थक और सोद्देश्य शुरुआत थी।'

प्रगतिवादके प्रारम्भिक दौरमें छायावादी कविता को पलायन और अतृप्त वासनाके विस्फोटके रूपमें देखा गयाथा; परन्तु क्रमशः आलोचकोंकी दृष्टिमें छायावादको लेकर छायी हुई धुंध साफ होती गयी और उसमें एक नवजागृत राष्ट्रकी अस्मिताका अवबोध और जीवनव्यापी मुक्तिकी आकांक्षाका प्रतिफलन आंका जाने लगा। डॉ. श्रोत्रियने द्विवेदी युगका चलते-चलाते उल्लेख करते हुए लिखाहै 'घटनात्मक स्थूलता जो कविताके लिए कच्चा माल हुआ करतीहै, इस युगकी कविता होगयी।' छायावादसे कविताका 'आभ्यन्तर युग' आरम्भ होताहै। रीति युगकी वासनाजनित पंकिलताके स्थानपर छायावादी कवितामें प्रेम की गंगाजल-सी निर्मलता और सौन्दर्यकी पावनताका साक्षात्कार होताहै। सौन्दर्य वासनाका उत्प्रेरक न होकर चेतनाका उज्ज्वल वरदान बन जाताहै। उस युगमें विद्रोहकी चेतना जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें व्याप्त हो रहीथी।' छायावादी विद्रोह तत्कालीन विद्रोही मानसकी समग्र काव्याभिव्यक्ति था।' छायावाद और प्रगतिवादके अन्तर्कालमें डा. श्रोत्रियने 'हालावाद' की परिकल्पना कीहै और इसे क्षयिष्णु प्रवृत्तियोंका युग घोषित कियाहै। सच तो यह है कि हिन्दीमें 'हालावाद' कभी आया ही नहीं। वैसे, 'बच्चन' के पूर्ववर्ती कवियों में भी बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', भगवतीचरण वर्मा और पद्मकांत मालवीय हाला-प्यालाके प्रतीकोंका प्रयोग करते रहेहैं। सच तो यह है कि हिन्दीका पहला हालावादी कवि कबीर था, जिसने प्रियतमकी प्रेम-मदिरा पीकर आठों पहर मस्तीमें झूमनेका ऐलान कियाथा। वस्तुतः हालावादी कवियोंसे आलोचकका अभिप्राय 'बच्चन', नरेन्द्र शर्मा, अंचल, जानकीवल्लभ शास्त्री और नेपाली आदि छायावादोत्तर कवियोंसे है। इनपर यह आरोप लगागा गयाहै कि ये कवि अपने निजी आवेगों, कुण्ठाओं और अतृप्तियोंको मांसल भाषा दे रहेथे और राष्ट्रीयतासे कटे हुएथे। यह सब प्रचारित करनेके लिए डा. श्रोत्रिय ने अंचलकी रचनाओंसे ही अधिकांश उद्धरण दियेहैं। यह सही है कि छायावादोत्तर कवियोंमें नारीकी अमूर्त छायाके स्थानपर एक जीती-जागती मानवी आकर प्रतिष्ठित हो गयीथी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और इन कवियोंके लिए प्रेम केवल पूजाभाव तक सीमित नहीं था। ये केवल 'दरस' के ही नहीं, 'परस' के भी भूखे थे। इस धाराके प्रतिनिधि कवि 'बच्चन' ने छायावादी कविताके आकाशगामी रथको पृथ्वीपर उतारा था और कविताको जीवनका ऊष्म स्पर्श प्रदान किया था। उनकी कवितामें क्षयिष्णु प्रवृत्तियोंसे अधिक जीवनको गति और स्फूर्ति देनेवाली स्वस्थ अन्तः-प्रेरणाओंका प्राधान्य था। वे जीवन-आस्थाके कवि हैं इसीलिए वे 'बीत गई सो बात गई' के बाद नीड़का निर्माण फिर-फिर करनेके लिए प्रस्तुत हैं।

हिन्दीमें प्रगतिवाद पेरिसके घोषणापत्रके प्रभावसे नहीं आया था। प्रेमचन्दके उपन्यासों और निरालाकी कविताओंमें उसकी दूरगामी पदचाप पहलेसे ही सुनायी पड़ने लगी थी। परन्तु, प्रगतिशील लेखक संघके संगठन ने इसकी गतिको ही त्वरित नहीं किया, इसके स्वरूपको भी प्रभावित किया था। "कुछ कवि राजनीतिके इतना भीतर घुस गये जहां कविताकी मौत हो जाती है।' डा. श्रोत्रियने प्रगतिवादी कविताका विश्लेषण उतना नहीं किया जितना प्रगतिवादी कवियोंकी वादगत प्रतिबद्धता और राजनीतिक शिविरबद्धताको रेखांकित किया है। सन् बयालीसके अगस्त आन्दोलनके प्रति प्रगतिवादियोंकी उपेक्षा और राष्ट्रीय आकांक्षाके विरोधकी जम कर आलोचना की गयी है। इन कवियों ने काव्य-शिल्पके प्रति जिस उदासीनताका परिचय दिया, उसके कारण भी उनकी कविताएं 'तात्कालिक' और सतही बनकर रह गयीं।' हिन्दी कवितामें 'प्रयोग-वाद' का अवतरण 'तार सप्तक' के प्रकाशनके पूर्व ही हो गया था। निराला, नरेन्द्र शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल प्रभृति कवियोंकी रचनाओंमें इस नयी प्रवृत्ति की सुगबुगाहट अनुभवकी जाने लगी थी। 'तार सप्तक' में बदलते हुए माहौलकी समग्र विविधता अभिव्यक्त हुई। नयी कविताका दौर सन् १९५३ में प्रकाशित 'दूसरा सप्तक' से आरम्भ होता है। डॉ. श्रोत्रियको लगता है कि 'दूसरा सप्तक' के कवियोंने नयी कविताके रथपर छायावादकी शानदार सवारी निकाली। 'भारती की रूमानी कविताएं, शमशेरकी मांसल रागात्मकता और भवानीप्रसाद मिश्रकी अमूर्त वायवीयता और कारूणिकता' से आलोचक असन्तुष्ट प्रतीत होता है। उसका दावा है 'तीसरा सप्तक' के कवियोंने जीवनको 'विशुद्ध वैज्ञानिक दृष्टिसे देखा।' यह विशुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि क्या होती है और कविताके सन्दर्भमें इसकी क्या सार्थकता है, यह एक विचारणीय प्रश्न है। यह सही है कि आजकी कविता विज्ञान और यांत्रिकीकी उपलब्धियों और अवधारणाओंकी उपेक्षा नहीं कर सकती, परन्तु कवितामें ये अवधारणाएं संवेदनासिक्त न होकर 'विशुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि' का उन्मेष करते हुए आयेंगी तो फिर कविता क्या कोरा बुद्धि-व्यापार होकर ही नहीं रह जायेगी ?

'कविताका सातवां और आठवां दशक' और 'लम्बी कविता प्रक्रिया और रचना' इस आलोचनात्मक कृतिके सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंश हैं। डॉ. श्रोत्रियका यह मन्तव्य सर्वथा स्वीकार्य है कि 'सातवें दशकके आरम्भमें लिखी जा रही बीटनिक कविता, अकविता, भूखी और नंगी पीढ़ीकी झगड़ालू कविता इतिहासके अंधेरेकी प्रेत-छायाएं हैं। इन कविताओंमें मनुष्यकी पाशविक वासनाओंको खुलकर खेलनेकी पूरी छूट मिली है। परन्तु, कुत्साका यह ज्वार जल्दी ही उतर गया और धूमिल जैसे कवियोंने 'सेक्स और तंत्र बनाम राजनीतिसे भाषा और संवेदन-प्रमेय उठानेकी कोशिश की।' परन्तु, धूमिल और उससे भी अधिक उसके परवर्ती कवियोंमें अविचारित आवेशका प्राधान्य होनेके कारण विकल्पकी स्पष्ट अवधारणा प्रतीत नहीं होती। कहीं-कहीं उनकी सर्वध्वंसवादी मुद्रा गर्हितके साथ वांछितको भी अंगूठा दिखाती हुई लगती है। सातवें और आठवें दशककी हिन्दी कविताके विशद् विवेचनकी तुलनामें नवें दशककी कविताकी केवल दो पृष्ठोंमें चलताऊ-सी चर्चा कर दी गयी है, जबकि इस दशककी हिन्दी कवितामें अनेक महत्त्वपूर्ण अन्तर्बाह्य परिवर्तन हुए थे।

लम्बी कविताकी रचनाके पीछे 'किसी बृहत्तर प्रश्न, व्यापक परिप्रेक्ष्य और जटिल जीवनानुभव' को उसकी जटिलता और समग्रतामें प्रस्तुत करनेकी कोई आन्तरिक अपरिहार्यता होनी चाहिये। डॉ. श्रोत्रियने लम्बी कविताका आरम्भ सुमित्रानन्दन पंतकी कविता 'परिवर्तन' से माना है और तदनन्तर 'प्रलयकी छाया (जयशंकर प्रसाद) रामकी शक्तिपूजा (निराला) असाध्य वीणा (अज्ञेय) मुक्ति प्रसंग (राजकमल चौधरी) पटकथा (धूमिल) नाटक जारी है (लीलाधर जगूड़ी) और लुकमान अली (सौमित्र मोहन) आदि लम्बी कविताओंकी अन्तर्वस्तु और रचना-संविधानका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गहन अन्तर्दृष्टिके साथ विस्तृत विवेचन किया गयाहै। ये कविताएं अपने रचयिताओंके व्यक्तित्वका विस्फोटपरक उन्मोचन करनेके साथही अपने काल-खण्डके व्यक्तित्व और समाजकी चिन्ताओं, विभीषिकाओं और विडम्बनाओंका सीधा साक्षात्कार करातीहैं। उनसे आधुनिक कविताके विभिन्न युगों और बदली हुई मानसिकताका एक प्रामाणिक इतिहास बन सकताहै।

डा. प्रभाकर श्रोत्रिय हिन्दीके उन आलोचकोंमें है जो किसी वाद विशेषके साथ प्रतिबद्ध नहीं हैं। उनके काव्य-चिन्तनमें शिविरबद्धता न होनेके कारण एक प्रकार की उन्मुक्तता और सर्वसमावेशिता है जो कविताकी स्वायत्तताके साथ उसकी समय-सापेक्षताको अकुण्ठ भावसे स्वीकार करतीहै। आपका उस ऐकान्तिक विचारधारासे विरोध है, 'जो समय और कविता दोनों को अलग-अलग बिन्दुओंपर रखतीहैं। कविता जब कोरी सैद्धान्तिक अवधारणाओंको छोड़कर जीवन और जगत्के सीधे सम्पर्कमें आतीहै, तभी वह अपने आत्मरूपकी रक्षा करनेके साथ ही अपनी सामाजिक भूमिका का निर्वाह करनेमें सफल होतीहै। 'काल यात्री है कविता' के निबन्ध कविताको उसकी प्रवाहमयता, मानवधर्मिता और समय साक्षित्वके उन बिन्दुओंपर पकड़तेहैं, जहां व्यष्टि और समष्टि, अन्तःबाह्य, भाव और विचार एवं परम्परा और आधुनिकताके विरोधका परिहार होकर एक प्रकारके साम्मुख्यकी स्थिति उत्पन्न हो जातीहै। यही कारण है कि प्रतिवर्ष सैंकड़ोंकी संख्यामें प्रकाशित होनेवाली आलोचनात्मक कृतियोंकी भीड़में यह खो नहीं गयीहै और इसने अपनी अलग पहचान स्थापित कीहै। □

अस्तित्ववादी पराजयका उत्सवधर्मी उद्गान और नयी कविता[1]

लेखक : डा. हनुमन्त राय नीरव
समीक्षक : डा. पूरनचन्द टण्डन

यह एक महत्त्वपूर्ण आलोचनात्मक रचना है। इससे पूर्व 'अस्तित्ववादी स्वतन्त्रताका प्रभामण्डल और नयी कविता' की रचना करके डा. नीरव आलोचना जगत्में अस्तित्ववादसे संबंधित अपनी प्रखर प्रतिभा, कौशल और योग्यताका परिचय दे चुकेहैं।

यास्पर्स और सार्त्र, हेडेगर, मार्सेल आदिने अस्तित्ववादका जो स्वरूप विकसित कियाथा डा. हनुमन्त रायने उसीको आधुनिक परिस्थितियोंके अनुकूल ढालकर नयी कविताके परिप्रेक्ष्यमें देखनेका प्रयास कियाहै। दुर्भाग्यवश अस्तित्ववादियोंकी कृतियोंमें विद्यमान मानव विकृतियोंके चित्रणको अनैतिकता तथा विद्रूपताकी जो संज्ञा प्रदान कर दी गयीथी, डा. रायने उन्हींको प्रगतिशीलता एवं आशावादितासे संयुक्त कर आत्मसाक्षात्कार तथा आत्मोपलब्धिका मुख्य द्वार बना दियाहै। अस्तित्ववादी साहित्यमें व्यक्तिकी मनःस्थितियोंका चित्रण मिलताहै। ये स्थितियाँ वास्तविकताके अतिरेकके कारण कभी-कभी अद्भुत एवं अवास्तविक लगने लगतीहैं। इस साहित्यके पात्र अपने अस्तित्वकी स्वतन्त्रताकी खोजमें प्रयत्नशील रहतेहैं, अतः उनमें हताशा, संत्रास, निरर्थकता, विफलता, ग्लानि आदिका प्राधान्य रहताहै। मनुष्यको अपनी परिकल्पित योजनाओंकी पूर्तिके लिए सामाजिक परिस्थितियोंसे संघर्ष करना पड़ताहै। मानसिक धरातलपर तो वह धर्म, समाज, सत्ता आदिके कठोर अंकुशको स्वीकार नहीं करता परन्तु जब उसके विचार कार्य रूपमें परिणत होतेहैं तो जगत्की विभिन्न विसंगतियाँ उसके मार्गको अवरुद्ध कर देतीहैं, जिनसे उसका संघर्ष होना स्वाभाविक हो जाताहै। योजनाओंके क्रियान्वयन तथा परिणामके बीच वह अनेक मानसिक स्थितियोंसे गुज़रताहै। कभी वह चिंतित और निराश हो उठताहै, तो कभी वह अपने प्रयासोंका मूल्यांकन करते समय संशयग्रस्त हो जाताहै। कभी उचित-अनुचितके नैतिक प्रश्न उसके मस्तिष्कमें अनास्था उत्पन्न कर देतेहैं, तो कभी परिस्थितियोंसे विवश होकर वह अपनी पराजय स्वीकार कर लेताहै। डा. हनुमन्त रायने इसी पराजयवादी स्थितिको स्वतंत्र मानवीय अस्तित्वके लिए आवश्यक मानाहै। अतः प्रस्तुत रचना में उन्होंने निराशा, संत्रास, निरर्थकता और मृत्यु, संशय, अनास्था, पराजय एवं ग्लानिकी विवेचना आत्मसाक्षात्कारके अनिवार्य साधनोंके रूपमें कीहै। साथही इन भावोंके आधारपर नयी कविताकी मानसिकता एवं पृष्ठभूमिको उजागर करनेपर भी आलोचककी दृष्टि केन्द्रित रहीहै।

---

१. प्रका. नीरव प्रकाशन, १४६/३१, मोहल्ला महाजन, झज्झर रोड, रोहतक—१२४००१। पृष्ठ : २४८; डिमा. ९२; मूल्य : १२०.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्तित्ववादी चिन्तक हताशाको एक आवश्यक उपलब्धिके रूपमें देखतेहैं क्योंकि इसीके द्वारा सहारा देनेवाली वस्तुकी निरर्थकता स्वयं प्रकट हो जातीहै। ऐसी स्थितिमें व्यक्ति उस मूल्यहीन अवलम्बका साथ छोड़कर अपने प्रामाणिक अस्तित्वको पहचानताहै। एकांगी होनेपर उसके हृदयमें नये उत्साह एवं सृजनकी भावना जागृत होतीहै। डॉ. हनुमन्त रायने नयी कविता के माध्यमसे हताशाकी सकारात्मक भूमिकाको स्पष्ट करनेके साथ उसकी नकारात्मक भूमिकाको भी प्रकाशित कियाहै। कुंवरनारायण, लक्ष्मीकांत वर्मा, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना तथा विजयदेव नारायण साहीकी कविताएं हताशाको ही निराशासे छुटकारा पानेका मार्ग बताती हुई दिखायी देतीहैं—

"बेशक अंधकारका अभ्यास पड़ जानेके बाद/तुम्हें लगेगा कि तुम बीच-बीचमें/तिरोहित हो जातेहो/ लेकिन इस थोड़े समयकी मृत्यु-अनुभूतिके बदले/ दिनमें तुम्हारे चारों ओर/चकाचौंध कुन्दनकी रोशनी होगी/जिसमें तुम बेदाग कटारकी तरह तैरोगे।"---(विजयदेव नारायण साही : मछली घर)

तो नयी कविताके युवा कवियों—जगदीश चतुर्वेदी, श्रीकांत वर्मा, कैलाश वाजपेयीने हताशाके नकारात्मक पहलूको ग्रहण करके उसे जीवनसे विमुख कर देनेवाला भाव घोषित कियाहै। हताशाके दोनों पहलुओंका उल्लेख करते हुए डॉ. रायने जागरूक हताशाको ही मनुष्यके अस्तित्वकी स्वतंत्रतामें सहायक एवं उपयोगी स्वीकार कियाहै।

इसी प्रकार उन्होंने अस्तित्ववादी दर्शनके अनुरूप संत्रासको मानवीय जीवनको समझने, जगत्से जूझने तथा अपना स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित करनेके लिए एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व घोषित कियाहैं। उन्होंने अनेकानेक कविताओंको उद्धृतकर संत्रासको स्वतंत्रताकी ओर उन्मुख करनेवाला मूल्यवान् बिन्दु कहाहै। जब भय मनुष्यको चारों ओरसे घेर लेताहै तब मनुष्यको यह ज्ञान होताहै कि संत्रासके कारणही उसने अपना भविष्य खराब कर लियाहै। इस स्थितिमें पहुंचकर वह वर्तमान की विवशताओंका सामना करके सुखमय जीवनको आमंत्रित करनेमें समर्थ हो जाताहै। यही भाव अज्ञेय, मुक्तिबोध, धूमिल तथा सर्वेश्वरदयाल सक्सेनाकी कविताओंमें व्यक्त हुआहै। संत्रासके शिखरपर पहुँचकर ही व्यक्ति ईश्वरीय सत्ताकी पूर्ण अनुभूतिको प्राप्त करनेमें सफल होताहै—

क्या कोई नहीं द्वार, इस भयके पार ?/इससे क्या नहीं है निस्तार ?/या कि वह भय ही है, एक द्वार/उस तक जो, सबको दौड़ाता है/निर्विकार ?

(अज्ञेय : पहले मैं सन्नाटा बुनताहूँ)

अस्तित्ववादके प्रबल समर्थक सार्त्रने इस बातपर बल दियाहै कि मनुष्य सदैव सम्भावनाओंमें जीताहै, अतः जो वह प्राप्त करताहै, वह कुछ समय पश्चात् उसे निरर्थक लगने लगताहै, उसे संतोष प्राप्त नहीं होता। भविष्यकी योजनाओंके समक्ष वह अपने आपको निरर्थक समझताहै। मनुष्य परिस्थितियोंका चुनाव करनेमें स्वतंत्र नहीं होता पर परिस्थिति विशेषके प्रति रुख अपनानेमें स्वतन्त्र होताहै। अतः अपने भविष्यको गौरवमय बनानेके लिए वह स्वयं उत्तरदायी है। विभिन्न प्रयत्नोंसे गुजरते समय उसे पग-पगपर असफलताओंका सामना करना पड़ताहै, जिससे वह यह अनुभव करताहै कि जीवन संघर्षमें भाग लेकर भी उसने कुछ नहीं पाया, उसके विभिन्न प्रयास निरर्थक रहे। इसी प्रकार किसी कार्यके समाप्त हो जानेपर, उसके प्राप्यको भोगकर मनुष्यके समक्ष फिर यह प्रश्न उपस्थित हो जाताहै कि अब क्या करें ?—अन्य कुछ पानेके लिए फिर प्रयत्न करें जो कुछ समय उपरान्त पुनः निरर्थक हो जायेगा। किन्तु भविष्योन्मुखी व्यक्ति निरन्तर कार्यरत रहनेमें ही निरर्थकताका लोप समझताहै। डा. हनुमंतराय नीरवने इन्हीं मान्यताओंको स्वीकार करते हुए नयी कवितामें व्यक्त निरर्थकताको प्रकाशित कियाहै। कनुप्रिया, अंधायुग, जंगलका दर्द, चक्रव्यूह, संक्रान्त आदि कविताओंमें निरन्तर संघर्ष करते हुए मानवीय जीवनके गौरवको प्राप्त करनेका ही संदेश व्याप्त है, जिसे डा. नीरवने अत्यंत प्रभावशाली ढंगसे व्यक्त कियाहै।

मृत्युके संबंधमें अस्तित्ववादी चिन्तक एक विशिष्ट दृष्टिकोणको अपनाये हुएहैं। उनकी मान्यता है कि मृत्यु हमारे जीवनकी दुर्घटना नहीं, अपितु आरम्भसे ही एक ऐसी सम्भावना है जिसे हम अपने अन्दर ही पालते-पोसते रहतेहैं। मृत्यु एक अमिट वास्तविकता है, इस तथ्यको हमें स्वीकार करना ही पड़ेगा, किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि हम जगत्को अस्वीकार करदें, मृत्युके भयसे जागतिक कार्योंमें कोई भाग ही न लें। मृत्यु मनुष्यकी नियति है, इस सर्वोपरि संभावनाके समक्ष दो विकल्प हैं—स्वीकार अथवा नाश। इनमें से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी एकका वरण करना मनुष्यके अपने अधिकारमें है। एक स्थितिमें वह मृत्युसे भयभीत हो आत्महत्याकी ओर प्रेरित होताहै तो दूसरी स्थितिमें वह अपनी योजनाओंको कार्यान्वित करके अपने जीवनको सार्थकता प्रदान करताहै। यही स्थिति अस्तित्ववादी विचारकोंको मान्य हुई। डा. हनुमन्तराय नीरवने मृत्युकी संभावित स्थितियोंका सहज रूपसे वर्णन करके नयी कवितामें विद्यमान जीवनकी नश्वरता जनित निरर्थकता तथा मृत्युके भयसे मुक्त हो संघर्षके वरणकी अभिव्यक्तिको मुखरित करके संघर्षमय जीवनको ही सर्वप्रमुख स्थान दियाहै। स्थान-स्थानपर अज्ञेय, कुंवरनारायण, भारतभूषण अग्रवालकी उक्तियोंको उद्धृत करनेके पीछे उनका महत् उद्देश्य मृत्युको जानकर, स्वीकारकर तथा उसके प्रति तटस्थ होकर सार्थक जीवन व्यतीत करनेकी भावनाको अस्तित्ववादी दर्शनके अनुरूप विश्लेषित करना रहाहै।

आरम्भसे ही मनुष्य अपने अस्तित्व, जगत्की स्थिति तथा दूसरोंके साथ अपने संबंधोंको लेकर संशय-ग्रस्त रहाहै। नयी कविताके रचनाकारोंके हृदयमें मूल्योंके विघटनके कारण दुविधा उत्पन्न हो गयीथी। ये कवि पुराने पंथके प्रति शंकित थे तथा नया पंथ इन्हें स्पष्ट दिखायी नहीं देताथा। ऐसेमें इन्होंने बेचैन हृदय के चित्रोंको ही अपनी कविताओंमें चित्रित किया। क्या करूँ और क्या न करूँ जैसे प्रश्न सदैव उसके मानसको आन्दोलित करते रहेहैं। नरेश मेहता कृत 'संशयकी एक रात' इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। रामके मनमें संशय है कि क्या युद्ध अनिवार्य है? युद्धके बाद विश्वमें शान्ति होगी? अन्तमें विभीषण संशयको निरर्थक बताते हुए कार्य करनेके महत्त्वको प्रतिपादित करतेहैं। डा. हनुमंत राय नीरवने नये कवियोंके इसी प्रकारके संशयको अभिव्यक्त करते हुए युवा पीढ़ीको निरर्थक हिंसा एवं विध्वंससे उबरकर अपनी जीवन-यात्राको सार्थक बनानेका संकेत दियाहै, क्योंकि निरन्तर संशयसे ग्रस्त जीवन अकेलेपनके प्रवाहमें बहकर खो सकताहै, मनुष्यकी नियति कार्यशील रहनेमें ही है, अतः उसे संशयकी अंधकारमयी दीवारोंको तोड़कर सृजनका मार्ग ग्रहण करना चाहिये। यही अस्तित्ववादी चिन्तकोंका भी मूल संदेश है। इसी प्रकार डा. नीरवने नयी कविताके रचनाकारोंकी धर्म एवं परम्परामें अनास्थाको क्रमशः व्यक्त करनेका प्रयास कियाहै। नयी कवितामें प्रतिष्ठित लघुमानव केवल अपनी शक्तिमें विश्वास रखताहै। उसका विचार है कि जो देवता स्वयं व्यवसायके माध्यम बन गयेहें, उनसे क्या मांगा जा सकताहै। यदि मनुष्य परिश्रम करे तो स्वयं देवता बन सकताहैं। नयी कवि परम्पराओंको तोड़कर संशयके द्वारा सच्चाईको जानना चाहताहै, क्योंकि 'संशय, निकष है/ऋतुका भी'। यही अस्तित्ववादियो को भी मान्य है। सार्त्रका विचार है कि यदि ईश्वर है भी तो हम उसका क्या करें। मनुष्य इस विसंगतिपूर्ण जगत्से संघर्ष मात्र अपनी शक्तिके बलपर कर सकता है। किसी दैवी शक्तिमें आस्था रखना अस्तित्ववादियों को स्वीकार्य नहीं है।

नया कवि अपने अहं बुद्धि-कौशलके कारण शिखर पर स्थापित होना चाहताहै किन्तु जब उसका सामना वास्तविकतासे होताहैं तब वह अपने आपको असहाय पाताहै। ऐसी स्थितिमें उसका मन आत्मग्लानिसे भर जाताहै। इन्हीं पतनोन्मुखी प्रवृत्तियोंको उसने अपने काव्यका विषय बनाया। अपने आपको कभी वह 'बिल्लीकी शक्लमें छिपा हुआ चूहा' कहताहै, तो कभी 'सूखे हुए नलके नीचे जैसे कुत्ता'। उसे अपने अस्तित्व से ही घृणा हो जातीहै। पराजयके कारण उसमें आक्रोश व्याप्त हो जाताहै, जो उसे हिंसक बनाकर बर्बरतापूर्ण जीवन व्यतीत करनेके लिए विवश करता रहताहै। नयी कविताकी विभिन्न पंक्तियोंको उद्धृत करके डा. नीरवने इसी सत्यको सिद्ध कियाहै।

कुल मिलाकर कहाजा सकता है कि हताशा, संत्रास, निरर्थकता, मृत्यु, ग्लानि, अकेलेपन आदि अस्तित्ववादी भावोंको आधुनिक रूपमें व्याख्यायित करके ही नयी कविताका अस्तित्व संभव हो पायाहै। डा. हनुमन्तराय नीरवने अपनी पारखी दृष्टिसे अस्तित्ववादी प्रत्ययोंका सूक्ष्म विवेचन-विश्लेषण करके नयी कविताका मूल्यांकन कियाहै। उनकी मान्यता है कि नये कवियोंने ध्वंसको ही सर्जन माना और विघटनकारी तत्त्वोंको मूल्यके रूपमें ग्रहण किया— नये कवियोंकी सबसे बड़ी भूल है। नये कवियोंने वर्तमान सभ्यता और संस्कृतिको निरर्थक बताकर, नये जीवन मूल्योंकी मांग तो अवश्य कीहै किन्तु समाजके खोखलेपनको दूर करनेके लिए किसी ठोस मार्गको निर्देशित नहीं किया। मात्र विकृतियोंसे गौरवान्वित होनेमें किसी आदर्शके दर्शन नहीं होते। इस प्रकार डा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीरवने नयी कविताके संबंधमें विभिन्न भाषासे नवीन मान्यताएं प्रस्तुत कीहै, जो अनायासही पाठकके मस्तिष्कको आलोड़ितकर चिन्तन-मननके लिए विवश कर देतीहै। उनके द्वारा उठाया गया यह मौलिक कदम निश्चय ही अस्तित्ववादके वास्तविक स्वरूपको समझने तथा नयी कविताकी मान्यताओंपर पुनः विचार करने में दिशादर्शक सिद्ध होगा। ▭

रीति काव्य : एक नया मूल्यांकन[1]

लेखक : डा. जगदीश्वर प्रसाद

समीक्षक : अशोक प्रियदर्शी

रीतिकाव्यको नये परिप्रेक्ष्यमें पढ़ने-समझनेका प्रयत्न हुआ ही न हो, ऐसा नहीं है। डा. नगेन्द्रकी 'रीतिकाव्यकी भूमिका', डॉ. भगीरथ मिश्रका 'हिन्दी रीति साहित्य', डा. बच्चनसिंहकी 'रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना' जैसी पुस्तकोंने एक समय बड़ी ख्याति पायीथी। 'रीतिकाव्य-संग्रह' की लंबी भूमिकामें डा. जगदीश गुप्तने भी रीतिकाव्यका सांगोपांग और सविस्तार अध्ययन कियाहै। इतना सब होनेपर भी डा. जगदीश्वर प्रसाद 'रीतिकाव्यका नया मूल्यांकन' करतेहैं तो उसका कारण है।

रीतिकाव्यको कभी तो हम जीवनकी विविधताके चित्रणके अभावके नामपर नकार देतेहै और कभी उसके चमत्कृत करनेवाले विन्यास और यौवन-जन्य हुलासकी प्रशंसा करते अघाते नहीं। ब्रजभाषाके परिमार्जन, सुकुमार भावों और ललित चेष्टाओंकी मार्मिक व्यंजना, सामन्तवादी युगमें साहित्यिक रुचि जगानेकी चेष्टा आदिको रेखांकित करते हुएभी रीतिकाव्यको विद्वानोंने पढ़ाहै, लेकिन तब भी ऐसी पुस्तकोंसे रीतिकाव्यके संबंधमें जो दृष्टि बनतीहै वह वही है कि 'सा कविता सा वनिता यस्या श्रवणेन दर्शनेनापि। कविहृदयं विट-हृदयं सरलं तरलं व सत्वरं भवति।' स्पष्ट है कि रीतिकाव्यका नया मूल्यांकन अनावश्यक नहीं। डा. जगदीश्वर प्रसाद एक प्रतिष्ठित महाविद्यालयके और भी प्रतिष्ठित शिक्षक रहेहैं। यह पुस्तक उनकी प्रतिष्ठाके अनुरूप और उनकी श्रमशीलताके प्रति आश्वस्ति जगानेवाली है।

"प्रकृति, परम्परा और प्रवृत्तिकी दृष्टिसे रीति-काव्य उस राजपथका साहित्य है जिसका आरम्भ सुदूर अतीतमें सहस्रों वर्ष पूर्व मध्यदेशमें हुआथा"। तब, जब यहांका राजसी-सामंती युग ह्रासके दौरमें था। राजाश्रय पाकर इस युगके स्वतंत्र व्यक्तित्व आचार्य और कवि एक होगये। कविताको प्रायः शिक्षा-सापेक्ष माना गया। ऐहिक शृंगार भावनाको अलंकृत मुक्तक शैलीमें एक नया विन्यास मिला। युगीन संवेदनाओंको एक नयी सशक्त भाषामें अभिव्यक्ति मिली। इसी रीतिकाव्यको पूरी निष्ठा और पूरी एकाग्रता, पूरे श्रम और पूरी सहानुभूतिके साथ इस नयी पुस्तकमें पढ़ने-समझनेका सार्थक प्रयत्न हुआहै। प्रस्तुत पुस्तककी 'प्रस्तावना' में लेखकने स्वयं इस अध्ययनका औचित्य प्रमाणित करते हुए लिखाहै कि —"'साहित्यके कलात्मक मूल्यकी दृष्टिसे हिन्दीका रीतिकाल विशेष विवेचनकी अपेक्षा रखताहै। यह वह काल है जिसमें कलाकी साधना विशुद्ध कलाके धरा-तल पर कीगयी। कलाके इस कालमें कला स्वयं अपना मूल्य बन गयी।··· रीतिकाव्य काव्यात्मक अभि-व्यंजनाके उपादानोंको रूपायित एवं उसका निदर्शन प्रस्तुत करताहै। इस काव्यने हिन्दीको प्रौढ़ता प्रदान कीहै, इसकी अभिव्यंजना-क्षमतामें वृद्धि कीहै। अपने गंभीर रूपमें यह काव्य प्रेम-वृत्तिकी गहराइयोंमें उतरताहै और इसका उदात्तीकरण भक्तिकी सीमा तक हो जाताहै। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश काव्यमें ऐहिकता-प्रधान मुक्तकोंकी जो दीर्घ परम्परा चली आ रहीथी वही अनुरूप परिस्थिति पाकर रीतिकालमें विक-सित हुई। यह काव्यात्मक अभिव्यक्तिके विकासका काल है। शब्दालंकारका चमत्कार और कविताकी सहज धारा—परस्पर विरोधी तत्त्वोंका ऐसा समाहार दुर्लभ है।·· रीतिकाव्यके वैभव और गरिमाके सम्यक् आकलनके लिए इसका अध्ययन इन बिन्दुओंको ध्यान में रखकर करना चाहिये।·· प्रस्तुत अध्ययन इसी दिशा में एक प्रयास है।'

अपने अध्ययनको विस्तीर्ण आयाम देनेके लिए लेखकने इसे चौदह शीर्षकोंमें बांटा है। पहले अध्यायमें रीतिकाव्यके स्वरूप और 'रीति' शब्दकी अर्थ-व्याप्ति पर विचार करते समय समालोचकोंसे लेकर रीतिकाव्य

१. प्रका. : नई कहानी, १७० अलोपी बाग, इलाहाबाद-२११००६। पृष्ठ : २२१; डिमा. ९३; मूल्य : १५०.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के रचनाकारोंकी दृष्टि सामने रखी गयीहै। साहित्य-शास्त्रके पंडितोंकी परिभाषाओंपर तो विचार हुआही है। रीतिकाव्यके विकास-सूत्रवाले द्वितीय अध्यायमें रीतिकाव्यके स्वरूपको निर्धारित और नियमित करने वाले सूत्रोंके विकासमूलक अध्ययनके लिए इसे 'काम-वृत्ति और श्रृंगारिकता', 'कलात्मकता', 'शास्त्रीयता' जैसे उपशीर्षकोंमें बाटा गयाहै। इस क्रममें लेखककी कुछ टिप्पणियां बड़ी अर्थगर्भित है—'काव्यमें शास्त्रीयता का विकास तब होताहै जब चेतनाका स्वतंत्र विकास रुक जाताहै, वैसी स्थितिमें काव्य-प्रतिभा शास्त्रीय नियमोंकी अनुवर्तिनी होतीहै।' 'रीतिकाव्यः प्रभावक स्थितियां और परिस्थितियां' को—राजाश्रय, नागरिक परिवेश, राजनीतिक पृष्ठभूमि, माधुर्य-प्रधान भक्ति की धारा, भाषाकी शैलीगत प्रौढ़ता, स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियोंका विकास, प्राकृत-संस्कृत श्रृंगारिक मूल्योंका प्रभाव नामक—खण्डोंमें बांटकर पढ़ा गयाहै। लेखकका निष्कर्ष है कि 'इसमें उद्दाम ऐन्द्रियता है और श्रृंगारके भी भक्तिरस तक उदात्तीकरणकी चेष्टा है, मिलनके चित्रों की मादकता है और वियोगकी मार्मिक हृदय-स्पर्शिता भी। 'रीतिकवियोंकी सौंदर्य-चेतना और श्रृंगार दृष्टि' को अलग-अलग अध्यायोंमें बांटा गयाहै। लेखक बताता है कि रीतिकाव्यके रूप-चित्रणमें ऐन्द्रिय स्पर्शकी प्रधानता है, किन्तु विषयानन्द प्रेमानन्द और फिर ब्रह्मानन्द में परिणत होता दिखायी पड़ताहै। पश्चात् श्रृंगार-निरूपणका शास्त्रीय आधार' विवेचित करनेके बाद 'रीतिकाव्यमें श्रृंगार-निरूपण' पर विचार हुआहै। विभिन्न-भावोंके अलग-अलग उदाहरणोंसे इस विवेचन को पुष्ट किया गयाहै तथा श्रृंगारके विकृत चित्रणके भी उदाहरण दिये गयेहैं। 'भारतीय अभिव्यंजना-शिल्पः एक दार्शनिक व्याख्या' के बाद 'रीतिकाव्यकी भाषा', 'रीतिकाव्यमें कल्पना', 'अप्रस्तुत योजना', 'अप्रस्तुतोंकी अभिव्यक्तिके प्रकार', 'अलंकार-योजना' का विस्तृत, प्रामाणिक, चिन्तन-प्रधान सोदाहरण विवेचन है।

अंतिम अध्याय 'रीति काव्यकी उपलब्धियां' है। लेखक कहताहै, और कदाचित् ठीक कहताहै, कि 'शब्द, अर्थ और शिल्पकी जैसी साधना रीतिकालमें हुई वह हिन्दी साहित्यके किसी कालमें संभव नहीं हुई। किन्तु इस कालका दुर्भाग्य है कि इन उपलब्धियोंको उचित गौरव इसे नहीं दिया जाता।...इसकी उपलब्धियोंपर ध्यान न देकर प्रायः सभी आलोचक इसमें तत्कालीन हीन रुचि, विलासिता और कामुकताका प्रतिफलन मानतेहैं, दरबारी काव्य कहकर इसके प्रति उपेक्षा प्रकट करतेहैं।... रीतिकालीन प्रवृत्तियोंका विश्लेषण करने पर स्पष्ट हो जायेगा कि श्रृंगारिकता इन कवियोंकी एक दृष्टिमात्र थी, प्रवृत्ति नहीं। जीवनके अन्य गंभीर मूल्य इस काव्यमें उपेक्षित नहीं थे। इन्होंने श्रृंगार, भक्ति तथा रीतिकी साधना एक साथ कीहै।' अपनी बातको और स्पष्ट करनेके लिए लेखकने अभिव्यंजना-गत उपलब्धियोंको शैलीगत, उक्ति-वैचित्र्य, आरोपण-पद्धति; चित्रात्मकता, वर्ण-चेतना, काव्य-भाषा आदि छोटे-छोटे उपशीर्षकोंके अंतर्गत बांटकर पढ़ाहै। हां, ये बिभाजन इतनी बार क, ख, ग के रूपमें हुएहैं कि थोड़ा सा उलझातेभी हैं।

कुल मिलाकर यह पुस्तक रीतिकाव्यके संदर्भमें हमारी दृष्टिको व्यापक बनातीहै। पुस्तक हिन्दीकी उच्च कक्षाके विद्यार्थियोंके लिए उपयोगी है और उत्तर मध्यकालके प्रेमी पाठकोंके लिएभी। □

विशिष्ट व्यंग्य कोश

व्यंग्य अमरकोश[1]

कोशकार : शंकर पुणतांबेकर
समीक्षक : तेजपाल चौधरी

'व्यंग्य अमरकोश' व्यंग्य रचना है, परन्तु व्यंग्य लेखनमें सर्वथा नया प्रयोग। ग्रन्थका नाम प्रथम दृष्टिमें एक कौतूहल जगाताहै कि क्या एक-एक शब्दको लेकर व्यंग्य लिखाजा सकताहैं? क्या किसी कथा सन्दर्भ या पूर्वपीठिकाके बिना शब्द-व्यंग्यकी सत्ता संभव है या क्या कोश किसी लेखककी चिन्तन-धाराका प्रतिनिधित्व कर सकताहै? शायद विवेच्य कृतिके सन्दर्भमें इन सभी प्रश्नोंका उत्तर 'हां' है। लेखकने एक-एक शब्दको माध्यम बनाकर व्यंग्यक मर्मज्ञ पाठकोंके व्यंग्यबोधको तृप्त कियाहै। इन शब्दोंमें, व्यंग्यकी मांगके अनुसार, कुछ नगरों, व्यक्तियों या स्थानोंके नाम भी समाविष्ट हो गयेहैं।

१. प्रका. : पंचशील प्रकाशन, फिल्म कालोनी, जयपुर-३०२००३। पृष्ठ : ४७४; डिमा. ९४; मूल्य : ४००.०० रु।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन शब्दोंमें कुछ ऐसेभी है, जिनकी व्यंग्यपरकता सर्वमान्य नहीं है। 'गिलहरी' शब्दको ही लीजिये। उसको लेकर प्रश्न उठना सहज है कि क्या एक मासूम शाकाहारी प्राणी जिसकी पीठकी धारियां, जनश्रुतियों के अनुसार रामके आशीर्वादका चिह्न मानी जातीहैं, किस प्रकार व्यंग्यका विषय हो सकतीहैं ? परन्तु कोशकारने उसको लेकर व्यंग्य कियाहै और प्रभावशाली व्यंग्य कियाहै। वे लिखतेहैं, 'गिलहरी : सात्त्विक प्रकृति-आश्रित एक जीव। तामसिक चूहेकी भांति छिद्र बनाना नहीं जानती, अतः मालगोदाम भोगी नहीं। जो बन्दर इसके कदमोंपर चले, वे जंगली ही रहे और जो चूहेके कदमोंपर, उन्होंने नगरके नगर बना लिये।' कहनेकी आवश्यकता नहीं, यहां व्यंग्य चूहा-वृत्ति पर है। वर्तमान सन्दर्भोंमें गिलहरी जैसा सरल आचरण दयनीय और उपेक्षित हो गयाहै। छेद करनेवाले चूहा-वृत्ति लोगोंके सामने उसके लिए अपना अस्तित्व बनाये रखना भी कठिन हो रहाहै।

इसी प्रकारका एक अन्य शब्द लीजिये—'गर्व'। इसका अर्थ देते हुए व्यंग्यकार लिखतेहैं—'गर्व : उच्चता का भाव, जैसे मुझे गर्व हैं कि मैं भारतीय हूं और मेरे देशमें ऐसे महान् लोग हैं जो मुझे भूख, अन्याय, अत्याचार सहनेकी प्रेरणा देतेहैं।' यहां गर्वकी उदात्त भावना व्यंग्यका लक्ष्य बिन्दु नहीं है। व्यंग्यका लक्ष्य वह व्यवस्था है, जो देशप्रेम जैसी उदात्त प्रवृत्तियोंका भी आदोहन कर स्वार्थका अमृत हस्तगत करना जानतीहै। उसके सामने गौरवकी भावना हास्यास्पद बन गयीहै। सत्तापर कब्जा किये बैठे स्वार्थी लोग केवल उदात्तताका मुखौटा लगाये हुएहैं।

शंकर पुणतांबेकरकी प्रतिभा सामान्यसे सामान्य शब्दका भी व्यंग्यके उपादानके रूपमें प्रयोग करना जानतीहै। 'कलफ' पर लिखे व्यंग्यकी बानगी देखिये, —'कलफ : वंश, जाति, पद, धन, सम्प्रदाय जैसा मांड, जो सामान्य वस्त्रको भी कड़क बना देताहै।' वस्तुतः हमारे चारों ओर जो 'विशिष्ट लोग' दृष्टिगोचर होते हैं, उनकी अकड़ किसी-न-किसी प्रकारके 'कलफ' का ही परिणाम नहीं है ?

शंकर पुणतांबेकरके व्यंग्यास्त्रकी नोक अधिकतर राजनीतिकी ओर रहीहै। पूर्ववर्ती रचनाओंकी तरह विवेच्य 'कोश' में भी इस रुझानको देखा जा सकताहै। वस्तुतः राजनीति ही तो सारी विकृतियोंकी गंगोत्री है, जो आज नीतिविहीन चालबाजीका पर्याय बन गयीहै। हमारे यहां सत्तामें तो राजनीतिका वर्चस्व है ही साहित्य, धर्म, कला और क्रीड़ाके क्षेत्रभी उसमें अछूते नहीं बचेहैं। ट्रेजेडी तो यह है कि प्रतिभा जैसी कोई चीज राजनीतिक पैंतरेबाजीका मुकाबला नहीं कर पातीं।

राजनीतिके पुरोधा 'नेता' के चरित्रका सम्पूर्ण अंकन व्यंग्य कोशके इस शब्दमें विद्यमान है। 'नेता : वह व्यवसायी, जिसका कच्चा माल जनता है। जनकमल, जनमें रहकर भी जन-असम्पृक्तता, कीचड़की पैदाइश, लक्ष्मीवाहन, भौंरोंका चहेता। जनके साथ उठताहै, पर उसके साथ नीचे नही आता। उसे नीरज, जलजकी तर्जपर 'जनज' कहाजा सकताहै। एक विशालकाय प्राणी, हाथी सा, जिसे अन्धे तो अन्धे आंखवाले भी नहीं परख सकेहै। प्रश्न पैदा करनेवाला उत्तर।'

इन पंक्तियोंमें नेताकी जो रूपाकृति उभरीहै, वह कोशकारकी व्यंग्यशीलताका उत्तम नमूना है। वस्तुतः नेता क्या है ? जनताको वोट मात्र समझनेवाला व्यवसायी, आम आदमीके सुख-दुःखोंसे लापरवाह, जीवन विकृतियोंके कीचड़से जन्म लेनेवाला क्षुद्र जंतु, उल्लूका सजातीय, भ्रमर वृत्ति खुशामदी लोगोंसे घिरा हुआ सामन्ती संस्कृतिका जनतन्त्रीय संस्करण, अपने राजनीतिक महत्त्वको बनाये रखनेके लिए नयी-नयी समस्याओंका जनक, जो हमारे लिए स्वयं एक प्रश्न है।

शंकर पुणतांबेकरने धर्मके विकृत रूपको भी अनदेखा नहीं किया। वस्तुतः आज धर्म न तो 'अभ्युदय' का साधन रहाहै, न 'निश्रेयससिद्धि' का। अन्य हजारों वस्तुओंकी तरह, उसका भी व्यवसायीकरण हो गयाहै। अतएवं धर्म, मन्दिर, पुरोहित जैसे शब्दोंके अर्थ बदल गयेहैं। 'व्यंग्य अमरकोश' के अनुसार धर्म ईश्वरकी राजनीति है, जिसके हाईकमानने हमें ऊपर का स्वर्ग दिखाकर अपना स्वर्ग इसी धरतीपर निर्माण कर लियाहै। 'मन्दिर' को कोशकार 'धर्मकी दुकान' कहताहै और पुरोहितको 'रिलिजस कंसलटेण्ट' जिसके ऊपर रुपया फेंको और पाप पुण्यका हिसाब-किताब ठीक करालो। कोईभी संवेदनशील व्यक्ति स्वीकार करेगा कि आज मंदिर धर्मकी दुकानसे बढ़कर कुछ नहीं रहे। यह क्या कम विडंबनाका विषय है कि कई मंदिरोंमें दर्शनों के लिए टिकट बिक्रीकी व्यवस्था है, जहां नहीं है वहां भी पुजारी चढ़ावा देखकर प्रसाद देताहै।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनकी विषमताओंको उनकी समग्रतामें ग्रहण करना व्यंग्यकार शंकर पुणतांबेकरकी प्रवृत्ति है। डॉक्टर, वकील, अफसर, आलोचक जैसे शब्दोंके अर्थ इसके प्रमाण हैं। डॉक्टरको वे रोगनिवारक जोंक कहते हैं। उल्लेखनीय है कि जोंक रक्त-चिकित्साका परंपरागत साधन रहीहैं। फिरभी वह है तो रक्तपायी प्राणी ही! वकीलको उन्होंने कानूनका व्यापारी और अफसर को 'सरकारको आम और जनताको निबोरी देनेवाला पेड़' कहाहै। साहित्य जगत्की स्थितियां तो कोशकार की स्वानुभूत विरूपताएं है। आलोचकके विषयमें वे लिखतेहैं, 'आलोचक : नीरक्षीर विवेचक, जो हंसके नामपर बगुला ही प्रायः देखा जाताहै। कृतिका अनिवार्य खलनायक, साहित्यका शासक। शासक-सा स्रष्टा नहीं होता अथवा स्रष्टा नहीं होना इसीलिए शासक होताहै।'

इस कोशमें व्यवस्थाकी क्रूरताके साथ-साथ मानव-मूल्योंके प्रति रचनाकारकी आस्थाको भी सहज देखा जा सकताहै। अध्यापक और किसान जैसे शब्दोंके अर्थ इसके प्रमाण हैं। वे अध्यापकको चंदनका वह पेड़ कहते हैं जो आम देताहैं और बबूल जीताहै। किसानको व्यंग्यकार धान्यका जनक कहतेहैं। पर जनकका अर्थ वहाँ 'बाप' नहीं 'विदेह' जनक है।

शैलीके स्तरपर पुणतांबेकरके व्यंग्यमें वक्रता अधिक है। वे उक्ति-वैचित्र्यको व्यंग्यका प्राण मानतेहैं। अतः सरल अभिधात्मक व्यंग्यकी तुलनामें विपरीत लक्षणाका प्रयोग उसमें अधिक मिलताहै। कर्जके विषय में वे लिखतेहैं "वह धन जो खादीकी भांति गरीबकी प्रतिष्ठा घटाताहै तो अमीरकी बढ़ाताहै, या देश सेवाकी भांति गरीबको और गरीब तथा अमीरको और अमीर बनाताहै। उपकारक शब्दकी व्याख्या करते हुए वे लिखतेहैं "उपकार : भला करनेवाला, जैसे रेडियो, टी. वी. विज्ञापन, फैशन आदि। रेडियो टी. वी. न होता तो हम अखबार किताबोंमें ही सीमित रह जाते। विज्ञापन न होता तो वनस्पतिके स्थानपर घी को ही भरोसेका मान बैठते। या फैशन न होता तो उन्नीसवी शताब्दीमें ही जी रहे होते।" कहीं-कहीं तो विपरीत लक्षणा बहुत चुटीली बन पड़ीहै। कोशकार 'डिक्टेटर' का अर्थ इन शब्दोंमें करताहै—'तानाशाह, वह सियार जो अधिकारोंको सीधे सीधे चाहताहै, संविधानकी खाल ओढ़कर नहीं।' ये शब्द प्रजातन्त्रके खोखलेपनको कितनी तीक्ष्णताके साथ बेपर्दा करतेहैं।

पुणतांबेकरके व्यंग्यकी एक विशेषता है कि वह बैठे-ठालेका मनोरंजन नहीं। वह सतर्कता और सूक्ष्म ग्रहणशीलताकी अपेक्षा रखताहै। आप जरा-सा असावधान हुए कि गीले साबुनकी तरह व्यंग्य हाथोंसे फिसला। उसकी क्लिष्टता और दुरूहतासे भी इनकार नहीं किया जा सकता। यह वस्तुतः व्यंग्यका दोष नहीं है। व्यंग्य आवृत अभिव्यक्ति है, वह अनावृत होगा तो अपनी चारुता खो बैठेगा। बिहारीके दोहों और कबीरकी उलटवासियोंका सौन्दर्य उनकी कथन भंगिमामें ही निहित है। फिरभी यह तो मानना ही होगा कि पाठकको आस्वादनमें नारियल फोड़नेकी-सी तकलीफ नहीं होनी चाहिये।

कोशका एक और पक्ष ध्यान खींचताहै, पुनरावृत्ति। यों तो कोशमें प्रत्येक शब्द स्वतन्त्र होताहै और पुनरावृत्ति कई बार अपरिहार्य हो जातीहै। फिरभी अनेक स्थानोंपर उससे बचाजा सकताथा। ▭

'प्रकर' का प्रकाशन-विवरण

फार्म ४ (नियम ८)

प्रकाशन स्थान : ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-७

प्रकाशन अवधि : मासिक

मुद्रक/प्रकाशक/सम्पादक : विद्यासागर विद्यालंकार
नागरिक : भारतीय

पता : ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-७
स्वामित्व : विद्यासागर विद्यालंकार

मैं विद्यासागर विद्यालंकार घोषित करताहुं कि मेरी जानकारी और बिश्वासके अनुसार उपर्युक्त विवरण सत्य है।

२८-२-९५ —विद्यासागर विद्यालंकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी नाटक : विदेशी प्रभावकी परीक्षा

—डॉ. भानुदेव शुक्ल

हिन्दीमें मौलिक नाट्य रचनाकी परम्परा भारतेन्दुके सामाजिक व्यंग्य 'वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति' १८७३ ई.) से मिलतीहै । भारतेन्दुजी एवं उनके सहयोगियोंके सामने आदर्श रूपमें थे संस्कृत नाटक, जिनका रंगमंच शताब्दियों पहले ध्वस्त किया जा चुकाथा, अंग्रेजी नाटक तथा उनकी अनेक-पटीय मंचपर प्रस्तुतियां, बंगला नाटक जो शेक्सपीयरके नाट्य-रंगमंचको अपनाकर भी राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतनाके विस्तारके अग्रदूत थे, लोक-नाट्यके विविध रूप तथा विशुद्ध व्यावसायिक दृष्टिसे भ्रष्ट अभिनयों द्वारा दर्शकोंको लुभानेवाली पारसी मंडलियोंकी प्रस्तुतियां । हिन्दी नाटककारोंने अंकोंके दृश्योंमें विभाजन की अनेक-पटीय रंगमंचीय यूरोपीय पद्धतिको पसंद किया । यहभी उन्होंने बंगला नाटकोंके प्रभाववश ही ग्रहण कीथी । साथही यहभी ध्यानमें रखना होगा कि इन हिन्दी नाटककारोंमें अधिकतरको शेक्सपीयरके नाटकोंके परिचय मिल चुकेथे । शेक्सपीयरसे अनेक अनुवाद इसके प्रमाण हैं । ऐडीसनके नाटक 'केरो' के अनुवादसे यहभी अनुमान होताहै कि परिचयका क्षेत्र शेक्सपीयरसे भी आगे था ।

शेक्सपीयरके नाटकोंके प्रति सम्मानके बावजूद हिन्दी नाटककारोंमें अंधानुकरणकी प्रवृत्ति नहीं मिलती । ट्रैजेडी नाटकोंके दया और भयके प्रभाव उत्पन्न करनेके बजाय इन नाटककारोंने ऐसे दुःखान्त रचे जिनमें आदर्शोंके लिए बलिदान करनेवाले चरित्र आदर एवं करुणाके भावोंको उभारतेहैं । स्वाधीनताके लिए छटपटाते राष्ट्रको ऐसेही आदर्श चरित्रोंकी आवश्यकता थी । इन नाटकोंमें 'रंग विधान' यूरोपीय है किन्तु नाटककी वस्तु विशुद्ध राष्ट्रीय है । अनेक दृश्यों में अंकोंके विभाजनका यूरोपीय शिल्प उनको उपलब्ध भी था और संभवतः कथानकके क्षिप्र विस्तारके लिए अधिक उपयोगी भी दिखायी दिया होगा ।

अंग्रेज जहां भी गये अपना थियेटर साथ ले गये । ईस्ट इण्डिया कम्पनीके अंग्रेज कर्मचारियोंने अपनी नाट्य अभिरुचिको तृप्त करनेके लिए, बसनेके बाद शीघ्रही कलकत्ता और बम्बईमें अपने थियेटर बनाये । कलकत्तामें 'फ्ले हाऊस' (१७५३ ई.), कलकत्ता थियेटर (१७७५ ई.) तथा 'बम्बई ग्रीन' में १७७० ई. को उनके थियेटर स्थापित हो चुकेथे । इनमें कभी,-कभी अभिजात, भारतीयोंको भी आमंत्रित कर लिया जाता था । शेक्सपीयरके नाटकोंके अधिकारी विद्वान् कैप्टेन रिचर्डसन, माइकेल मधुसूदन दत्त, भूदेव मुखर्जी आदि विद्यार्थियोंको नाट्य-प्रेरणा दे रहेथे । भारतीयोंने शेक्सपीयरके थियेटरके अनुरूप 'बेलगाछिया थियेटर' (१८५७ ई.) बनाया । बंगला भाषामें योगेन्द्रचन्द्र गुप्तने 'हैमलेट' के अनुकरणपर १८५२ ई. में 'कीर्ति विलास' रचाथा । शेक्सपीयरका जादू असर दिखा रहाथा । किन्तु, न तो बंगला भाषाके और न ही हिन्दीके नाटककारोंने इस जादूको सिरपर चढ़ने दिया । वे सोद्देश्य सामाजिक-राजनीतिक नाटक रचने के संकल्प ले चुकेथे । इन नाटककारोंने समन्यवादी नीतिमें भी अपने उद्देश्यको ही महत्त्व दिया । शिल्प यूरोपीय नाटकका किन्तु कथ्य अपना रखते हुए वे यूरोपीय सामाजिक यथार्थवादसे बहुत आगे निकल गये । इस प्रकार पूरे रूपमें यूरोपीय प्रभाववाले नाटक 'रणधीर प्रेममोहिनी' तथा एकाधही और कोई इस युगमें मिलें । सभी महत्त्वपूर्ण नाटकोंकी आत्मा पूरी भारतीय है, बाह्य-परिधान भले ही विदेशी हो ।

जयशंकर प्रसादने भी भारतेन्दुयुगीन समन्वय-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावनाको स्वीकार किया। बंगला साहित्यकारों—उपन्यासकार राखालदास तथा नाटककार द्विजेन्द्र लाल राय आदि—ने प्रसादजीके लेखनपर गहरे प्रभाव डाले। अंकोंके दृश्योंमें विभाजनकी यूरोपीय व्यवस्था सीधे अंग्रेजी साहित्यसे शायद ही उन्होंने ली होगी। भारतेन्दुयुगीन हिन्दी नाटक तथा अपने प्रिय बंगला नाटकोंसे ही अनेकपटीय रंगमंचके योग्य नाट्य-विधानको उन्होंने लिया होगा। अंकोंके विभाजनकी पूरी व्यवस्था रंगमंचसे जुड़ी हुई हुआ करतीहै। आश्चर्यकी बात है कि यूरोपीय मंच-विधानके अनुरूप जिन नाटकोंको प्रसादजीने लिखा, वे रंगमंचकी आवश्यकताओं एवं सीमाओंके प्रति उदासीन है। उनका एकमात्र रंगमंचीय नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' संस्कृत नाट्य-शैलीके अनुसार है। इसमें नान्दीपाठ, सूत्रधार आदि न होते हुएभी यह नाटक संस्कृत नाट्य-रंगमंचके अनुकूल है। उल्लेखनीय तथ्य यह भी हैं कि प्रसादोत्तर कालके प्रमुख नाटककारों—मोहन राकेश आदि—ने रंगमंचीय विचारसे नाटक रचते हुए संस्कृत नाट्य-परंपराको ही अधिक विकसित करते हुए अनेक अंकोंको भी एकही दृश्य-योजनाके साथ रचा। इस प्रकार उन्होंने संस्कृत नाट्य रंगमंचको अल्प साधनयुक्त भारतके लिए अधिक उपयुक्त माना। प्रकाश-व्यवस्था से दृश्य-परिवर्तनकी सूचना देनेकी सुविधाके साथ अब अधिकतर नाटक कथानकको अनेक खण्डोंमें विभाजित कर गति प्रदान करतेहैं किन्तु प्रायः ही मंच-विधान अत्यन्त सरल रखा जाने लगाहै। यूरोप और भारतके नाटकोंका ऊपरी बंधान लगभग समान हो गयाहै यद्यपि मानसिकताओं तथा बाह्य परिस्थितियोंके भेदके कारण नाटकोंके उद्देश्य भिन्न पाये जातेहैं।

प्रसादजीने पश्चिमकी मनोविचलन तथा अन्तः वृत्तियोंके निरूपणकी पद्धतिको, मुख्यतः द्विजेन्द्र बाबूके प्रभाववश, अपनाया। संस्कृत नाटकोंमें व्यक्तिकी निजताके सूचक अन्तर्द्वन्द्वोंकी गुंजाइश नहीं थी। वहां नायक तथा नायिका तथा खलनायक आदिके वर्गगत वैशिष्ट्य ही प्रमुख थे। आन्तरिक उद्वेलनसे युक्त सजीव चरित्रोंमें प्रसादकी रुचि थी। इसलिए उन्होंने चाणक्य स्कन्दगुप्त जैसे उद्वेलित चरित्र गढ़े। किन्तु उनका चाणक्य उनकी मौलिक प्रतिभासे अपने आन्तरिक उद्वेलनमें भी यूरोपीय मनोविश्लेषणकी सीमाको लांघ गयाहै। चाणक्यकी छटपटाहट उसके अपने स्वप्नों को खोनेकी अनुभूतिसे है किन्तु अन्ततः यह छटपटाहट संपूर्ण मानवमात्रके लिए उनके अपने स्वप्नोंसे जोड़नेकी क्षमता रखतीहै। चाणक्यकी यह छटपटाहट महाकाव्य 'कामायनी' के मूलमें भी हैं। कभी ऐसी ही छटपटाहट ने सिद्धार्थको 'बुद्धत्व' की ओर अग्रसर किया होगा। इस प्रकार चाणक्यका आन्तरिक उद्वेलन मानव संस्कृति के सर्वोत्तमको पानेकी आध्यात्मिक छटपटाहटमें बदल कर यूरोपीय मनोवैज्ञानिक निरूपणकी पद्धतिसे बहुत ऊपर उठ गयाहै। प्रसाद तथा राय महोदयने अपने नायकोंको गढ़ते समय युंगसे प्रभाव नहीं ग्रहण किया। उन्होंने तो युंगका नाम भी नहीं सुना होगा। यूरोपीय शैलीपर भारतीय मनीषाके चिन्तनके सर्वोत्तमकी प्रस्तुतिकी चेष्टाको यूरोपीय प्रभाव कैसे कहाजा सकता हैं?

प्रसादके नाटक 'स्कन्दगुप्त' का नायक स्कन्द पूरी तरह पश्चिमके ट्रैजेडी नाटकके नायकके समान हैं। स्कन्द अन्तमें अकेला और हतभाग्य है और इस नियति के लिए, ट्रैजेडी नाटकके नायकके समान, स्वयं जिम्मेदार है। उसने प्रेमका आधार ही गलत चुना। आत्म-केन्द्रित तथा अत्यन्त महत्त्वाकांक्षिणी विजयाके बाह्य सौन्दर्यपर वह मुग्ध होगया। विडंबनाके शिकार स्कन्दपर दया ही आतीहै। एकाकी जीवन देवसेनाने भी अपनाया किन्तु उसने दूसरोंकी सेवाके संकल्पमें इस एकाकीपनको डुबा दिया। स्कन्द देवसेनाके आन्तरिक सौन्दर्यको न तो देख पाया और न ही उचित गरिमाकी रक्षा कर पाया। मानवके ऋणको चुकानेके लिए वह जब प्रेम अर्पित करना चाहताहै तो स्वाभिमानी देवसेना इस सौदेबाजीको अस्वीकार कर देतीहै। विडम्बनाकी शिकार विजया भी होतीहै। किन्तु, विजया और स्कन्द की इस नियतिपर पश्चिमी ट्रेजेडीके सीधे प्रभाव देखना उचित न होगा। नाटकको फलागममें समाप्त करते हुए भी नायकको इस स्थितिमे प्रस्तुत करनेमें उनकी वह काव्यात्मक चेष्टा भी हो सकतीहै जो करुणामें काव्योत्कर्ष देखतीहै। इस विवादमें 'न उलझें' और प्रभावको स्वीकार कर भी लें तो भी नाटक तथा इसके नायकके अंतिम परिणाममें समन्वय दिखायी देगे ही। यह अंत कुछ वैसा ही है जैसाकि वाल्मीकि रामायणमें कथाके सुखान्त होने तथा नायक रामके एकाकीपनको स्वीकार करनेकी दुःखमय परिणतिमें पाया जाताहैं। वाल्मीकि निश्चयही पश्चिमी प्रभावसे दूर थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विवेदी युगमें जी.पी. श्रीवास्तवने फ्रांसीसी व्यंग्य-नाटककार मौलिएके अनेक नाटकोंके रूपान्तरणनुमा अनुवाद किये। उन्होंने थोड़े परिवर्तनोंके सहारे इन अनुवादोंको भारतीय रूप देना चाहा किन्तु बात कुछ विशेष बनी नहीं। अनुवादोंकी, अनेक अत्यन्त उत्तम अनुवादोंकी, परम्परा भारतेन्दु युगसे आज तक बनी हुईहै। शेक्सपीयर, एडीसन, गालवर्दी, इब्सन, लोर्का, कामू आदिके नाटकोंके अनुवाद हुएहैं। मौलिएके एक-दो नाटकोंके अनुवादोंकी कमजोर प्रस्तुतियां हमने दूर-दर्शनपर देखीहैं। लोर्काके नाटकका उत्तम अनुवाद रघुवीर सहायने किया। इस नाटकपर, सूचना है,हिन्दी में फिल्म भी बनीहै। हमारा निवेदन है कि अनुवाद तथा प्रभावमें भेद किया जाना चाहिये। अनुवादकी खिड़कीसे हम अन्य भाषाओंके साहित्योंकी झलक पाते हैं। इससे हमारे रचनात्मक क्षितिज विस्तार पा सकते हैं। प्रभाव हमारे चिन्तनपर हावी हो सकताहै जो कभी-कभी हानिकारक भी हो जाताहै।

पश्चिमी प्रभावोंके स्पष्ट रूप दो नाटककारों—भुवनेश्वर एवं लक्ष्मीनारायण मिश्र तथा असंगतकी नाट्य शैलीपर मिलतेहैं। अंशतः प्रभाव ब्रेश्तकी मार्क्स-वादी नाट्याभिव्यक्तिके भी मिलतेहैं।

भुवनेश्वर विलक्षण प्रतिभाका एकांकीकार था। यदि आधुनिक शैलीका पहला हिन्दी एकांकी तलाशें तो रामकुमार वर्माके 'बादलकी मृत्यु' तथा प्रसादके 'दो घूंट' से कुछ बादके भुवनेश्वरके एकांकी 'श्यामाः एक वैवाहिक विडम्बना' (१९३३ ई.) का दावा अधिक पुष्ट सिद्ध होगा। भुवनेश्वर अंग्रेजी साहित्यकी नवीन-तम धाराकी जानकारी औरोंसे पहले प्राप्त करने तथा इस जानकारीको दूसरोंके सामने उछालनेमें विश्वास करताथा। बहुत कुछ इस प्रदर्शन-प्रियतामें उसने सबसे भिन्न प्रकारके, पश्चिमकी नवीनतम साहित्यिक शैलीके एकांकी रचे। 'कारवां' (१९५३ ई.) संकलनके एकांकी 'असर' तथा 'स्ट्राइक' उसके बहुचर्चित एकांकी हैं। पश्चिमकी फ्राइडीय मनोविश्लेषणकी पद्धतिपर रचा 'असर' छः दशक बादभी नयेपनके आभास देताहै। जार्ज बर्नार्ड शॉकी व्यंग्य-विद्रूपकी शैलीका वह विशिष्ट नाटककार है। किन्तु उसमें 'शॉकी सी सोद्देश्य सकारात्मक चेष्टा नहीं है। १९४६ ई. में प्रकाशित एकांकी-संकलन 'तांबेके कीड़े' में हम विश्वके सबसे पहले असंगत शैलीके नाटककी झलक पातेहैं। किन्तु, स्वाधीनताके लिए आतुर भारतीय समाज इस नकारात्मक मानसिकताके स्वागतके लिए तैयार न था। हिन्दीमें असंगतकी शैलीके नाटक भुवनेश्वरके बजाए पश्चिमके वैकेट आदिके प्रभावमें रचे गये। यह भी एक विडम्बना भुवनेश्वरके साथ जुड़ी हुईहै।

पं. लक्ष्मीनारायण मिश्रके लेखनका एक महत्त्वपूर्ण भाग पश्चिमी बुद्धिवाद एवं तर्कवादसे प्रेरित है। मिश्र जीने डी. एल. राय तथा प्रसादजीपर आरोप लगाया था कि वे पश्चिमकी, विशेषकर शेक्सपीयरकी रूमा-नियतके प्रभावसे रचना कर रहेथे। रूमानियतकी प्रति-क्रियामें मिश्रजीने बुद्धिवादको अपनाया जो विशुद्ध पश्चिमी प्रभाव था। मिश्रजीका बुद्धिवाद प्रायः ही तर्कवादमें जा उलझताहै। यह नाटकके लिए प्रतिकूल परिस्थिति है। अपने समस्या नाटकोंमें अनेक बार मिश्रजी भुवनेश्वरसे भी अधिक अभारतीय प्रकट हुए हैं। इन नाटकोंमें दृश्यात्मकता भी कम है। इन नाटकों की भावभूमि न पश्चिमकी है और न ही भारतकी। शॉ के बुद्धिवादको लेनेकी चेष्टा तो है किन्तु इनमें वह धार नहीं है जिसने शॉ के नाटकोंको विशिष्टता प्रदान कीहै। संभवतः प्रतिक्रियाका ज्वार उतर जानेपर, स्वयं मिश्रजीने यह अनुभव किया होगा क्योंकि वे पुनः ऐति-हासिक-पौराणिक नाट्य-रचनामें संलग्न हुएथे। डा. नरनारायण रायका विचार है—'उन्होंने यह अनुभव किया होगा कि गांधीजीकी यह विजय तर्क एवं बुद्धिके यथार्थपर भावना एवं जीवनादर्शोंकी विजय है। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ होगा कि तर्क और बुद्धिपर आधारित उनका यह यथार्थवाद, जिसकी वकालत अपने समस्या नाटकोंमें वे करते रहेहैं, भावनात्मक एवं मानवीय आदर्शोंके समक्ष कितना बौना, क्षुद्र, व्यक्तिगत और उपेक्षणीय अतः त्याज्य है।' (नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्र—पृ. ३४)। हमारा अनुमान है कि अपनी प्रति-क्रियात्मक सक्रियतासे थककर मिश्रजी अपनी सहज भूमिपर लौट आये होंगे। विदेशी शैलीका मोह भी क्रमशः छंट गया होगा। प्रतिक्रियात्मक सक्रियतामें व्यक्ति शीघ्र ही थक जाया करताहै क्योंकि असहज होकर लम्बे समयतक कार्य करते रहना अत्यंत कठिन हुआ करताहै। डा. माहेश्वरका मत है—'मिश्रजी इब्सन से बहुत अधिक प्रभावित हैं। यहांतक कि उनके नारी-पात्र भारतीय परम्पराओंसे पूर्णतया मुक्त प्रगल्भ यूरो-पीय नारी-पात्रोंकी समकक्षता करते दीख पड़तेहैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथार्थवादके नामपर अनैतिक यौन संबंधोंका चित्रण और उनका औचित्य प्रतिपादित करना ही जैसे इन नाटकोंका मूल विषय बन गयाहैं।' (हिन्दी-बंगला नाटक—पृ. २५९)।

असंगतकी अनास्था, घोर नैराश्य तथा अवसाद-भरी मानसिकता पश्चिमकी देन है। इस मानसिकता को स्वाधीनताके संकल्पके दौरमें हिन्दी नाटककारने अस्वीकार कर दियाथा, किन्तु स्वाधीनताके बादकी मूल्यहीन राजनीति तथा निरन्तर बढ़ती स्वार्थपरताके दौरमें, मोहभंगकी स्थितिमें, हताशाके प्रभाव बढे। यूरोपमें विनाशकारी महायुद्धकी समाप्तिके साथ आणविक हथियार खनखनाता शीतयुद्ध छिड़ गया। घोर नैराश्य तथा सब कुछको बेमानी माननेकी मानसिकताने बैकेट तथा उनके नाटक 'वेटिंग फॉर गोडो' (१९५२ ई.) को महत्त्व दिया। उल्लेखनीय है कि 'तांबेके कीड़े' (१९४६) के एक वर्ष बाद फ्रांसमें ज्याँ जैनेका असंगत नाटक 'द मेड्स' प्रकाशित हुआथा जो विशेष हलचल नहीं मचा सकाथा। स्पष्ट है कि यूरोपमें भी उस समय घोर नैराश्यकी मानसिकता नहीं बनीथी। भारतमें यह मानसिकता स्वाधीनताके लगभग एक दशक बाद पूर्ण विकसित हुई। तभी हिन्दीमें यूरोप की इस धाराको स्वीकृति मिलनी प्रारंभ हुई। हिन्दी का असंगत नाटक भुवनेश्वरके बजाए बैकेटके प्रभावमें रचा गया। बैकेट, ज्याँ जैने, यूजीन आएनेस्को, आदामोव आदिके नाटकोंके प्रति अनेक नाट्य-प्रेमियों का ध्यान आकर्षित हुआ।

लक्ष्मीकान्त वर्मा, सत्यव्रत सिन्हा, विपिनकुमार अग्रवाल, काशीनाथ सिंह, मुद्राराक्षस तथा रमेश बक्षी असंगतके प्रयोगमें संलग्न प्रमुख नाटककार हैं। विपियकुमार अग्रवाल इस शैलीके सर्वाधिक चर्चित नाटककार हैं जिनके 'तीन अपाहिज', 'कूड़ेका पीपा' तथा 'लोटन' बार-बार मंचित हुएहैं। 'लोटन' में असंगतकी मानसिकताके बजाए गहरे सामाजिक सरोकार हैं, शैली भी अंशतः असंगतकी है। 'खोये हुए आदमी की तलाश' में तो वे पूरी तरह सोद्देश्य रचनाकार दिखायी देतेहैं। सही बात तो यह है कि अग्रवालजीने अनास्था और घोर नैराश्यकी मानसिकताके परिचय केवल 'तीन अपाहिज' तथा 'कूड़ेका पीपा' में प्रदर्शित की। वहां भी उनकी स्वाभाविक आस्था एवं सोद्देश्यताकी यदाकदा झलक मिल जातीहै। इस प्रकार हिन्दीकी प्रमुखतः असंगत शैलीका नाटककार भी पूरी तरह इसकी मानसिकताको नहीं अपना सका।

मुद्राराक्षस तथा रमेश बक्षी हिन्दी नाटकमें यौनाचारके प्रवेशके लिए उत्तरदायी हैं, सामाजिक नैराश्यसे उनका वास्ता कम है। यह यौनाचार पश्चिमके स्वच्छन्दतापूर्ण आचरणके बजाए इन नाटककारोंकी अपनी पसंद अधिक दिखायी देताहै।

असंगतके नाटकोंमें पात्र निजी सत्ताहीन 'टाइप' पात्र होतेहैं। इसमें वर्तमान स्थितियोंमें व्यक्तिका निजताके खो जानेके यथार्थ ही विद्यमान हैं। इन नाटकोंमें, सही अर्थोंमें नायक-नायिकाएं मानसिकताएं ही हैं। यह पूरी तरह पश्चिमी ढर्रेपर हैं।

हिन्दी नाटकमें असंगत जिस धूमके साथ आया उसी प्रकार शीघ्र ही चुपचाप चला भी गया। किन्तु, नाटककारोंने असंगतके अत्यन्त सीधे-सादे मंच-विधान तथा अभिनयकी तीव्रताको ग्रहणकर अपनी रचना-क्षमताको सम्पन्न किया। यूरोपीय प्रभाव जितना भारतीय बन सका उतना ही बचा रहा, शेष झड़ गया। रामेश्वर प्रेम तथा कुछेक अन्य नाटककार-रंगकर्मी असंगतकी शैलीको आवश्यकतानुसार ग्रहण कर अपने नाटकोंको अधिक सक्षम तथा व्यंजनापूर्ण बना रहेहैं। हिन्दी नाटककारने जब भी विदेशी प्रभावको अपने उपयोगका बनाया अर्थात् वस्तु अपनी रखी और शिल्प आयातित रखा, तब-तब हिन्दी नाटककी क्षमता बढ़ी। किन्तु, जबभी वह विदेशी प्रभावमें बह गया उसने अपने पैरोंके नीचेकी भूमिको खो दिया। डॉ. दशरथ ओझाने बतायाहै कि 'नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा', दिल्लीके पूर्व निदेशक इब्राहीम अलकाजी पश्चिमी रंग-प्रस्तुतिसे प्रभावित थे तथा उन्होंने पश्चिमी, विशेषकर ओनीलकी अमरीकी रंग शैलियोंसे परिचित कराया। डॉ. ओझाने पश्चिमी नाट्यधाराओंकी जानकारीको उपयोगी माना किन्तु उनके प्रभावोंके अंधानुकरणकी आलोचना भी कीहै। (आजका हिन्दी नाटक : प्रगति और प्रभाव—पृ. ९४)। हम समझतेहैं यह संतुलित दृष्टि ही उचित है। डा. ओझाने मोहन राकेशके नाटक 'आषाढ़का एक दिन' में बैकेट और ओनीलके प्रभावोंकी बात कहीहै (आजका हिन्दी नाटक : प्रगति और प्रभाव—पृ. ५८-५९)। तथापि, डॉ. ओझाने इस मतको पुष्ट करनेके लिए उपयुक्त कारण नहीं बताये हैं। कहीं ऐसा तो नहीं है कि नाटकमें नयेपनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झलक पाकर इस नयेको पश्चिमसे आया स्वीकार करके पश्चिमी स्रोतोंको खोज लिया गयाहो जबकि ऐसा कुछ नहीं है ? बिना प्रमाणोंके कुछ भी निर्णय कठिन है ।

भारतेन्दु युगसे ही हिन्दी नाटकने सीधे या बंगला नाटक के माध्यमसे पश्चिमी नाट्य-शिल्पसे काफी कुछ लिया है । किन्तु, अधिकतर नाटककारोंने अपनी भूमिपर ही पांव जमाये रखेहैं । यदा-कदा किसीके सिरपर पश्चिमी मानसिकता भी चढ़ बैठी तो उसके पांव उखड़ गये । इस उखड़ी हुई मानसिकताकी रचनाएं हिन्दी नाटककी प्रतिनिधि धाराएं नहीं बन सकीं । बस, हिन्दी नाट्य-इतिहासकी वस्तु बन कर ही ये रह गयीं । लक्ष्मीनारायण मिश्रके समस्या नाटक, भुवनेश्वरके नकारात्मक मानसिकताके एकांकी तथा असंगतकी अनास्था प्रकट करने वाले असंगत शैलीके भी थोड़ेसे नाटक ऐसेही हैं । हिन्दी नाटककी मुख्य धारामें इनसे बाधा नहीं आयी, कभी-कभी तो अभिव्यक्तिके नये प्रकारने उसको वेगही दिया है । पश्चिमी प्रभाव अधिकतर रंग-शिल्पमें हैं नाटकमें अधिक नहीं हैं । और रंग-विधान ? वैज्ञानिक साधनोंने रंग-विधानको लगभग अन्तर्राष्ट्रीय बना दियाहै । रंग-विधानमें उतना अंश अवश्य राष्ट्र या स्थान तक सीमित है जो लोक-नाट्य-कलासे जुड़ा हुआहै । हमारे मतमें अब हिन्दी नाटकमें जो कुछ है, जितना कुछ महत्त्वपूर्ण है, वह कदाचित् ही विदेशी माने जाने योग्य है । पिछले लगभग चार पांच दशकों में पुरा-कथाओंको आजके सन्दर्भोंमें ढालने तथा उसमें अपने आपको खोजने-समझनेकी चेष्टाएं बढ़ी हैं । इन चेष्टाओंमें मूल उद्देश्य यही है कि अपनी संस्कृतिके सन्दर्भमें अपने वर्तमानकी परीक्षा की जाये । इसकी बढ़ती हुई प्रवृत्तिमें नाटककारके स्वदेशी वस्तुके उपयोग के अधिकाधिक आग्रह ही दिखायी देतेहैं । इस प्रवृतिके रहते विदेशी प्रभाव कुछ समय कुछ सीमा तक लुभाने के अतिरिक्त टिक नहीं सकते । फिलहाल तो स्थिति यही है । ▭

भाषा विज्ञान एवं दिशाएं

ऐतिहासिक भाषा विज्ञान और भारतका भूगोल

[अंश : ३, खण्ड : १]

[डॉ. रामविलास शर्माका भाषा-चिन्तन]

—डॉ. राजमल बोरा

उपक्रम

खण्ड तीनका शीर्षक है—'नाग-द्रविड-कोल और हिन्दी प्रदेश', इस तीसरे खण्डमें दोनों खण्डोंका समाहार भी है । तीनों खण्डोंका सम्बन्ध इसमें जोड़ा गयाहै । निष्कर्ष भी हैं और अन्तमें शब्दसूचियां हैं । ५१९ पृष्ठोंके इस खण्डमें ३५७ से ५१९ तकके पृष्ठोंमें लगभग १६३ पृष्ठ शब्द-सूचियोंके हैं । ये अपने-आपमें निष्कर्षोंको पहचाननेके लिए तथ्योंके रूपमें प्रस्तुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामग्री है।

पुस्तकके आरम्भमें तीन अध्याय नाग, द्रविड़ और कोल भाषा परिवारोंसे सम्बन्धित हैं चौथा अध्याय तीनों खण्डोंके निष्कर्षोंसे आरम्भ होताहै। तीनों खण्डों का सामान्य नाम 'भारतके प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी' है। मूल शीर्षक यही है और इसी शीर्षकपर स्वतंत्र अध्याय है। पांचवां और छठा अध्याय भी निष्कर्षोंसे सम्बन्धित हैं। पाँचवें अध्यायका शीर्षक है 'भारतीय व्याकरण परम्परा और ऐतिहासिक भाषा विज्ञान' और छठे अध्यायका शीर्षक है—'भाषाविज्ञान और भौतिकवाद'। ये दोनों अध्याय 'भाषा विज्ञान' विषयको सैद्धान्तिक स्वरूप देनेका प्रयत्न करतेहैं। और अन्तमें शब्दसूचियाँ हैं।

नाग परिवार

इंडोयूरोपियन भाषा-परिवारपर जितना काम हुआहै, उतना चीनी-तिब्बती परिवारपर काम नहीं हुआ। इंडोयूरोपियन परिवारके बाद दूसरा बड़ा परिवार चीनी-तिब्बती परिवार है। भारतके उत्तरमें तिब्बत है और पूर्वमें बर्मा है। तिब्बतकी भाषाओंके समुदायसे बर्माकी भाषाओंके समुदायसे नाग-परिवारका सम्बन्ध है। यों नाग परिवार तिब्बत-बर्मी समुदायसे जुड़ा हुआहै। भारतके पूर्वी अंचलमें और हिमालयकी उपत्यकामें नाग परिवारकी भाषा बोलनेवाले लोग रहतेहैं।

नाग भाषा परिवारका परिचय देते हुए डॉ. रामविलास शर्मा लिखतेहैं—

> "चीनी-तिब्बती परिवारके अन्तर्गत तिब्बती-बर्मा भाषाएं सौ के लगभग हैं। बेनेडिक्टके अनुसार चीनी-तिब्बती परिवारमें यह तिब्बत-बर्मी समुदाय उसका गुरुत्वाकर्षण केन्द्र (सेन्टर ऑफ ग्रैविटी) है अर्थात् चीन-तिब्बती भाषाओंके विराट् प्रसारमें तिब्बत-बर्मी समुदाय सघन केन्द्रभूमिके समान हैं। यह अत्यन्त ध्यानाकर्षक तथ्य है कि केन्द्रभूमि में स्थित लगभग सौ भाषाएँ वाक्य तन्त्रमें चीनीके अनुरूप न होकर आर्य-द्रविड़ भाषाओंके अनुरूप हैं। कोई आश्चर्य नहीं कि ग्रियर्सनने नाग भाषाओंके एक स्वतन्त्र परिवारकी कल्पना कीथी और उनके सहयोगी कोनोवने कोल और नाग भाषाओंमें अनेक समानताएं देखकर कल्पना कीथी कि हिमालयकी उपत्यकाओंमें जहाँ नाग भाषाएँ बोली जातीहैं वहाँ पहले कोल भाषाएँ बोलनेवाले लोग रहतेथे और इस कारण नाग भाषा-तन्त्रमें एक कोल भाषातन्त्र अन्तर्निहित है।" [तीसरा खण्ड, पृ. १८]

कहा गया कि विराट् चीनी-तिब्बती परिवारके लिए किसी एक मूल भाषाका निर्धारण नहीं किया जा सकता। तिब्बती और बर्मी समुदायोंसे भिन्न नाग परिवारकी भाषाएँ किसी एक आदि भाषासे उत्पन्न हुईं यह कहना कठिन है। इस परिवारकी भाषाओंकी बोलियोंकी संख्याएँ अधिक हैं। एक दूसरे गांवकी (पड़ोसकी ही) बोलियाँ अलग-अलग हैं।

इंडोयूरोपियन परिवारमें जननी भाषाकी संकल्पना प्रस्तुत की गयीहै, वैसी संकल्पना किसी अन्य परिवा में नहीं मिलती। स्वयं द्रविड़ परिवारमें मूल भाषाकी संकल्पना नहीं मिलती। तमिल प्राचीन भाषा है किन्तु क्या वह द्रविड़ परिवारकी मूल भाषा भी है—इस सम्बन्धमें निर्णयात्मक रूपमें कुछ कहा नहीं गयाहै। नाग परिवारकी मूल भाषाके सम्बन्धमें कुछ कहना कठिन ही है।

'नाग' शब्दके सम्बन्धमें डॉ. रामविलास शर्मा लिखतेहैं —

> "कुछ लोग 'नाग' की जगह 'नग' या 'नगा' शब्दका प्रयोग करतेहैं। कौनसा शब्द सही है और किसका प्रयोग उचित है, इसका विवेचन यहाँ अनावश्यक है। 'नाग' शब्द भारतीय साहित्यका एक सुपरिचित शब्द है, इसलिए मैंने उसे स्वीकार कियाहै। हिन्दीमें सामान्यतः आजकल नागा शब्दका व्यवहार होता है। वह 'नाग' शब्दका रूपान्तर है।" [तीसरा खण्ड, पृ. २०]

नाग परिवारकी भाषाओंके ध्वनितन्त्रका विवेचन करते हुए उसकी कुछ प्रधान प्रवृत्तियोंका परिचय दिया गयाहै। कुछ इस प्रकार हैं—

> "यदि नागजन मध्यदेशके मूल निवासी होते और बड़े पैमानेपर वे आर्यभाषाएँ बोलनेवालोंमें मिल गये होते, तो इस बातकी बहुत बड़ी संभावना थी कि थाइ भाषाकी तरह हिन्दीभी स्वर तानोंका व्यवहार करती।" [तीसरा खण्ड, पृ. २०]

> "नाग भाषाओंकी दूसरी उल्लेखनीय प्रवृत्ति स्पर्श ध्वनियोंको संघर्षी रूप देनेकी है.....भारतके भाषाई परिवेशमें नाग भाषाएँ ही ऐसी हैं जिनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह प्रवृत्ति व्यापक है। इसलिए संभव है कि आर्य, द्रविड़, कोल आदि भाषाओंने उसे नाग प्रभावसे ग्रहण कियाहो।" [तीसरा खण्ड, पृ. २०-२१]

"/स्/को/ह्/में बदलनेवाली प्रवृत्ति इतनी व्यापक है कि कोईभी भारतीय भाषा परिवार उसके प्रभावसे मुक्त नहीं है। नाग भाषाएँ, भारतसे बाहरकी तिब्बत-बर्मी भाषाएँ उससे मुक्त नहीं हैं। यह प्रवृत्ति मूलतः नाग भाषाओंकी है, यह कहना कठिन है किन्तु वह उन भाषाओंकी प्रवृत्ति है जो स्पर्शतत्त्वका लोप करतीहै। दन्त्य/स्/को /ह्/में वे भाषाएँ बदलेंगी जिनमें महाप्राण ध्वनियोंके उच्चारणका चलन होगा।" [तीसरा खण्ड, पृ. २२]।

"नाग भाषाएँ/च्/और/ज्/का स्पर्शतत्त्व क्षीण करके संघर्षी रूपमें ले लेतीहैं—नाग भाषाओंमें महाप्राणताकी अपेक्षा सघोषताका विकास अधिक हुआहै .." [तीसरा खण्ड, पृ. २३-२४]

ध्वनितंत्रकी तरह रूपतंत्रकी विशेषताएँ भी बतायी गयीहैं। कुछ इस प्रकार हैं—

"इन भाषाओं [नाग परिवारकी] में कुल मिलाकर संस्कृतकी-सी प्रवृत्ति है जिसमें सैंकड़ों संज्ञा शब्द क्रियासूचक शब्द मूलोंसे बनेहैं .....संस्कृतके समान यह भाषा-समुदाय क्रिया और संज्ञामें भेद ही नहीं करता, अपितु क्रियाके आधारपर संज्ञा शब्द भी बनाताहै।" [तीसरा खण्ड, पृ. २६]

"हिमालयकी उपत्यकाओंमें बोली जानेवाली नाग भाषाओं तथा तिब्बतीमें उत्तम पुरुष सर्वनामके दो रूप कोल-द्रविड़-नाग घनिष्ठ सम्पर्क सिद्ध करतेहैं। कनौरी, तिब्बती आदि कुछ भाषाओंमें द्विवचनका चलन है जो कोल प्रभावका परिणाम है। सर्वनामके व्यवहारमें आदर, आत्मीयता, निरादर आदिकी व्यंजना भारतीय प्रभावसे उत्पन्न हुईहैं।" [तीसरा खण्ड पृ. २६-२७]

असममें नाग समुदायकी बोरो भाषा बोली जातीहै। इसी प्रकार उसी प्रदेशमें गारो भी बोली जातीहै। इन दोनों नाग भाषाओंका परिचय लेखकने दियाहै। इन दोनोंका परिचय देनेके बाद उपसंहारमें लिखाहै—

"भारतकी नाग भाषाओंका सम्बन्ध तिब्बती-बर्मी समुदायसे है, चीनकी भाषाओंसे नहीं। तिब्बती-बर्मी-समुदाय वृहत्तर भाषाई क्षेत्र भारतके अन्तर्गत वैसे ही है जैसे—दक्षिण-पूर्वी एशियाकी भाषाएं हैं। नाग भाषाएं मूल आर्यभाषा क्षेत्रको उत्तर और पूर्वकी ओरसे घेरे हुएहैं। वे परिवृत्तकी आर्यभाषाओंको प्रभावित करती रहीहैं, उत्तर-पश्चिमी सीमान्तपर उन भाषाओंसे उनका सम्पर्क रहाहै जिनसे आगे चलकर इंडोयूरोपियन परिवारका निर्माण हुआ। आर्य क्षेत्रके परिवृत्तकी भाषाएं होनेके कारण द्रविड़ और कोल भाषाओं से उनका सम्बन्ध था और इन तीनों भाषा-समुदायोंमें अनेक समानताएं है। नाग भाषाओंमें, द्रविड़-कोल परिवारोंके समाजमें यथेष्ट विविधता है; द्रविड़ कोल भाषाओंके समान ही उनमें यथेष्ट आर्यभाषा तत्त्वोंका समावेशभी हुआहै।' [तीसरा खण्ड, पृ. ३७-३८]

द्रविड़-परिवार

दूसरा अध्याय द्रविड़ परिवारसे सम्बन्धित है। आर्य और द्रविड़ परिवारके सम्बन्धोंका और इस रूपमें प्रचलित मान्यताओंको उघाड़कर रखा गयाहै तथा प्रश्न पूछे गयेहैं कि क्या ऐसा हो सकताहै ? अपनी मान्यताको स्पष्ट करते हुए लिखा—

"मेरी मान्यता यह है कि आर्य और द्रविड़ भाषाएं बोलनेवाले मानव-समुदाय अनेक गण-समाजोंमें विभाजित थे और वे भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोलतेथे। यह स्थिति वैदिककालमें और उससे पहलेभी आर्यभाषाभाषी गण-समाजोंकी थी। यही स्थिति द्रविड़ोंकी थी।" [तीसरा खण्ड, पृ. ३९]

संस्कृत-भाषाको आधार मानकर आर्य परिवार और द्रविड़ परिवारका भेद करना उचित नहीं है। इसी प्रकार आर्य बाहरसे आये और द्रविड़ भी बाहरसे आये—इस विचारधारासे डॉ. रामविलास शर्मा सहमत नहीं हैं। आर्यभाषाओंके केन्द्रमें द्रविड़ लोग रहतेथे, यह स्थापना ठीक नहीं है। यदि ऐसा होता तो आर्य भाषाओंपर उनका प्रभाव अधिक रहना चाहियेथा। यदि वे उत्तर-पश्चिमी सिरेपर रहतेथे या पूर्वी सिरेपर रहते तो उन उन क्षेत्रोंपर द्रविड़ प्रभाव मिलना चाहिये था। आधुनिक भाषाओंका अध्ययन करनेपर आर्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषाओंपर द्रविड़ प्रभाव इस रूपमें दृष्टिगोचर नहीं होता।

आर्यभाषाओंपर द्रविड़ प्रभाव एक समान नहीं है। और संस्कृतको आधार मानकर भी ऐसा विवेचन करना ठीक नहीं लगता। संस्कृतके समान अन्य आर्य-भाषाओंको स्वीकार करेंगे तो इस प्रश्नका समाधान खोजनेमें सहायता मिलेगी।

महाप्राण ध्वनियोंको आधार बनाकर भारत भाषा-परिवारोंका विवेचन करते हुए बतलाया गयाहै—

"भारतके सभी आर्येतर भाषा परिवार, महाप्राण वाली ध्वनि-प्रवृत्तिके विरोधी हैं, विशेष रूपसे सघोष महाप्राण ध्वनियोंवाली प्रवृत्तिके। इनमें द्रविड़ भाषा प्रमुख हैं। आर्यभाषाएं जहां आर्येतर क्षेत्रोंमें फैलीहैं वहां महाप्राणता क्षीण हुईहै, जहां उनके मूल केन्द्र थे, वहां वह सुरक्षित हैं।" [तीसरा खण्ड, पृ. ४३]

कहाहै कि अल्पप्राणताकी प्रवृत्ति उत्तर-पश्चिमसे आयीहै। यही प्रवृत्ति पूरबमें भी है पर वह मिथिला और मगधकी सीमापर रुक जातीहै। वैदिककालमें अल्पप्राणता का प्रभाव कम रहाहै किन्तु आधुनिक भाषाओंमें वह बहुत बढ़ा है। हिन्दीकी पड़ोसी भाषाएं मराठी, गुजराती, राजस्थानी और पंजाबी भाषाओंके ध्वनितन्त्रमें महाप्राणता क्षीण होती दिखायी देतीहै। हिन्दीकी पश्चिमी समुदायकी बोलियोंमें—बांगर, ब्रज, बुन्देलखण्डीमें—भी इस प्रकारके परिवर्तन हुएहैं।

भारतमें आर्य परिवारकी भाषाओंके परिवेशकी भाषाओंमें द्रविड़ परिवारकी भाषाएं हैं। इसका विभाजन प्रधान रूपसे तीन भागोंमें किया गयाहै। एक दक्षिणी-समुदाय है, जिसकी प्रमुख भाषा तमिल है। दूसरा मध्यवर्ती समुदाय है जिसमें गोंडी आदिके अतिरिक्त तेलुगु है और तीसरा ब्राहुइ बोला जानेवाला उत्तरवर्ती समुदाय है। कहतेहैं, कश्मीरके उत्तरमें भी द्रविड़ भाषाएं बोली जातीथीं। लिखाहै—

"हिमालयके उस पार शोपियन कस्बेकी भाषाका जिक्र (डॉ. सिद्धेश्वर वर्माने) कियाहै। यहांके लोग कश्मीरी बोलतेथे किन्तु दूकानदारोंकी भाषामें/सौ/के लिए 'नूर्' शब्द है जो द्रविड़परिवारका है··· रियासी नामके जिलेमें उन्होंने (डॉ. वर्माने) कुछ नयी बोलियोंका पता लगाया। इनमें एक बोली खाशी या खशि थी।···खाशी बोलीके पड़ोसमें द्रविड़ भाषाओंके चिह्न मिले, इसलिए यह अनुमान युक्ति-संगत हैं कि सघोष महाप्राणता की क्षीणता और लोपका कारण द्रविड़ प्रभाव हैं, स्वयं कश्मीरीमें इसी प्रभावसे सघोष महाप्राण स्पर्श ध्वनियोंका लोप हुआ होगा। डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्याने बंगला भाषावाली पुस्तकमें कल्पना कीहै कि ईरानमें भी द्रविड़ रहतेथे। स्वभावतः फारसीमें भी सघोष महाप्राण ध्वनियां नहीं हैं।" [तीसरा खण्ड, पृ. ४६]

णकार [मूर्द्धन्य अनुनासिक] की प्रवृत्तिके स्वतंत्र रूपसे अध्ययन करनेका संकेत करते हुए लिखाहै—

"संस्कृत और आधुनिक उत्तर-पश्चिमी आर्य-भाषाओं तथा द्रविड़ भाषाओंकी ण-कार सम्बन्धी समानता सिद्ध करतीहै कि आर्य-द्रविड़ सम्पर्क भारतके उत्तर-पश्चिममें घनिष्ठ था। जो भाषा केन्द्र उत्तर-पश्चिममें आर्य-द्रविड़ परिवारोंको प्रभावित कर रहाथा, वह दक्षिणकी अन्य द्रविड़ भाषाओंको प्रभावित नहीं कर सकाथा और पूर्वी अंचलमें उसका प्रभाव शून्य था। जो लोग यह मानतेहैं कि आर्य-गण ईरान होते हुए भारत आये, इण्डोयूरोपियन भाषा-परिवारकी एक शाखा भारत-ईरानी है, यह शाखा टूटकर भारतमें संस्कृत बनी, वे इस बातका स्पष्टीकरण नहीं देते कि ईरानीकी नवीन और प्राचीन भाषाओंमें मूर्द्धन्य नासिक्यका व्यवहार क्यों नहीं होता, आर्यभाषा क्षेत्रकी प्राचीन और आधुनिक भाषाओं में क्यों होताहै, यह व्यवहार शूरसेन जनपदकी सीमाओंपर क्यों रुक जाताहै, और द्रविड़ भाषाओंपर इसका प्रभाव तेलुगु तथा अन्य दक्षिण-पूर्वी द्रविड़ भाषाओंपर अत्यन्त क्षीण क्यों है? बहुत समय तक विद्वान् मानते रहे कि मूर्द्धन्य ध्वनियां आर्यभाषाओंमें द्रविड़ सम्पर्कसे आयीं। यहां इतना ही कहना पर्याप्त है कि/ट/वर्ग की शेष ध्वनियोंके साथ/ण्/ का भी व्यवहार हो, यह आवश्यक नहीं है।" [तीसरा खण्ड, पृ. ४८ तथा ४९]

आर्य और द्रविड़ परिवारकी भाषाएं बोलनेवाले समुदायोंके आपसी सम्पर्क और सम्बन्धपर डॉ. रामविलास शर्माकी कुछ अपनी मान्यताएं हैं। इन दोनोंके सम्पर्कके वे दो स्तर मानतेहैं। पहला स्तर वह है जिसमें दोनों भाषा-परिवारोंका निर्माण हो रहाथा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और दूसरा स्तर वह है जब दोनों परिवारोंकी विशेषताएं बहुत कुछ निश्चित हो चुकीथीं और तमिलनाडु समेत दक्षिण भारतमें संस्कृत भाषाका प्रसार होने लगा था। सम्पर्कके इन दो स्तरोंमें ऐतिहासिक भाषा विज्ञान के लिए पहले स्तरको वे अधिक महत्त्वपूर्ण मानतेहैं।

शब्दोंके अध्ययनके आधारपर डॉ. रामविलास शर्माका कहनाहै कि उत्तर-पश्चिम भारतमें आर्य और द्रविड़ोंका सम्पर्क समाजकी उसी अवस्थामें नहीं हुआ जिसमें मानव समुदाय कबीलोंसे संगठित होकर आर्थिक दृष्टिसे पिछड़ा हुआ जीवन बितातेथे वरन् उस समय भी हुआ जब उन्होंने कृषि और व्यापार आदिमें भी उन्नति कर लीथी। इतना विकास कर लेनेके बाद उत्तर भारतमें द्रविड़ोंकी स्थितिमें परिवर्तन हुआ। उनमें कितने आर्यभाषा बोलनेवाले समाजोंमें घुलमिल गये, कितने भारतसे बाहर गये, कितने दक्षिण भारत गये, यह बताना सम्भव नहीं है। एक बात निश्चित है कि द्रविड़ भारतपर आर्योंकी विजयका जो चित्र खींचा गयाहै, उससे उक्त संभावना नितान्त भिन्न है।

काल्डवेलकी द्रविड़ परिवारके सम्बन्धमें मान्यताएं

द्रविढ़ परिवारपर काल्डवेलकी स्वतंत्र पुस्तक प्रकाशित हुईहै (A Comparative grammar of the Dravidian or South- Indian Languages, प्रथम संस्करण १८५६ ई., द्वितीय संस्करण १८७५ ई. दोनों ही संस्करण लंदनमें छपे)। भारतमे उसका प्रकाशन मद्रास विश्वविद्यालयने १९५६ ई. में किया। बादमें उसका पुनर्मुद्रण १९६१ ई. में हुआ। काल्डवेल पहला व्यक्ति है जिसने द्रविड़ परिवारकी संकल्पना प्रस्तुत कीहै। **द्रविड़ परिवार** नामकरण करनेवाला यही व्यक्ति है।

काल्डवेलकी एक स्थापना यह है कि द्रविड़ भाषाओंका सम्बन्ध संस्कृतसे नहीं है। दूसरी मान्यता यह है कि द्रविड़ भाषाओंका सम्बन्ध मध्य एशियाके शक परिवारसे है। काल्डवेलकी इन मान्यताओंके कारणोंको उजागर करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा लिखतेहैं—

"इस प्रयत्नके पीछे उनकी (काल्डवेल की), ईसाई धर्म प्रचारकी भावना थी जो संस्कृतको ब्राह्मणों की भाषा मानकर उससे द्रविड़ भाषाओंको अलग करके उन्हें अपनी ओर खींचनेका प्रयत्न करती थीं। उस समय, और एक सीमा तक अबभी, ऐसे लोग बहुत थे और हैं, जो द्रविड़ भाषाओंको संस्कृतकी पुत्रियाँ मानतेहैं। जो लोग इस धारणा का खण्डन करतेहैं, वे भी भाषाओंमें प्रायः एक ही प्रकारके सम्बन्धकी कल्पना करतेहैं। यदि दो भाषाओंमें सम्बन्ध दिखायी देताहै तो उनमें एक माता होगी, दूसरी उसकी पुत्री अथवा दोनों बहनें होंगी और उनकी माता कोई तीसरी भाषा होगी। काल्डवेल भाषाओंके सम्बन्धपर इसी दृष्टिसे विचार करतेहैं। फिरभी अपने समकालीन और आधुनिक अनेक भाषाविज्ञानियोंकी तुलनामें वे अधिक सावधान हैं। उन्होंने द्रविड़-शक-सम्बन्धके बारेमें लिखाहै कि इस प्रकारके सम्बन्ध की समस्या गौण है। मुख्य बात यह है कि द्रविड़ भाषाओंको हम ज्यादा अच्छी तरह समझें।" [तीसरा खण्ड, पृ. ६०]

काल्डवेलकी शक परिवारकी संकल्पनाको स्पष्ट करते हुए उसके विविध रूप भी काल्डवेलके अनुसार ही बताते हुए लिखा—

"शक (सिथियन) शब्दका व्यवहार उन्होंने (काल्डवेलने) व्यापक अर्थमें कियाहै। उन्होंने लिखाहै कि यूरोपके प्राचीन लेखकोंने एशिया और यूरोपके उत्तरी भागोंकी बर्बर जातियोंके लिए अनिश्चित और अस्पष्ट रूपमें शक शब्दका व्यवहार कियाथा। उन्हीं लेखकोंके अनुरूप फिन, मंगोल, तुरानी भाषाओंके लिए एकही शब्द शक का उपयोग कियाहै।" [तीसरा खण्ड, पृ. ६१]

काल्डवेल आक्रमणवाले [बाहरसे आनेवाली जातियोंको माननेवाले] सिद्धान्तको मानकर ही भाषा-परिवारोंका विवेचन करतेहै। उस विवेचनकी उन्हींके शब्दोंमें प्रस्तुत करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा अपनी टिप्पणी अथवा विवेचनमें ऐसे जोड़ते जातेहै कि जिससे काल्डवेलकी मान्यताकी परख हो जातीहै। लिखाहै—

"काल्डवेलका विचार यहभी था कि भारतमें आर्योंके आनेसे पहले यहां जो आदिवासी जातियां रहतीथीं वे संभवतः शक उद्भवकी थीं। इनकी भाषाएं अविकसित थीं और विजेता आर्योंकी भाषाके सामने वे ठहर न सकीं। इन शकभाषी जातियोंने विजेताओंकी भाषा स्वीकार कर ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर भारतकी आधुनिक आर्यभाषाओंके बारेमें उन्होंने यह मत प्रकट कियाहै कि इनकी व्याकरण-रचना शक-परिवारके अनुकूल है, केवल शब्द संस्कृतसे आयेहैं। संभव है कि उन्होंने ऐसा इसलिए कहा हो कि उनके लिए द्रविड़ शक-उद्भवके लोग थे।" [तीसरा खण्ड, पृ. ६१]

डॉ. रामविलास शर्मा शकोंका विवरण पढ़कर प्रश्न पूछतेहै—'भारतमें द्रविड़ोंको शकोंसे जोड़नेका प्रयत्न हुआ पर यूरोपके शक कौन थे, इसका उल्लेख नहीं है।" [तीसरा खण्ड, पृ. ६१]

यों काल्डवेलके विवेचनको डॉ. रामविलास शर्मा ठीक मानतेहैं किन्तु उनके निष्कर्षोंसे सहमत नहीं हैं। काल्डवेलके पूर्वाग्रहोंको भी वे ठीक नहीं मानते। द्रविड़ परिवारके सम्बन्धमें उन्होंने जो कुछ निष्कर्ष लिखे, उसके विपरीत तथ्य डॉ. रामविलास शर्माने प्रस्तुत कर दियेहैं। काल्डवेलकी मान्यताओंको आधार मानकर बादमें बरोने उनके कार्यको आगे बढ़ायाहै। उस सम्बन्धमें डॉ. रामविलास शर्मा लिखतेहैं—

"काल्डेवलने शक और द्रविड भाषाओंके शब्द-भण्डारका तुलनात्मक अध्ययन नहीं किया। यह कार्य एक सीमा तक बरोने कियाहै। उन्होंने ऐसे शब्दोंकी सूची बनायीहै जो संस्कृतमें हैं, द्रविड़ और शक भाषाओंमें हैं, किन्तु यूरोपकी भाषाओंमें नहीं हैं। उन्होंने मूल शब्द-भण्डारकी संरचनाको ध्यानमें रखकर शब्द नहीं चुने। काल्डवेलने इस बातपर ध्यान दियाथा कि नित्य प्रति व्यवहारमें आनेवाले द्रविड़ शब्द संस्कृत और आर्यभाषाओंमें नहीं हैं। एक परिवारसे द्रविड़ भाषाओंका सम्बन्ध तब सिद्ध होगा जब इन दोनोंमें मूल शब्द-भण्डारकी यथेष्ट समानता दिखायी जायेगी। बरो यह मानतेहैं उत्तर भारतमें अनेक आर्येतर भाषा-समुदाय थे जिनका नाम निशान मिट गयाहै किन्तु यह नहीं मानते कि यहां अनेक आर्यभाषाएं भी बोली जातीथीं जिनके बारेमें अब कोई सामग्री नहीं मिलती। इस कारण जो शब्द संस्कृतमें हों और यूरोपकी भाषामें न हों, उसे वह आर्येतर उद्भव का मान लेतेहैं। इसके अलावा शब्द साम्य दिखाते हुए, उन्होंने ध्वनि-परिवर्तनकी रीतियाँ निर्धारित नहीं कीं। जहाँ संस्कृतमें महाप्राण ध्वनियाँ हैं, वहाँ फिनो उग्रियन परिवारके अल्पप्राण ध्वनि वाले प्रतिशब्द मूल रूप कैसे हो गये, इसका कोई विवेचन उन्होंने नहीं किया। प्राचीन आर्य-भाषाओंके अनेक शब्द संस्कृतमें अप्रयुक्त हो गये थे पर वे द्रविड़ भाषाओंमें सुरक्षित होंगे, यह संभावना उनके लिए कल्पनातीत है। इसके अतिरिक्त यूरोपकी भाषाओंमें भी उन्होंने काफी जांच पड़ताल नहीं की। कुछ शब्द ऐसे हैं जिन्हें वे संस्कृतको द्रविड़ोंकी देन मानतेहैं पर ऐसे शब्द यूरोपमें भी हैं।" [तीसरा खण्ड, पृ. ६३ और ६४]

द्रविड़ परिवारके विविध रूप

काल्डवेलके साथ साथ बरो, किटेल तथा श्राडर के विचारोंकी तुलनाभी डॉ. रामविलास शर्माने प्रस्तुत कीहै। इससे काल्डवेलके कार्यकी सीमाएं स्पष्ट हुईहैं। काल्डवेलके कारण द्रविड़ और पश्चिम एशिया तथा यूरोपकी भाषाओंका सम्बन्ध ज्ञात हुआहै। द्रविड़ परिवारपर विचार करते हुए निम्नलिखित शीर्षकोंपर आगे स्वतंत्र रूपसे लिखाहै—

- द्रविड़ पश्चिम एशिया और यूरोपकी भाषाएं
- उत्तर पश्चिमी द्रविड़
- दक्षिणी द्रविड़
- उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रीय प्रभाव
- प्राकृतें और द्रविड़
- उपसंहार

पश्चिम एशिया और यूरोपकी भाषाओंका अध्ययन एन् लहोवारीने कियाहै और मानाहै कि अनेक भाषाओंका सम्बन्ध द्रविड़ परिवारकी भाषाओंसे है। लहोवारी मानतेहैं कि उनका उद्भव द्रविड़ परिवारकी भाषाओंसे हुआहै। लहोवारीके निष्कर्षोंका विवेचन डॉ. रामविलास शर्माने कियाहै। बास्क, बर्बर, हुर्री भाषाओंमें द्रविड़ प्रवृत्तियां बतायी गयीहैं। अलग-अलग परिवारोंके साथ द्रविड़ परिवारकी तुलना कर सामान्य प्रवृत्तियोंकी खोज की गयीहै। लहोवारी के कार्यका संक्षेपमें परिचय देनेके बाद उसपर टिप्पणी करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा लिखतेहैं—

"लहोवारीने अनेक भाषा-परिवारोंसे जो प्रतिरूप दियेहैं, वे काफी विवादास्पद हैं। अन्य भाषा-वैज्ञानिकोंके समान वे भी सामान्य स्रोतकी खोज में हैं। इसीलिए उन्होंने अपनी पुस्तकका नाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा रखाहै जिससे विदित हो कि वे यूरोपकी भाषाओंके द्रविड़ स्रोतोंका अनुसन्धान कर रहेहैं। इन द्रविड़ स्रोतोंकी बातसे सहमत न होना सही है। पर लहोवारी एकही क्षेत्रके पड़ोसी भाषा-परिवारोंमें सामान्य भाषा-तत्त्व खोजनेका जो काम कर रहेहैं, वह सही है। सामी, इंडोयूरोपियन परिवारोंसे द्रविड़-परिवारका सम्बन्ध है, इसमें सन्देह नहीं। बास्क और सुमेरियनसे भी कुछ-न-कुछ सम्बन्ध हो तो आश्चर्यकी बात न होगी।" [तीसरा खण्ड, पृ. ६८]

उत्तर-पश्चिमके सीमान्तमें द्रविड़ परिवारकी भाषाएं बोलनेवाले लोग रहतेथे। उनमें ब्राहुई प्रधान है और आजभी उसका प्रचलन है। प्रश्न है क्या मूल रूपमें आर्योंने पहले क्या द्रविड़ लोग यहां रहतेथे? आज वे वहां पहलेकी भाँति नहीं रहते। उत्तर-पश्चिम के भाषा-समुदायोंमें बहुत परिवर्तन हुआहै। क्या आर्य लोगोंमें द्रविड़ लोग घुल-मिल गये या दक्षिणकी ओर आर्योंने उन्हे ठेल दिया? इन सब प्रश्नोंका उत्तर अभी खोजनाहै। ऐतिहासिक रूपमें इन सब प्रश्नोंका ठीक-ठीक उत्तर अभी नहीं मिलता।

सिन्धु-घाटीकी सभ्यताका सम्बन्ध आर्य परिवार और द्रविड़ परिवारके आपसी सम्बन्धका क्या स्वरूप देताहै, इसका निर्णय अभी तक नहीं हो सकाहै। सिन्धु घाटीकी सभ्यता और विशेष रूपसे हड़प्पाकी सभ्यता को द्रविड़ सभ्यता मानना चाहिये क्या? ऐसा मान लेनेपर द्रविड़ परिवारका जो स्वरूप हो सकताहै, उसके विपरीत तथ्य मिलेहैं। श्री भगवानसिंहने तो हड़प्पाकी सभ्यताको वैदिक संस्कृतिसे जोड़ाहै। डॉ. रामविलास शर्मा कहतेहैं—

"इस बातकी काफी सम्भावना है कि भारतसे जो भाषा-तत्त्वोंका निर्यात हुआहै, वह केवल सांस्कृतिक विनिमयका परिणाम नहीं है। इन भाषा-तत्त्वोंको यहांके जन-समुदाय अपने साथ ले गयेहैं। ये समुदाय द्रविड़-आर्य दोनों परिवारोंकी भाषाएं बोलनेवालोंके मिश्रणसे बने हों तो आश्चर्य न होगा। भारतमें तीसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्वमें, ऐसे नगर थे जो व्यापारके केन्द्र थे। सिन्धु घाटीकी सभ्यता उत्पादन और बिनिमयमें बढ़ी हुई नगर-सभ्यता है। ऐसी सभ्यताका लक्षण है विभिन्न भाषाएं बोलनेवालोंको एकत्रित करना। भारतसे बाहर जानेवाले दल सामाजिक विकासकी बर्बर अवस्थामें न थे, यह कृषि सम्बन्धी शब्दावलीके अध्ययनसे ज्ञात होताहै... .....भारतके उत्तर-पश्चिमी प्रदेशोंके द्रविड़ केवल भारतके गण समुदायोंमें विलीन नहीं हुए, वे भारतके बाहर इंडोयूरोपियन समुदायोंमें भी विलीन हुएहैं। यहभी सम्भव है कि उनमें से अनेक गण समाज फिने / उग्रियन समुदायोंमें घुल-मिल गये जैसे कि यह सम्भव है कि भारतके उत्तर-पश्चिमी द्रविड़, दक्षिणी द्रविड़ोंमें घुल मिल गये।" [तीसरा खण्ड, पृ. ७१]

दक्षिण द्रविड़की भाषाओं [तमिल-मलयालम, प्रधान रूपसे] की शब्द सूची प्रस्तुत करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा कहतेहैं कि इन शब्दोंके पर्यायवाची शब्द अन्य द्रविड़ भाषाओंमें मिलतेहैं, इनके प्रतिरूप नहीं मिलते। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकताहै कि उक्त शब्दावली तमिल और मलयालम भाषाओंकी अपनी है, उसे उत्तर-पश्चिमके द्रविड़ नहीं लाये।

चावलके लिए प्रयुक्त शब्दावली अलगसे दीहै और इस आधारपर आर्य परिवार तथा द्रविड़ परिवार की भाषाओंकी तुलना कीहै और द्रविड़ परिवारकी भाषाओंके भौगोलिक स्वरूपको बताते हुए लिखा—

"द्रविड़ भाषाओंमें धान-सम्बन्धी शब्दोंकी विविधता खेतीके अनेक केन्द्रोंकी ओर संकेत करतीहै। सभी द्रविड़ भारतके उत्तर-पश्चिममें नहीं रहतेथे। दक्षिणके अतिरिक्त वे पूर्वी और मध्यभारतके क्षेत्रों में भी रहतेथे, इन सबपर उत्तर-पश्चिमी द्रविड़ों का काफी प्रभाव पड़ाहै, इसमें सन्देह नहीं। अनेक द्रविड़ भाषाओंकी शब्दावलीमें जो समानता है, उसका एक महत्त्वपूर्ण कारण उत्तर-पश्चिमी द्रविड़ी प्रभाव है। इस प्रभावमें उत्तर-पश्चिमी आर्यप्रभाव घुल-मिल गयाहै।" [तीसरा खण्ड पृ. ७४]

द्रविड़ भाषाओंका प्राकृतके साथ सम्बन्ध स्पष्ट करनेकी आवश्यकता है। इस सम्बन्धमें अधिक खोज होनी चाहिये। प्राकृतोंका भारतकी आधुनिक भाषाओं के साथ सम्बन्ध बतलानेके ठीक प्रयत्न अभी नहीं हुएहैं। डॉ. रामविलास शर्मा पं. किशोरीदास वाजपेयीकी बात मानतेहैं। किन्तु उन्होंने प्राकृत भाषाका सम्बन्ध आधुनिक भाषाओंके साथ ठीकसे बताया नहीं। आर्य परि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वारमें ही प्राकृत भाषाका ऐतिहासिक स्वरूप जबतक ठीकसे बताया नहीं जा सकता तबतक उसका सम्बन्ध अन्य परिवारोंके साथ बताना कठिन होगा। ऐसा होने पर भी कुछ अनुमान तो प्रश्नचिह्नोंके रूपमें डॉ. रामविलास शर्माने कियाहै। ये सब प्रश्न ही हैं जिन पर विचार करनेकी आवश्यकता है।

डॉ. रामविलास शर्माने प्राकृतके सम्बन्धमें मान्य अवधारणाओंको लिखकर बादमें प्रश्न पूछेहैं। यों कहिये कि जो अवधारणा प्रचलित है, उसके अनुसार तो ऐसा होना चाहिये और ऐसा है नहीं—तब क्या करें? उनके शब्द इस प्रकार हैं—

"धारणा यह है कि द्रविड़ भारतपर आर्योंका आधिपत्य जैसे-जैसे फैलता गया, वैसे-वैसे आर्य भाषाओंमें द्रविड़ भाषाओंके तत्त्व अधिकाधिक समाविष्ट हुए। संस्कृत और प्राकृतोंमें जो अन्तर है, उसका कारण द्रविड़ प्रभाव है जो पहलेसे और गहराया है। इंडोयूरोपियन भाषासे संस्कृत का जो भेद है, उसका कारण अल्प द्रविड प्रभाव है, संस्कृत और प्राकृतोंमें जो भेद है, उसका कारण विशद द्रविड़ प्रभाव है। किसी कारण यह प्रभाव केवल ध्वनितन्त्रमें दिखायी देताहै। जैसाकि विदित है, प्राकृतोंके व्याकरण और शब्द भण्डारको लेकर संस्कृतसे जो भेद है, वह अति साधारण है। ध्वनितन्त्रमें इतना अधिक भेद है कि प्राकृत शब्द पहचान में नहीं आते, बहुधा संस्कृतमें रूपान्तर करनेसे ही प्राकृत वाक्य समझमें आतेहैं। यदि द्रविड़ भाषाएं, संस्कृतको इतना प्रभावित कर रहीहैं कि ध्वनि रूपोंमें मौलिक परिवर्तन होताहै, तो यह अपेक्षा की जातीहै कि बहुतसे द्रविड़ शब्द प्राकृतोंमें आ गये होंगे जो पहले सस्कृतमें नहीं थे।" [तीसरा खण्ड, पृ. ७७]

डॉ. रामविलास शर्माने संस्कृत-प्राकृत तथा द्रविड़ भाषाओंके ध्वनितन्त्रका तुलनात्मक विवेचन कियाहै और कुछ निष्कर्ष ऐसे दियेहैं, जिससे मान्य अवधारणाएं खण्डित होतीहैं। लिखतेहैं—

"प्राकृतोंका ध्वनितन्त्र द्रविडोंके प्रभावसे निर्मित हुआ, यह धारणा मिथ्या है। ध्वनितन्त्रकी विशेषताओंके साथ जब हम द्रविड़ भाषा-समुदायों के शब्द-भण्डारका अध्ययन करतेहैं तो ज्ञात होताहै कि तमिल और मलयालममें ऐसे बहुतसे शब्द हैं जिनके प्रतिरूप न तो आर्यभाषामें हैं, न अन्य द्रविड़ भाषाओंमें। यदि इन शब्दोंको द्रविड़ गण उत्तर-पश्चिमसे अपने साथ दक्षिण ले जाते तो सम्भावना यह थी कि इनके प्रतिरूप या तो आर्य भाषाओंमें होंगे या अन्य द्रविड़ भाषाओंमें। ऐसा न होनेपर यह कल्पना सार्थक है कि ये शब्द केरल और तमिलनाडुके मूल निवासियोंके हैं।" [तीसरा खण्ड, पृ. ८४-८५]

और निष्कर्ष रूपमें लिखा—

"इतना अबभी निश्चयपूर्वक कहा जा सकताहै कि द्रविड़ भाषाओंके शब्द-तंत्रमें दो स्तर हैं, पहला उत्तर-पश्चिमी शब्द-तन्त्र और दूसरा शेष भारतीय द्रविड़-तन्त्र। इनमें उत्तर-पश्चिमी द्रविड़-शब्दतंत्र शक परिवारसे नहीं, आर्य भाषा परिवारसे सम्बद्ध हैं। और ये उत्तर-पश्चिमी द्रविड़ मध्यदेशसे सीधे सम्पर्कमें नहीं हैं। मध्यदेशके केन्द्रोंसे आर्यभाषाओंका प्रसार उत्तर-पश्चिमकी ओर हो रहाहै। हां उनसे द्रविड़ोंका सम्पर्क होताहै। इसी कारण मध्यदेशके परिवृत्त का आर्यभाषाओंपर द्रविड़ प्रभाव अधिक है। [तीसरा खण्ड, पृ. ८५]। [क्रमशः]

[इस लेखमालाके प्रथम दो अंशोंके पांच खण्ड क्रमशः १९९४के मार्च, अप्रैल, मई, जून, जुलाई में प्रकाशित हो चुकेहैं। प्रस्तुत अंकसे तीन खंडों के तीसरे अंशका प्रकाशन शुरु किया जा रहाहै, यह तीसरे अंशका प्रथम खंड है, शेष दो खंड मार्च-अप्रैल ९५ में क्रमशः प्रकाशित होंगें] ▭

'प्रकर' के सदस्योंसे हमारा अनुरोध है कि पत्र-व्यवहार में उस संख्याका उल्लेख अवश्य करें जो 'प्रकर' के लिफाफेपर पतेके ऊपर अंकित रहताहै।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपन्यास

यशका मूल्य[1]

उपन्यासकार : विमल मित्र
अनुवाद : सुशील मित्र
समीक्षक : डा. मदनमोहन तरुण

प्रकाशकीय टिप्पणीके अनुसार यह विमल मित्रका अंतिम उपन्यास है, किन्तु सच तो यह है कि 'यशका मूल्य' कोरा उपन्यास नहीं है। यह १९६० से १९६१ के बीच लेखकके उपन्यास—'साहब, बीबी, गुलाम'—के फिल्मांकनके दौरान लेखकके निकट सम्पर्कमें आनेवाले मुख्यतः दो (मिथिलेश शर्मा तथा गुरुदत्त) तथा प्रसंगतः तीन (मिथिलेश शर्माकी पुत्री श्रीमती) व्यक्तियोंके जीवनकी घटनाओं, उनके व्यक्तित्वके अल्पज्ञात पक्षों एवं उनके जीवनके प्रेरक तत्त्वोंका सही-सही प्रत्याह्वान है। कथाके विकासके साथ-साथ स्वयं लेखकके जीवनके अनेक ऐसे पक्ष उद्घाटित होते चले गयेहैं जो साहित्य जैसे पवित्र, मूल्यधर्मी एवं साधनात्मक विधाके पीछेकी गंदगी, लेखकोंके आपसी ईर्ष्या-द्वेष, लेखन-सर्जनकी कठिनाइयों एवं चुनौतियोंको भी उद्घाटित करतेहैं। सच पूछा जाये तो स्वयं लेखक इस कथाका संवाहक मात्र नहीं, बल्कि वह मूल्य-संधानसे गुजरते अन्य पात्रोंके संकल्पों-विकल्पों एवं संघर्षोंका अहरिहार्य पक्ष है जिसके बिना उस लक्ष्य-बिन्दु तक पहुँचा नहीं जा सकता, जिसका नाम 'यशका मूल्य' दिया गयाहै।

ध्यातव्य है कि जिन तीन व्यक्तियों अर्थात् मिथिलेश शर्मा, गुरुदत्त एवं स्वयं लेखककी कथा प्रमुखतः इस उपन्यासमें लिखी गयीहै उनमें से ऐसा कोई नहीं है जिसके जीवनमें भौतिक साधनोंका अभाव हो। वे धन एवं सामाजिक प्रतिष्ठा दोनोंमें सम्पन्न तथा अपने क्षेत्र के मान्य व्यक्ति हैं। फिरभी इन तीनोंही व्यक्तियोंमें वह क्या है जिसकी अतृप्ति इन्हें चैन लेने नहीं देती! स्वयं लेखक दिन-रात या तो लेखन-कार्यमें जुटा रहताहै अथवा लेखनसे सम्बद्ध तथ्य जुटानेके लिए पुस्तकालयकी पुस्तकोंसे जूझता रहताहै। यही नहीं अपने उपन्यास-लेखनसे न्याय करनेके लिए वह अपनी जमी-जमायी नौकरीसे भी त्यागपत्र दे देताहै जो उसके भविष्यका सुरक्षित आधार बनती। मिथिलेश शर्मा एक प्रतिष्ठित गीतकार रहाहै। उसने काफी धनार्जन कियाहै किन्तु उसपर महाकाव्य-लेखनका भूत सवार होताहै और वह फिल्मी गीत-लेखन छोड़कर अपने आपको मानो दारिद्र्य एवं अकल्पनीय अभावोंकी आगमें झोंक ही नहीं देता, उसमें भस्म भी हो जाताहै। स्वयं प्रसिद्ध अभिनेता, निर्देशक तथा निर्माता अपनी ख्याति एवं प्रतिष्ठाके शिखरपर है। किन्तु वह निरन्तर अतृप्तिकी आगमें जलता रहताहै। वह काम करते-करते अनिद्राका शिकार हो चुकाहै। कोई आकांक्षा उसे भीतर-ही-भीतर मथती रहतीहै। आखिर वह क्या है। यह जीवन किस चीजकी प्राप्तिके लिए निरन्तर व्यग्र-बेचैन है! सुख क्या है! इन्हीं प्रश्नोंके उत्तर पानेके लिए यह उपन्यास अपने चरित्रोंके उस आंतरिक संसारकी यात्रा करताहै जहाँ बाहरी चकाचौंध, भीड़-भाड़ और प्रशंसाका उत्तेजक वातावरण नहीं है, भौतिक सफलताकी अमर्यादित दहाड़ नहीं है बल्कि एक व्यथित प्रश्नाकुल किन्तु सक्रिय एकान्त है जिसका साधक उस स्वप्नमय लक्ष्यकी ओर दिवा-रात्रि धावित है, जो वस्तुमें नहीं, अपने अनूठे कार्योंसे सदा-सदाके लिए अमरत्वका आकांक्षी है—हो सकताहै यह अमरत्व मरणोत्तर सत्य हो, किन्तु वह अपनी कृतियोंमें मृत्युके पश्चात् भी जीवित रहना चाहताहै।

शरच्चन्द्र चट्टोपाध्यायके पश्चात् विमल मित्र

१. प्रका. : राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०००६। पृष्ठ : १२३; डिमा. ९३; मूल्य : ६०.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्भवतः बंगालके सबसे लोकप्रिय लेखक रहेहैं। लेखकने अपनी कृतियोंमें अत्यंत सहज भावसे इतिहास-पुरुषके साथ भारतके सुदूरवर्ती अतीत एवं सद्यः विगत वर्तमानकी यात्रा कीहै। तथा भिन्न-भिन्न युगोंके अन्तर्हित प्रेरक तत्त्वों, विधि-विधानोंकी विडम्बनाओं मानव चरित्रके सहज-जटिल, प्रत्यक्ष एवं असूझ-अगोचर पक्षोंका विश्वसनीय एवं स्वाभाविक साक्षात्कार प्रस्तुत कियाहै। 'साहब बीबी गुलाम' विमल मित्रका सर्वाधिक चर्चित एवं लोकप्रिय उपन्यास है जिसमें अपार ऐश्वर्य, दास-दासियोंकी पूरी भीड़, संगीत वाद्य, विलासिताकी समस्त सामंती सामग्रियोंके बीच एक बूंद प्यारके लिए तरस-तरसकर मिटती एक संवेदनशील गृहवधूकी कहानी है जो अपने पति-पुरुषकी प्रसन्नताके लिए अपने समग्र संचित संस्कारोंको छोड़ देनेको तैयार थी, किन्तु नियतिने उसे तिल-तिल मिट जानेके अधिकारके अलावा कुछ भी नहीं दिया।

विमल मित्रने इस उपन्यासको चौदह वर्षोंमें पूरा कियाथा। १९५७ में लेखकको पहली बार गुरुदत्तका संदेश मिलाथा। वे—'साहब बीबी गुलाम' पर हिन्दीमें फिल्म बनाना चाहतेथे। उस समय तक इस उपन्यास पर बंगलामें फिल्म बन ही नहीं चुकीथी, उसे सर्वत्र अपार सफलता मिलीथी। किन्तु वे लेखकके बुरे दिन थे। उपन्यासकी सफलताके कारण बंगालके ईर्ष्यालु साहित्यकार उसपर चारों ओरसे आक्रमण कर रहेथे। किसीका कहनाथा कि इस उपन्यासकी कहानी शिवनाथ शास्त्रीकी पुस्तकसे उड़ायी गयीहै, किसीका कहनाथा कि इसे 'यू' सर्टिफिकेट कैसे दिया गया, कोई इनकम टैक्सका प्रश्न उठाकर अपनी भड़ास निकाल रहाथा। विश्वभारतीकी तत्कालीन विदुषी वाइस-चांसलर चौरासी वर्षीया इन्दिरा देवी चौधरानीने अपना एक निबन्ध पढ़ते हुए कहाथा कि लेखकको—'साहब बीबी गुलाम'—जैसे उपन्यासकी रचनाके लिए नोबेल पुरस्कार अथवा उसीके समकक्ष पुरस्कारसे सम्मानित किया जाना चाहिये। यह लेख बंगलाकी एक प्रतिष्ठित पत्रिकामें प्रकाशनार्थ भेजा गयाथा किन्तु सम्पादकने उसे छापना स्वीकार नहीं किया। उसका कहनाथा कि यदि यह लेख प्रकाशित कर दिया गया तो बंगालके ईर्ष्यालु लेखक सम्पादक या लेखक अथवा दोनोंके ही प्राण लेलेंगे। इस सफल उपन्यासकी निन्दा बदनामीका लेखकपर इतना प्रभाव हुआ कि उसने बिस्तर पकड़ लिया। इस मनोदशामें लेखक गुरुदत्तको कुछ न लिख सका। उसकी चुप्पीका एक औरभी कारण था। उस उपन्यासके प्रकाशक नहीं चाहतेथे कि अभी कुछ वर्षों तक उसपर फिल्म बने; क्योंकि यह निश्चित रूपसे उसकी बिक्रीको प्रभावित करता। इसी बीच लेखकको एक अन्य लेखकने चुनौती दी। लेखककी सफलताको अस्वीकार करते हुए उसने कहा कि ऐतिहासिक उपन्यास तो सभी लिख लेतेहैं, आजके जीवनपर लिखना सबके बूतेकी बात नहीं। स्वास्थ्य पूरी तरह गिर जानेपर भी लेखकने चुनौती स्वीकार करते हुए संकल्प किया कि वह अपेक्षया आधुनिक कालपर एशियाका सबसे बड़ा उपन्यास लिखेगा। इसी संकल्पके साथ उसने—'खरीदी कौड़ियोंके मोल'—उपन्यास लिखना आरम्भ कर दिया। यह उपन्यास धारावाहिक रूपसे बंगलाकी एक साप्ताहिक पत्रिकामें प्रकाशित होने लगा। इस उपन्यास को पाठकोंके बीच अपार लोकप्रियता प्राप्त हुई। लेखक कभी-कभी यह उपन्यास रात-रात भर जागकर लिखता रहता। उन दिनों वह ऊँची सरकारी नौकरीमें था। उसे जब लगा कि नौकरीके कारण वह उपन्यास-लेखनको पूरा समय नहीं दे पाता तो उसने नौकरी छोड़दी। उपन्यासकी सफलताके साथ पुनः उसके शत्रु चारों ओरसे सक्रिय होगये। सम्पादक तथा लेखकको गुमनाम धमकियों भरे पत्र मिलने लगे। प्रतिष्ठित लेखक नारायण गंगोपाध्याय तक ने 'अमृत' पत्रिकामें लिखा वे ऐसा उपन्यास मात्र दो सौ पृष्ठोंमें लिख सकतेहैं।

इस उपन्यासका धारावाहिक प्रकाशन १ जनवरी १९६० से प्रारम्भ हुआ तथा २५ जनवरी १९६२ की रात्रिको साढ़े सात बजे लेखकने एशियाके इस सबसे बड़े उपन्यासका लेखन-कार्य पूरा किया।

धारावाहिक-लेखनके यही वे दिन थे जब लेखक गुरुदत्तके निकट सम्पर्कमें आया। उसका कुछ समय कलकत्तामें बीतता, तो कुछ बम्बईमें। इन्हीं दिनों लेखकने गुरुदत्तमें जिस सम्पन्न संवेदनशील व्यक्तित्वका साक्षात्कार किया, वह फिल्म-संसारमें अनूठा था। 'साहब बीबी गुलाम' पर फिल्म बनानेका निर्णय लेनेके पूर्व गुरुदत्तने उसे पाँच बार पढ़ाथा तथा वह उसकी सूक्ष्मताओंसे पूर्णतः परिचित था। गुरुदत्त गंभीर अध्येता था। उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निजी पुस्तकालयमें विश्वके श्रेष्ठतम लेखकोंकी अक्षर-अक्षर पढ़ी पुस्तकें भरी पड़ीथीं। वह जहाँ भी जाता, चुनी हुई पुस्तकें साथ होती। विज्ञापन एवं चमक-दमक के फिल्म संसारमें गुरुदत्त अकेला-अकेला-सा रहताथा। अपनी फिल्मोंपर निरन्तर कठोर परिश्रम करनेके कारण उसके पारिवारिक जीवनमें एक दूरी-सी आ गयीथी। उसकी पत्नी गीतादत्त अपनेको अकेला-अकेला अनुभव करतीथी। गुरुदत्तने अपना फिल्मी जीवन उदयशंकर के नृत्य सहायकके रूपमें आरम्भ कियाथा। वहीदा रहमानको नर्तकीसे अभिनेत्रीके रूपमें गुरुदत्तने ही उभाराथा। 'कागजके फूल' फिल्ममें तीन लाखका घाटा हो जानेके कारण गुरुदत्त लड़खड़ा गयेथे। वे कटु अनुभवके दिन थे। इन्हीं दिनों उसने व्यावसायिक संसारकी हृदयहीनताका साक्षात्कार कियाथा। सफलता के दिनोंमें उसके चारों ओर मंडराते रहनेवाले निर्माताओंने उसे अकेला छोड़ दियाथा। गुरुदत्तको अनिद्राकी बीमारी थी। नींदकी गोलियोंके साथ ली गयी ह्विस्की भी अब उसकी सहायता नहीं करतीथी। 'कागजके फूल' की असफलताके पश्चात्—'चौदवींका चांद' की सफलताने गुरुदत्तको उबार लिया। फिरभी तंगीके दिन थे। इन्हीं दिनों उसने—'साहब बीबी गुलाम' के निर्माणका निर्णय लिया। मीनाकुमारी तीन लाख रुपयोंमें राजी हुई। डेढ़ लाख व्हाइट और डेढ़ लाख ब्लैक। गुरुदत्त एक ईमानदार निर्माता था। ब्लैक डेढ़ लाख जुटानेमें उसे काफी कठिनाई हुई। गुरुदत्तको एक बातकी हमेशा पीड़ा रही कि जन-रुचिको तृप्त करनेके लिए कभी-कभी उसे अपने कला-संस्कारोंसे समझौता करना पड़ताथा। उसके भीतर सदा एकहीं छटपटाहट बनी रहतीं थी—वह औरभी अच्छी फिल्में बनाये। अर्थाभाव, फिल्म संसारकी निर्मम व्यावसायिकता, समय-समयपर फैलती अफवाहें आदि अतिरिक्त स्थितियां न तो उसके संकल्पोंको तोड़ सकीं, न दूसरोंके कष्टोंके प्रति उसकी अथाह संवेदनशीलताको कुन्द कर सकीं, न व्यावसायिकता उसकी कलात्मक प्रतिमानोंमें अटूट आस्थाको ही डिगा सकीं। गुरुदत्तके मनमें एक प्रश्न सदा उठता—सच्चा सुख क्या है और मार्क्सकी यह उक्ति उसे संतोष देती कि संघर्षमें ही सुख है।

मिथिलेश शर्मा इस उपन्यासका आत्यंतिक चरित्र हैं। वह एक मर्म-दोहक ट्रेजिडी है। वह एक ऐसा सत्य है जो आजके संसारमें कल्पनासे भी अधिक अविश्वसनीय है।

मिथिलेश शर्मा लाहौर निवासी थे। विभाजनके पश्चात् कत्लेआम शुरू हुए जिसमें उसके परिवारके सारे लोग उसकी आंखोंके सामने ही काट डाले गये। बच गयी उसकी एकमात्र पुत्री—श्रीमती। उसे सीनेसे चिपकाये वह बचता-बचाता बम्बई पहुंचा। उन्हीं दंगोंमें राजिन्दरसिंह बेदी और ख्वाजा अहमद अब्बासभी भारत भाग आये तथा आगे चलकर साहित्य एवं फिल्म संसारकी महत्त्वपूर्ण विभूतियोंके रूपमें प्रतिष्ठित हुए। कवि बनना मिथिलेश शर्माकी महत्त्वाकांक्षा थी, किन्तु उनके पिता उन्हें एक अफसरके रूपमें देखना चाहतेथे। मिथिलेशके भीतर वह कामना दबी रह गयी। तुलसीदासके रामचरितमानसको पढ़ते समय वाराणसीमें स्थापित उनकी मूर्त्तिकी स्मृति मात्रसे उन्हें रोमांच हो आता। वे सोचते यदि वे भी महाकाव्य लिखते तो उनकी मूर्त्ति भी इसी प्रकार स्थापित की जाती तथा वे अपनी मृत्युके पश्चात् भी अमर हो जाते। परन्तु महाकाव्य लिखनेकी उनकी आकांक्षा दबी ही रह गयी। बम्बई आनेपर उन्होंने देवानन्दकी फिल्मोंके लिए गीत लिखना आरम्भ किया। बादमें मुहम्मद रफीने उनका परिचय गुरुदत्तसे कराया। अब वे गुरुदत्तकी फिल्मोंके लिए गीत लिखने लगे। उनके गीत चल निकले। खूब पैसा आने लगा। मकान बनवाया। पैसे बैंकमें जमा होने लगे। श्रीमतीको कोई कमी न थी। वह पिताकी देखभाल करती हुई पढ़ाई कर रहीथी। अब वह मैट्रिकमें थी। गुरुदत्त 'कागज के फूल' फिल्म निर्माणकी योजनामें लगेथे। इन्हीं दिनों मिथिलेश शर्माके भीतरका महाकवि जाग उठा। उसने 'मेरा देश भारत'—महाकाव्य लिखनेका निर्णय ले लिया। इस महान् संकल्पको मूर्त्त करनेके लिए उसने फिल्मी-गीत-लेखनको तिलांजलि देदी जो उसके आर्थिक स्रोतका एकमात्र माध्यम था। मिथिलेश शर्मा के चारों ओर अब इतिहासकी पुस्तकोंके ढेर लगते गये और वह महाकाव्य लेखनमें इतना तल्लीन हुआ कि शेष संसारको भुला बैठा। समय देखकर आर्थिक अभावोंने मानो चारों ओरसे उसपर आक्रमण कर दिया। घरमें भोजन तक की समस्या होगयी। श्रीमतीकी पढ़ाई छुट गयी। परन्तु मिथिलेश शर्मा अपना महाकाव्य पूरा करनेमें लगा रहा। श्रीमतीके लिए इस प्रकारका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभावपूर्ण जीवन व्यतीत करना सम्भव न था। उसके पास कोई महान् संकल्प नहीं था। वह मरणोत्तर यशके प्रति समर्पित नहीं थी। उसे अच्छा भोजन पहननेको कपड़े और होसके तो सुखमय जीवनकी प्रतीक्षा थी जिसमें अर्थाभाव न हो। बस एक नाटकीय वातावरणमें उसकी मुलाकात पारसी युवक अम्बर गलियार खांसे हुई। उसके पास अपार सम्पत्ति थी। श्रीमती गलयार खां बनतेही उसके जीवनकी मानो सारी आकाक्षाएं पूर्ण होगयीं। अब वह देश-विदेशके सम्पन्न होटलोमें अपने पतिके साथ जीवन व्यतीत करने लगी। इधर मिथिलेशके पास अधूरे महाकाव्यको छोड़ कर कुछ भी न बचा। अर्थाभाव और बीमारियोंने उसे छलनी-छलनी कर दिया तथा एक दिन गुरुदत्ताकी जांघ पर अंतिम सांस लेते हुए उसने अपना शेष महाकाव्य उसे सौंप दिया। मरते समय मिथिलेशको एक ही पीड़ा थी—वह अपना महाकाव्य पूरा न कर सका। उसका स्वप्न अधूरा ही रह गया।

उपन्यासके अन्तमें श्रीमतीको छोड़कर समस्त पात्र आत्म-विश्लेषण करतेहैं और पातेहैं कि यशके इन शिखरोंपर आरूढ़ होनेके बावजूद उनमें कहीं-न-कहीं खालीपन, पराजय-बोध, अतृप्ति एवं अधूरेपनकी छटहटाहट बनी हुईहै। मिथिलेश शर्माने अपनी मरणोत्तर अमरत्वकी कामनाके लिए अपना सर्वस्व निछावर कर दिया किन्तु इस मूल्यपर नियतिने उससे यशका सौदा अस्वीकार कर दिया। उसे जीवन और संसारसे खाली हाथ ही विदा लेनी पड़ी। गुरुदत्ताने अपने क्षेत्रमे प्रतिष्ठा तो प्राप्त की किन्तु एक पीड़ा उसे सदा सालती रही कि शुद्ध कला-साधनामें उसे कभी-कभी जनरुचि की मिलावट करनेको बाध्य होना पड़ा, यही नहीं उसने पारिवारिक सुख-शांति खो दी, आजीवन अनिद्रा-रोगसे ग्रस्त रहा तथा दिन-रात अतृप्तिपूर्वक और भी श्रेष्ठतरकी विकल खोज करता रहा। स्वयं लेखक सफल जरूर हुआ किन्तु उसके चारों ओर ईर्ष्यालु शत्रुओंकी सेना-सी खड़ी होगयी जिन्होंने उसे कभी न लेने चैन दिया। संसारमें यशका मूल्य किसे चुकाना नहीं पड़ता।

यह एक रोचक संस्मरणात्मक उपन्यास है जिसमें जाने-पहचाने पात्रोंके व्यक्तित्वके कुछ ऐसे पक्षोंका साक्षात्कार होताहै, जिसे कम ही लोग जानतेहैं।

लेखकने अपने कथ्यका संप्रेषण निरुद्वेग सहजता कियाहै। सुशील गुप्तका अनुवाद कार्य उच्चकोटिका है। कहीं ऐसा नहीं लगता कि हम कोई अनूदित उपन्यास पढ़ रहेहैं।▭

मोक्ष-पथ[1]

उपन्यासकार : प्रवीन शाह

समीक्षक : डॉ. रामदेव शुक्ल

बौद्धधर्मको मोक्ष-पथके रूपमें स्वीकार करनेवाला यह उपन्यास चकित करनेवाली अविश्वसनीय नाटकीयतासे बुना गयाहै। बम्बईके विधुर उद्योगतिकी इकलौती बेटी कामिनी कालेजमें पढ़नेवाले अपने मित्र मुनीशके साथ सहज प्रसन्न है कि उसके कालेजमें एक अध्यापक डॉ. अमर वर्मा एक वर्षके लिए आ जातेहै। उनके शान्त, गम्भीर, मौन, भव्य व्यक्तित्वसे कामिनी अत्यन्त प्रभावित है। अचानक एक दिन वह डॉ. वर्मा को अपने घर अपने पिताके पास बैठा देखतीहै। फिर पिताके साथ डॉ. वर्माके घर जातीहै। उनके जीवनमें रुचि लेने लगतीहै। मुनीशकी ओरसे उदासीन हो जातीहै और डॉ. वर्माकी जीवन-संगिनी बननेका सीधे उन्हींसे प्रस्ताव कर बैठतीहै। डॉ. वर्मा कोई उत्तर नहीं देते। इसी बीच अपने विधुर पिताको अपनी प्राइवेट सेक्रेटरी मोनाके साथ यौनसम्बन्धमें लिप्त देखकर कामिनीका विद्रोह तीव्रतर हो उठताहै। वह डॉ. अमर वर्माके सपनोंमें खोई रहतीहै, तभी अचानक देखतीहै कि शिवसेनाके लोगों द्वारा भीड़पर गोली चलनेकी दुर्घटनामें अमर वर्माकी मृत्यु होगयी।

कामिनी अन्तिम रूपसे बालसखा मुनीशको दो टूक उत्तर देकर और पिताके नाम पत्र छोड़कर घरसे निकल जातीहै। कुशीनगर जाकर बौद्धधर्म और दर्शन का अध्ययन करतीहै। आचार्यसे दीक्षा लेकर भिक्षुणी हो जातीहै और चीन, जापान, तिब्बत, नेपाल घूमकर बौद्धधर्म दर्शनपर शोधग्रंथ लिखतीहै क्योंकि डॉ. अमर वर्मा मरनेसे पहले यही कार्य कर रहेथे। नेपालमें उसे मुनीश मिलताहै जो कामिनीको भिक्षुणी वेशमें देखकर चकित होताहै। वह बताताहै कि कामिनीके पिताने अपनी प्राइवेट सेक्रेटरीसे विवाह कर लियाहै। वह

---

१. प्रका. : साहित्य केन्द्र प्रकाशन, कृष्णनगर, दिल्ली। पृष्ठ : १४४; डिमा.९१; मूल्य : ७५.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिताको संसार समुद्रमें निमग्न मानकर उन्हें चित्तसे उतार देतीहै। स्वर्गीय डॉ. अमर वर्माके अधूरे शोध कार्यको पूरा करके कामिनी सारनाथ लौटतीहै। वहां अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध सम्मेलनमें बौद्ध-भिक्षुणीके रूपमें कामिनी बौद्धधर्म और दर्शनपर भाषण देतीहै। अपार पादटिप्पणियों और उद्धरणोंसे भरा हुआ यह भाषण डिमाई आकारके उपन्यासमें पृ. ११५ से १३५ तक चलताहै। अपना गम्भीर भाषण समाप्त करके जब बौद्धभिक्षुणी कामिनी मंचसे उतरतीहै तो साक्षात् डॉ. अमर वर्माको अपनी प्रतीक्षा करती हुई पातीहै। डॉ. वर्मा अपनी मृत्युका रहस्य बताते हुए कहतेहैं—'इसे विवशताही कहना उचित होगा। शिवसेनाके उपद्रवमें किसी अज्ञात व्यक्तिके शवको अपने चिह्न सौंपकर काल्पनिक मृत्युको स्वीकार करना मेरी विवशता ही थी। यह सत्य केवल मेरा नौकर ही जानताथा।' (पृ. १३५)।

भिक्षुणी कामिनीकी प्रतिक्रिया है—'नही, यह आपकी विवशता नहीं कायरता थी।' (वही)। कामिनी का वेश तो भिक्षुणीका है किन्तु डॉ. वर्माको देखतेही वह केवल आतुर प्रेमिका रह जातीहै और डॉ. वर्मासे सीधे कह देतीहै कि कल मैं यह भिक्षुणीवेश छोड़कर आपके जीवनमें प्रवेश करूंगी। डॉ. वर्मा अबभी पलायनवादी बने रहतेहैं और उसे समझातेहैं कि उसने जो लक्ष्य अपने लिए चुनाहै, वही उत्तम है। उसे संसारमें नहीं लौटना चाहिये। इसपर कामिनीका स्पष्ट निर्णय है कि 'यदि आप जीवनको मृत्युका रूप देकर इस प्रकार मुंह मोड़कर चले न गये होते तो आप स्वयंही देख लेते कि मोतीवाली यह अंगूठी आज आपके हाथमें नहीं, मेरे हाथमें होती और अबभी यह मुझे कलही पहननीहैं। अपने धर्माचार्यकी आज्ञा लेकर भिक्षुणी-वेश त्याग करनेके पश्चात् इसपर कल मेरा ही अधिकार होगा।' पृ. ४०)। 'कल सूर्योदयकी प्रथम किरणोंके साथ हमारे जीवनका नया अध्याय आरम्भ होगा।'(१४१)।

दूसरे दिन सबेरे नये जीवनके स्थानपर कामिनी को जो मिलताहै, वह डॉ. अमर वर्माका शव होताहै। उनका पुराना नौकर कामिनीको डॉ. वर्माके उसके नाम लिखे पत्रके पास ले जाताहै जिसमें डॉ. वर्माने अपनी इस वास्तविक मृत्युके विषयमें लिखाहै कि—'मेरा मौन आज भी मेरे पास ही है और तुम्हारा विश्वास तुम्हारे पास। केवल बीचमें कुछ फैसलोंकी दूरियां थीं, जिनका आज मेरे जीवनके साथ अन्त हो गयाहै, क्योंकि तुमने पत्थरके एक बुतको सांस लेनेका हुक्म सुनायाथा। तुम ही सोचो क्या यह सम्भव हो सकताथा? कितने आश्चर्यकी बात है कि संसारको त्यागकर तुमने भिक्षुणी वेश धारण किया, वैराग्यको अपनाया, मोक्ष-मार्गपर इतना आगे बढ़ गयीं, लेकिन आज एक मानवमात्रको पानेके लिए तुम मोक्ष-पथसे वापिस लौट आना चाहती हो। मुझे ऐसा अनुभव हो रहाहै कि जैसे मेरा जीवन ही तुम्हारे मोक्ष-मार्गमें एक बाधा है तो ऐ भिक्षुणी ··! लो, फिर आज यह जीवन तुम्हें समर्पित हैं। तुम्हें मोक्ष मिले यही मेरी कामना है। मैंने प्राणायाम योगक्रिया द्वारा श्वास त्यागाहै, अपनी स्वेच्छासे। अब तो अन्तिम केवल यही अभिलाषा है कि मेरी उंगलियोंसे तीनो अंगूठियोंको न उबारा जाये और चिताको अग्नि तुम्हारे हाथोंसे मिले, एक भिक्षुणीके हाथोंसे···।—अमर।' (पृ. १४४)।

यही होताहै। भिक्षुणी चिताको अग्नि देतीहै। लेखककी टिप्पणी है कि 'सत्यका अस्तित्व जानकर भिक्षुणीका मन शान्त होगया।' चिताको अग्नि भिक्षुणी ने ही दी। और—अग्निकी स्वर्णिम लपटोंमें उस भिक्षुणीके चेहरेपर फैला हुआ तेज कुन्दनकी भांति दमक उठा।' (अन्तिम वाक्य)।

उपर्युक्त कथानक अविश्वसनीय चाहे जितना हो, अपनी नाटकीयताके कारण रोचक है। यदि उपन्यासकारने इस कृतिको शोधकृति बनानेका लोभ संवरण कर लिया होता, तो यह अच्छा उपन्यास बन सकताथा। अभी तो यह हाल है कि इतिहास, धर्म, दर्शन, योग, वेदान्त, गीता, आदिपर पादटिप्पणियोंसे भरे हुए कई-कई पृष्ठके संवाद हैं, जिन्हें पढ़ते समय बड़ेसे बड़े पढ़ाकू का धैर्य छूट जायेगा। उपन्यासमें ज्ञानका बखान करने की कोई गुंजाइश नहीं होती। 'ज्ञान' पात्रोंकी 'रहनी' में आचरित होता हुआ दिख जाये बल्कि केवल झलक जाये, इतना तक चल सकताहै। लेखक अंगूठियों और नगोंकी बात करताहै तो बड़ेसे बड़े जौहरीको मात करता लगताहै। कथामें इस प्रकारकी सूचनाएं प्रसंगके दबावमें आ सकतीहै, अन्यथा इनकी कोई जगह नहीं होती।

उपन्यासके शिल्पमें कई प्रकारकी कचाई हैं। डॉ. वर्माके चरित्रका विन्यास कैसा होगा, इसका अनुमान कुछ वाक्योंसे लगाया जा सकताहै। अभिभूत कामिनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डेडीको बतातीहै—'उनके लिखे निबन्धोंकी एक पुस्तक हमारे इण्टरमीडिएटके कोर्समें थी। फिर बी. ए. में उनकी किताबें पढ़ी और अब एम. ए. के कोर्समें तो उनकी लिखी हुई इतनी हैल्प बुक्स हैं कि इन सबको पढ़ पाना भी मुश्किल है। सूर-तुलसीसे लेकर सुमित्रा-नन्दन पंत और महादेवी वर्मा तक हिन्दी साहित्यका ऐसा कौन-सा लेखक या लेखिका है, जिसपर उन्होंने कोई पुस्तक न लिखीहो।" (१२) पिता-पुत्री संवादमें डॉ. अमर वर्माके महत्त्वका मूल्यांकन इस रूपमें होता है—

"निश्चय ही उन्होंने हिन्दी सहित्यको बहुत कुछ दियाहै।"

"उसने हिन्दी लिटरेचरको सिर्फ उम्दा किताबें ही नहीं दी बल्कि अपने आपको भी कुर्बान कर दियाहै।" (पृ. १२)।

तो यह है डॉ. वर्माका हिन्दी साहित्यको योगदान और उनकी कुर्बानी। स्मरणीय है कि यह संवाद एक धन पशु और उसकी इकलौती बेटीके बीच है जिनकी दृष्टिमें 'हैल्प बुक्स' लिखनेवाले ट्यूटरनुमा लोग ही हिन्दी साहित्यके विद्वान् और हिन्दी साहित्यपर अपना जीवन कुर्बान करनेवाले माने जातेहैं। महानगरों विशेषतः अहिन्दीभाषी महानगरों, कलकता और बम्बईमें इस प्रकारके महान् लेखकोंकी संख्या बहुत अधिक है, जो 'हैल्प बुक्स' लिखतेहैं और धनपशुओंके करोंमें ट्यूशन और प्रेम समान भावसे करतेहैं।

'मोक्ष-पथ' उपन्यासमें शोधपत्रके साथ साथ यात्रा विवरणका स्वाद भी है। लेखकने देश-विदेशके दुर्गम स्थलोंकी यात्राओंके अनुभवका उपन्यासमें उपयोग कियाहै। अनुभव वैविध्य लेखकके पास है और उसका उपयोग करनेका कौशल भी है। इस कौशलके साथ मुख्य चरित्रोंके निर्माणमें सन्तुलन और तर्कका ध्यान रखा गया होता तो उपन्यासमें रोचकता बढ़ जाती और विश्वसनीयता भी। कामिनी पिताकी सारी सम्पत्ति घर द्वार छोड़कर चली जातीहै और देश-बिदेश की खर्चीली यात्राएं लगातार करती रहतीहैं। लेखक के मनमें न आया हो, पाठकके मनमें तो यह प्रश्न आता ही है कि भिक्षुणी कामिनीको यह धन कहांसे मिलता है।

मोक्ष-पथमें बौद्ध धर्मको विशेष महत्त्व दिया गयाहै किन्तु हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिए बहुत जोरदार प्रयास आरम्भमें ही दिखायी पड़ताहै। डॉ. वर्मा जब कुर्वतकी यात्रापर थे तो शेखसे मिले। शेखको उन्होंने बताया कि भारत विभाजनके समय उनके दादाजीने घर छोड़कर पाकिस्तान भाग जानेवाले एक मुसलमानके मकानपर कब्जा कर लिया। उस घरमें कुरान शरीफकी प्रति थी। डॉ. वर्माने शेखसे कहा कि हमारे दादा-दादीने पवित्र पुस्तकको घरकी मालकिनका दर्जा देकर उसे सुरक्षित रखा। यह सुनकर शेख बहुत प्रसन्न हुआ। उसने डॉ वर्माको अमूल्य मोती दिया। उसने कहा—"·· वह दो ताकतोंकी लड़ाई थी, दो हुकूमतोंकी लड़ाई थी लेकिन वह दो मजहबोंकी लड़ाई नहीं थी और न ही सारेके सारे मुसलमान बेरहम थे; मगर जो भी हुआ, बुरा हुआ। ··उस घरके ढहकर खण्डहर होनेतक उस किताबको उसी घरमें रखे रहने देना। तुम्हारे घर में गीताभी जरूर होगी, इसलिए जबभी उस इमारत का मलबा उठाया जायेगा तो कमसे कम कोई यह तो कह सकेगा कि हिन्दू और मुसलमान तो एक घरमें न रह सके उन्होंने मुल्कके बँटवारे कर लिये, लेकिन उनके मजहब, एक ही घरमें गुलजार थे। दोनों मजहबोंकी लौ एक ही घरमें रोशन थी। (२६)

प्रथम दृष्टिमें हिन्दू-मुस्लिम एकताका अच्छा सूत्र है किन्तु गहरे उतरनेपर धर्मको पुस्तकों तक सीमित कर देनेका सरलीकरण कहीं बहुत खतरनाक हो सकता है। लेखक सावधान होता तो ऐसा न लिखता। 'मोक्ष-पथ' में लेखकको जो कुछ कहनाहै वह मानव मनके राग-विरागसे जुड़ा हुआहै। शिल्पगत सन्तुलनकी ओर ध्यान दिये जानेपर 'मोक्ष-पथ' उपन्यास अविस्मरणीय बन सकताथा। ▭

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक और सीता[1]

कहानीकार : बटुक चतुर्वेदी
समीक्षक : डॉ. भगीरथ बड़ोले

१९६० में 'नागफनीके कांटे' के उपरांत जनवरी १९९३ में प्रकाशित 'एक और सीता' बटुक चतुर्वेदी का द्वितीय कहानी संग्रह है, जो एक ओर अपने समय का लेखा तो प्रस्तुत करता ही है, दूसरी ओर सामाजिक प्रतिबद्धता तथा शाश्वत मानव-मूल्योंके प्रति अटूट निष्ठा भी उद्घोषित करताहै। वस्तुतः 'एक और सीता' द्वारा प्रस्तुत बीस कहानियां आजकी विसंगतिपूर्ण स्थितियोंका आलेखन करती हुई किसी आदर्श की प्रतिष्ठा हेतु अंतर्मनकी छटपटाहटको भी अभिव्यंजित करतीहैं।

इन कहानियोंका वस्तुगत विश्लेषण करनेपर प्रतीत होताहै कि कथाकारका ध्यान निम्नवर्गीय जीवन के कटु यथार्थको व्यंजित करनेकी दिशामें अधिकाधिक केन्द्रित रहाहै। इसी क्रममें आजके जीवनकी अभिशापपूर्ण विसंगतियोंको भी उकेरा गयाहै तथा वर्तमान समाजमें व्याप्त कुरीतियोंके दुष्परिणामोंका भी प्रभावी चित्रण प्रस्तुत हुआहै।

प्रस्तुत संग्रहकी कहानियोंका मानवतावादी स्वर सर्वाधिक उत्पीड़ित नारी जीवनकी मार्मिक कथाको विशेषतः व्यंजित करताहै। श्री चतुर्वेदीने अधिकाधिक कहानियोंको इसी विषयपर केन्द्रित कियाहै कि उन्हें जीनेका समान अधिकार है, किन्तु पुरुष शासित समाज उनका निरन्तर शोषण करता रहताहै। एक और सीता, बहन बेटी, श्यामली, मनपत तथा भेड़िये शीर्षक कहानियां इसी दिशामें संकेत करतीहैं। वस्तु-विन्यास तथा शिल्प दोनोंही दृष्टियोंसे 'एक और सीता' इस संकलनकी श्रेष्ठतम कहानी है, जिसमें झुग्गीवालों के जीवनकी यथार्थ अभिव्यंजना द्वारा रचनाकारने सीताके जीवनकी दुर्दशाके बहाने नारी जीवनकी त्रासद विवशताका जीवंत चित्रण कियाहै। यद्यपि एक सीता नारायणकालीन आदर्श पात्रा रहीहै, जिसे रावणके चंगुलसे छुड़ानेके लिए त्रेताके रामने प्राण-प्रणसे अथक तथा सार्थक प्रयत्न कियेथे, तथापि इस कहानीकी सीताकी नियति उससे भिन्न है। आदर्शोंके प्रति समर्पित इस सीताके सम्मुख गरीबी एक ऐसा अभिशाप बनकर प्रस्तुत होतीहै कि अनचाहे उसे सास तथा पति द्वारा विवश करनेपर घृणित शोषणका शिकार बननेके लिए बाध्य होना पड़ताहै। संपन्न वर्ग की वासनाका शिकार होनेसे पूर्व निर्णयके क्षण कोई उसे सहयोग नहीं देता, उलटे उपदेश मिलताहै कि स्त्रीका जन्म ही दुख सहनेके लिए हुआहै। अतः धरती की भांति मौन रहकर उसे सभी अन्याय सहने चाहियें।

'बहन-बेटी' शीर्षक कहानीमें भी नारी जीवनकी इन्हीं दुर्भाग्यपूर्ण स्थितियोंको प्रभावी पद्धति द्वारा लेखक बताताहै कि नारी और वहभी गरीब, सदैव पुरुषके लिए खिलौना मात्र है। जस्सोकी दुर्वह जीवन स्थितियों को लक्ष्य करते हुए भी नज्मा कहतीहै कि औरतका जनम ही मरदोंके लिए हुआहै। विपरीत जीवन-परिवेश में जन्मी ऐसी विकृत मान्यताकी वेदीपर 'श्यामली' की नायिकाको धंधेबाजोंका घेरा स्वीकारना पड़ता है तथा इसीलिए 'भेड़िये' की सरसुती पुलिसके शोषण चक्रमें घिरकर अर्द्धविक्षिप्त हो जातीहै। 'मनपत' शीर्षक कहानीमें भी जीनेके लिए शोषित होनेकी विवशता तथा सामान्य लोगोंकी भूखी नजरके यथार्थको प्रभावी पद्धतिसे चित्रित किया गयाहै। यद्यपि फूलवती

---

१. प्रका. : आत्माराम एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०००६। पृष्ठ : १६४; क्रा. ९३; मूल्य : ६०.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में शोषणरत समुदायके विरुद्ध आक्रोशकी प्रबल लहर है, तथापि गरीबी, भूख तथा असहाय स्थितिके कारण ही मां-बेटी दोनोंको दुनियांकी पाशविकता शिकार होना पड़ताहै। यथार्थ यही है कि पुरुष शासित समाजमें आज नारी अपनी देहपर स्थिति बनाये हुएहैं। इस स्थितिके साथ यदि गरीबीके अभिशाप जुड़ जातेहैं, तब तो जीवन ही दुर्वह हो जाताहै और विवशतावश उसे अपने अस्तित्वकी पहचान भी खोनी पड़तीहै।

नारी जीवनको अभिशप्त बनानेवाली दूसरी स्थिति उन प्रथाओंका परिणाम है, जिनके जारी रहनेसे मानवता कलंकित बनी रहतीहै। ऐसीही सामाजिक कुप्रथाओंमें से व्यक्ति-स्वार्थपर आधारित एक प्रथा है दहेज प्रथा, जिसे श्री चतुर्वेदीने 'क्या जवाब देता,' 'मेरा अपराध क्या था' तथा 'हलका होता भार' शीर्षक कहानियोंमें अभिव्यक्त कियाहै; दहेजकी इस बलिवेदीपर अबतक न जाने कितनी स्त्रियोंको शिकार बनना पड़ा है। या तो उन्हें आजीवन अविवाहित रहकर दुनियांके दरिन्दोंकी देह संबंधी भूख मिटानेको विवश होना पड़ताहै या फिर विवाहके बाद आत्महत्या करनी पड़ती हैं। 'क्या जवाब देता' में सुलक्षणाकी दुर्दशा और उसकी मृत्युके बाद उसके पिता द्वारा अपराधियोंके विरुद्ध कुछ भी न करनेका निर्णय लेना हमारे सामाजिक जीवनकी विवश स्थितियों और निरी भावुकताकी अवास्तविक स्थितियोंको सत्य समझ लेनेका ही परिणाम कहा जायेगा। 'मेरा अपराध क्या था' में वंदना की हत्या भी इन्हीं स्थितियोंकी देन है। दोनोंका वस्तुविधान पूर्व निश्चित सांचेमें ढला हुआ भावुक आदर्शवादितासे भरा हुआहै। किन्तु दहेज समस्यापर लिखी इस दूसरी कहानीसे सांकेतिक रूपमें क्रांतिकी दिशाओं का भी थोड़ा-सा स्पर्श है। छोटी सी बच्ची चिदम्बरा का बयान तथा अंतमें रामानुजदास द्वारा की गयी आत्महत्या नये सामाजिक विधानको संस्पर्श करनेका प्रयत्न है। नये सामाजिक विधानके निर्माणका समर्थ प्रयत्न 'हलका होता भार' कहानीमें अधिक स्पष्टतासे उभरा है, जिसमें दहेज देनेमें असमर्थ पिता डॉक्टर पाण्डेकी पुत्री सुस्मिता झूठी शानके विरुद्ध पूरी शक्तिसे खड़ी हो जातीहै और बहादुरसिंह दूधवालेका वरणकर समाधानकी किसी दिशाकी ओर संकेत करतीहै। यद्यपि ओढ़ी हुई आदर्शवादिताकी अनुगूंज यहांभी है तथापि संकल्पोंकी कोई प्राणवान् धारा भी प्रवाहित होती दिखायी देतीहै।

प्रस्तुत संकलन 'एक और सीता' की अनेक कहानियां अपने युगकी विसंगतियोंसे उत्पन्न यथार्थको अधिक रेखांकित करतीहै। पत्रात्मक शैलीमें किसी ईमानदार आदर्शवादी पिताको आधुनिक पुत्र द्वारा लिखा गया 'अंतिम पत्र' इसी स्थितिकी ओर संकेत करताहै। पिता द्वारा समयका लाभ न उठानेपर उसकी अक्षमताको कोसता यह पत्र युगीन विसंगतियोंको ही बेनकाब करता है तथा मूल्यहीनतापर अप्रत्यक्ष प्रहार भी करताहै। पिता-पुत्रके संबंधोंकी यही स्थिति 'फासले' शीर्षक कहानीमें भी अभिव्यंजित हुईहै। यद्यपि इसमें संतान का अपने पितासे घृणा करनेका एक भिन्न कारण—अन्यों द्वारा बहकाना—बताया गयाहै, तथापि जब बड़ा बेटा मकान तथा ढेर-सा धन पानेके लिए पिताके मरने की प्रतीक्षा करता हुआ पैसेको ही सच्चा मां-बाप कहताहैं तो उनकी मनोवृत्ति अत्यंत स्पष्ट हो जातीहै। दो पीढियोंके बीच बढ़ती ये दूरियां निश्चय ही भिन्न मूल्यचेतनाके कारण अंतहीन हैं। किन्तु 'वापसी' शीर्षक कहानी किसी दूसरी दिशाको रेखांकित करती है। इस कहानीमें पुत्र रघुपत अपने बलबूते ऊंची पद प्राप्त कर लेताहै। अनेक वर्षों बाद जब वह अपने गांव आकर अपने पिताकी दुर्दशा और भाइयोंका दुर्व्यवहार अपनी आंखोंसे देखताहै, तो उसे अपने उच्च पदसे घृणा होने लगतीहै। उसे अनुभव होताहै कि बड़े बननेकी धुन में वह पिताके प्रति अपने दायित्वोंको उसी प्रकार भुला बैठा, जिस प्रकार उसके स्वार्थी भाइयोंने भुला दिया था। परिणामतः पश्चातापसे जलते हुए वह नौकरीसे त्यागपत्र दे देताहै। यद्यपि आज यह स्थिति अवास्तविक सी अनुभव होतीहै, तथापि इस बातकी ओर संकेत अवश्य करतीहै कि कहीं न कहीं किसी संस्कारकी सत्ता आजभी जीवित है। कहानी लेखकके भावुकता प्रधान आदर्शवादी दृष्टिकोणकी निष्पत्ति मानी जानी चाहिये।

पूंजीवादी संस्कृति तथा उसके फलस्वरूप उत्पन्न भ्रष्टाचारके स्वरूपपर श्री बटुक चतुर्वेदीने 'एक और सीता' संग्रहमें प्रत्यक्ष रूपसे भी प्रबल प्रहार कियेहैं। इस दृष्टिसे 'कौन जाने' तथा 'प्रत्युत्तर' श्रेष्ठ रचनाएं कही जा सकतीहैं। 'कौन जाने'के नायक नरेन्द्रकी सारी पीड़ा इसी बातको लेकर है कि करोड़पति घरकी होने के कारण उसकी पत्नीने उसके गरीब घरमें जन्म लेनेका मजाक उड़ायाहै, उसका अपमान कियाहै। अतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस अपमानकी आगको अपने हृदयमें छिपाये वह बड़ा अफसर होकर भी अपने व्यवहारसे सभी कर्मचारियोंका दिल जीत लेताहै, अपने चपरासीके विवाहकी स्वयं व्यवस्था करताहै, चपरासीकी लड़की रंजनाकी पढ़ाई का पूरा खर्च उठाकर न सिर्फ उसे डॉक्टर बनाताहै, बल्कि एक अच्छे लड़केसे उसका संबंध स्वयं तय कर स्वयं ही कन्यादान करताहै। नरेन्द्रके जीवनके इन घटना चक्रोंको देखकर, संभव है, किसीके मनमें यह भ्रम जागे कि चपरासीकी पत्नीसे उसके नाजायज संबंध होने चाहियें, जिसका परिणाम रंजनाके रूपमें मूर्त हुआहै या फिर यहभी कि यह स्थिति बड़े अफसरों द्वारा छोटोंके शोषणकी स्थिति है, किन्तु सच्चाई ऐसे तर्कोंसे बहुत दूर है। वस्तुतः नरेन्द्र सहज निश्छल स्नेह से आपूरित तथा नैतिकताके प्रति निष्ठावान् ऐसा चरित्र है जो अपने किसी अभावकी प्रतिपूर्तिही नहीं कर रहाहै, बल्कि दंभी अमीरों द्वारा किये गये अपमान का प्रतिशोध भी ले रहाहै। पूंजीवादी प्रवृत्तिके विरुद्ध आक्रोशकी ऐसी ही प्रबल लहर **'प्रत्युत्तर'** की नायिका आशाके मनमें भी है। अपने जीवनमें धनको ही महत्त्व देनेवाला महेन्द्र जब गरीब आशाको छोड़कर अमीर अभिलाषासे ब्याह रचानेका निश्चय करताहै, तब आशा न सिर्फ उसके विवाह आयोजनको ध्वस्त करती है, बल्कि विवश होकर समझौतेके लिए आये धोखेबाज और लालची महेन्द्रको तमाचा जड़ते हुए पूंजीवादी प्रवृत्तियोंका प्रत्युत्तर भी दे देतीहै। **'संस्मरण'** तथा **'संपन्न-विपन्न'** कहानियों द्वारा भी रचनाकारने उपदेशात्मक शैलीमें पूंजीवादी प्रवृत्तिपर ही प्रहार कियेहैं।

पूंजीवादी प्रवृत्तिकी एक प्रमुख विकृति भ्रष्टाचार भी लेखककी दृष्टिसे ओझल नहीं है। यहां युगीन संदर्भोंपर उसका आक्रोश व्यंग्यके स्वरमें मुखर हुआ है। इस दृष्टिसे **वी. 'आई. पी.'** शीर्षक कहानी महत्त्व-पूर्ण है जिसमें जनसेवाके केन्द्र अस्पतालोंमें व्याप्त अराजकता तथा दायित्वहीनताकी स्थितिको प्रभावी रीतिसे अभिव्यक्त किया गयाहै। जब तक अस्पतालके कर्मचारियोंको यह ज्ञात नहीं होता कि मरीज किसी मंत्रीका परिचित है, उसकी कोई देखभाल नहीं होती, किन्तु, जैसे ही किसी संबंधका पता चलताहै, छोटे से बड़े तक सभी उसकी साज सम्हाल विशेष दृष्टिसे करतेहैं। मरीजके स्वस्थ होनेपर सभी अपने अपने तरीकेसे आग्रह करतेहैं कि वह मंत्रीजीसे उनके काम करवादे। इन सभी स्वरोंके बाद एक सामान्यसे मरीज का कथानायकसे यह कहना कि भैया, जब सबके काम करवाकर फुर्सत हो जाये, तो बस इतना कर देना कि अस्पतालमें मरीजोंसे ठीक व्यवहार हो, उनका ठीक इलाज हो और किसीको अकारण टांग न कटानी पड़े —एक गहरे मानवीय दर्दको प्रस्तुत करताहै। यद्यपि **'एक शोकाकुल शहर'** शीर्षक कहानी भोपाल गैस त्रासदी की भयानकताका जीन्वत वर्णन करतीहै, तथापि इसी परिवेशके अंतर्गत **'भेड़िया'** शीर्षक कहानीमें पुलिसकी पशुतापर लेखकने प्रबल प्रहार कियाहै। वैसे कहानी पढ़ते हुए यही प्रतीत होताहै कि पुलिसने गुण्डों के घेरेमें फंसी अर्द्ध विक्षिप्त-सी हो गयी सुरसतीको छुड़ाकर तथा उसे अपने घर पहुचाकर उत्कृष्ट दायित्व बोधका प्रमाण प्रस्तुत कियाहै। किन्तु जब अंतमें भय-भीत सुरसतीको उसकी मामी कहतीहै कि वह डरे नहीं, क्योंकि उसकी रक्षाके लिए हवालदार साहब बन्दूक लेकर बैठे हुएहैं, तब सुरसतीका आवेशमें यह कहना— का तुमाओ दिमाग फिरि गओ, जो भेड़ियन खों आदमी बतात हो।'—पुलिसकी जघन्य बर्बरताको ही प्रकट करताहै।

भ्रष्टाचारकी एक भिन्न स्थिति **'आत्मस्वीकृति'** शीर्षक कहानीमें उपलब्ध होतीहै। इस कहानीका तह-सीलदार भ्रष्टाचारमें आकंठ डूबाहै। स्टेनों आवलेकर को खरीदनेमें असफल होकर जब वह पकड़ा जाताहै, तब भ्रष्टाचारके सहयोगसे अपने विरुद्ध हर प्रमाण नष्ट कर निर्दोष छूट भी जाताहै। इस पाक-साफ बने व्यक्तिके माध्यमसे लेखकने कार्यालयोंमें व्याप्त भ्रष्टा-चारका यथार्थ चित्र अंकित कियाहै फिरभी अंतमें छापा पड़नेपर करोड़ोंकी बेनामी संपत्तिके जप्त होने तथा लकवेसे ग्रस्त होनेकी दशामें वह अपना अपराध स्वीकार करताहै। यह एक सोचा हुआ आदर्शवादी अंत है, जो 'संपन्न-विपन्न' कहानीकी तरह शिक्षा देता है कि बुरे कामका परिणाम भी बुरा ही होताहै। अच्छे परिणामोंको सामने लानेवाली अवास्तविक-सी अनु-भव होती एक कहानी **'वापस लौटती खुशियां'** है, जिसमें एक कर्तव्यनिष्ठ अधिकारी मानवीय चिन्ताको महत्त्व देकर प्यासे गांवकी जल समस्या दूर करताहै।

वस्तुतः प्रस्तुत संग्रहके अंतर्गत सम्मिलित कहा-नियोंका विश्लेषण करनेपर प्रतीत होताहै कि इसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ कहानियां ऐसी हैं जो अपने कहानी होनेके रूपको स्वाभाविक रीतिसे पूरा करतीहैं तथा लेखकका श्रेष्ठ कथाकार होना सिद्ध करतीहैं, वहीं कुछ कहानियां ऐसी भी हैं, जो किसी सामयिक संदेशका वहन करती हुई निर्धारित प्रयत्नका सायास परिणाम कही जा सकती हैं। इसी क्रममें यह कहना भी असंगत नहीं है कि आदर्शोंको कहानीपनमें ढाल देना बुरा नहीं हैं, किन्तु उपदेशक मुद्रामें उनकी दुहरावपूर्ण वकालत कहीं न कहीं संवेदनाकी स्वाभाविक धाराको खण्डित अवश्य करतीहै और ऐसी स्थिति प्रस्तुत संग्रहमें अनेक स्थलों पर उपलब्ध होतीहै। किन्तु इससे संकलनका महत्त्व कम नहीं होता, बल्कि प्रतीत होताहै कि अत्यधिक संवेदनशील रचनाकारको अपने समयके प्रति किसी दायित्व का बोध अवश्य है।

इन समस्त कहानियोंको पढ़कर यह भी स्पष्टतः अनुभव होताहै कि लेखक कहानीके रचावके कौशलमें सिद्ध है। इसलिए अधिकांश कहानियाँ पाठकोंको अपने से बाँध लेतीहैं और कथा-कथनकी रोचक-आकर्षक शैलीसे बंधा पाठक उत्सुक होकर उसे पढ़ता और उसमें निहित संवेदनामें डूबता चला जाताहै। इस प्रकार सुनिश्चित आदर्शवाद तथा तदनुकूल सोचे हुए वस्तु विधानसे विनिर्मित "एक और सीता" की अन्यान्य कहानियां कहानी होनेकी पहचान लिये हुएहैं। यद्यपि भाषा पक्ष कहीं-कहीं कुछ कमजोर है तथा वर्णन, अनावश्यक विस्तार तथा दुहरावके दोषकी झलक भी दिखा देता, है, तथापि फ्लैश बैक शैलीको लेकर समस्याकी सीधे प्रस्तुति तथा चरित्र एवं स्थितियोंका उत्सुकतासे परिपूर्ण क्रमशः विकास इस संकलनकी कहानियोंको आकर्षक रूप दे देताहै। कुछेक कहानियोंमें वातावरणकी जीवन्तता तथा पात्रानुसार ग्राम्य भाषा प्रयोग उनकी विशेषताओंको ही बिम्बित करताहै। अतः आजके विसंगत युगमें यथार्थ चित्रण द्वारा मानवीयताके दर्दको उकेरता यह संकलन निश्चय ही स्वागत योग्य है। ▭

समकालीन चीनी कहानियां[१]

अनुवाद : तङ पिङ
सम्पादक : देवेन्द्र चौबे
समीक्षक : डॉ. विपिनबिहारी ठाकुर

प्रस्तुत चीनी कहानियोंके अनुवादककी धारणा है कि हिन्दी साहित्यकी बहुतेरी रचनाओंका चीनी भाषामें अनुवाद हुआहै किन्तु उसी अनुपातमें भारतमें चीनी साहित्यका अनुवाद नहीं हो पायाहै। अतः साहित्यिक क्षेत्रमें दोनों देशोंके बीच आदान-प्रदानकी दृष्टिसे ही इस कहानी-संकलनका प्रकाशन किया गयाहै। जिन आठ चीनी कहानियोंको संकलित किया गयाहैं उनकी रचना सन् १९८० से ९० तक की अवधिमें हुईहै।

संकलित कहानियोंकी मूल विशेषता यह है कि इनके माध्यमसे चीनकी जनताके सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन-यथार्थोंका अंकन हो पायाहै। इतना ही नहीं, इन कहानियोंके माध्यमसे चीनके राजनीतिक स्वरूपकी भी झलक मिल जातीहै। प्रस्तुत संग्रहकी कई कहानियां ऐसी हैं जिनके माध्यमसे एक ओर तो समाजवादी व्यवस्थाके बीच संघर्षरत चीनी जनताके दायित्वबोध, पारस्परिक सम्बन्ध और एकता तथा समसामयिक जीवनसे जुड़ी समस्याओंके प्रति संलग्नताका भाव मिलताहै, तो दूसरी और समाजवादी व्यवस्थाके बीच रहनेके बावजूद सामन्ती-मानसिकताके समर्थक लोगोंकी रूढ़िवादी धारणाओंपर चोट भी की गयीहै।

संकलनकी 'फावड़ेकी मुठिया' और 'यू शङ का रोमांस' शीर्षक दो कहानियां ऐसी हैं जिनमें चीनके राजनीतिक जीवनका विशेष रूपसे चित्रण किया गया है। 'फावड़ेकी मुठिया' शीर्षक कहानीमें जहां एक ओर चीनी समाजमें व्याप्त सामूहिक विकासकी चेतनाको उभारा गयाहै, वहीं दूसरी ओर समाजवादी व्यवस्थाके अन्तर्गत पार्टीके नेताओंके दोहरे चरित्रकी आलोचना भी की गयीहै। इस सन्दर्भमें पार्टीके नेता गङ यूचीन का चरित्र विरोधाभाससे परिपूर्ण है क्योंकि वह जहां

१. प्रका. : अयन प्रकाशन, १/२० महरौली, नयी दिल्ली-११००३०। पृष्ठ : १६८; क्रा. ९३; मूल्य : ७०.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक ओर युवती यू फिङको प्रताड़ित करनेवाले कार्यकर्ताका बचाव करना चाहताहै, वहीं दूसरी ओर यू फिङको प्रताड़ित करनेवाले कार्यकर्ताकी पिटाई करनेवाले हान बाओ शानको कड़ा दण्ड देना चाहता है। इस कहानीकी एक विशेषता यदि राजनीतिक नेताओंके व्यक्तित्वके छद्म रूपका निदर्शन करनाहै, तो इसकी दूसरी विशिष्टता बाओ शान और यू फिङके बीच विकसित होनेवाली प्रेम-भावनाका अंकन करना भी है। इस कहानीमें जिस प्रकार इन दोनोंके बीचके प्रणय भाव और वैवाहिक सम्बन्धका चित्रण किया गया है उसे देखते हुए यह माना जा सकताहै। निस्सन्देह यह मानवीय संवेदनाकी दृष्टिसे भी उत्कृष्ट कहानी है। 'यू शङका रोमांस' भी इसी कोटिकी रचना है जिसमें प्रेमकी मानवीय संवेदना और राजनीतिक वातावरण दोनोंका ही चित्रण किया गयाहै। इस कहानीकी मूल संवेदना यह है कि पचास वर्षीया यू शङ वैधव्यके एकाकीपनसे पीड़ित है और वह एक विशेष परिस्थिति में च्यन हवे च्यूङ नामक विधुर राजनेताकी ओर आकृष्ट होतीहै। च्यन हवे च्यूङके प्रति उसका यह आकर्षण उसके आन्तरिक प्रणय भावका द्योतक है, किन्तु मैडमके द्वारा उसे यह ज्ञात होताहै कि च्यन हवे च्यूङ उससे मात्र इसलिए विवाह नहीं करना चाहता कि वह स्वयं तो निर्दलीय है जबकि विधवा यू शङ कम्युनिस्ट पार्टीकी सदस्या है। निश्चयही च्यन हवे च्यूङ का यह निर्णय यू शङके लिए काफी निराशाजनक सिद्ध होताहै। जहां यू शङकी इस निराशाके माध्यम से प्रेमकी मानवीय संवेदनाका अंकन होताहै, वहीं इससे यह बोध भी हो जाताहै कि च्यन हवे च्यूङ के मनपर सत्ताका आतंक छाया हुआहै। वस्तुस्थिति यह है कि च्यन हवे च्यूङ वीर योद्धा था और उसने राजशाहीके पक्षमें कई लड़ाइयां लड़ीथीं, लेकिन जब शासन बदला तो उसे जेलकी सजा भुगतनी पड़ी। अतः वह अभी भी भयभीत है कि यदि वह यू शङसे विवाह कर लेताहै तो उसे कम्युनिस्ट पार्टीके शासनकी ओरसे दंडित कियाजा सकताहै।

प्रस्तुत कृतिकी 'सुन्दर आंखें' और 'समुद्र पुत्री' कहानियोंमें मूलतः प्रणय संवेदनाका अंकन किया गया है। 'सुन्दर आंखें' शीर्षक कहानीमें पेइचिङके खान मजदूरोंके जीवनको आधार बनाकर मन फए नामक युवती और शिङ श्याओ ल्याङ नामक युवकके पारस्परिक प्रेम भावको उभारा गयाहै। इस कहानीकी मूल विशिष्टता यह है कि इसमें पहले तो इन दोनोंके अलगाव और तनावका चित्रण किया गयाहै और बादमें बदली हुई परिस्थितियोंमें दोनोंके बीच विकसित होने वाले सही प्रणय भावको बड़ी मनोवैज्ञानिकताके साथ अंकित किया गयाहै। कहानीके अंतमें जब मन फए श्याओ ल्याङकी ओर सरकते हुए धीमी आवाजमें कहतीहै—'तुम वास्तवमें पुरुष हो !'तब उसके मनका सम्पूर्ण अनुराग व्यंजित हो जाताहै और इसी बिन्दुपर आकर यह कहानी अपने चरम उत्कर्षको प्राप्त कर लेतीहै। 'समुद्र पुत्री' कहानीमें जहाजके युवा निरीक्षक और समुद्र पुत्री नामक युवतीके प्रेम-सम्बन्धका चित्रण हैं, दोनों ही अलग-अलग परिस्थितियोंमें एक दूसरेकी प्राण-रक्षा करतेहै पर अन्तमें दोनोंको ही संयोगका सुख प्राप्त नहीं होता।

'केंकड़ेका क्रय-विक्रय' कहानी इस संकलनकी एक प्रमुख रचना मानीजा सकतीहै जिसमें मानवीय संवेदना और स्वाभिमानका मिश्रित रूप प्रकट हुआहै। केंकड़े बेचनेवाली लड़की जहां एक ओर बूढ़े व्यक्तिके हाथों उसकी बीमार पत्नीकी इच्छापूर्त्तिके निमित्त सस्ते दाम पर केंकड़े बेच देतीहै, वहीं दूसरी ओर स्थूलकाय सम्पन्न व्यक्तिकी स्वार्थवृत्तिसे इतनी असंतुष्ट हो जाती है कि वह उसके हाथों केंकड़े बेचनेको बिल्कुल ही तैयार नहीं होती। कहानीमें वृद्ध व्यक्तिके सन्दर्भमें इस युवतीकी मानवीय संवेदना और मोटे व्यक्तिके प्रसंगमें उसकी अहं-भावनाकी अभिव्यक्ति हुईहै।

प्रस्तुत संकलनमें कुछ कहानियां ऐसीभी हैं जिनमें चीनके सामाजिक जीवनमें व्याप्त कमजोरियोंका चित्रण है। 'परम्परा' शीर्षक कहानीमें सुख-दुःखको समान रूप से अपने बीच विभाजित करनेकी नियमबद्धताके कारण लोगोंके बीच व्यक्तिगत उत्कर्षके लिए श्रम करनेका भाव बिल्कुल ही नहीं उभर पाता। इस कहानीका मूल कथ्य क्वान-लौ-आ नामक पात्रके इस असंतोषके माध्यम से अभिव्यक्त होताहै—

"यह भी कोई जीवन है ? कोईभी दूसरेसे आगे बढ़ना नहीं चाहता। सब एकसे एक कामचोर हैं। लेकिन कोई क्यों एक-दूसरेसे आगे बढ़े ? दूसरी बात तो छोड़िये, खानेको ही लीजिए। किसीके घरमें कभी अच्छा खाना बनता तो उसे पांच हिस्सोंमें बांटकर हरेक के घर पहुंचाना पड़ता !" (पृ. सं.—३८)। इसी प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अधिकारी' शीर्षक कहानीमें दफ्तरोंमें व्याप्त अनैतिकता पर चोट की गयीहै। जब उच्च शिक्षा प्राप्त फऐन च्यूनकी नियुक्ति वितरण अनुभागमें अधिकारीके रूपमें हुई, तब उसने अपने कर्मचारियोंके बीच समानता, प्रेम और सामंजस्यका वातावरण बनानेका प्रयास किया, लेकिन कुछ ही दिनोंके उपरान्त अपने अधीनस्थ कर्मचारियोंके बीच होनेवाले अपने अवमूल्यनको देखते हुए उसे फिर सख्त अधिकारी बन जानेको बाध्य हो जाना पड़ा।

'जीवित बुद्धकी कहानी' इस संकलनकी अन्तिम रचना है जिसमें समाजमें धर्मके नामपर अंध-विश्वासको प्रोत्साहनकी चर्चा है और सीधें-सादे लोगोंका मानसिक शोषण होताहै। यह कहानी धर्मके नामपर फैलायी जानेवाली सामाजिक कुरीतियों और दुर्बलताओंपर चोट करनेके साथ ही मानवतावादी जीवन-दर्शनका महत्त्व-निरूपण भी करतीहै।

यह ध्यातव्य है कि प्रस्तुत संकलनकी कहानियां विषय-वस्तुकी दृष्टिसे वैविध्यपूर्ण हैं, साथही शिल्प-विधानकी दृष्टिसे भी सबल और प्रभावोत्पादक हैं। कहानियोंके कथोपकथनमें पैनापन है और पात्र-पात्राओं के आन्तरिक चरित्रको उजागर करनेकी क्षमता भी। संवादोंसे कहानियोंमें नाटकीयताका समावेश भी हुआ है। सभी कहानियां भाषिक स्तरपर अपनी सबलताकी छाप छोड़तीहैं। भाषामें स्वाभाविक गतिमयता है, प्रभावोत्पादनमें सहायक है। भाषाकी वर्णन-क्षमता और चित्रात्मकताकी दृष्टिसे 'केंकड़ेका क्रय-विक्रय' कहानीकी नायिकाका सौन्दर्य-वर्णन द्रष्टव्य है—

'देखनेमें वह लड़की पन्द्रह या सोलह वर्षसे अधिक नही लग रहीथी। पूरा बदन सौंदर्यसे दमक रहाथा। माथेपर लटके हुए बालोंके बीच पानीकी जो बूंदें थीं, वे टपक रहीथीं। उसकी बड़ी और तेज आंखोंमें जैसे ओस भरा हुआथा और अब इतना भराथा कि वह छलकना चाह रहाथा! समुद्री हवाके कारण उसके लाल हुए गाल अबभी भींगे हुएथे। वह प्रभातके प्रकाश में एकदम खिलते हुए फूलकी कली लग रहीथी। उसने पतलूनको मोड़कर जंघा तक चढ़ा रखाथा तथा कमीज की बांहको कोहनी तक मोड़ रखाथा। इससे उसके व्यक्तित्वमें एक अजब-सा जंगली आकर्षण पैदा हो गयाथा।' (पृ. सं.—८७)।

कहानी संग्रहको इस अर्थमें महत्त्वपूर्ण माना जा सकताहै कि इसमें समकालीन चीनी कथा साहित्यके प्रमुख हस्ताक्षरोंकी विशिष्ट रचनाओंका संकलन किया गयाहै जिनके माध्यमसे वर्तमान चीनी समाजके बहु-पक्षीय जीवन यथार्थ और सांस्कृतिक स्वरूपका अंतरंग परिचय हमें उपलब्ध हो जाताहै। संकलनके प्रारम्भमें सम्पादक देवेन्द्र चौबेने 'चीनी कहानीका विकास' शीर्षक से एक विस्तृत आलेख भी प्रस्तुत कियाहै जिससे चीनी कहानी साहित्यके ऐतिहासिक विकास क्रमका ज्ञान भी पाठकोंको सहजतासे हो जाताहै। कहाजा सकताहै कि इस कथा संकलनके माध्यमसे समकालीन चीनी कथा साहित्यकी विशिष्टताओं और उपलब्धियोंका परिचय कराना सम्पादकका लक्ष्य रहाहै और इसमें उसे पर्याप्त सफलता प्राप्त हुईहै। ▭

आखिर कब तक[1]

कहानीकार : एस. एल. मीणा
समीक्षक : डा. बजरंग राव बांगरे

प्रस्तुत कहानी संग्रहमें प्रादेशिक सामाजिक परि-वेश तथा व्यक्तिके बीच सम्बन्धोंकी स्थापना और जीवनकी संगतियों तथा विसंगतियोंकी इक्कीस कहा-नियां हैं। संग्रहकी कुछ कहानियाँ राजस्थानकी संस्कृति और मध्य तथा निम्न-मध्यवर्गीय जीवनके आर्थिक-सामाजिक संघर्षको लेकर हैं, तो कुछ कहानियां महिला पात्रोंके अन्तःसंघर्षको लेकर, कुछ कहानियां अधुनातन महानगरोंकी संस्कृतिको उद्घाटित करनेके लिए लिखी गयीहैं। राजस्थानी परिवेशकी ग्रामीण कहानियोंमें आंचलिकताके साथ सार्वजनीनता भी है। सभी कहा-नियोंके पात्र जीवनकी कटु-मृदु अनुभवोंकी संवेदनासे ओत-प्रोत हैं। कथाकार मीणाने सामाजिक परिवेशसे पात्रोंको जोड़ते हुए उनकी मानसिकताको यथास्थितिमें प्रस्तुत करनेका प्रयास कियाहै, जिसमें वे सफल रहेहैं।

कथाकार मीणा स्वयं राजस्थानी समाजके एक घटक हैं। वे केन्द्रीय उत्पाद एवं सीमा शुल्क सेवामें समांहर्ता हैं। बृहत्तर जीवन अनुभवोंसे जुड़ना और मानवीय संवेदनाको निरन्तर विस्तार देते हुए एक

---

१. प्रका. : प्रेम प्रकाशन मन्दिर, ३०१२, बल्लीमारान, दिल्ली-११०००६। पृष्ठ : २००; क्रा. ९२; मूल्य : ७५.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन्त रचना प्रस्तुत करना वास्तवमें लेखनको समर्थ और सार्थक बनानाहै। वे इकाइयां जो टुकड़ों-टुकड़ोंमें घटित होतीहैं, लेखकको सर्जनाके स्तरपर अभिव्यक्ति की बेचैनी या संप्रेषणकी शक्ति प्रदान करतीहैं और जीवनका वैविध्य आधार फलकपर अपने आप उभरने लगताहै। संग्रहकी कहानियोंसे लगताहै कि कहानीकार के मानसपर चरित्रों और घटनाओंका स्थानिक प्रभाव प्रबल है। राजस्थानके गांव जैसे अपनी अभिव्यक्तिके लिए एक शिशुकी तरह उनके सामने मचल रहेहों।

पहली कहानी 'आसरा' में गांवके गरीब किसान की कामना है कि उसका लड़का शहरमें पढ़ लिखकर उनका आसरा बने। परन्तु, लड़को शहरके हॉस्टलमें रहकर सुविधाभोगी धनी वर्गकी ओर भटकताहै। वर्ग वैषम्य और शहर-गांवका तुलनात्मक चित्रण सुन्दर बन पड़ाहै। इस कहानीमें बुढ़ापेके सहारेकी बात की गयीहै, तो 'पाका पान' कहानी बूढ़ोंके अपनी सन्तानके प्रति ममत्वको दर्शातीहै। खाता-कमाता ब्याहता पुत्र शहरमें रहताहै। उसकी बीमारीकी बात सुनकर बूढ़े माता-पिता विचलित हो जातेहैं। उसका पिता मांके कहनेपर बड़ी कठिनाईसे रुपयोंका जुगाड़कर शहर जाकर ढूंढते-ढांढते लड़केके पास पहुंचताहै। कथा-कारने प्रभावी ढंगसे ममत्वको अभिव्यिक्त दीहै,—"कुछ तेज स्वरमें बुढिया बोली—'थे भी किस बात करो हो जी। आपणी छोई है? पाका-पान हाँ आपा तो झड़ियार जिनंगी पूरी हुई। पण उणरी तो सगली उमर पड़ीहै हालताई। अ'र फेर बा नौकरी भी तो करै हौ बापड़ो।" (पृ. ६०)। पर बेटेने दूसरे ही दिन बापको गांव लौटा दिया।

'गई' कहानीमें बूढे पति-पत्नीके प्रेम बन्धनका चित्रण है। पत्नीके साथ पूरा जीवन आपसमें लड़-झगड़कर गुजारनेके बाद पत्नीकी मृत्युपर शोक मनाते हुए बूढ़ेकी मर्मस्पर्शी कहानी है। "आजकल बूढा एक-दम गुमसुम-सा बैठा रहताहै। गांववाले कहतेहैं कि बुढ़ियाके बाद अब वहभी अधिक समय तक नहीं जियेगा, क्योंकि बुढ़ियामें बहुत जी था उसका ..भाव-कताके क्षणोंमें अब भी सिसकीके साथ उसके गलेसे अनायास ही निकलता है—"गई"। (पृ. ७०)।

कुछ ऐसीही कहानी है "आज वह नहीं है तो" जिसमें बूढा विधुर बहू-बेटेके तिरस्कारको सहते हुए मृत पत्नीको याद करता रहताहै, अपने उपेक्षित होने पर। 'चौकीदार लंगड़ा' कहानीमें भी बुढापा आनेपर बदलती परिस्थितियोंका वर्णन कथाकारने इस प्रकार कियाहै, "अन्तर आया तो सिर्फ इतना कि वे पहले जिन लड़कोंको डाँट दिया करतेथे, उनके सामने अब वे स्वयं गिड़गिड़ातेहैं।"

"बूढी शाखोंका वार्तालाप' में गांवकी साठपार बूढी महिलाओंका वार्तालाप है, जो बहुओंके प्रति असंतोष प्रकट करतीहैं। मीणाजीने वार्तालापको सटीक और स्वाभाविक बनायाहै—बहुओंकी बातपर तुरंत सहमत होते हुए रामा माईने कहा—"अरी पूछ मत बहुओंकी तो। मेरे तो दो हैं जो दो सौ के बराबर हैं।' 'यह कलकी लाई रांड़ें यह थोड़ेही जानतीहैं कि हमने हाड़ गला-गलाकर ये घर न बांधे होते तो आज ये तेरी छाँछ मेरे बैंगन करती डोलती।" कहकर जानकी काकी शून्यमें देखने लगी बुझी आँखोंसे एकदम उदास और निराश।" (पृ. ८६)।

संग्रहकी कई कहानियोंमें तिरस्कृत और उपेक्षित बुढापा चित्रित किया गयाहै तो महिलाओंकी स्थिति का चित्रण विविध रूपसे लगभग सभी कहानियोंमें मिलताहै। 'सुहाग थाल' शिक्षित महिलाकी आत्मकथा है, जिसे ग्रामीण ससुरालमें उपेक्षा सहनी पड़ी और वह मैके लौट जातीहै। ग्रामीण समुदायमें लड़कीका मायके में रहना या पतिसे अलग रहना कितना कष्टदायक होताहै, उसके सामाजिक पहलूको कथाकारने उद्घाटित कियाहै।

'निशान' में विवाहित नारीकी मनोव्यथा है जिसका पति दूर विदेशमें है। अभिजात वर्गकी औरत की स्वाभाविक आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए कहानी-कारने नये तेवरमें माध्यमकी सुन्दर कल्पना प्रस्तुत की है। 'लेकिन अब' में कहानीकारने कथानकको बदलकर विवाहित नारीको अपने पतिके सामने ही अपने मित्रसे खुला व्यवहार करनेपर पतिकी प्रतिक्रियाको दर्शायाहै, जो अपनेको उपेक्षित समझताहै।

'नुक्कड़वाली दुकान' कहानीकी नायिका किशोर-वयकी ग्रामीण लड़की है जिसका पालतू बकरीके प्रति स्नेह मानवीय संवेदनाओंको उद्घाटित करताहै। जब उसका पिता बकरीको कसाईके हाथ बेच देताहै तो बकरीके गोश्तको देखकर लड़कीका कांप-कांप जाना और चेतनाशून्य हो जाना मार्मिक है। मुस्लिम समु-दाय, जो अधिकतर मांसाहारी होताहै, के पात्रोंको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकर मीणाजीने कहानीको और प्रभावशाली बनाया है।

'अपन मुल्क' संग्रहकी अन्य कहानियोंसे हटकर है। कथाकारने राजस्थानसे निकलकर 'गोआ' की मिश्रित संस्कृतिमें प्रवासी मछुआरों विशेषकर महिलाओंकी व्यथाका वर्णन कियाहै कि किस प्रकार स्थानीय लोगोंका उनसे अभद्र व्यवहार जीवनको कष्टप्रद बना देताहै।

'कंजरी' जहां राजस्थानी संस्कृतिकी पारम्परिक प्रस्तुति है, वहीं 'दलदल' बम्बई महानगरकी कुछ होटलोंमें कैबरे डांस और व्यभिचारका विवरण है। इन दोनों कहानियोंमें भी नारीकी विवशता उजागर हुईहै।

'अच्छे बच्चे ऐसा नहीं करते गुड़िया' कहानीमें अभिजात वर्गकी धनाढ्य महिलामें शानो शौकतका दिखावा और उसके रखरखावके लिए कम आमदनीके परिचित लोगों, रिश्तेदारों और विशेषकर बच्चोंको दूर करनेकी प्रवृत्तिका चित्रण है।

"आखिर कब तक" कहानीपर संग्रहका नामकरण है। नायिका सुनीति बिगड़े हुए सहकर्मी राघवेन्द्रको सुधारनेके लिए उससे विवाह रचतीहै, परन्तु पत्नी बनकर भी वह उसे सुधारनेमें असफल रहतीहै और स्वयं टूट जातीहै अपनेसे और समाजसे। शिक्षित तथा प्रशासनिक सेवामें कार्यरत नायिका सुनीतिको उसकी बैच का सहकर्मी प्रकाश जब तलाकका सुझाव देताहै तो वह बदलावमें विश्वास प्रकट करती हुई कहतीहै, "क्या अब भी संभव नहीं है कि वह आदमी बदल ले अपने आपको? भटकनेकी कोई तो सीमा होगी; प्रकाश! आखिर कितना भटकेगा वह आदमी।" प्रकाशके पूछने पर कि "इसका इन्तजार कबतक कर सकोगी तुम?" वह कहतीहै, "यही तो एक सवाल है प्रकाश।" जो भारतीय नारीके धैर्य और सहन-शक्तिका द्योतक है। कहानीमें बदलते परिवेशमें बदलती मानसिकताके संदर्भमें युगकी पुकार है।

कहानी-संग्रहमें कुछ कहानियां पुलिस विभागकी व्यवस्था और हथकंडोंका पर्दाफाश करतीहैं। 'जिनावर' में बूढ़े, ईमानदार ग्रामीण किसानको अपनी ही सोने की चीज बेचने बाजारमें जानेपर पुलिसकी ज्यादतीका वर्णन है। 'वर्दियोंका षडयंत्र' शीर्षकके अनुरूप पुलिस का यथार्थ चित्रण है। जहां पुलिस ज्यादतियोंके लिए बदनाम हैं वहीं 'हम क्या करते बाबूजी' में उसकी विवशता स्पष्ट होतीहै भले ही किसी भ्रष्ट चरित्रकी ऊपर तक पहुंच उसका कारण हो। पुलिस अधिकारी सिंह साहबके शब्दोंमें, 'लेकिन है वो बड़ा रिसोर्सफुल साला। बिना किसी ठोस सबूतके कोई एक्शन उसके अगेंस्ट लिया तो हमें मुसीबतमें डाल देगा।"

कुछ कहानियां लीकसे हटकर हैं। 'चूल्हा फिर जला' गरीब चरवाहोंकी जीवनी; 'विकलांग सत्य' आधुनिक समाजमें सत्यकी राहपर चलनेवालोंके सामने आनेवाली कठिनाईयोंका चित्रण है; 'पिछली बार' कहानी स्थानांतरणपर आने और जानेवाले ओहदेदारोंके साथ मातहतोंके बदलते रवैय्येको उजागर करतीहै।

संग्रहकी प्रत्येक कहानीकी घटना अलग है परन्तु अधिकांश कहानियोंको एक सूत्रमें पिरोती है—राजस्थानकी संस्कृति। कहानियोंमें अधिकांशतः महिलाओं की सामाजिक स्थिति या वर्ग-वैषम्यका चित्रण है। सामाजिक प्रश्नोंको उठाते हुए विषम समाजमें उनके जवाब ढूंढ़नेका प्रयास है।

कहानियां सभी रोचक हैं। भाषामें प्रवाह, सादगी तथा रवानगी है। पात्रोंके संवाद उनके चरित्र और परिस्थितियोंके अनुरूप हैं और आंचलिकता संवादोंकी प्राण है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इन कहानियोंमें प्रयुक्त स्थानीय बोलचालके शब्दों और वाक्यांशों, जैसे कि—कलेवा, ब्यालू, दुपहरी, डोकरा, हुकुम, टाबरा, बिनणी, आग को खेट दिया, कचरेमें बुरना, धानोंको बाँधना, पगातिया आदिसे इतर हिन्दी प्रदेशोंके पाठकोंका मनोरंजन होगा और हिन्दीतर प्रदेशोंके पाठकोंका राजस्थानी संस्कृतिके संदर्भमें ज्ञानरंजन होगा। मीणा जीने राजस्थानी वेशभूषाका एकाधिक कहानियोंमें रोचक वर्णन कियाहै। उदाहरणके लिए 'कंजरी' की वेशभूषा—'मोटे फड़दके घेरदार घाघरे, हरी छींटकी लाल मुगजी लगी लाल फूंदे लगी डसवाली कुर्तियां और लाल लूगड़ियां। जूतियां सिर्फ मनबरीके पाँवमें थी, चौबर्णेकी। × × × बालोंकी मोटी-मोटी चोटियाँ मोलीके डोरोंसे कसकर बांधी हुई आटियों और चुटीलों के साथ। गिल्टके आभूषण—बड़ी-बड़ी लड़ियां लगे हेयर-पिन, चौढ़ी चैन, बोरला, बाटे, बीड़ले, खुंगाली, हमेल, जंतर और ताबीज। कंधेसे कोहनी तक सफेद मूटा चूड़ा, प्लास्टिकका पर हाथीदांतका भ्रम देता हुआ, कोहनी और कलाईके बीच रंग-बिरंगी चूड़ियाँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथों-पांवोंके अंगूठों और उंगलियोंमें बहुत सारे छल्ले मूंदडियाँ। लगभग सारे शरीरपर गोदना गुदा हुआ। खासकर हंसुलीपर मोरका चित्र, कलाईमें फूले-सा बना हुआ साथमें नाम लिखा हुआ और पलकोंके किनारेके नीचे, कपोलोंके उभार तथा ठुड्डीपर गुदी हुई तीन-तीन काली बिंदियाँ।'

कहानियां पढ़ते समय कोई फिल्म देखनेकी प्रतीति होतीहै जो पाठकीय संवेदनाको गहराई तक प्रभावित करतीहै। कथ्य, शिल्प, भाव सभी दृष्टियोंसे एक श्रेष्ठ कहानी संग्रह है। ▭

काव्य

ये असंगति[1]

कवि : भारतभूषण

समीक्षक : डा. कृष्णचन्द्र गुप्त

भारतभूषण मूलतः प्रेमके गीतकार हैं। सामने बैठी हुई प्रेमिकाके रूपका चित्रण हो या उसके हृदयमें उठनेवाली भाव-लहरियोंका अंकन हो, प्रेमिकाका बिछुड़ जानेपर रात-रातभर दहनेवाले अपने मनकी वियोगावस्था हो, या सुखद क्षणोंकी स्मृतिकी तल्लीनता हो, सबमें उनका अनुभूति प्रवण हृदय ही मुखर होताहै। प्रणय-गीतोंकी बड़ी समृद्ध परम्परा हिन्दीमें आदिकालसे है, फिरभी भारतभूषणकी कुछ अनुभूतियां ऐसी हैं जिन्हें एकदम नयी या अछूती कहाजा सकता है। यथा :

> तू मन अनमना न कर अपना/इसमें कुछ दोष नहीं तेरा/धरतीके कागजपर मेरी/तस्वीर अधूरी रहनी थी/

तथा

> सुन मेरे आंगनके गुलाब,/क्यों सुबह-सुबह पलकें गीली/किन अलकोंका सपना देखा/केवल सुगंध लाया होता, /कांटे भी लेकर क्यों जनमा?

अनन्त कालतक प्रतीक्षा करनेको तत्पर उनका प्रणयी मन कहताहै : 'सौ सौ जनम प्रतीक्षा कर लूं/प्रिय/मिलनेका वचन भरो तो'। उनके भावुक मनको यह मनुहार : 'दरस तुम्हारे जैसे कोई बैरागी तीरथ पा जाये' या चरम आह्लादका यह रूप :

> जैसे पूजामें आंख भरे/झर अश्रु गंगा जलमें/ऐसे ही मैं सिसका सिहरा बिखरा/तेरे वक्षस्थलमें ··/

प्रियके सम्मुख होनेपर यह अनुभूति भी होतीहै : "सम्मुख हो तो आरती जगी, सुधिमें हो, तो, चन्दन चन्दन।' इसीलिए मदहोश चांदनी कविको निर्द्वन्द्व होकर प्यार करनेके लिए कहतीहै, जिसे जड़ रूढ़ि-रीतियोंमें बंधा समाज अपराध मानताहै। परन्तु कविके लिए ये क्षण जीवनभर 'सिहर सिहरकर' याद करने योग्य लगतेहैं। प्रकृतिके इस मादक परिवेशमें यदि लाज संकोच या रूढ़ि रीतिसे जकड़े रहे तो सृष्टिका यह नियम—प्रणयके आदान-प्रदानका—तिरस्कृत ही रह जायेगा। इसीलिए वह मनुहार करताहै :

> भोर देखेगी अधरपर/जब लगा सिन्दूर मेरे/गूंथने जूड़ा तुम्हारा/फूल लायेगी सबेरे/मैं सुखी-सा/तुम सुखी-से/भोरकी पहली किरनमें/तुम न चहके/मैं न चहका/तो नियम बदनाम होंगे।

प्रणयोल्लाससे दीप्त इन अनुभूतियोंकी अपेक्षा वियोगसे दहकते हुए, सिसकते हुए और विवशताओंकी शृंखलाओंमें जकड़े हुए मनके गहरे अवसादकी अभिव्यक्ति कहीं अधिक प्रचुरता एवं मार्मिकतासे हुईहै।

---

१. प्रका. : पराग प्रकाशन, ३/११४ कर्ण गली, बिश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-११००३२। पृष्ठ : १०४; डिमा. ९३; मूल्य : ७५.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्हें कविने प्रतीकोंके माध्यमसे भी व्यक्त कियाहै। यथा :

जलमें विसर्जित दीप हम/जाने कहां बहते चले/
मंझधारकी गोदी चढ़े भी/आगसे दहते हुए।

समाजकी दृष्टिमें सुख-समृद्धिमें पल रहेहैं, पर मन में दाहकता लिये। कहीं यह दाहकता वनफूल जैसे उपेक्षित जीवनका अभिशाप है :

मैं हूं वन फूल भला मेरा/कैसा खिलना, क्या मुरझाना/ मैं भी उनमें ही हूं जिनका/ जैसा आना, वैसा जाना।

तो कहीं पिंजरेमें बन्दी पड़े हुए पक्षीका आत्मकथ्य है जो अपनी दारुण विवशतासे पाठक-श्रोताकी आंखें गीली करनेकी सामर्थ्य रखताहै।

सुखके दिन तो रह गये/पींजरेके बाहर/दुःख यह है उनकी यादें/साथ चली आयीं।

परन्तु वह आश्वस्त है एक दिन उसे भी मुक्ति मिलेगी इस पींजरे रूपी संसारसे—

तब बिन पंखों नभसे आगे/उड़ जाऊंगा/जंजीरें कितनी भीं हों/रोक न पायेंगी/

पर अभी तो अभिशप्त जीवनकी यह असंगति है ही : 'बांहमें और कोई, चाहमें और कोई।' केवल प्रणयके क्षेत्रमें ही नहीं, जीवनके अन्य हास-विलासके क्षेत्रमें भी यही नियति कविका पीछा नहीं छोड़ती : 'समारोह मेले व यात्रा/भीड़ भोज स्वागत शहनाई/सभी जगह पीछे चलतीहै/अर्थहीन काली परछाईं।' प्रणय वंचित भावुक मनको सभी स्थानोंपर लगताहै: 'दर्पणमें परछाईं जैसे/दीखे तो पर अनछुई रहे/सारे सुख-सौरभ की/मुझसे/ऐसीही दूरी रहनीथी।' प्रणयकी इसी प्रवंचना और अप्राप्तिके कारण कविका प्रणयी भटकता रहताहै। उसे लगताहै चारों ओर दाह ही दाह है : 'पिघली सड़कें/ झरती लपटें/ झुंझलाईं लूएं/धूल भरी/ अम्बर ताँबा/गन्धक धरती/बेचैन प्रतीक्षा/भूल भरी/ किसने देखा/किसने जाना/क्यों मन उमड़ा/क्यों आँख भरी।' और देखिये कितनी दारुण बिडम्बना है जीवन की, जीवन रूपी ताशके खेलमें इक्का मांगनेपर दुई मिलतीहै। इसी प्रकारकी असफलताओंसे त्रस्त होकर उसके सामने एक बड़ा भयावह प्रश्न उभरताहैं : 'आधी उमर करके धुआं/यह तो कहो किसके हुए/परिवारके ? या प्यारके ? या गीतके ? या देशके ?'

प्रत्येक संवेदनशील रचनाकारको इस यक्ष-प्रश्नसे टकराना पड़ताहै। तब वह जीवनका घटाजोड़ मिलाता है और अपनी रचनाधर्मिताको सहेजकर उसके बलबूतेपर उसी कस्तूरी मृग-से भटकते हुए अपने मनको आश्वस्त करताहै : 'मेरे मन मिरगा ! नहीं मचल/चहुं दिसि / केवल मृगजल मृगजल !' पर जब वह देखताहै उसकी सृजनात्मकता ही उसे जीवन रस प्रदान करती रहीहै बीहड़ जंगलमें, वह अपने सर्वस्वको धधकाकर देखताहै तो उसे लगताहै—'ढाई आखरकी ज्योति जली शब्दोंके बीहड़ जंगलमें', उसे अपनी रचनाधर्मितापर भरोसा जमताहै और जो भटकन हुईहै उसके फलस्वरूप उसे बहुत कुछ ऐसा मिलाहै जो स्वार्थान्ध संसारकी दृष्टिमें भलेही कंकड़ हो, उसके लिए तो रत्न ही है, तभी वह अपने और अपने जैसे अन्य पथिकोंको आश्वस्त करताहै : 'विश्वास कर मेरे हृदय/अंतिम रतन झूठा नहीं।' यह उत्तर है उस प्रश्नका, जो सम्पूर्ण जिजीविषाको खाये जा रहाथा : 'यह तो कहो किसके हुए ?' उसे लगताहै वह अपना है और अपना होकर ही सारी सृष्टिका है। यहां वह आत्मघाती कुंठा, निराशा, संत्राससे बच जाताहै, तथाकथित आधुनिक अस्तित्ववादी सर्वस्वघाती एवं क्षयी विनाशोन्मुख प्रवृत्ति से उबर जाताहै।

जीवनके कठोर यथार्थके प्रश्नों और समस्याओंसे कवि नहीं टकरायाहै अपने गीतोंमें, यह सही है। परन्तु मनोजगत्की सूक्ष्म तरल सजीव अनुभूतियोंके स्पन्दनको उसने वाणी दी है। यह ठीक है कि उसका संबंध प्रणय मात्रसे ही है। पर सुख-सुविधा भौतिक साधनोंको बटोरनेकी दौड़में मनुष्य जो पशु होता जा रहाहै, उसमें मानवीयताका, कोमलता और संवेदना जगानेका काम यह प्रणय ही करताहैं। हम फूलसे तलवारका काम नहीं ले सकते तो क्या फूल हमारे किसीभी काम का नहीं ? इस दुर्गन्धमय वातावरणमें तो ताजी और सुगन्धित वायुकी महत्ता अब वैज्ञानिक भी मानने लगेहैं तो फिर मनको सुवासित करनेवाले प्रणयकी इन अनुभूतियोंको स्थूल उपयोगितावादकी वेदीपर बलि नहीं दी जानी चाहिये। मनके असंस्कृत रह जानेके कारण आज जो विभीषिकाएं चारों ओर नृत्य कर रहीहैं उनमें भारतभूषण जैसे रचनाकारकी कविताएं कुछ उपयोगी हैं ही, भलेही आजके गर्जन-तर्जन, संघर्ष, आक्रोश, व्यंग्य-विद्रूपके नक्कारखानेमें तूती जैसी ही क्यों न लगे !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीतोंमें अभिव्यक्त इन कोमल अनुभूतियोंके अतिरिक्त, 'रामकी जलसमाधि' में कविने रामके स्वर्गारोहणके महिमामंडित अवतारी मिथकको तोड़कर मानव सुलभ द्वन्द्व, विवशता, असमर्थता एवं व्यर्थताकी तीखी अनुभूतियोंसे अभिभूत मनके हाहाकारको उजागर किया है। प्रतीत होताहै सीताके प्रति सृष्टिके सबसे बड़े अपराधबोधसे त्रस्त होकर राम अपने दुर्वह बोझसे ग्रस्त जीवनसे छुटकारा पानेके लिए सरयूमें जल-समाधि लेते हैं जो आज आत्महत्या जैसा लगताहै, क्योंकि इसके पीछे उनका अपराधबोध है, जीवनकी व्यर्थताकी तीव्र अनुभूति हैं, सीताके प्रति मर्यादा-रक्षणके नामपर किया गया संसारका सबसे दारुण अन्याय है :

> 'किसलिए रहे अब यह शरीर/यह अनाथ मन किसलिए रहे/धरतीको मैं किसलिए सहूं/धरती मुझको किसलिए सहे/तू कहां खो गयी वैदेही/ वैदेही ! तू कहां खो गयी कहां ?

तथा

> यह राजमुकुट/यह सिंहासन/यह दिग्विजयी वैभव अपार/यह प्रियाहीन जीवन मेरा/सामने नदीकी अगम धार।'

इस हाहाकारमें पूरी मर्यादा और सारा पौरुष खो जाताहैं। रह जाताहै केवल एक दंश सीताके प्रति किये गये अपराधका। इस अन्यायकी प्रतीतिका रिसता हुआ घाव—जो फैलकर रामके अवतारी महिमामंडलको ग्रस लेताहै। समष्टि रामको व्यक्ति रामकी यह अनुभूति व्यर्थताका बोध बड़ी गहराईसे करा जातीहै।

ऐसा ही कविता है 'आम्र जन्म'। इसके मूलमें भी सीताका दुःख ही है उसके अनकिये कर्मका गहरा परिणाम। अयोध्यावासियोंका व्यंग्य विद्रूप—'धरती की बेटी क्या लायी' पितृगृहसे। सीता भीतर ही भीतर झुरने लगती हैं : 'कैसी गलियां है माइ अयोध्याकी ?' नववधूके स्वागतकी कैसी रीत है यह। रोते-रोते आंसू धरतीपर गिरतेहैं। वहीं आमका अंकुर फूटताहै। अवधी क्षेत्रमें प्रचलित इस लोक विश्वासको आधार बनाकर बड़ी मार्मिक कविता लिखी गयीहै जो आज दहेजके संदर्भमें सामाजिक चेतना सम्पन्न लोगोंको भी बड़े कामकी लग सकतीहै।

तो सामाजिक संदर्भ भी है, भलेही एकाध हो और वे भी मार्मिकतामें डूबे हुए। कविता और वह भी गीत, ज्ञान-विज्ञानकी अन्य अभिव्यक्तियोंसे अपनी कोमल संवेदनाओंके कारण ही तो अपनी अलग पहचान बनाये हुएहै। सोद्देश्यकी आपाधापी और स्थूल उपयोगिताकी मारामारीके कोलाहलमें, गीतके कोमल स्पन्दन को सुननेके लिए हमारी श्रवण शक्ति ध्वनि-प्रदूषणके कारण बहरी हो गयीहै क्या ? यदि बहरी हो गयीहै तो दोष क्या गीतका ही है। क्या कोमलको भी दहाड़ना पड़ेगा ? बिना दहाड़े उसका अस्तित्व ही निबट जायेगा क्या ? यह प्रश्न उठातीहैं भारतभूषण जैसोंकि रचनाएं। ▭

सुनते हुए बारिश[1]

मूल कवि : रियोकान
अनुवादक : नन्दकिशोर आचार्य
समीक्षक : डा. हरदयाल

मनुष्यका मूल उद्देश्य सुखकी प्राप्ति और दुःखका निवारण रहाहै। एक जीव होनेके नाते उसे अपनी विभिन्न इन्द्रियोंकी मांगोंको पूरा करना पड़ताहै। चूंकि वह सीमित शारीरिक-मानसिक शक्ति लेकर मानव-समाजमें ही नहीं, बल्कि अन्य जीव-जन्तुओं और प्राकृतिक परिस्थितियों-शक्तियोंके बीच रहताहै, जिसके कारण उसकी इन्द्रियोंकी तृप्तिमें बाधा उपस्थित होती है। यह बाधा उसे दुःख पहुंचातीहै। अतः वह अपनी इन्द्रियोंकी निर्बाध तृप्ति करना चाहताहै, जो यहां तो सम्भव नहीं है। जहां वह सम्भव हो सकतीहै वह ऐसे मनोराज्यकी कल्पना करताहै। स्वर्ग ऐसाही एक मनोराज्य है। मनुष्यने यह भी जानाहै कि इन्द्रियोंकी निर्बाध तृप्तिभी उसे सुखी नहीं बना पाती। इन्द्रियोंकी निर्बाध तृप्तिभी मनको तृप्त नहीं कर पाती और शरीर को अनेक रोगोंसे ग्रस्त कर देतीहै। तब रास्ता क्या है ? इस प्रश्नके उत्तरमें मनुष्यने अनेक रास्ते खोजेहैं। एक रास्ता है इस संसारमें रहते हुएभी, इन्द्रियोंकी अनिवार्य तृप्ति करते हुएभी संसारसे निर्लिप्त रहना। उसमें संसक्त न होकर मात्र द्रष्टा बने रहना। मुण्डकोपनिषद्के इस पदमें इसी मार्गका संकेत है—

> द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया, समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
> तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्यो अभिचाकशीति॥
> (३/१/१)

प्रश्न यह है कि संसारमें रहते हुए मात्र द्रष्टा

---

१. प्रका. : कल्पना प्रकाशन, बीकानेर-३३४००१। पृष्ठ : ९६; डिमा. ९३; मूल्य : ८०.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बने रहना क्या सम्भव हैं ? हमारा उत्तर है—एक सीमा तक यह सम्भव है। लेकिन सबके लिए नहीं, गिने-चुने व्यक्तियोंके लिए ही यह सम्भव है। और यह सम्भव बनताहै साधनाके द्वारा। जापानकी ज़ेन साधना-पद्धति इसी लक्ष्यकी सिद्धिका एक मार्ग है।

जापानमें ज़ेन-साधना-पद्धतिको अपनाकर कितनों ने यह द्रष्टा-भाव प्राप्त कर लियाथा, यह बता पाना हमारे लिए सम्भव नहीं है; लेकिन एक नया नाम हम अवश्य ले सकतेहैं। और वह नाम है अठारहवीं शतीके ज़ेन साधक रियोकानका। प्रमाण हैं उनकी कविताएं, जिनमें वे भोक्ता और द्रष्टा दोनों रूपमें एक साथ आते हैं।

रियोकानकी कविताएं उनकी साधनाका ही एक रूप या अभिव्यक्ति हैं। वे ज़ेन साधक थे और ज़ेन साधकके जीवनको औरोंके जीवनसे श्रेष्ठ मानतेथे। 'भिक्षाके बाद' कवितामें उन्होंने लिखाहै—

बस्तीमें दिन-भर भिक्षाके बाद/सान्ध्य शीतलतामें/
बैठाहूं इस चट्टानके नीचे। /अकेला, /एक चीवर
और कटोरा एक। / ज़ेनभिक्षुका जीवन, / हाँ
बेहतर है सचमुच। (पृ. ३९)

जेन भिक्षुकका जीवन बेहतर है या नहीं इस पर विवाद हो सकताहै; पर यह निर्विवाद है कि रियोकानकी यह मान्यता पूरी आस्थाके साथ थी। उनके मनमें भी यह प्रश्न उठाथा कि उन्होंने जो जीवन अपनायाहै वह 'क्या प्रबुद्धता या भ्रमका लक्षण है ?' और उन्होंने उत्तर दियाथा—

नहीं बता सकता मैं—
धूल है सभी प्रतिष्ठा और सम्पदा—
उत्तरमें फैला देताहूं/अपने दोनों पांव/
शामकी बारिशमें/बैठा कुटियाके अन्दर। (पृ. १९)

रियोकान जो जीवन ज़ेन साधकके रूपमें जी रहे हैं वह ऐसे व्यक्तिका जीवन है जिसने संसारका परित्याग कर दियाहै और जिसके पास जीवित रहनेके न्यूनतम साधन हैं—एक कुटिया, एक कन्था, भिक्षाटनके लिए एक कटोरा, एक लाठी, कूची, रोशनाई, कागज, लालटेन, शाक, चावल, मेज, चीवर, केलेका गाछ, कविताकी पुस्तक या ऐसीही कुछ चीजें और। वे इन चीजोंसे सन्तुष्ट हैं, क्योंकि उन्होंने अपरिग्रहको अपना लियाहै—

महक रहा मेरा कमण्डलु/ घर-घरके चावलसे।
तज दी मनने मेरे/धन और यशकी प्रभुता।
आनन्दित होते हुए पुराने बुद्धोंकी स्मृतिमें /
जाताहूं मैं गांव : /एक दिन और गोचरीका।
(पृ. १४)

लेकिन उनकी कविताएं इस बातका संकेत देतीहैं कि उन्होंने सभी मानवीय दुर्बलाओंपर पूर्णतः विजय प्राप्त नहीं कर लीहै। प्रकृति उन्हें आकर्षित करतीहै। बरसात, शरद्, जाड़ा, पतझड़, वसंत, गर्मीकी ऋतुएं उन्हें प्रभावित करतीहैं। उनकी एक भी कविता ऐसी नहीं मिलेगी, जिसमें प्रकृतिका चित्रण-विवरण न हो। प्रकृतिके साथ उनकी एकाकारिता कितनी अधिक है यह उनकी 'विरासत' शीर्षक कवितासे जाना जा सकता है—

विरासत क्या होगी मेरी ? /वसन्तमें फूल, /
ग्रीष्ममें कोयल/और शरद्में किरमिजी पत्ते।
(पृ. ८९)

वे गाँवके बच्चोंके साथ खेलतेहैं। कभी-कभी उन्हें अपना अकेलापन शान्तिदायक लगताहै और कभी असहनीय। कभी-कभी उनकी भी आकांक्षा होतीहै कि उनके अकेलेपनमें कोई उनका साथ देनेवाला होता, वे गरीब न होते, उन्हें भिक्षाटनके लिए न जाना पड़ता—

मूर्ख और जिद्दी— /किस दिन करूं मैं आराम ?/
अकेला और गरीब, यह जीवन। /धुंधलका :
लौटताहूं गांवसे/ फिर लिये हुए/खाली कटोरा।
(पृ. ८४)

अथवा

अकेला खड़ा/अकेले चीड़के नीचे/तिजीसे बीतताहै
समय।/ ऊपर है अनन्त आकाश—/ किसे
पुकारूं/इस पथपर/ देनेको मेरा साथ। (पृ. ४५)

रियोकानकी कविताएं ज़ेन साधककी इसी मिली-जुली मनःस्थितिमें से उपजीहैं। उनकी कविताओंकी रचनाके पीछे प्रेरणा क्या रहीहै, इसे उन्हींकी एक कवितासे समझाजा सकताहै—

गहरे पहाड़ोंमें रात, अकेला कुटियामें/ अपनी/
सूनताहूं उदास आवाजें/बारिश और बर्फकी।/
चोटीपर किकियाता लंगूर;/घाटीमें बहती नदियाकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोली/गुम है। /टिमटिमा रहीहै एक रोशनी/
खिड़कीके आगे, /मेजपर पानी सूखा रोशनाईका।/

नहीं सो पाता मैं/करताहूं तैयार रोशनाई/
लेताहूं कलम/और लिखताहूं यह कविता।

(पृ. २५)

स्पष्ट है कि रियोकानने कविताएं कविता लिखने के लिए नहीं लिखीहैं अपितु उनकी अन्तःप्रेरणाने उनसे कविताएं लिखवा लीहैं। यही कारण है कि उनकी प्रायः सभी कविताएं कुछ विवरणोंसे निर्मित हुईहैं और ऊपरी तौरपर चमत्कारशून्य और लगभग अनलंकृत हैं। उनमें वह भावावेग भी नहीं है जो हमें अपने साथ बहा ले जाये; बल्कि ऊपरसे देखनेपर तो वे निरावेग मालूम पड़तीहैं। वस्तुतः वे थिरायी हुई अनुभूति की कविताएं हैं जो हमें पहले ही पाठमें प्रभावित करती हैं। और यह प्रभाव ऐसा है जो हमें उन कविताओंकी ओर लौटनेके लिए बार-बार विवश करताहै। इन कविताओंको बार बार पढ़नेको मन करताहै और इन्हें जितनीही बार हम पढ़तेहैं, हमारे अन्तर्मनमें ये उतनी ही गहरी उतरती जातीहैं।

नन्दकिशोर आचार्यने अनुवाद बहुत अच्छा किया है। किसीभी कविताको पढ़ते समय कहीं भी ऐसा नहीं लगता कि हम अनुवाद पढ़ रहेहैं। ऐसा लगताहै जैसे मूल कवि और अनुवादककी आत्मिक अनुभूतिके स्तर एकमेक हो गयेहैं। हां, एकाध भाषिक शिथिलताएं अवश्य हैं जिनका उल्लेख आवश्यक है। पृ, ४७ पर 'चिड़ियाएं' शब्दका प्रयोग किया गयाहै। यह गलत है। चिड़ियाका बहुवचन 'चिड़ियां' होताहै। पृ. ५९ पर एक पंक्ति है—'हरे चीड़ोंपर लगे हुई गोटे-सी ...'। होना चाहिये 'लगे हुए गोटे-सी'। पृ. ९६ पर एक स्थानपर लिखा है—'बोती जातीं चावल'। यह तथ्यात्मक भूल है। 'चावल' नहीं 'धान' बोये जातेहैं। लेकिन त्रुटियां मामूली हैं, उपेक्षा कीजा सकती हैं।▭

पंख बिखरे रेतपर[1]

नवगीतकार : कुमार रवीन्द्र
समीक्षक : डा. विजय कुलश्रेष्ट

नवगीतकारके रूपमें प्रतिष्ठित बावन वर्षीय कुमार रवीन्द्रका यह छठा संकलन है। कुमारका नवगीतपरक कृतित्व 'आहत हैं वन', 'चेहरोंके अन्तरीप' के संकलनों के इतर 'नवगीत दशक-२', नवगीत अर्द्धशती एवं 'यात्राके साथ-साथ' संकलनोंमें भी उपलब्ध है। जहांतक 'नवगीत' का सम्बन्ध है, नवगीत गीत और कवितासे भिन्न और निजी मौलिकता रखताहै क्योंकि उसमें सर्वोपरि मानवीय दृष्टिका ऐसा गहन सरोकार निहित है जो परिवेशके प्रति जागरूक चेतनता लयात्मक संसक्ति, अधुनातन भाव-बोधोंकी अभिव्यक्तिके साथ-साथ अर्थवान् बिम्बोंके माध्यमसे अपना मन्तव्य सम्प्रेषण आदि हैं जो बौद्धिकता और रागात्मकताका समुच्चय अपनी विशेष पहचानसे सम्पन्न बनताहै। कुमार रवीन्द्रकी आलोच्य काव्य कृतिके प्रतिकलनको उक्त रूपमें अपनी समर्थ सार्थकताके रूपमें देखाजा सकताहै।

आधुनिक चिन्तन और चिन्तनपर निरन्तर दबाव बनाये रखनेवाला विविध स्थितियोंकी निष्पत्तिकी दिशा में आज नवगीतकार अब समग्रतः समर्थ है तथा सामयिक सन्दर्भोंकी अभिव्यक्तिके प्रति उसकी प्रतिबद्धता (वाद विशेष रहित) तथा प्रगतिगामी जीवन दृष्टिकी सम्पन्नता नवगीतकी अन्तःसृष्टिके ऐसे तत्त्व हैं जो कुमार रवीन्द्रके विगत गीतोंमें मुखौटेपन और हठी कहकहों भरे दिनके पीछे क्या है—कह सकना अत्यन्त कठिन तो है, पर उसके लिए बिम्बायन निषिद्ध नहीं लगता। तभी सुप्रसिद्ध नवगीतकार डॉ. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' का यह कथन बहुत सार्थक प्रतीत होताहै कि—विगत दो दशकों में नवगीत साहित्य चिन्ता केन्द्रमें स्थिति सर्वाधिक चर्चित विधा रहीहै और कुमार रवीन्द्र उस विधाके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर (जैकेटपर कथन) हैं। कुमार रवीन्द्रका नवगीतकार अपने समसामयिक अन्तर्बाह्य परिवेशकी जड़ता और मानवकी गतिमयी जिजीविषाकी गहरीं पकड़के प्रति जितनी सशक्त है तो उतनी ही अभिव्यक्तिमें चित्रमयता, मानवीकरण और बिम्बात्मकता निहित है।

आलोच्य कृतिमें नवगीतकार कुमार रवीन्द्रका यह कथन भी अपनी सार्थकता सिद्ध करताहै कि—पंख विविध रंगी हैं, जो रेतपर बिखरे हुएहैं ...इन पंखोंमें इन्द्रधनुषी आस्थाएं भी हैं और धुंधली हताशाएं भी। इनके बिखरनेकी प्रतीति भी आस्था-अनास्था दोनोंसे जुड़ी हुईहै। इनकी मार्मिकता इनके अनुभवसे एकान्तिक रूपसे जुड़ीहै (पृ. ७ बिखरे पंख ये) क्योंकि वर्तमान जीवन जिन विसंगतियों, राजनीतिक त्रासदियों, मानवीय संत्रासों, कथा मूल्यहीनताकी सर्वोच्च महनीयतासे सम्पन्न (विपन्न ?) होता जा रहाहै, वहां सृजनधर्मिता

---

१. प्रका. : अयन प्रकाशन, १/२० महरौली, नई दिल्ली-११००३० । पृष्ठ : ८८; डिमा. ९२; मूल्य : ४५.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में अनास्था-आस्थाके मध्य उभरते हर सूक्ष्म रिश्तोंको बिखराव तक कुमार रवीन्द्र पहुंचाते हैं कि—आंख मीचे/देखती रितु/ढाई आखरकी ठगी (पृ. २५) आज आखिर क्या होगया उस ढाई आखरको जो मानव-मानवके बीच खीच गयाहै—अविश्वसनीयता, अनास्था, अपरिचय और विलगता। यही देखकर तो कविको लगताहै कि—रेतके बगूलोंसे/घिरा हुआ/कमरा वह द्वीप है। जिसपर/जलपरियोंके नाच हैं; शंख और सीप हैं (पृ २९), या फिर—आंगनोंके/रास्तेमें/थकी दालानें खड़ी है (पृ. ३३) अथवा—'रिश्तोंने मिलजुलकर/तोड़ दिये/घर सारे/पुरखोंकी चौखटपर/बैठेहैं/बंटवारे (पृ. ३८)। इसलिए कवि अनुभव करताहै कि—'माथेके कोनोंपर/नर्म हाथ/छू गये/चुभी सुई (पृ. ३९) परिणामतः 'चेहरे पर शिकन लिये/दिन भर की / टूटनकी/बिखर गयी सांसोंकी (पृ. ४२), 'वीरान जले/रिश्तोंके अन्तरीप (पृ. ४८), 'कोठरीमें कैद/साये हैं/ बरफके (पृ. ४९)। राजाके घरमें जलसे है/ वही तमाशे (पृ. ५६), 'खूनके हैं/लोग प्यासे/नदीमें पानी नहीं है (पृ. ५९) प्यास इतनी बढ़ी/पी रहे सब ज़हर (पृ. ६५), रिश्तेकी/सूखती नदी (पृ. ६८) उक्त सारी बिम्बात्सक अभिव्यक्तियां आधुनिक जीवनके विविध रूपोंका यथार्थ आकलन है क्योंकि—'आंख पत्थरकी/सभीकी/देखतेहैं/ लोग सपने/राखकी मीनारमें/कैदी हुए घर-गांव अपने (पृ. ८५)।

कुमार रवीन्द्रके पास अपने कथ्यकी सार्थक अभिव्यक्तिके लिए अपना मुहावरा है, अपने बिम्ब और प्रतीक हैं। सूरज, टापू, गुम्बज, मीनार खिड़की, राजा, मीठा ज़हर, पत्थरके चेहरे, मोम/मोमकी दीवार, चौखट, रिश्ते/रिश्तोंकी नदी, दीवार, शीशा आइना/शीशेके महल, पगडंडियां, घरौंदें, झील, सुरंग, प्यास, नींदके/जंगल, रेती घर नाव, महलोंकी ड्योढ़ी खुशबूके टीले, झरोखे, आदि पर्यावरण परिचयके लिए नहीं अपने प्रतीकार्थ और बिम्बार्थमें ही अधिक सक्रियता प्रकट करनेके लिए प्रयोगमें लिये गयेहैं। नवगीत संकलनकी यह कृति इन प्रतीकार्थोंके माध्यमसे ही नवगीत का भावमयता और एकतानता प्रकट कर पानेमें समर्थ है। शिल्पकी दृष्टिसे यह संकलन बहुत ही सफल कहा जा सकताहै क्योंकि नवगीतकारने सहज संवेद्य, सुगम भाषामें जटिलसे जटिल कथ्यको अभिव्यक्ति देनेमें अपनी काव्य सामर्थ्यका सफल परिचय भी दियाहै। निश्चित ही यह नवगीत-संकलन (पिचहत्तर नवगीत) पूर्व संकलनोंकी भांति अपनी महत्ता और स्थान बनानेमें सफल होगा और कृतिकारकी विकसित आस्था, जो पहलेके संकलनोंसे निश्चित ही प्रचुर है—मनुष्यके आपसी रिश्तोंको तोड़नेसे बचानेके लिए अपनी सर्जना की सशक्तता स्थापित करेगी। सुन्दर आवरण एवं शुद्ध मुद्रणके लिये प्रकाशकको बधाई। ▭

साहित्येतिहास

राजस्थानका हिन्दी साहित्य[1]

लेखक : राजस्थानके छः लेखक

समीक्षक : डा. विजय कुलश्रेष्ठ

हिन्दी साहित्यके इतिहास-लेखनमें विशेषकर आदिकालीन साहित्य विषयक योगदानके लिए राजस्थान (राजपूताना) या तत्कालीन राज्योंकी भूमिका महत्त्वपूर्ण रहीहै। ऐसा विशिष्ट स्थान बना लेनेवाले राजस्थानके हिन्दी साहित्यका हिन्दी साहित्येतिहासमें और उसकी केन्द्रीय धाराके साथ सम्बन्ध स्थापित करनेकी दिशामें प्रस्तुत कृतिका विशेष महत्त्व है। अब तक लिखित हिन्दी साहित्यके इतिहासमें राजस्थानके साहित्यको रेखांकित करने तथा हिन्दी साहित्यके विकासमें राजस्थानके हिन्दी साहित्यकारोंके कृतित्वके मूल्यांकनका अभाव रहाहै। राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित 'राजस्थानका हिन्दी साहित्य' इस अभावकी पूर्तिका एक प्रयास है।

इस कृतिका महत्त्व इसलिए भी है कि बदलते हुए युग-बोधके कारण नवीन तथ्योंका अनुसंधानपरक विवेचन प्रस्तुतकर राजस्थानके स्वातंत्र्योत्तरकालीन प्रचुर लेखनका मूल्यांकित एवं विश्लेषित रूप हिन्दी साहित्येतिहासके जिज्ञासुओंको नयी भावभूमि दे सकेगा। इसी महत्त्वको रेखांकित करते हुए डा. दयाकृष्ण विजय, निवर्तमान अकादमी अध्यक्षका कथन है कि—राजस्थानका हिन्दी साहित्यका इतिहास यदि लिखा गया तो यह पुस्तक उसकी पूर्वपीठिकाके रूपमें

---

१ प्रका. : राजस्थान साहित्य अकादमी, हिरन मगरी सैक्टर ४, उदयपुर-३१३००१। पृष्ठ : ३०४; डिमा. ९३; मूल्य : १५०.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवश्य काम आयेगी (पृ. ६) यहां यह भी संकेत है कि प्रारम्भिक प्रायोजना 'राजस्थानके हिन्दी साहित्यका इतिहास' लेखनकी थी, पर उसके लिए दीर्घकालिक धैर्य, लगन, श्रमसाध्य एवं दीर्घकालिक कार्यक्षमताकी आवश्यकता थी।

आलोच्य कृति सम्पादित रूपमें न प्रस्तुत की जाकर विभिन्न साहित्यकारोंको सौंपे गये दायित्वके आधारपर तैयार हुईहै। इस कृतिको छः अध्यायोंमें वर्गीकृत रूपमें प्रस्तुत किया गयाहै। कवितामें (डा माधव हाड़ा), कहानी (डा. भैरुलाल गर्ग), उपन्यास (डा. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल) नाटक (प्रो. मदनमोहन माथुर), आलोचना (डा. मोहनकृष्ण वोहरा), विविध विधाएं (डा. मदन केवलिया) शीर्षकोंमें अभिधानित की गयीहै। प्रथम अध्याय "कविता" पर पैंतालीस पृष्ठोंमें डा. हाडाने स्वातंत्र्योत्तरकालीन हिन्दी कविताके राजस्थान द्वारा किये गये अवदानसे परिचित कराया है। छठे दशकके पूर्व वृत्तको छोड़कर डा. हाड़ाने सातवें दशकसे नवे दशककी काव्य प्रवृत्तियों एवं कवियोंका मूल्यांकन प्रस्तुत कियाहै। साठोत्तरी कविताका संकेत भर किया गयाहै तथा मूल्यहीन राजनीतिके सूत्रपातके परिणामस्वरूप कवितामें परिवर्तनकी प्रक्रिया आरम्भ ही होनीथी। सातवें दशकके पूर्वार्द्धका चिन्तन करते हुए लेखकने कहाहै कि—सातवें दशकके आरम्भिक वर्षोंमें नयी कवितासे विच्छेदकी तीव्र चेतना लिये अल्पजीवी कुकुरमुत्ता काव्य प्रवृत्तियां आन्दोलनके रूप में सामने आयीं।··· ये विभिन्न काव्य प्रवृत्तियां, जिनकी सक्रियता मुख्यतया आठवें दशकके पूर्वार्द्ध तक ही सीमित है, ग्रामीण और महानगरीय संस्कृतियोंके संक्रमणसे उत्पन्न सांस्कृतिक शून्यकी विकृतियों—अकेलेपन, आत्म-परायेपन और निरर्थकता-बोधकी चेष्टाओंमें स्थापित व्यवस्थाओं और मूल्योंके प्रति घृणा और जुगुप्साका वेग बहुत प्रबल है। सातवें दशक उत्तरार्द्धके कृतित्वके सम्बन्धमें स्पष्ट किया गयाहै—कविता अकविताकी विकृतियोंसे हटकर वामपंथी आदर्शों और मूल्योंकी ओर झुकी (पृ. १०-११) जबकि आठवें दशक के पूर्वार्द्धमें आकर वे कहतेहैं कि—केवल विचारपर निर्भरता इस कवितामें नहीं है, इसकी निर्भरता वस्तुस्थितियोंकी अपनी अन्तःप्रक्रिया और द्वन्द्वात्मकता पर है···रूप शिल्पके प्रति जागरूकता जो सातवें दशक में मानवीय वास्तविकताके सीधे साक्षात्कारमें अवरोध मान ली गयीथी, यहां अनिवार्यता फिर दिखायी पड़ती है (पृ. १३)।

एक विशेष दृष्टि और चिन्तनके निकषपर हिन्दी साहित्य कविताका मूल्यांकन कदापि सम्भव नहीं है, फिरभी मूल्यांकनका आधार राजस्थानके नंद चतुर्वेदी, विजेन्द्र, नंदकिशोर आचार्य, ऋतुराज, हरीश भादानी, मणि मधुकर, जयसिंह नीरज, जुगमंदिर तायल, रणजीत, योगेन्द्र किसलय, कमर मेवाड़ी, विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, भागीरथ भार्गव, रमासिंह, सुधा गुप्ता, भगवतीलाल व्यास आदिके कृतित्वकी परख उन्हें केन्द्रीय साहित्य धाराके निमित्त अपने प्रदेय रूपमें स्वीकार की जा सकतीहै।

राजस्थानकी हिन्दी कहानीपर इक्यावन पृष्ठीय आलेख है जिसमें राजस्थानकी हिन्दी कहानीका विकासात्मक परिचय देकर आधुनिक युगबोध और सामाजिक संलग्नताकी साठोत्तरी कहानीके परिवेशगत विविध आयामोंका उल्लेख कियाहै। डॉ. भैरुलाल गर्ग की श्रमसाध्य सार्थकतासे परिपूर्ण आलेखमें यह भी स्पष्ट लिखा गयाहै कि—स्वतंत्रता प्राप्तिके बाद देशमें अवसरवादिताकी राजनीति पनपी··· राजनीति अत्यन्त दूषित हो गयी।···परिणामतः साठोत्तरी कहानीमें राजनीतिक भ्रष्टाचार, अवसरवादिता, भाई भतीजावाद, राष्ट्रीयताकी आड़में स्वार्थ सिद्धिकी प्रवृत्ति, राजनेताओं द्वारा जन अधिकारोंका हनन उजागर हुआ है (पृ. ९२)। उपन्यास साहित्यपर सैंतीस पृष्ठीय आलेखमें डा. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल राजस्थानके औपन्यासिक सर्वेक्षणके माध्यमसे अपने निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं। शंकराचार्य (पं. जनार्दनराय नागर) दस खण्डोंमें लिखितसे लेकर विश्वम्भरनाथ उपाध्यायकृत दूसरा भूतनाथ तक की यात्रामें अनेक नामोंकी चर्चा है और लगभग पांच सौ उपन्यासोंमें से कुछका उल्लेख भी किया है। डा. अग्रवालकी सार्थक टिप्पणीपर साहित्येतिहासकारोंका ध्यान जाना भी आवश्यक है—जब भी हिन्दी उपन्यासकी बात होतीहै, राजस्थानका उपन्यास प्रायः अनुपस्थित रहताहै (पृ. १४२)। यही आगेके पृष्ठपर टिप्पणी है कि राजस्थानके उपन्यासको लेकर सबसे बड़ी शिकायत है आलोचक, उसने राजस्थानके लेखनके प्रति अपनी भूमिकाका सही निर्वाह नहीं किया। (पृ. १४३)। उक्त कथन आंशिक सत्य है। उपन्यास छपा या छपा लिया गया। कब किसने आलोचना या समीक्षा हेतु भेजा अथवा कब किस संस्थाने उसको रिलीज कराया। गत एक दशकसे 'प्रकर' के कालमोंपे राजस्थानका उपन्यास कितना गुजरा है—यह भी डा. अग्रवालको देखना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचकभी खरीदकर पढ़ सकता है—यह बात स्वीकार की जा सकती है, पर विमोचन समारोहोंके बाद कभी एकाध प्रति आलोचकको दो गयीहो, यह ज्ञात नहीं है (कमसे कम मुझे तो।

राजस्थानके हिन्दी नाटकपर चौवन पृष्ठीय आलेखमें प्रो. मदनमोहन माथुरने राजस्थानके हिन्दी नाटककी पृष्ठभूमिमें राजस्थानके प्रदेयका उल्लेख करते हुए विभिन्न अंचलोंमें रंगकर्मकी वस्तुस्थितियोंका परिचय भी दियाहै । परिचयपरक अतिरेकतामें श्री माथुर अपना लोभ संवरण नहीं कर पाये है और राजस्थानीमें लिखे गये या मंचित किये गये नाटकोंकी चर्चा भी कर गयेहैं तथा कुछ नाम छूट भी गयेहैं । रंगकर्मसे जुड़े होनेके कारण उनसे ऐसी त्रुटिकी सम्भावना नहीं थी, नाम भी ऐसे लोगोंके छूट गयेहैं जिनका प्रदेय राजस्थानके हिन्दी रंगमंचको मिलाहै ।

राजस्थानकी हिन्दी आलोचनाके साठ पृष्ठीय आलेखमें डा. मोहनकृष्ण बोहराने आरम्भमें आधुनिक हिन्दी आलोचनाकी पृष्ठभूमिपर सविस्तार प्रकाश डालाहै तथा उनका माननाहै कि आलोचना क्षेत्रमें राजस्थानके लेखकके मूल्यांकनका स्वरूप अध्यापकीय या छात्रोपयोगिताके दायरेमें आबद्ध रह गये लेखकोंको सन्दर्भमें (पृ. १९९) नहीं अथवा कम सन्दर्भ जुटाया है । डॉ. बोहराने यह भी स्पष्ट कियाहै कि—आलोचनाके उदयकालमें राजस्थानकी (इस) पण्डितत्रयी—मुंशी, ओझा, गुलेरी (मुंशी देवीप्रसाद, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी)—की तूती पूरे हिन्दी जगत्में बोलीथी और सत्य तो यह है कि नागरी प्रचारिणी पत्रिकाके माध्यमसे वह यूरोपीय जगत्को भी प्रभावित कर गयीथी (पृ. २०३) । आगे शुक्ल युगके रूपमें राजस्थान शिलीमुख (शुक्लजीके ही शिष्य) मोतीलाल मेनारिया, पं. सूर्यकरण पारीक, प्रो. नरोत्तमदास स्वामी, डा. सोमनाथ गुप्त, डॉ. कन्हैयालाल सहल, डा. सरनामसिंह अरुण, डा. रामचंद्र महेन्द्रके आलोचना कर्मका उल्लेख किया गयाहै । मनोविश्लेषणवादी आलोचकके रूपमें डॉ. देवराज उपाध्यायका नाम सर्वथा उल्लेख्य है। इसके अतिरिक्त नंद चतुर्वेदी, सुधीन्द्र, प्रो. शलभ, रांगेय राघव, विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, कन्हैयालाल सहलके नाम उल्लेख्य हैं । साहित्यिक आलोचकोंमें डा. जगदीश शर्मा, नंदकिशोर आचार्य, डॉ. पुरुषोत्तम आसोपा, तथा शैली वैज्ञानिक आलोचनामें डॉ. कृष्णकुमार शर्माका नाम उल्लेख्य है । वर्तमान पीढ़ीके अनेक आलोचकोंका उल्लेख इस आलेखकी विशेषता रहीहै । लेखक बोहरा निस्सन्देह स्वीकार करतेहैं कि—लेकिन सब मिलाकर भी गर्व करने लायक पूंजी हम अभी तक नहीं सौंप सकेहैं (पृ. २५७) । निश्चित ही विशेष दृष्टि एवं व्यक्ति चर्चा तक सीमित यह आलेख राजस्थानकी हिन्दी आलोचनाका सत्य उद्घाटित करताहै ।

राजस्थानमें विधागत साहित्य (ग्यारह अभिधानों से युक्त) विषयक छियालीस पृष्ठीय आलेखमें डा. मदन केवलियाने स्पष्टतः उल्लेख कियाहै कि—राजस्थानमें लिखित साहित्य परिमाण और महत्त्व दोनों दृष्टियोंसे स्तुत्य है । यहांके साहित्यकार पूरे भारतीय परिदृश्यमें कहीं भी कम नहीं पड़ते । सन्तोषकी बात है कि यहांके हस्ताक्षरोंने खुली दृष्टि और विचारधाराओंका सम्बल लेकर साहित्य देवताके चरणोंमें अपने श्रद्धा सुमन अर्पित कियेहै (पृ. २६०) । मैं डा. केवलियाके कथनमें यह उपकथन भी जोड़ देना चाहूंगा कि खेमेबद्ध चिन्तनने राजस्थानके बहुआयामी साहित्य-सर्जकोंकी टांग खिचाई करते रहनेमें जितनी शक्ति क्षय कीहै, उतनी ही सर्जनाको केन्द्रीय साहित्यधारासे अपने जुड़ावसे दूर रखनेके लिए पर्याप्त थी । जो लोग आगे आयेहैं, उनके प्रोत्साहनमें सहयोगी प्रस्तोता सृजनधर्मी नहीं बन सकाहै । व्यंग्य, जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, रेखाचित्र, यात्रा, डायरी, पत्र, रिपोर्ताज, इण्टरव्यू, गद्यगीत जैसी विधाओं एवं रचनाकारोंका उल्लेख इस पुस्तकके कलेवरमें सुहागेका काम करताहै ।

इसमें कोई संदेह नहीं कि राजस्थानमें लिखा गया और लिखा जा रहा बहुविधात्मक साहित्य केन्द्रीय धाराके समक्ष कहीं भी श्रीहीन नहीं होसकता, परन्तु आवश्यकता है कि प्रकाशक समीक्षार्थ पुस्तकें लेखकके परामर्शसे दिल्ली एवं उत्तरभारतके पत्र-पत्रिकाओंमें भेजे । दस प्रतियां लेखकको देकर प्रकाशक एक एक प्रतिसे कमाताहै, लेखकको वह कुछ दे या नहीं दे, पर कमीशन (मध्यस्थीय) तय हो जानेपर वह सरकारी खरीदमें रुचि रखताहै ।

अकादमीका प्रयास सफल है और जिन बन्धुओंने यह दायित्व ग्रहण कियाहैं, वे साधुवाद योग्य हैं । विपुल मात्रामें निरन्तर सर्जना एवं प्रकाशनके निकषपर लेखकोंकी दृष्टि कब और कैसी पड़तीहै—यह अपने से अलग बात है । दोष केन्द्रीय साहित्यधाराका नहीं, पर उस धारा तक लघु नदी रूपा राजस्थानके हिन्दी साहित्यकी धाराको कौन लेजायेगा ?—यह उत्तर जिस दिन राजस्थानके सृजनधर्मी साहित्यकार बन्धुओंकी हृद् तंत्री झंकृत होनेपर ही मिल पायेगा । ▭

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महानगर टेलिफोन निगम, दिल्ली

टेलिफोन 'सेवा' का प्रचार और वास्तविक रूप

टेलिफोन-निगम प्रायः समाचार पत्रोंमें अपनी 'सेवा' का प्रचार करताहै। यह प्रचार राज-नीतिज्ञोंके चुनाव-प्रचार जैसा होताहै। यदि इस सरकारी विभागके विज्ञापनोंपर विश्वास किया जाये यह ऐसी अनुपम सेवा है कि टेलिफोनका उपयोग करनेवाले ऐसे धन्यभाग हैं कि इस धरातलपर किसीको ऐसा सौभाग्य प्राप्त नहीं होगा।

१. इस सौभाग्यको जब जेबमें रखकर टेलिफोनके काम न करनेकी सूचना आप शिकायत-केन्द्रको देतेहैं तो आपको टेलिफोन व्यस्त मिलेगा। संभव है आप प्रातः से सायं बार-बार पड़ौसियोंकी झुंझलाहटके बीच थक जायें तो 'सौ' को भूलकर अपने भाग्यको कोसते हुए सिर पीटते रहें।

२. हो सकताहै आपका धैर्य फिरभी समाप्त न हो, समाप्त होगा भी नहीं क्योंकि आपको उसका भारी-शुल्क देना पड़ताहै, शिकायत-केन्द्रसे उत्तरोत्तर ऊपरके अधिकारियोंको सूचना दें, 'टेलिफोन-सेवा' के अटल नियमोंके अनुसार आपका टेलिफोन न ठीक होगा, न काम करेगा। फिरभी सम्भव है टेलिफोन डायरेक्टरीमें दिये गये अन्तिम उच्च अधिकारीको टेलिफोन करें, तो उसका उत्तर होगा कि "**मैं क्या कर सकता हूं**" और टेलिफोन कट जायेगा।

३. फिरभी आपका धैर्य न छूटे तो पत्रपर पत्र लिखें, पर किसी पत्रका उत्तर आपकी '**सेवा**' में नहीं आयेगा वे पत्र उनकी वेस्ट पेपर बास्केटको अर्पित हो जायेंगे।

शिकायतोंका पुरस्कार

१. हो सकता है आपकी निरन्तर शिकायतोंका पुरस्कार इस रूपमें मिले : (क) आपकी "काल संख्या" धीरे-धीरे बढ़ती जाये, इसका महत्त्व नहीं है कि आपने कहीं 'काल' की है या नहीं। तब आपके पास हजारोंकी 'काल' का बिल पहुंच जायेगा।

२. अब आप नया संघर्ष कीजिये, पत्र-पर-पत्र लिखिये पर तब आप अनुभव करेंगे कि टेलिफोन व्यवस्थाको कान-आँख विहीन पायेंगे। न शिकायत सुनेंगे, न शिकायतका पत्र पढ़ेंगे।

३. अब आप 'लोक-अदालत' के आकर्षणमें फंसिये। आपने २-३ वर्ष तक जो भागदौड़ की है, जो पत्र लिखेहैं, उनकी प्रतिलिपियां भेजिये और फोटोस्टैटवालोंकी आजीविकामें वृद्धि कीजिये। जब आप 'लोक अदालत' में पहुंचेगे तो पता चलेगा आपने फोटो-स्टेटवालोंको आजीविका प्रदान कर भले ही पुण्य कमाया हो, पर इस अदालतमें पहला बाण आप पर यह छोड़ा जायेगा कि आपका यह बिल तो आपके एस टी डी के बहुत अधिक उपयोगके कारण है। सम्भव है कि आपने एस. टी. डी. बहुत पहले किसी टेलिफोन-अधिकारीके सुझावपर कटवा दियाहो।

यदि आप इस शरारतपूर्ण सुझाव को नकारते हुए अपनी बातपर अड़ें रहते हैं आपसे समझौता किया जायेगा कि अच्छा आपके पास बारह बिल बढ़े हुए आयेहै तो चलिये सबसे बड़े बिलकी राशि टेलिफोनके बादमें भेजे जानेवाले बिलोंमें कम कर दी जायेगी।

अर्थात् आप खाली हाथ खाली जेब घर लौट जाइये।

(अगले अंकमें : पुराना बाबा आदमके युगका टेलिफोन उपकरण नहीं बदलेंगे पर उसका किराया सरकारी डंडेकी नोकपर वसूलते रहेंगे)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'पुरस्कृत भारतीय साहित्य

'प्रकर' के "पुरस्कृत भारतीय साहित्य" विशेषांक वार्षिक-श्रृंखलाके अबतक बारह अंक प्रकाशित हो चुकेहै। इसके साथ पूरक रूपमें नवम्बर ९३ अंक भी प्रकाशित है। भारतीय साहित्यमें समग्र रूपसे जिस प्रवृत्तिके दर्शन होते हैं, उसके अन्तर्गत उसमें अपनी प्रादेशिक और क्षेत्रीय विशिष्टता होते हुए भी मूलतः समग्र भारतीय साहित्यकी एकात्मक अन्तश्चेतनाके दर्शन होतेहैं और अन्तःस्फूर्तिके समान स्रोत प्रबल रूपसे उभरकर दृष्टिगोचर होतेहैं। यह भी लक्षित किया जा सकताहै कि समग्र भारतीय साहित्य राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक प्रभावों एवं रूप-शैली-शिल्प, चिन्तन (बहुधा वादग्रस्त चिन्तन) यूरोपसे प्रचुर और आन्तरिक रूपसे प्रभावित है।

न हिन्दी, न अन्य भारतीय भाषाओंके साहित्यका इस दृष्टिसे योजनाबद्ध रूपमें अध्ययन प्रस्तुत हुआ है। उसके भारतीय साहित्यपर चेतनात्मक प्रभावकी सामान्य चर्चा भी नहीं हुई। फिरभी, 'प्रकर' संभावित अध्ययनकी चेतनाको जागृत करनेके लिए इन विशेषांकोंके माध्यमसे प्रयत्नशील है।

अबतक पूरक अंक सहित इन बारह विशेषांकोंमें विभिन्न भारतीय भाषाओंके ग्रन्थोंपर जो समीक्षा-सामग्री प्रस्तुत हुई है, उनकी संख्या इस प्रकार है :

भाषा	ग्रन्थ संख्या	भाषा	ग्रन्थ संख्या	भाषा	ग्रन्थ संख्या
असमी	१०	डोगरी	१०	मराठी	१३
उड़िया	१३	तमिल	१३	मलयालम	१०
उर्दू	३	तेलुगु	११	मैथिली	१२
कन्नड़	१३	नेपाली	९	राजस्थानी	१२
कश्मीरी	६	पंजाबी	११	संस्कृत	९
कोंकणी	११	बंगाली	९	सिन्धी	११
गुजराती	१४	मणिपुरी	१२	हिन्दी	३५

सभी अंकोंकी कुल पृष्ठ संख्या : १३०० कुल समीक्षित ग्रन्थ २२७

इन ग्रन्थोंकी समीक्षाओंसे विदेशी साहित्यके स्पष्ट, प्रबल और गहरे (अनेक बार प्रचारात्मक) प्रभावका जिस रूपमें साक्षात्कार होताहै, वह हिन्दी तथा भारतीय भाषाओंकी गहरी अनुकरणी-प्रवृत्तिका संकेत है। साहित्यिक दृष्टिके साथ वैज्ञानिक विश्लेषणके लिए यह सामग्री सहायक है।

१९८३ से अबतक प्रकाशित 'पुरस्कृत भारतीय साहित्य' विशेषांकोंके पृथक्-पृथक् मूल्य इस प्रकार है : ८३—२०.०० रु.; ८४—२०.००; ८५—२०.००; ८६—३०.००; ८७—३०.००; ८८—३०.००; ८९—३५.००; ९० ३५.००; ९१—३५.००; ९२—४०.००; ९३—४०.०० रु.; नवम्बर' ९३—१०.००; ९४—४०.०० रु.।

अध्ययन और शोधकी दृष्टिसे यह सामग्री प्रत्येक पुस्तकालयमें संग्रहणीय है।

सभी बारह अंकोंका डाकव्यय सहित मूल्य : ३७५.०० रु.

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार : मुद्रक : संगीता कम्पोजिंग एजेंन्सी द्वारा रायसीना प्रिंटरी चमेलिया रोड, दिल्ली-६।

प्रकाशन स्थान : ए-८/४२ राण प्रताप बाग, दिल्ली-७ दूरभाष : ७११३७६३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकर

चैत्र : २०५२ [विक्रमाब्द] :: मार्च : १९९५ [ईस्वी]

नव विक्रम संवत्
की
मंगलकामनाएं

नव संवत्सर : मेष संक्रान्ति : चैत्र शुक्ल प्रतिपदा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अंक सामग्री

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर : विसंवादी

नव संवत्सर : मेष संक्रान्ति : चैत्र शुक्ल प्रतिपदा — १ — सम्

संस्मरण

विष्णु प्रभाकर : सम्पूर्ण संस्मरण—१—विष्णुप्र भाकर — ५ — डा. मूलचंद से

अध्ययन : विवेचन

कविता और व्यक्तित्व—महावीर दाधीच — ८ — डा. वसन्त च

संवाद अनायास—गोविन्द मिश्र और वल्लभ — १० — डा. वीरेन्

नाटकनामा—डा. नरनारायण — १२ — डा. भा ुदव

भाषा विज्ञान एवं दिशाएं

ऐतिहासिक भाषा विज्ञान और भारत का भूगोल — १५ — डा. रा

विशेषण-प्रयोग—डा. ब्रजमोहन — २३ — डा. अम्बाप्रसाद 'सु

उपन्यास

अस्तराग (असमीसे अनूदित)—होमेन बरगोहाई — २५ — डा. रामदेव

चट्टान नहीं पिघलती—यशपाल जैन — २८ — डा. शत्रुघ्न

कहानी

व्यक्त-अव्यक्त —स्नेहलता पाठक — ३१ — डा. उषा सक्

इस हालातमें —राकेश वत्स — ३३ — डा. विपिनबिहारी ठा

बिना चेहरेका पेट—सूर्यकान्त नागर — ३५ — डा. उत्तम भाई प

काव्य

कोई दूसरा नहीं—कुंवर नारायण — ३७ — प्रो. घनश्याम श

अकाल और भेड़िये—यशवन्त कोठारी — ४० — डा विजय कुलश्रे

इतिहास : शोध

सिकन्दरकी पराजय—गंगाराम सम्राट् — ४२ — डा. शत्रुघ्न प्रस

विविध

हिन्दी अधिकारी : नाम एक काम अनेक—श्रीराम मुंढ़े — ४४ — डा. रवीन्द्र अग्निहो

विचारमूलक विश्व लोकोक्ति कोश—डा. ओम्प्रकाश गाबा — ४६ — डा. उत्तम एल पटे

यात्रा-वृत्त

हिमाचलके आंगनमें—डा. कुमुद — ४७ — प्रो. विरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

शोध, अध्ययन,
विवेचन-समीक्षा
की मासिक पत्रिका

प्रकर

सम्पादक
विद्यासागर विद्यालंकार

सहयोग
प्रकाशवती

वर्ष : ३७ अंक : ३
चैत्र : २०५२ मार्च : १९९५

शुल्क

भारतमें

आजीवन	१०००.००
वार्षिक	१००.००
एक प्रति	१०.००

विदेशमें

समुद्री डाकसे	२५०.००
विमान सेवासे	४८०.००

'प्रकर' मासिक
ए-८/४२, राणा प्रताप बाग,
दिल्ली-११०००७
दूरभाष : ७११ ३७ ६३

शुल्क बैंक-ड्राफ्ट अथवा मनिआर्डरसे 'प्रकर' के नामसे ही भेजें. दिल्लीसे बाहरके चैक स्वीकार करनेमें असमर्थ रहेंगे.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नव संवत्सर : मेष संक्रान्ति : चैत्र शुक्ल प्रतिपदा

'संवत्सर' को सामान्य रूपसे 'वर्ष' का पर्याय माना जाताहै और इसी प्रयोजनसे इसका प्रयोग भी प्रचलित हैं । इस सामान्य प्रयोगमें भारतीय अवधारणाएं भी गुम्फित हैं, इस ओर प्रायः बहुत कम ध्यान दिया जाताहै । वस्तुतः सृष्टि-उत्पत्ति और उसके अहोरात्र—दिनरात—के प्रादुर्भावके रूपमें सृष्टि संबंधी जिस प्राकृतिक व्यवस्था और उसकी नियम-पद्धतिकी रूपरेखाकी धारणा कल्पित की गयी, उसकी आधुनिक अवलोकनों-निरीक्षणों-अनुसन्धानोंसे 'पूर्ण' संगति बैठाना तो कठिन है, फिरभी सामान्य रूपसे तत्कालीन अवलोकन-निरीक्षण और चिन्तनसे उभरे रूपकी अवहेलना नहीं की जा सकती । ऋग्वेदमें इसे इस रूपमें प्रस्तुत किया गयाहै : "प्रदीप्त तपके तेजसे 'ऋत' और 'सत्य' नामक सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक नियमोंका प्रथम प्रादुर्भाव हुआ, तत्पश्चात् रात्रि (अहोरात्र) का आविर्भाव हुआ । मूल प्रकृतिमें विक्षोभ होनेपर—अन्तरिक्ष सागरके विक्षुब्ध रूपके प्रकट होनेके पश्चात् विश्वके वशीकर्ता (विश्वेश्वर) ने अहोरात्रोंको व्यक्त किया, इसीसे 'संवत्सर' का जन्म हुआ ।[१] संवत्सर-गणना अथवा वर्ष-गणनाके संबंधमें यह पर्येषण ही भारतीय काल-गणनाका समारम्भ रहाहै । यह मात्र काल गणनाकी प्रेरणा प्रतीत होतीहै, इसीसे प्रेरित होकर विभिन्न कालोंमें भिन्न-भिन्न कालगणनाएं होती रहीहैं । इतिहास ग्रन्थोंमें प्रायः इन विभिन्न कालगणनाओंका उल्लेख रहताहै, परन्तु सामाजिक और सांस्कृतिक स्तरपर जो कालगणना भारतके अधिकांश भागोंमें लोकप्रिय हुई, वह मुख्य रूपसे विक्रम-संवत् है, उसके प्रचलनका मुख्य कारण राजनीतिक रहाहै क्योंकि विदेशी आक्रमणोंसे मुक्ति दिलानेमे सम्राट् विक्रमादित्यने जो योगदान किया, उसे अविस्मरणीय मानकर अनेक वैदेशिक गणनाओं—मुख्य रूप से शकों द्वारा अपनी विजयोंको स्मरणीय बनानेकी तुलनामें—विक्रमीय प्रभाव और यशस्विताको स्थायित्व प्रदान करनेका यह एक संकल्पपूर्वक आयोजित अभियान था ।

इसी प्रसंगमें यह चर्चा करना भी प्रासंगिक होगा कि कालगणना संबंधी शब्दोंमें 'मधु' एवं 'माधव' शब्दोंकी भी चर्चा कर दी जाये । इन शब्दोंका प्रयोग

१. ऋग्वेद मंडल १०, सूक्त १९०—ऋतञ्चसत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत, ततो रात्र्यजायतततः समुद्रो अर्णवतः । समुद्रादर्णवादधि संवत्सरोऽजायत, अहोरात्राणि विदधाद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यजुर्वेदमें वसन्त ऋतुके मासोंके लिए हुआहै और प्रथम मासका नाम 'मधु' और दूसरे मासका नाम 'माधव' रखा गया, 'चैत्र' के लिए मधु और 'वैशाख' के लिए माधव । वसन्तका माधुर्यपूर्ण आकर्षण इस कालका पुष्परस-सोमरस-शहद-मद्यका आस्वादन, कामदेवकी भंगिमाओंसे आक्रान्त वृत्ति यदि जीवनको किसी नयी प्रेरणामें प्रवृत्त करतीहै तो वह उल्लास नव्यताका मात्र आभास ही नहीं देता स्वयं जीवनको नव रूप देताहै, नव स्फूर्ति देताहै, इसलिए यह नव्यता एवं नव रूप नव-वर्ष, नव संवत्की ओर सरण कराताहै, गतिशील बनाताहै, इसलिए 'नव-संवत्सर' है। भारतीय जीवनकी नव्यता एवं गतिशीलताका प्रतीक है ।

जीवनकी इस गतिशीलता एवं नव्यताको चिर-स्थायी स्मृतिका अंग बनाते हुए प्रतिवर्ष उनके स्वागत-पूर्वक अनुष्ठानके लिए प्रकारान्तरसे चैत्र शुक्ल प्रतिपदा और मेष संक्रान्ति हमारे द्वार खटखटाने आ उपस्थित होतेहैं, परन्तु द्वारपर पड़नेवाली इस हर्ष-उल्लासकी थापको आजके स्वच्छन्दतावादी, अपने जीवनकी उन्मुक्तताका उद्घोष करनेवाले कितने भारतीय इस आन्तरिक जीवनोत्साहका अभिवादन करतेहैं। कितने भारतीय जीवन-क्रमके प्रस्तुत विकास और विस्तारमें मधु-माधवका स्मरण करतेहैं ! वैदेशिक प्रभावसे आक्रान्त आजका भारतीय जीवन इस सौन्दर्यपूर्ण जीवन पद्धतिकी उपेक्षा भलेही करे, परन्तु जीवनमें 'मधु-माधव' को स्थापित करनेवाली प्रकृति वर्ष-प्रति-वर्ष, संवत् स्मरण करानेका कलात्मक आवाहन अविश्रान्त भावसे करतीहै ।

प्रकृति अपनी मुदितावस्थामें होतीहै तो मोदजनक स्थितिमें भी होतीहै । प्रकृतिका प्राणयुक्त जीवन तो अपने हर्षउल्लास-आनन्दकी अभिव्यक्ति सक्रिय और सजीव रूपमें करताहै । अभिव्यक्तिकी स्थितिमें प्राणों का स्पन्दन बाह्य रूपमें भी प्रस्फुटित हो जाताहै । प्राणवान् चेतनाकी अभिव्यक्तिके उद्दाम रूप धारण करनेपर शिवके ताण्डव-नृत्यका आनन्द भी लियाजा सकताहै । प्रकृति अपनी आन्तरिक वृत्तिमें उद्दीपक है, विशेषतः प्राणवान् चेतनाके लिए । यदि प्रकृतिकी इस उद्दीपक वृत्तिसे प्राणवान् वर्गका एक अंश उस उद्दीपक वृत्तिसे अपनी अन्तःचेतना तक अप्रभावित है तो उस अंश और वर्गको चेतनाशून्य स्वीकार करनेमें संकोच हो सकताहै । प्रकृति आवाहन करतीहै, निमन्त्रण देतीहै, प्रेरणा देतीहै, यदि कोई प्राणी अप्रभावित रहता है, निष्क्रिय रहताहै । उसकी सामाजिक चेतना भी प्रसुप्त रहतीहै, क्योंकि व्यक्तिगत चेतना प्रसुप्त हो चुकीहै अथवा किन्हीं अन्य प्रभावों से इतनी अधिक विमुग्ध हो चुकी है कि प्राकृतिक उद्दीपनके होते हुएभी उसके विश्वव्यापी मनमें गहराई तक उतरनेवाले संकेत उस मानुष प्राणीको उद्वेलित करनेमें असमर्थ रहतेहैं । क्या भारतीय जन-मानसकी चेतना उसी दिशासें गति कर रहीहै ।

परन्तु प्रकृतिका कालक्रम अविराम गतिसे अपनी प्रदक्षिणा-परिक्रमामें व्यस्त है । वह कालगणनाके क्रम को भंग नहीं होने देती । चैत्र शुक्ल प्रतिपदा और मेष संक्रान्ति प्रकृतिके कालक्रमके अनुसार प्रतिवर्ष अपने समयपर आ उपस्थित होतेहै, चन्द्रमा अपनी गतिके माध्यमसे चान्द्र मासोंका निर्देश करता चलताहै तो सूर्य प्रतिमास अपने संक्रमणके माध्यमसे संक्रान्तिका निर्देश करता चलताहै । भारतीय ज्योतिष और खगोलिकीके विद्वान् इन संकेतों और निर्देशोंको ग्रहण करते हुए चान्द्र संवत्सर और सौर संवत्सरका काल निर्धारण करते रहतेहैं चान्द्र मासोंका नामकरण इस रूपमें किया गया कि जिस पूर्णिमाको जो नक्षत्र पड़े, वह पूर्णिमा उसी नक्षत्रकी नामधारिणी होगी और पूर्णिमा के नक्षत्रयुक्त नामके अनुसार ही मासका नाम रखा जायेगा । जिस पूर्णमासीको चित्रा नक्षत्र हो वह चैत्री कहलायेगी और चैत्री पूर्णमासी जिस मासमें पड़ेगी वह चैत्र मास होगा । इसी व्यवस्थाके अन्तर्गत मासोंके चैत्र, वैशाख आदि नाम प्रचलित हुए ।

इसी चिन्तनके अन्तर्गत यह धारणा विकसित हुई कि सृष्टिका आरम्भ चैत्रके प्रथम दिन अर्थात् प्रतिपदा को हुआथा, क्योंकि वैदिक संज्ञानुसार सृष्टिका प्रथम दिन 'मधु' कहलायाथा, फिर वही ज्योतिषमें चान्द्र कालगणनाके अनुसार चैत्र कहलाने लगा । इसी परम्पराके अनुसार देशके अधिकांश संवत् चैत्र प्रतिपदा से प्रारम्भ किये गये । ब्रह्म दिन, सृष्टि संवत्, वैवस्वतादि मन्वान्तरारम्भ, सतयुग आदि युगारम्भ, कलि संवत् विक्रम संवत् चैत्र शुक्ल प्रतिपदाको ही आरम्भ होतेहैं ।

यहभी धारणा है कि आदि सृष्टिमें शुक्ल पक्षके प्रथम दिन प्रतिपदाको प्रथम सूर्योदय होनेपर संवत्सर का प्रारम्भ हुआथा । 'सिद्धान्तशिरोमणि' में यह भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उल्लेख है कि वसन्त ऋतु, शुक्ल पक्ष, मास, वर्ष तथा युगादिकी प्रवृत्ति उसी समय एक साथ हुईथी। इससे प्रतीत होताहै कि उस समय चैत्र शुक्ल प्रतिपदा और सौर मेष संक्रान्ति एक साथ पड़ीथीं, परन्तु पीछे सौर और चान्द्र वर्षोंकी दो प्रकारकी वर्ष-गणना प्रचलित होनेपर सौर और चान्द्र संवत्सरोंका नव-संवत्सरारम्भ भी पृथक्-पृथक् तिथियोंपर होने लगा। जैसी कि ऊपर चर्चा की गयीहै चान्द्र संवत्सराम्भ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को और सौर संवत्सरारम्भ मेष संक्रान्तिसे होताहै। इसी कारण ऋतुओंकी गणना सौर वर्षके अनुसार होती है। सामान्य रूपसे विभिन्न देशोंमें सौर संवत्सरका प्रचलन है। अपने देशके भी अनेक प्रान्तोंमें सौर वर्षका ही व्यवहार होताहै। बंगालमें बंगाब्द, दक्षिणमें शालिवाहन शक, कुमाऊं गढ़वाल और पंजाबमें प्रविष्टा सौर वर्ष गणनापर चलतेहैं। □

'भाव-चिन्तन' कृतिमें शब्द-अर्थ मीमांसा

'भाव-चिन्तन' (लेखक : डा. दरबेशसिंह) विचारात्मक और मनोवैज्ञानिक निबन्ध-संग्रह है। कृति की भूमिका हिन्दीके सुपरिचित विद्वान् डा. अम्बाप्रसाद 'सुमन' ने लिखीहै। इसी भूमिकामें डा. सुमनने निबन्धोंकी विवेचनामें मनोवैज्ञानिक चिन्तनके छींटोंकी ओर ध्यान खींचते हुए उनकी चिन्तनात्मक मीमांसा की ओर भी ध्यान खींचाहै। उनके कुछ उदाहरण, शब्द-अर्थ-भावकी दृष्टिसे, चिन्तनशील पाठकोंके लिए यहां प्रस्तुत किये जा रहेहैं :

'स्वभाव और आदत' : "प्रकृति स्वभावका पर्यायवाची है और प्रकृति भी वह मूलभूत तत्त्व है, जिसमें विकृति न आये। यह प्रकृति बाहरकी प्रकृतिसे भिन्न है। मनुष्यकी प्रकृति उसके मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार—अन्तःकरणकी इन चारों वृत्तियोंके भीतरकी वह भावदशा है, जो अदृश्य है, अमूर्त है, अपरिवर्तनीय है और चेतन है।··· आदतमें स्वयंकी लाचारी या विवशता ही अधिक होतीहै, उचित-अनुचितका विवेक नहीं।"

अभिव्यक्ति और **अभिव्यंजना** की अवधारणाओंमें अन्तर है। जब लेखक अपने भावका संप्रेषण सीधी-सरल भाषामें सामान्यतया अभिधाका सहारा लेकर करताहै, तब उस प्रसादगुणपूर्ण संप्रेषणको **अभिव्यक्ति** कहतेहैं, जब लेखकी भाषामयी संप्रेषणा शिल्पविधानके रथमें बैठकर चलतीहै और अलंकार, ध्वनि, प्रतीक, लक्षणा, व्यंजना आदिका चमत्कार दिखातीहैं तब वह संप्रेषणा **'अभिव्यंजना'** कहलातीहै।

प्रतिष्ठा : "मनकी रस्सीका झूला मनके पेड़पर डालकर बड़ी लम्बी पैंगे बढ़ातीहै प्रतिष्ठा।"

'उपाधि' के स्वरूपकी मीमांसा : 'उपाधि लेकर आदमीका नाम तो फैल जाताहै, पर आत्मा सिकुड़ जातीहै।" (प्रतिष्ठा)

लेख और निबन्ध : दोनोंका मुख्य अन्तर यह है कि किसी लेखका लेखक कहींसे कुछ सामग्री लेकर उसे केवल व्यवस्थित ढंगसे प्रस्तुत कर देताहै। दैनिक समाचारपत्रोंमें पर्याप्त संख्यामें 'लेख' प्रकाशित होतेहैं, निबन्ध लगभग नहीं।

'निबन्ध' में पूर्व अधीत तथा अनुभूत विचारोंको ग्रहण करके पहले पचाया जाताहै, फिर अपने ढंगसे संपुष्टि करते हुए उन्हें अभिव्यक्त या अभिव्यंजित किया जाताहै।

'चिन्ता' निबन्धमें लेखकने 'चिन्ता' प्रतीयमानके लिए अवधारणाको विस्तार देनेके लिए चार प्रतीक प्रस्तुत कियेहैं : (१) **छड़ी** (२) **छैनी** (३) **मशाल** (४) **रस्सी**।" चिन्ता एक ऐसी छड़ी है, जो सोये हुए को जगातीहै, जगे हुएको आगे बढ़ातीहै और बढ़े हुएको मंजिल तक पहुंचातीहै। अपूर्णताका बोध कराकर पूर्णताकी ओर ले जातीहै। यह चिन्ता आलस्य और प्रमादको काटनेकी **छैनी** है। अंधेरेमें भटकनेवालेके लिए एक **मशाल** है। अवनतिकी खाईमें गिरते हुएको ऊपर चढ़ानेके लिए एक **रस्सी** है.

वैर और प्रेम : "वैरकी भाषा जलातीहै और "प्रेमकी भाषा फूल-सा खिलातीहै।···'वैर' दुरित है, प्रेम 'भद्र' है। □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पठनीय ग्रंथ

आलोचना

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य—सम्पा. महेन्द्र भटनागर	सजिल्द	६०.००
	विद्यार्थी संस्करण	४० ००
अन्धायुग : एक विवेचन—डा. हरिश्चन्द्र वर्मा (पुरस्कृत)	सजिल्द	५०.००
	वि. सं.	३०.००
छायावाद : नया मूल्यांकन—प्रो. नित्यानन्द पटेल	सजि.	५०.००
'प्रकर' : विशेषांक [पुरस्कृत भारतीय साहित्य' के १२ अंक, भारतीय साहित्य : २५ वर्ष, अहिन्दीभाषियोंका हिन्दी साहित्य, अन्य विशेषांक]		३७५.००

उपन्यास

अपराधी वैज्ञानिक (विज्ञान कथापर आधारित)—यमुनादत्त वैष्णव अशोक	६०.००
ये पहाड़ी लोग—यमुनादत्त वैष्णव अशोक	३०.००
सुधा (मलयालमसे अनूदित)—टी. एन. गोपीनाथ नायर	३०.००
प्रवासी (बर्माके प्रवासी भारतीयोंकी कहानी)—श्यामाचरण मिश्र	३५.००
शकुन्तला ('अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का औपन्यासिक रूपान्तर)—विराज	३०.००
संस्कृत कथाएं (हिन्दीमें प्राचीन कथाएं)—डॉ. कृष्णकुमार	३५.००

नाटक

देवयानी—डा. एन. चन्द्रशेखरन् नायर	२५.००
श्रेष्ठ एकांकी—डा. वासुदेवनन्दन प्रसाद	२५.००

जीवन-दर्शन

शंकराचार्य : जीवन और दर्शन—वैद्य नारायणदत्त	२०.००
महर्षि दयानन्द : जीवन और दर्शन— ,,	२०.००
श्री अरविंद : ,, ,, — ,,	२०.००
गुरु नानक : ,, ,, — ,,	३५.००

अन्य प्रकाशन

विस्तारवादी चीन—जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी (पुरस्कृत)	१०.००
कच्छ—पदमा अग्रवाल ,,	१०.००
एवरेस्ट अभियान—डा. हरिदत्त भट्ट शैलेश ,,	१०.००
अफ्रीकाके राष्ट्रीय नेता—जगमोहन लाल	१०.००

'प्रकर' कार्यालय

'प्रकर, ए-८/४२ राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विष्णु प्रभाकर : सम्पूर्ण संस्मरण—१[1]

लेखक : स्वयं संस्मरणकार
समीक्षक : डा. मूलचन्द सेठिया

कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी नाटक, जीवनी, संस्मरण, रेखाचित्र, यात्रा-वृत्त आदि शायद ही कोई ऐसी गद्य-विधा हो, जिसे विष्णु प्रभाकरने छूकर चमका न दियाहो। उनके द्वारा संस्मृत साहित्यकारोंमें सभी शिविरों और विचारधाराओंके व्यक्ति हैं; उन्होंने मैथिलीशरण गुप्त और माखनलाल चतुर्वेदी जैसे शीर्ष साहित्यकारोंसे लेकर सोमदत्त जैसे नयी पीढ़ीके संघर्षशील साहित्यकारोंको अपनी अकुण्ठ सहानुभूति प्रदान कीहै। उनकी दृष्टि साहित्यकारोंके सृजनकी अपेक्षा उनके जीवनपर अधिक केन्द्रित रहीहै; परन्तु यहभी एक तथ्य है कि साहित्य-सर्जकके व्यक्तित्वका स्मरण उसके कृतित्वको नेपथ्यमें रखकर नहीं किया जा सकता। सृजनके मूलमें सर्जकका व्यक्तित्व ही तो होताहै। सर्जक और सृजनमें एक बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव सम्बन्ध होताहै और कथासे छायाकी तरह इनके साहचर्यको विच्छिन्न नहीं किया जा सकता। विष्णु प्रभाकर अपने संस्मृत साहित्यकारोंके व्यक्तित्वका अन्तःसाक्षात्कार कर कभी-कभी उनके द्वारा सर्जित साहित्यके सम्बन्धमें ऐसी पतेकी बात कह जातेहैं जो बहुधा आलोचकोंकी आंखोंसे भी ओझल रह जातीहैं। जैनेन्द्रके बारेमें उन्होंने लिखाहै "उनके साहित्यके मूलमें नारी है। जैनेन्द्रकी नारीकी 'परख' से 'दशार्क' तक की यात्रा इसी शब्दकी कारासे मुक्तिकी छटपटाहटकी प्रयोग-यात्रा है।" महादेवी वर्माके अश्रु-आविल गीतोंके सम्बन्धमें उनका यह एक लघु वाक्य अपने आपसे प्रश्न भी है और उत्तर भी है "काव्यमें आँसू, जीवनमें हंसी, क्या अर्थ है इसका?" भवानी भाईके सम्बन्धमें उनकी यह उक्ति उस सहजके साधक कविके व्यक्तित्व की परतें उधेड़नेके साथ ही उनके काव्य-मर्मका उद्घाटन भी कर देतीहै; "वह तो धुंए और धूलके शहरमें भी आदिम सुगन्धके बलपर जीतेथे।" हिन्दीके कतिपय विशिष्ट साहित्यकारोंके कृतित्वका विष्णुजीने दो-एक पंक्तियोंमें ही समग्र साक्षात्कार करा दियाहै :

"निम्न मध्यवर्गके जीवनकी निराशाओं और असफलताओंके सीमित क्षेत्रमें ही सही, वे मार्मिक अभिव्यक्ति दे सके।' (भगवतीप्रसाद वाजपेयी)

"उनके गद्यमें गीति और नाट्य दोनोंही रूप मुखर हुएहैं।" (रामवृक्ष बेनीपुरी)

"उनकी रचनाओंमें मनुष्यके साथ बेतवा नदी भी जीवन्त पात्र है। (वृन्दावनलाल वर्मा)

"निर्गुणके विद्रोहकी आग आंसुओंके भीतरसे धधकतीहै। इसलिए उसका देश मुलायम पड़ जाताहै और उसकी उदात्त भावना अतिशय तरल हो जातीहै।
(द्विवेन्द्रनाथ मिश्र निर्गुण)

सामान्यतः मानवीय चरित्र दो प्रकारके होतेहैं—सामान्य और जटिल। जिन व्यक्तियोंके अवचेतनमें अद्भुत मनोवृत्तियोंका संपुंजन हो जाताहै, वे असामान्य रूप धारण कर लेतेहैं। विष्णुजीने जिस प्रकार मनोविज्ञानके अंधकूपोंमें अवगाहन किये बिना अपनी सहज संप्रज्ञासे ही अपने नाटकों और कथाओंके जटिल चरित्रों को सरलतासे प्रस्तुत कर दियाहै; उसी प्रकार अपनी मानवीय सहानुभूतिके बलपर निराला, उग्र, किशोरीदास वाजपेयी और ऋषभचरण जैन जैसे प्रतिभापुंज व्यक्तियोंके असामान्य रूपसे उग्र और आक्रामक रूपका प्रामाणिक विश्लेषणकर मनोवैज्ञानिक परकाय-प्रवेशका विस्मयकारी उदाहरण प्रस्तुत कियाहै। उनकी दृष्टिमें

१. प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली-६। पृष्ठ : ४३६; डिमा. ९१; मूल्य : २००.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरालाके विराट् व्यक्तित्वमें असन्तुलनका कारण यह था कि·· उनमें सीमा नहीं थी। थी अन्तस्में दबी पड़ी एक दुर्बलता कि मैं जिस योग्य हूं, वैसा न तो मेरा सम्मान होताहै, न मूल्यांकन।·· उनके भीतर जो तीव्र निषेध था, उसकी नींव इसी दुर्बलतापर थी; इसलिए वे सहज न हो पाये। भीतरही भीतर टूट गये। निराला जैसा ही नहीं तो बहुत कुछ वैसा ही उग्र और दुर्धर्ष व्यक्तित्व था पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'का, जो अपने बाह्य परिवेशके साथ कभी सम्यक् समायोजन नहीं कर पाये। उनके उद्धत व्यवहारको देखकर विष्णु जीको लगा "इस व्यक्तिके अन्दर कुछ टूट गयाहै और वह टूटन इसे काट रहीहै। वह उसे झेल नहीं पा रहा। गालियां उसी नपुंसक क्रोधका प्रतीक है।" ऋषभचरण जैनकी ट्रेजेडी उनकी निर्बन्ध महत्त्वाकाँक्षाओंकी ट्रेजेडी थी। आरम्भिक सौभाग्यने जब दुर्भाग्य बनकर उनके दुलत्ती लगायी तो वे उसे झेल नहीं सके और फिर विक्षिप्तताने ही उन्हें शरण प्रदान की। हिन्दीके पाणिनी किशोरीदास वाजपेयीको दुर्वासा के रूपमें याद किया जाताहै, पर विष्णुजीके शब्दोंमें "वाजपेयीजीकी सही पहचान दुर्वासा और परशुरामके माध्यमसे नहीं, दक्ष-संहर्ता शंकरके माध्यमसे ही हो सकतीहै। किशोरीदासजी कहते भी थे—"पहले ध्वंस कर लूं, तभी तो निर्माण होगा।"

जटिल और असामान्य चरित्रवाले व्यक्तियोंकी विशेषताएं तो स्वयं पुकार-पुकारकर अपना परिचय देती रहतीहैं; परन्तु सरल और सामान्य चरित्रोंके मर्म को उद्घाटित करनेके लिए व्यापक संवेदना और गहरी सूझ-बूझकी अपेक्षा होतीहै। विष्णु प्रभाकर अपनेही शब्दोंमें मित्र जातिके व्यक्ति हैं और उन्होंने दूसरोंके साथ भावनाके सेतु बांधकर हृदयसे हृदयतक की यात्रा कीहै। अपनी इसी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टिके कारण वे प्रतिष्ठा के शिखरपर बैठे हुए व्यक्तियोंके उन अन्तःप्रकोष्ठों तक पहुंच सकेहैं, जहां वे बाह्य उपेक्षा या किसी आन्तरिक कुण्ठाके कारण अपनेको मर्माहत अनुभव कर रहे होते हैं। 'चोट खाना सरल-प्राण व्यक्तिकी नियति है। अपने अन्तिम दिनोंमें इन्द्र विद्यावाचस्पति 'इतिहासके एक दुःखान्त चरित्र' बनकर रह गयेथे क्योंकि "उनकी प्रवृत्तियां इतने क्षेत्रोंमें बिखर गयीं कि वे किसी भी एक क्षेत्रमें शिखर तक नहीं पहुंच सके।" अपने जीवनकी सांध्य वेलामें मराठीके शीर्ष नाटककार मामा वरेरकर का मराठी साहित्य जगत्में वह मान नहीं रह गया था।', सभी भाषाओंके पुराने लोग इतिहासकी कड़ी बनकर रह जातेहैं।' (विष्णुजीके अन्तर्मनमें भी कहीं यह फांस चुभी हुईहै कि "नवलेखनके आधुनिक युगमें वे अजनबी-से लगने लगेहैं।') काका कालेलकर जैसे बहुमान्य व्यक्तिके मनमें यह व्यथा व्याप्त रही कि उन्हें चिन्तक और गांधीवादके व्याख्याताके रूपमें याद किया जाताहै, परन्तु एक सृजनशील साहित्यकारके रूप में नहीं! वियोगी हरिने तो स्वयं विष्णुसे ही यह कहा था "आप गलत जगह आ गयेहैं, मुझे कोईभी साहित्यकार नहीं मानता।" अनपेक्षित उपेक्षाने ही इलाचन्द्र जोशीको अकालवृद्ध बना दियाथा। उदयशंकर भट्टको बचपन और यौवनमें जो कुछ सहना पड़ाथा, उसने उन्हें अन्तर्मुखी बना दियाथा।' डा. पद्मसिंह शर्माका तो 'पूरा जीवन ही स्वप्न और संघर्षकी एक कहानी' बनकर रह गयाथा। सबसे अधिक अवहेलित और विडम्बनामय जीवन था शान्तिप्रिय द्विवेदीका, जो अन्ततः एक 'व्यथाकी कथा' बनकर ही समाप्त हो गया। पानेके नामपर उन्होंने सदा खोयाही खोया। उनके जीवनकी दुःखान्तकी पर विष्णुजीकी कैसी मर्मवेधी टिप्पणी है "अब जब सागर सूख गयाहै तो हम मरुस्थलकी रेतको माथेपर लगाकर कहतेहैं 'ओह! तुम कितने महान् थे।"

संस्मरण-लेखकोंकी एक सामान्य दुर्बलता होतीहै कि वे इस विधाके मन्दिरमें पुजारी बनकर जातेहैं और फिर स्वयं देव-प्रतिमा बनकर बैठ जातेहैं। उनका अहं इतना उग्र और उदग्र हो जाताहै कि संस्मृत व्यक्तिको आच्छन्न कर लेताहै। परन्तु, विष्णुजीका वैष्णवी व्यक्तित्व अपनी स्वभावगत सहृदयता और विनम्रताके कारण अपनेको नेपथ्यमें रखकर ही सन्तोषका अनुभव करताहै। वे कभी सीमाका अतिक्रमण नहीं करते। उनकी सहानुभूति इतनी व्यापक है कि आपाततः विरोधी विचारधाराके व्यक्तिभी उससे वंचित नहीं रहते। वैसे भी वे साहित्यमें न किसी शिविरमें सम्मिलित रहेहैं, न किसी वादसे परिबद्ध। गांधीकी विचारधाराको भी उन्होंने वादके रूपमें नहीं, एक जीवन-दृष्टिके रूपमें स्वीकार कियाहै। यशपाल और विष्णु प्रभाकर विचारधाराकी दृष्टिसे प्रतिपक्षी रहेहैं, परन्तु उन्होंने वैचारिक असहमतिको कभी वैयक्तिक विरोधमें परिणत नहीं होने दिया। "वस्तुतः साहित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही हम दोनोंको जोड़नेवाली कड़ी थी। घनिष्ठ मैं उनसे कभी नहीं होने पाया। पर जब भी हम मिले उन्होंने बहुतसे बुद्धिजीवियोंकी भांति हमारे बीचमें अजनबीपन कभी नहीं आने दिया।" स्वयं गांधी टोपी धारण करते हुएभी गांधी टोपीपर नागार्जुनकी व्यंग्यात्मक कविता सुनकर उनके मनमें विक्षोभ पैदा नहीं हुआ जबकि कुछ अन्य लोग आगबबूला हो गये। विष्णुजीने सभी संस्मृत व्यक्तियोंके प्रति अपनी अभिन्नता और घनिष्ठताका दावा नही कियाहै। अज्ञेय और विष्णु प्रभाकर भिन्न रुचि-प्रवृत्तिके व्यक्ति रहेहैं। उन्होंने स्वयं स्वीकार कियाहै "मैं उनके प्रभा मण्डलका व्यक्ति कभी नहीं रहा। सदा एक फासला रहा हमारे बीच और उस फासलेने रहस्यको रहस्य ही बना रहने दिया।" परन्तु, इस फासलेके बावजूद उन्होंने 'अज्ञेय' को 'मौनका शिल्पी' कहकर उनकी बहुमुखी प्रतिभाको नमन कियाहै।

विष्णु प्रभाकरके साहित्य संस्मरणोंमें से अधिकांश या तो सम्बद्ध व्यक्तियोंके देहावसानके बाद 'श्रद्धाञ्जलि' के रूपसे लिखे गयेहैं या उनके सम्मानार्थ प्रकाशित होनेवाले अभिनन्दन ग्रन्थोंमें सम्मिलित किये जानेके लिये। दोनों ही उपलक्ष ऐसे हैं जो संस्मृत व्यक्तिके प्रति आलोचनाकी धारको कुंठित कर देतेहैं। यही कारण है कि इन स्मृतिचित्रोंमें श्यामकी अपेक्षा श्वेत वर्णका प्राधान्य है। विष्णुजी स्वभावसे ही आत्मीयताका निर्वाह करनेवाले संवेदनशील व्यक्ति हैं इसीलिए उनमें दोषदर्शिताकी अपेक्षा गुणग्राहकताकी प्रवृत्ति विशेष प्रबल है। संस्मृत व्यक्ति चाहे कवि हो, आलोचक हो, लोकनेता हो या पुतूलाल वर्मा 'करुणेश' की तरह एक निरीह हिन्दीसेवी ही क्यों न हो, वे उन सबमें मानवकी तलाश करते रहेहैं। उनके साहित्यिक प्रदेयका यथार्थ मूल्यांकन करते हुएभी विष्णुजीकी दृष्टि उनके मूल मानवत्वपर ही केन्द्रित रहतीहै। इलाचन्द्र जोशी, उदयशंकर भट्ट, शान्तिप्रिय द्विवेदी, राधाकृष्ण और निर्गुण जैसे साहित्यकार जो अपने जीवनमें जितने ही वंचित और उपेक्षित रहेहैं, उन्हें विष्णुजीका स्नेह-संवेदन उतनीही अधिक मात्रामें उपलब्ध हुआहै।

हिन्दीके संस्मरणकारोंमें माखनलाल चतुर्वेदी, श्री रामनाथ 'सुमन', रामवृक्ष बेनीपुरी, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर आदिकी अपनी विशिष्ट गद्य शैली रहीहै। उनकी भाषामें असाधारण त्वरा और चंचलता है, उनके शब्द गायनके आलापमें उमड़ते हुए से आतेहैं और अपने वेगसे पाठकको बहा ले जातेहैं। बनारसीदास चतुर्वेदी, महादेवी वर्मा, अज्ञेय, जगदीशचन्द्र माथुर और नगेन्द्रके संस्मरणोंमे कवित्वके तलके स्पर्शके साथ गहन विश्लेषणकी प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होतीहै। परन्तु, विष्णुजीके संस्मरणोंमें शरदाकाशकी-सी शान्त सौम्यता व्याप्त होतीहै, जिसमें किसी प्रकारकी अतिवादिताके लिए अवकाश नहीं होता। नपे-तुले शब्दोंमें वे अपनी बात कहतेहैं; फिरभी उनके कुछ वाक्य ऐसे सारगर्भित होतेहै, जैसे गागरमें सागर भर दिया गयाहो। उदाहरणार्थ "जैसे बीसवीं सदीकी दुनियांमें तपोवन-युगका व्यक्ति उतर आयाहो।" (चन्द्रबली पाण्डेय), "वे केरलकी धवल-उज्ज्वल संस्कृतिके प्रतीक थे।" (प्रो. चन्द्रहासन्), "जेल, जंगल और राजमहल सब कहीं वे एकरस रहतेथे।" (राहुल सांस्कृत्यायन), "कहां शिकार और कहां सितार?" इस एक प्रश्न-सूचक वाक्यमें विष्णुजीने वृन्दावनलाल वर्माके व्यक्तित्वमें 'विरोधोंके सामञ्जस्य' को मूर्त कर दिया है। उनके संस्मरण कहां तक संस्मरण रहतेहैं और कहां वे रेखाचित्र, कहानी या निबन्धकी सीमा-रेखाको स्पर्श करने लगतेहैं, यह कह सकना कठिन है क्योंकि आजकी गद्य-विधाएं एक दूसरीमें कुछ ज्यादा ही घुसपैठ करने लगीहैं। उनके संस्मरणोंमें शब्द कम उछलतेहैं, पर रेखाएं अधिक बोलतीहै।

विष्णुप्रभाकर द्वारा संस्मृत साहित्यकारोंकी एक लम्बी कतार है। सभीको एक समान सहानुभूतिसे चित्रित करना चाहे सदा सम्भव न रहाहो; परन्तु, उन्होंने किसीपर भी अपने मानकोंको आरोपित करने का प्रयास नहीं कियाहै।" अपनी-अपनी दृष्टिके अनु-रूप सबका अपना-अपना आकाश होताहै। इसलिए जो जैसाहै, उसे वैसा ही क्यों न स्वीकार करें हम"—यही विष्णुजीका मूलमन्त्र रहाहै। इसीलिए उन्होंने व्यक्तिको खण्डशः चित्रित करनेकी अपेक्षा उसे अन्तर्बाह्य समग्रता में प्रस्तुत करनेका प्रयास कियाहै। स्वभावतः उन्होंने व्यक्तियोंके मूल्यांकनमें ऋण पक्षकी अपेक्षा धनपक्षको विशेष महत्त्व दियाहै।

संस्मरणोंके दर्पणमें व्यक्ति दूसरोंको प्रतिबिम्बित करताहै तो उसमें कहीं-न-कहीं उसके अपने व्यक्तित्वके बिम्बभी उभर ही आतेहैं। इन स्मृति-चित्रोंमें विष्णुजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की आत्म-कथाके अनेक पृष्ठ बिखरे हुए पड़े हैं और कहीं पार्श्वमें पिछली अर्द्धशताब्दीकी दिल्लीका सांस्कृतिक और साहित्यिक-परिदृश्य भी उभर आयाहै। उनके लिए साहित्य अपनी अन्तर्व्यथाकी अभिव्यक्तिका माध्यम रहाहै; परन्तु उनकी वैयक्तिक व्यथा-कथामें युगकी वेदनाभी दूधमें मिश्रीकी तरह घुल-मिल गयीहै। एक रचनाकारके रूपमें वे कभी व्यतीतजीवी नहीं रहे, उन्होंने सदाही युगकी अग्रगतिके साथ हम-कदम होकर चलनेका प्रयास कियाहै; फिरभी, उनके अन्तर्मनमें कहीं यह कांटा चुभा हुआहै कि 'वे वक्तकी तेज रफ्तारमें पिछड़ते जा रहेहैं।' साहित्य सब-कुछको समाहित कर चलनेका दावा करताहै; फिर ऐसा क्यों होताहै कि साहित्यकारोंकी अगली पीढ़ी पिछली पीढ़ीको नकारनेमें ही सन्तुष्टिका अनुभव करतीहै। साहित्यके क्षेत्रमें स्थायित्वका निर्धारण तो कालकी कसौटीपर ही होता है। परन्तु 'अजातशत्रु', 'मसीहा' जैसी अद्वितीय जीवनी, 'अर्द्धनारीश्वर' जैसे समर्थ उपन्यासके स्रष्टा विष्णु प्रभाकरके मनमें यह संदेह क्यों हो कि "मैंने अभी तक किसी ऐसी रचनाकी सृष्टि नहीं की जो मेरे बाद भी जी सके।' आश्चर्य है कि जीवनके विविध क्षेत्रोंमें कार्यरत अनेकानेक व्यक्तियोंके साथ संपृक्त रहकर भी वे अपने अन्तर्मनमें कहीं अकेलेपनका अनुभव करतेहैं।" "आजके युगमें अकेले आदमीका संघर्ष कैसा भयानक होताहै, यह वही कह सकताहै जो सचमुच अकेला है—जो न किसी पदपर है, न किसी दलमें।" विष्णु प्रभाकर भलेही किसी दलमें न हों, पर उनका स्थान अपने लाखों पाठकोंके मनमें अवश्य है। निश्चय ही, उन्होंने अकेलेपनके बलको पहचानाहै, तभी तो उनकी सृजन-यात्रा पिछले पैंसठ बरसोंकी सुदीर्घ कालावधिमें निरन्तर चलती रह सकीहै। ▭

अध्ययन : विवेचन

कविता और व्यक्तित्व[1]

लेखक : महावीर दाधीच

समीक्षक : डा. वसन्त चक्रवर्ती

तीन दशकोंसे विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित अपने विचारात्मक लेखोंमें डा. महावीर दाधीचने अपनी वैचारिक कट्टरता और असहिष्णुतासे साहित्यमें सर्वथा अप्रत्याशित भूलों और भ्रान्तियोंका निवारण, मात्र खंडनमें नहीं, समाधान और सुलझनमें ढूंढ़ा। अपने इस निबन्ध-संचयनमें उन्होंने अपनी सक्रिय-सजग आलोचक-बुद्धिसे 'कविता और व्यक्तित्व', 'अस्तित्ववाद पर विमर्श,' 'आलोचना-कर्म', 'वियुक्तिके आयाम', नवलेखनमें 'भारतीय मानसकी खोज'. 'रस सिद्धान्त आधुनिक संदर्भ' और तत्सम्बन्धी प्रश्नोत्तर, 'नगेन्द्रकी काव्यबिम्ब अवधारणा' के अतिरिक्त, मुक्तिबोध, अज्ञेय, रमेशचन्द्र शाह, निराला, कुछ कहानीकारोंपर छद्म विनय छोड़कर, गहन चिन्तन कियाहै। उनके परीक्षण और संवादकी दुहरी और कठिन आलोचनाका महत्त्व कितना सामयिक और प्रासंगिक है, इसका बोध तब होताहै जब उनकी संशयातीत तार्किकता एवं सत्यापित करनेकी सामर्थ्य दीर्घकाल तक हमें झिंझोड़ती है। उनकी सूक्ष्म विश्लेषणात्मक दृष्टिकी यह विशेषता रहीहैं कि जहां कहीं साहित्यिक उपपत्तियों और स्थापनाओं, सामान्यीकरणों और अवधारणाओंमें किंचित् मात्र भी अन्तर्विरोध, अनिश्चयता या अव्यवस्था दिखायी दी, वे अपनी सारी तार्किक विकलता और

१. प्रका. : आलोक प्रकाशन, बीकानेर। पृष्ठ : ११२; डिमा. ९१; मूल्य : ८०.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवेचन-प्रतिबद्धताके साथ प्रस्तावित सिद्धान्तोंकी तो पुनर्संरचना प्रकिया, तार्किक विवेचना और मूल्योंकी प्रतिष्ठामें जूझ जातेहैं। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं कि इन निबन्धोंमें दीर्घकालिक अवधारणाओं और सिद्धान्तकताकी भी उन्होंने सहजबोध और सहज बुद्धिसे सूक्ष्म खोज करनेका सत्प्रयास कियाहै।

पहला निबन्ध है—'कविता और व्यक्तित्व' जो इन संचयनका शीर्षक भी है। इलियटके ग्रन्थ 'सिलेक्टेड एसेज' में संकलित कविता विषयक अवधारणाका निदर्शन जिन दो निबन्धों—"ट्रेडीशन अंड द इन्डीविजुएल टैलेन्ट" तथा "हैमलेट अंड हिस प्रांब्लेम्स' में हुआहै, की कुछ भ्रान्त धारणाओंका सूक्ष्म परीक्षण एवं समाधान ढूंढ़ा गयाहै। इलियटकी अवधारणा थी कि कविता न संवेग (इमोशन) की अभिव्यक्ति है और न व्यक्तित्वकी। कविके पास मात्र माध्यम (भाषा) है।

लेखकका यह तर्क हैं कि कवि-व्यक्तित्व मात्र संवेग नहीं होता, बल्कि व्यक्तित्वमें सम्पूर्ण चेतनायुक्त अस्तित्वके संवेग, बुद्धि, विचार आदि अनेक अद्वितीय पक्ष अन्वित होतेहैं। काव्य या कलामें व्यक्तिगत अप्रतिमता ही अनिवार्य शर्त है, जिसकी संगति और व्यवस्थाके बिना किसीभी काव्य-कलाका संयोजन असम्भव है। इलियटकी एक और भ्रान्तिकी ओर लेखकका संकेत है। इलियट कलामें संवेग नहीं मानता और कविकी सिसृक्षाको काव्यमें रूपायित मानतेहैं। डॉ. दाधीचका मत है कि कला-अन्वितिमें संवेगोंकी अलग पहचान नहीं होती, वरन् चेतन अस्तित्वकी संरचना ही कला-कृति है। इलियटकी दूसरी भ्रान्ति यह थी कि वे कवि-कविताको आत्मा-परमात्माके समकक्ष वेदान्ती स्वरमें मानतेहैं। लेखक इसका खंडन कर कहते हैं कि कला और कला-वस्तुमें कवि-व्यक्तित्वकी संसक्ति और सक्रियता होतीहै।

'अस्तित्ववादका विमर्श' नामक निबन्धमें लेखकने अस्तित्ववादके प्रादुर्भावके लिए, सर्वक्षेत्रीय सामान्यके चंगुलसे व्यक्तिके छुटकारा और व्यक्ति सत्ताकी पुनः प्रतिष्ठाकी आकांक्षाको कारण मानाहैं। वे कहतेहैं कि इसके ऐतिहासिक आन्दोलनके निकास और ईश्वरवादी-अनीश्वरवादो विचारधाराओंमें, यह पाश्चात्य व्यक्तिका रुग्ण-मनोप्रतिबिम्ब है, जिसका कोई समाधान नहीं।

'आलोचना कर्म' निबन्धमें विद्वान् लेखकने कृति और आलोचक, पाठक और आलोचकके रुचि-सम्बन्धों खोजमें यह सिद्ध कियाहै कि आलोचना कर्म स्थूल सामाजिक कर्म नहीं, बल्कि सूक्ष्म सांस्कृतिक कर्म है।

'वियुक्तिके आयाम' नामक निबन्धमें लेखकने पूंजीवादी समाजमें साम्यवादी चिन्तन पक्षकी दो धारणाओं—वियुक्ति और विग्रहके अन्तरको स्पष्ट किया है। मार्क्सवादके अनुसार कुछ विशेष सामाजिक-परिस्थितियोंमें मनुष्य अपने कर्मसे वियुक्त होताहै और विग्रहण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचारों और कल्पनाओंका स्वतंत्र कर्मके माध्यमसे भौतिक, आत्मिक वैचारिक विग्रह या मूर्त्तन करताहै।

"भारतीय मानसकी खोज : साहित्यिक सन्दर्भ" में लेखकका क्षोभ अपरिहार्य लगताहै। पश्चिमके अर्थ-काम-परक आधुनिक संस्कृतिसे भारतीय मानसका भावनात्मक लगाव स्थापित ही नहीं हुआ बल्कि भारतीयता उसे अब त्याज्य निन्द्य एवं कुत्सित भी दिखायी देने लगीहै। भारतीय नवलेखनमें जो विद्रोहका स्वर हैं, लेखकके अनुसार वह भी पश्चिमी प्रभावका प्रतिबिम्ब हैं। उनका कहनाहै कि इस प्रभावको हम यदि अपने स्वभावमें अनुस्यूत करें तो ग्राह्य-अग्राह्य पश्चिमी विचार और वस्तुओंको अस्वीकार कर सकेंगे या अपने अनुकूल गढ़ सकेंगे।

इसके पश्चात् दो निबन्ध हैं—"रस सिद्धान्त आधुनिक सन्दर्भ" और "रस सिद्धान्त : आधुनिक सन्दर्भ : प्रश्नोत्तर"। वस्तुतः दोनों निबन्ध एक दूसरेके पूरक है। 'वातायन' के सम्पादकने उस निबन्धको, जिसमें नवलेखनके परिप्रेक्ष्यमें रसको डा. जगदीश गुप्तने अस्वीकार कियाहै और डा. नगेन्द्रने स्वीकार किया, डा. जगदीश गुप्त एवं डा. हजारीप्रसाद द्विवेदीको उनकी प्रतिक्रियाके लिए प्रेषित किया। डा. द्विवेदी व्यस्तताके कारण प्रतिक्रिया भेज नही सके, किन्तु डा. गुप्तकी प्रतिक्रियाका, दूसरे निबन्धमें बालकी खाल खींचते हुए, लेखकने प्रत्युत्तर दिया। डा. गुप्तकी अनपेक्षित, भ्रमपूर्ण और तथ्यगत आपत्तियोंपर लेखककी समर्पित विचार सामग्री एवं प्रतिबद्ध बहसोंसे साहित्यिक आलोचना प्रासंगिक और आवश्यक रूप ले लेतीहै।

'मुक्तिबोधका काव्यालोक' उनके काव्य सम्बन्धी विभिन्न आयामोंको तर्कपूर्ण विवेचनाके धरातलपर संकलित किया गयाहै। छोटी कविता और लम्बी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

कविताके सन्दर्भमें जहाँ उनकी अज्ञेयसे तुलना की गयी, वहीं लय और गतिके सन्दर्भमें उनकी तुलना निरालासे की गयी। मुक्तिबोध भाषासे आवेशात्मक चित्र बनाताहै जहाँ अर्थकी विशेषता कम रहतीहै। लेखकका विचार है कि वे किसी वाद या शिविरमें जुड़े नहीं थे। वे अपनी पीड़ा और संघर्षके स्ववादी कवि थे।

'प्रेक्षा और बिम्बकी कविता' में लेखक श्री रमेशचन्द्र शाहको अज्ञेयोत्तर काव्य-सन्दर्भमें स्थायित्व प्रदान करनेके लिए कटिबद्ध दीखतेहैं।

'कहानी और ये कहानियां' निबन्धमें लेखकने कहानी विधासे जुड़े कुछ तथाकथित महत्त्वपूर्ण प्रसंगोंका तात्त्विक विवेचन कियाहै। 'मौलिकता', 'भोगे हुए', और 'ईमानदारी' की ओटमें 'पश्चिमी लेखकोंकी नकल के आधारपर' 'कामका नंगा नृत्य, अकारण शाब्दिक निहिलिज्म और आत्महत्याकी झूलती रस्सियोंका बवंडर' आज हिन्दीकी नवकहानीमें लेखक देखतेहैं। आजका कहानीकार 'भारतीय बौद्धिक परम्पराके ह्रास' और अपनी 'त्रासद स्थितिसे परिचित नहीं हैं' उसे अपनी 'निरर्थकता या मूल विच्छिन्नताका ज्ञान नहीं है।' नये कहानीकारोंमें—चन्द्र, राजानन्द, परेश पानू खोलिया, रमेश उपाध्याय, मनोहर वर्मा, पटवा, श्रीहर्ष, अशोक आत्रेय, दुर्गा माहेश्वरी, विशन स्वरूपकी कहानियोंमें लेखकने 'सूक्ष्म अनुभूति किन्तु दृष्टिका अभाव' का रेखांकन कियाहै।

अगला निबन्ध है 'खंडोंमें विभक्त कवि-रूप' जिसमें लेखकने, डा. रामविलास शर्माकी कृति 'निराला की साहित्य साधना (ख'ड-२) का सूक्ष्म विवेचन कर, शर्माजीपर आरोप लगायाहै कि वे 'असन्तुलित तुलना और मूल्यांकनके शिकार है।' डा. शर्मा निरालाको 'पहले चरणमें छायावादी, दूसरेमें प्रगतिवादी और तीसरेमें प्रयोगवादी' मानतेहै। इस कथनको विवादास्पद मानकर लेखकने डा. शर्माकी निराला सम्बन्धी विवेचनमें. उपस्थित मतभेदों और कमियोंकी तर्कपूर्ण चर्चा कीहै।

'स्व और पर की संगीतात्मक अन्विति' में लेखकने अज्ञेयकृत 'कितनी नावोंमें कितनी बार' का विवेचन प्रस्तुत कियाहै। आलोचकोंने अज्ञेयकी इस कृतिमें रहस्यवाद और समकालीनताका अभाव देखकर, उन्हें धराशायी करनेका प्रयास कियाथा। अज्ञेयकी रक्षा करते हुए लेखक कहतेहैं कि इस कृतिके द्वारा उन्होंने किसी नये आन्दोलनका सूत्रपात' किया और तब उनकी 'न सूत्रधार बननेकी इच्छा रही'। वे तो 'अपने गन्तव्यपर पहुंचकर 'स्व' और 'पर' की संगीतात्मक अन्विति बिठा सकेहैं।

'काव्य बिम्बोंकी उपयोगी चर्चा' नामक निबन्धमें डा. दाधीचने, डा. नगेन्द्र कृत 'काव्य-बिम्ब' के कुछ मुद्दों का पुनर्मथन किया और कुछ आपत्तियां उठाकर भी, उक्त ग्रन्थकी महत्त्वपूर्ण उपयोगिता, उसकी मौलिक उद्भावनाओं : सूचनाओं, विवेकपूर्ण संयोजन, विश्लेषण और विचारोत्तेजकताका पूर्ण समर्थन कियाहैं।

डा. दाधीचके प्रस्तुत संचयनमें सृजनात्मक साहित्य और साहित्यिक आलोचनाके सम्बन्धों और द्वन्द्वोंको एक व्यापक परिप्रेक्ष्यमें देखा गयाहै। उनके विचार और विवेचन कर्ममे हिन्दी आलोचनाकी सभ्य-स्वस्थ प्रखरता और समावेशिता पायी जातीहै। ग्रन्थ पठनीय एवं संग्रहणीय है। ▭

संवाद अनायास[1]

संवादकर्ता : गोविन्द मिश्र तथा वल्लभ
समीक्षक : डा. वीरेन्द्र सिंह

"संवाद अनायास" दो जीवित रचनाकारों या दो समकालीन रचनाकारोंके मध्य (गोविन्द मिश्र तथा वल्लभ) एक ऐसे पत्र-संवादको प्रस्तुत करताहैं जिसमें विचार, संवेदना, कथा तत्त्व, रिपोर्ताज तथा एक सहज आलोचनाके भी दर्शन होतेहैं। इस संवादमें साझेदारी है, वहभी रचनात्मक संघर्षके विविध आयामोंको लेते हुए। इस प्रकारका संवाद प्रेमचंद और प्रसाद, अजमेरी और मैथिलीशरण गुप्त तथा गुलेरीजी और रामचंद्र शुक्ल आदिके मध्य रहाहै जिसमें आस्था और नैतिकता का एक निश्चित रूप था, परन्तु इस संवादमें आस्थाका संकट है, नैतिकता मूल्योंका संकट है, या दूसरे शब्दोंमें, जो कष्ट, संत्रास, विषाद, संघर्ष तथा सर्जनात्मक चुनौतियां लेखकोंके सामने हैं, उन्हें आपसमें बाँटते हुए, चलनेकी गरिमाको सुरक्षित रखते हुए, निरंतर गतिमान्

---

१. प्रका. : राधाकृष्ण प्रकाशन, २/३८, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १७८; क्रा. ९३; मूल्य : ६०.०० रु.।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहनेका प्रयत्न है। गोविंद मिश्र व वल्लभका यह संवाद, जो अनायास हुआ, उसमें वह सब कुछ है जो आजका रचनाकार सृजनके दौरान अनुभव कर रहाहै और उससे संघर्ष कर रहाहै। यह संवाद उन सभी प्रश्नोंसे जूझता है जिससे आजका कोई रचनाकार किनारा नहीं कर सकता—संत्रास, जीवन, जगत्, लेखकीय कर्म, अध्यात्म, समाज व्यवस्था, कलाकारकी 'मृत्यु' तथा आस्थाका प्रश्न और बहुत से अन्य प्रसंग जिनसे ये दो लेखक जूझतेहै। उनके मध्य कसमकश है, विचारोंकी भिन्नता भी हैं, फिरभी, एक गहरी लेखकीय संवेदना है जो उन्हें एक दूसरेसे बांधे रहतीहैं। यह साझेदारी संवादकी है ग्रंथिकी नहीं, मित्रताकी है वैमनस्यकी नहीं तथा खुलेपनकी है, कटघरेकी नहीं।

इस पुस्तकमें वल्लभके पत्रोंके आधारपर और प्राय: उनकी प्रतिक्रियापर गोविंद मिश्रके विचारोंका एक द्वन्द्व प्राप्त होताहै, और कहीं संवादभी। इस शैलीके द्वारा संवाद मुखर होताहै जिसमें विचार-संवेदनके भिन्न आयाम गतिशील होतेहैं। इन पत्रोंमें सोल्जनिस्तिन, माइकोवस्की, प्रेमचंद गोर्की आदिके प्रसंग भी हैं, और सबसे महत्त्वपूर्ण सोल्जनिस्तिनका वह भाषण है जो उन्होंने नोबेल पुरस्कार प्राप्त करनेके समय दियाथा। यह भाषण सृजन-कर्मके व्यापक रूपको तो प्रस्तुत करता ही है और इसके साथही साथ 'विश्व-साहित्य'की एकता पर बल देताहै। यही नही, उसका यहां तक कहनाहै कि सच्चाई और आस्थाको वहन करनेवाले लोग कम ही रहेहैं, पर वे कितने शक्तिशाली रहे, इससे यह स्पष्ट हो जाताहै कि अच्छाई और आस्था आजतक चली आयी है। (पृ. २१)। गोविंद मिश्रने आस्थासे बड़े व महान् साहित्यकी उपजको माना है। ब्रह्मांडके रचयिता और उसकी कृतिपर विश्वास न कर जब हम अपने रचे साहित्यकी बात करतेहैं, तो यह एक मिथ्या अभिमान ही लगताहै। गोविंद मिश्रका तो यहां तक कहनाहै कि बिना ईश्वरपर आस्था रखे, महान् साहित्यकार हो ही नहीं सकता। (पृ. २०)। यह सत्यका एक पक्ष है, दूसरा पक्ष यह भी है कि जो निरीश्वरवादी है और जो प्रकृतिकी ऊर्जाको मानतेहै, क्या ऐसे महान् साहित्यकार पैदा नहीं हुए ?। आस्था साहित्यको स्थिर बना देतीहै जबकि संशय उसे गति देताहै। संशय और प्रश्नही हमें सत्य और यथार्थसे जूझनेकी शक्ति देतेहैं।

इस पुस्तकमें एक महत्त्वपूर्ण प्रसंग है कलाकारमें कलात्मक-बोधकी अनिवार्यता जो सोल्जनिस्तिनके नोबेल पुरस्कारके भाषणके प्रसंगमें उठाया गयाहै। कलाकार विश्वकी लयात्मकताको बिम्बों-प्रतीकोंके माध्यमसे ग्रहण करताहै और इस अर्थमें कलात्मक बोध एक व्यापक प्रत्यय है जो यह तथ्य प्रकट करताहै कि कला कभी मर नहीं सकती। कलाकृतिका सत्यापन उसमें ही निहित रहताहै। अवधारणाएं जो सायास थोपी जातीहैं, वे बिम्बोंमें ठीक प्रकारसे उतर नही पातीं और वे किसीमें आस्था नहीं जगा पातीं। दूसरी ओर वे कलाकृतियां जिसमें गहन तलसे उभारा गया सत्य हमारे सामने लाया जाताहै, वे हमें आविष्ट कर लेतीहैं, उन्हें युगों तक झुठलाया नहीं जा सकता। (पृ. ३९-४०)। वल्लभ के एक पत्रमें रचना और जीवनके सम्बंधको एक 'बिम्ब' के द्वारा इस प्रकार प्रस्तुत किया गयाहै—"रचना और जीवन दोनों ही मुझे नाखूनोंके सहारे एक चिकनी काली चट्टानपर चढ़ने जैसा लगताहै। चट्टानके सिरे पर एक आलोक रहताहै। उसकी ओर हर चेतन अव-चेतनका प्रयत्नपूर्वक बढ़ते रहना हमारी नियति होती है।" (पृ. ५६) का यह कथन संघर्षकी भूमिका प्रस्तुत करताहै जो पलायन नहीं है, वह एक अनवरत यात्रा है। 'सिन्सियरिटी' से लिखना ही मुक्ति है, और यही कलाकारको सस्टेन करतीहै। (पृ. ५८-५९)। सृजनमें चिन्तनका महत्त्व गोविंद मिश्र व वल्लभ दोनों स्वीकार करतेहैं, पर वे चिन्तनको किसी विचारधारामें बन्द नहीं करना चाहते (पृ. ६८)। यह सही है, पर इसका यह अर्थ भी नहीं होना चाहिये कि 'विचारधारा' को नकारा जाये। मेरे विचारसे चिन्तनके विकास उनके सही निर्धारण या 'लोकेशन' का प्रश्न है।

इस संवादमें धर्म और साहित्यको लेकर कुछ मुद्दे उठाये गये हैं। वल्लभके पत्रमें इसे उठाया गयाहै और गोविंद मिश्र उसे अपने ढंगसे व्याख्यायित करतेहैं। धर्म और अध्यात्मको यहां पर्याय माना गयाहै। यहां यह मत रखा गयाहै कि एक समाज जो किसी एक धर्मसे अनुप्रेरित हो रहाहै, यदि साहित्य उस धर्मसे मुंह मोड़ लेताहै, तो वह उस समाजको ठीक प्रकारसे समझता नहीं। यही नहीं रचनाकारको उसी आस्थासे देखना होगा जो उस समाजकी है। बातको फैलाकर कहूं तो बाइबिल या रामायणसे ओतप्रोत समाजकी धड़कनोंको कोई नास्तिक साहित्यकार छू नहीं सकता।' (पृ. ९३-९४)। दोस्तोवस्कीमें यही स्थिति है क्योंकि उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अध्यात्म और साहित्यको इसी धरातलपर छूनेका प्रयत्न कियाहै। धर्ममें आस्था और अध्यात्म प्रमुख है, और यदि रचनाकारमें अध्यात्म और आस्था प्रबल हुई तो साहित्यिक कृतिके धर्मग्रंथ बन जानेका भय हो सकताहै। (पृ. ९५)। मेरे विचारसे, आस्था या अध्यात्म जब तक विवेकके द्वारा ग्रहण नहीं किये जायेंगे, तबतक यह डर बना रहेगा कि आस्था कहीं अंध-विश्वास या रूढ़िमें बदल न जाये।

इस संवादमें एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यहभी उभरा है कि बौद्धिकता और भावनामें वस्तुतः कोई विरोध नहीं है। वल्लभ अपने पत्रमें कहतेहैं—"क्यों न बौद्धिकता और भावनासे एक दूसरेको परिष्कृत करते हुए जीवन, जगत् और आत्माको समझा जाये। कमसे कम जहांतक बुद्धिकी गति है, वहां तक जरूरी हैही। दांते, व्यास सब यही मानते है। (पृ. १६५)। मैं समझताहूं कि वल्लभके ये विचार सृजन-कर्मके लिए प्रासंगिक हैं क्योंकि मनकी ये दोनों शक्तियां सृजन कर्ममें एक दूसरेकी पूरक हैं, यदि इन्हें "अति" तक न ले जाया जाये।

अंतमें एक तथ्य और जो साहित्यकारके 'ट्रासेंड' करनेकी प्रक्रियासे है। वल्लभ मानतेहैं कि साहित्यकार अपनेको दो मनःस्थितियोंमें परा-स्थित करताहै—चरम दुःख या चरम आह्लादकी स्थितिमें। ये दोनों स्थितियां अन्ततः शांतिमें ही पर्यवसित हो जातीहैं। यह पर्यवसान 'समाप्त' हो जाना नहीं है, शांतिसे फिर बाहर निकलकर चरम दुःख या आनन्दमें आना; और यह क्रम रचनाकार को गति देताहै, नकि स्थिरता। यदि यह स्थिरता देता है, तो मैं समझताहूं कि वह समाप्त होनेकी ओर अग्रसर है।

इस प्रकार हम देखतेहैं कि यह दो रचना-कारोंका पत्र-संवाद परोक्षतः सृजनकर्मसे जुड़े संघर्षको व्यक्त करताहै और साथ ही विचार-संवेदनके भिन्न आयामोंको भी प्रस्तुत करताहै। शैलीकी प्रवाहमयता, नाटकीयता एवं व्यंजनात्मकता पाठकको बांधे रखतीहैं। वह वल्लभ और गोविंद मिश्रके संवादोंके साथ अपनेको भी 'लोकेट' करता चलताहै और इस दृष्टिसे, यह पुस्तक अपनेमें एक नये प्रकारकी शैली या संरचनाको प्रस्तुत करतीहै जो अपनेमें आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक है। ▭

नाटकनामा[1]

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक : डा. नरनारायण राय
समीक्षक : डा. भानुदेव शुक्ल

'नाटकनामा' में डा. नरनारायण रायकी तिहत्तर नाटकोंकी समीक्षाएं हैं। ये नाटक १९६१ ई. से १९-९० ई. तक के हैं। इन समीक्षाओंमें हिन्दी नाटककी तीन दशकोंकी यात्राकी एक झलक मिलतीहै। साथही, इनमें डॉ. रायकी नाट्य-समीक्षाके प्रतिमानोंके विकास भी मिलतेहैं। "हिन्दी नाटकका विकास दो अतियोंसे ग्रस्त रहा—असाहित्यिक रंगमंचीयतासे और साहित्यिक अरंगमंचीयतासे। नाटकोंके मूल्यांकनकी दृष्टि भी विभाजित रही, साहित्यिक मूल्यांकन (कृति समीक्षा) और रंगमंचीय मूल्यांकन (प्रस्तुति समीक्षा अथवा रंग-समीक्षा) के रूप में इसलिए नाट्य रचना और नाट्यालोचनके विकासमें विलम्ब हुआ। दृश्यत्व और काव्यत्व का समन्वित रूप नाटक है और उनके मूल्यांकनका भी आधार यही होना चाहिये।" डा. रायने अन्यत्र बार-बार प्रकट कियाहै कि हर नाटक अपना रंगमंच साथ लेकर जन्मताहै। अर्थात्नाट्य-समीक्षामें नाटक तथा उसमें छुपी रंगमंचीय संभावनाओंको देखा जाना चाहिये। यही डा. रायकी चेष्टा भी रहीहै।

१९३० ई. में प्रो. रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख' की पुस्तक 'प्रसादकी नाट्यकला' प्रकाशित हुईथी। हिन्दी नाट्य समीक्षाका पहली बार व्यवस्थित रूप प्रस्तुत हुआ था। किन्तु, शिलीमुखी-समीक्षा मुख्यतः काव्योन्मुखी थी। नाटककी दृश्यात्मक क्षमताकी समझको नाट्य-समीक्षामें काव्य-क्षमताके साथ ही लानेके अब प्रयास होने लगेहैं। इनमें डा. नरनारायण रायकी समीक्षाका योगदान महत्त्वपूर्ण है।

पुस्तकमें तीन वर्षोंके चर्चित तथा अनेक अल्प-चर्चित तिहत्तर नाटकोंकी समीक्षाएं संकलित हैं। इनमें शुतुरमुर्ग, सूर्यमुख, पहला राजा, आधे अधूरे, खजुराहोका शिल्पी, बकरी, लोटन, कथा एक कंसकी, अग्नि-लीक, हानूश आदि बहु-चर्चित नाटक भी हैं तथा इनमें लक्ष्मी-नारायण मिश्र, जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, गोविन्दवल्लभ

---

१. प्रका. : सन्मार्ग प्रकाशन, १६ यूबी बंगलो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली-११०००७। पृष्ठ : १० + २२६; डिमा. ९३; मूल्य : १५०.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंत, लक्ष्मीनारायण लाल, जगदीशचंद्र माथुर, मोहन राकेश, हरिकृष्ण प्रेमी, शंकर शेष, उपेन्द्रनाथ अश्क, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, विपिनकुमार अग्रवाल, सुदर्शन, भीष्म साहनी, मणि मधुकर, विष्णु प्रभाकर आदि प्रतिष्ठित नाटककारोंके उत्तम तथा कुछेक अति सामान्य नाटक हैं। डॉ. रायने नामोंसे आतंकित हुए बिना निस्संग समीक्षाएं कीहैं। यहां थोड़ेही उद्धरण देना संभव है। किन्तु, इनसे डा. रायकी नाट्य-समीक्षाके स्वरूपका कुछ अनुमान लगाया जा सकताहै—

"पूरे नाटकमें क्रिया व्यापारका एकान्त अभाव है" (लक्ष्मीनारायण मिश्रका नाटक 'धरतीका हृदय')।

"मिलिन्दजीका यह नाटक संवाद शैलीकी रपट है।।" (जय जनतंत्र—जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द)।

"अभिनय स्थल काफी कमजोर है। नाटकमें भाषा तत्त्व अधिक प्रधान है इसलिए इसका रेडियो रूपान्तरण शायद अधिक सफल हो। मंचपर इसकी सफलताकी संभावना बहुत कम है।" (पहला राजा—जगदीशचन्द्र माथुर)।

"···काव्यत्व प्रधान होनेके कारण 'आषाढ़का एक दिन' पढ़ने योग्य, बौद्धिकता प्रधान होनेके कारण 'लहरों के राजहंस' पढ़ाने योग्य, तीव्र मंचीय प्रभावोंके कारण 'आधे अधूरे' अभिनेय मंचीय नाटक है।" (आधे अधूरे—मोहन राकेश)।

"नाटकमें कथावस्तु प्रधान हो उठीहै। चाणक्य-चन्द्रगुप्त, सिकन्दर-पोरस, और जयपाल-जयश्री तीन-तीन सूत्रोंको कणिकाके सहारे जोड़ने और जोड़े रखनेमें ही नाटककारका सारा कौशल चुक गयाहै। इसलिए नाटकके दृश्यत्वको लेकर वह कुछ भी नहीं सोच पाया या उसने पहलेसे ही सोच रखा होगा कि नाटकका मंच पर किसी प्रकार प्रस्तुत कर दिया जानाही उसका दृश्यत्व है।" (अमृतपुत्री—हरिकृष्ण प्रेमी)।

"कविता अनुभूतिके धरातलपर आत्मोन्मुखी होती है इसके विपरीत नाटकका काव्यत्व अनुभूतिके धरातल पर संवादों, चरित्र विकास एवं सम्प्रेषण माध्यमोंके सहारे भीतरसे बाहर आताहै। यह नाटकका नाटकत्व है, नाटकका काव्य, कथ्यका दृश्यत्व। जबतक नाटक का नाटकत्व भीतर है—केवल अनुभूति है तबतक वह कविता है। जैसे ही वह अनुकूल माध्यमोंसे बाहर आताहै तो दृश्य हो उठताहै।" (अग्निलीक—भारत-भूषण अग्रवाल)।

"मोटे तौरपर नाटकका दृश्यत्व काव्यत्वकी तुलना में दुर्बल ठहरताहै।" (हानूश—भीष्म साहनी)।

"लोकप्रियता और रंगमंचके पीछे नाटककारोंके भागनेका एक खतरा है कि वह साहित्यसे क्रमशः कटता जा सकताहै।" (पांचवां सवार—बलराज पंडित)।

"नाटक केवल जीवन स्थितिकी अनुकृति भर नहीं वह जीवनके प्रति एक दृष्टि भी है।" (लड़ाई--सर्वेश्वर दयाल सक्सेना)।

"पर कथ्यको दृश्यत्व तक ले जानेमें उसे इतनी सफलता नहीं मिलीहै जितनी 'हानूश' नाटकमें दिखायी देतीहै।" (माधवी- भीष्म साहनी)।

'हानूश' में भीष्म साहनी "शब्दकी अभिधापरकतासे ऊपर उठकर अर्थकी कुछ नयी परतें तोड़तेहों--ऐसा भी नहीं प्रतीत होता"। डा. रायकी बात सही है। किन्तु, यह मार्क्सवादी प्रतिबद्ध लेखनकी सीमा है जिसमें कथ्यको सीधे तथा प्रभावशाली किन्तु अभिधात्मक रूपमें प्रस्तुत किया जाताहै। डा. रायने प्रकट कियाहै—"अंतर्द्वन्द्वोंसे घिरे किसीभी कलाकारकी स्थिति हानूशकी तरह ही होतीहै—जिसे कहीं न कहीं समझौता करना पड़ताहै और परिस्थिति विशेषमें परस्पर विरोधी स्थितियोंसे भी, जैसा हानूशको करना पड़ाथा, एक बार चर्च और पादरियोंके साथ समझौता कर और दूसरी बार व्यवसायियोंके साथ समझौता कर।" हमारी समझमें परिस्थितियोंसे मजबूर हानूश की स्थिति फुटबालके खेलमें 'फुटबाल'की-सी है। जिसने ठोकर मारी, जिधर फेंका, फिंक गयी। इसे फुटबालका समझौता माननेके बजाय मजबूरी मानना उचित होगा। हानूशने अपनी कलाको सुरक्षित रखनेका अवसर पाते ही राजाकी आंखोंमें धूल झोंककर, जैकबको अपनी कला सौंपकर तथा निकल भागनेमें सहायता देकर, सर्वहारा वर्गके कलाकारके संघर्ष तथा विजयकी जानकारी भी दीहै। मार्क्सवादी लेखनमें सर्वहाराकी दुर्दम संघर्ष-शक्तिका अंकन होताहै। 'हानूश' में भी ऐसा ही है।

'हानूश' में जनवादी लेखनके अनुरूप कथ्यपर जोर है तथा व्यंजना-कौशलपर ध्यान नहीं है। किन्तु, यह बात ऊपरी तौरपर ही है। संपूर्ण कथाके मूलमें घड़ी है जो कालकी गतिकी सूचक है। कलाकार (घड़ीसाज) की आंखें फोड़कर राजा एकमात्र घड़ीपर अपना अधिकार करना चाहताहै मानो कालकी गतिपर अंकुश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाये रखकर सामन्तीय व्यवस्थाको स्थायी रखना चाहताहै। जैकब द्वारा घड़ीका रहस्य लेकर पलायन तथा हानूशकी (अंतिम कथन द्वारा) घड़ीके चलते रहने, कभी बन्द न होनेकी बातमें गहरी व्यंजना है। इसलिए हमारे विचारमें, नाटकका अंतिम दृश्य कोरा अभिधात्मक नहीं रह गयाहै। डा. रायके इस निष्कर्षसे हम सहमत हैं कि "नाटकका दृश्यत्व काव्यत्वकी तुलना में दुर्बल ठहरताहै।" यह सही है कि भीष्म साहनो नाटकों में भी कथाकार अधिक रहेहैं, नाटककार कम हैं।

'नाटकनामा' की समीक्षाओंको देखकर हमें अपनी धारणा पुष्ट होती लगतीहै कि डा. रायके विचारका झुकाव आम आदमीके प्रश्नोंसे कुछ हटाहै तथा निरन्तर नाटककी दृश्यात्मक संभावनापर अधिक विचार करने लगेहैं। अर्थात्, बहुत कमही सही, अब वे कथ्यपर कुछ कम तथा नाटकीय दृश्यतापर अधिक विचार करने लगेहैं। हिन्दी नाटकोंके अभिनयके नामपर अधिकतर पश्चिमी नाटकोंके अनुवादोंके वर्चस्वके कारण तथा नये दृश्य-माध्यमोंसे उत्पन्न चुनौतीके कारण ऐसा दिखायी देताहै। पश्चिमी नाटकका रंगमंच अनुवादके बावजूद हिन्दीका रंगमंच नहीं बन सकता। दुर्भाग्यसे 'हिन्दी रंगकर्मियों' को भी एक तिहाईसे कम हिन्दी मौलिक नाटक प्रस्तुति योग्य जान पड़तेहैं। आज मौलिए, टेनेसी विलियम्स या ब्रैख्तको धोती-कुर्ता पहनाकर भारतीय घोषित किया जा रहाहै। डा. राय ने भी ऐसे प्रयासोंपर चिन्ता व्यक्त कीहै जो बहुत प्रासंगिक है। सुदर्शन मजीठियाके नाटक 'देशके लिए' में उनके विचार विचारार्थ प्रस्तुत हैं—

"आजका रंगकर्म एक अतिवादी दौरसे गुजर रहा है। हिन्दीमें अच्छे मचीय नाटकोंकी अब कोई कमी नहीं है फिरभी हिन्दीतर भाषाओंके हिन्दी अनुवाद आज हिन्दी रंगमंचपर छायेहैं। हिन्दीतर प्रदेशके हिन्दी नाटककारोंकी भी कोई पूछ नहीं है। दूरदर्शन नाटक एक दूसरी समस्या है। उसका शिल्प विधान नाटकसे भिन्न है फिर नाम टी. वी. नाटक चलताहै। क्या कोई सीमा रेखा नहीं खींची जानी चाहिये ?" रेडियोके लिए रची गयी रचनाएं रेडियो नाटक या 'रेडियों प्ले' कही जाती रहीहैं। अब 'टी वी. नाटक,' जो कि चाक्षुष-अनुभवकी मांगके अनुसार होताहै, नाटक कहा जाये तो 'रेडियो नाटक' की अपेक्षा कम अटपटा लगेगा ही। यह आवश्यक हो गयाहै कि 'नाटक' के अर्थको स्पष्ट कर दिया जाये। हमारा सुझाव है कि अभिनय-कौशलसे, जिसमें वाचिक अभिनय भी जुड़ा हुआहै, अर्थकी दृश्यात्मक प्रतीति करानेवाली विधाको नाटक कहा जाये। कतरनोंमें हुए अभिनयोंको जोड़नेवाली फिल्में अभिनय-कौशलके विचारसे निकृष्ट हैं तथा इनको नाटक नहीं माना जा सकता। टी. वी. प्रस्तुतिमें यदि अभिनय की निरन्तरता है तो सैल्यूलाइडपर होनेके बावजूद इसको नाटक माननेपर विचार किया जा सकताहै। इसी प्रकार रंगमंचकी फूहड़ अभिनयसे युक्त प्रस्तुतिको नाटकका दर्जा देनेमें हमें संकोचका अनुभव होताहै। फिलहाल दूरदर्शनकी प्रस्तुतियोंके अभिनयको देखते हुए हम 'टी. वी. नाटक' संज्ञाको बहुत उचित नहीं मान पा रहेहैं। पैसा कमानेमें उचित-अनुचित, संस्थागत तथा व्यक्तिगत लाभवाले मण्डी हाऊस तथा माफिया गैंगोंसे जकड़े फिल्म व्यवसायको तो 'कला' शब्दसे ही दूर रखना होगा। डा. रायने संवादका एक प्रसंग प्रस्तुत कियाहै। संवाद जारी रखा जाये तभी कुहासा छंट सकेगा।

नाटकोंकी समीक्षाएं सामासिक शैलीमें हैं, इसलिए संक्षिप्त हैं। हमें विश्वास है कि पुस्तकका नाट्य-अध्येताओं द्वारा स्वागत होगा। ▭

कृपया ध्यान दें

'अनेक पाठकों और संस्थाओंने 'प्रकर' का वार्षिक शुल्क भेजा है, परन्तु कुछ स्थानोंसे पावती न मिलने की शिकायत आयी है। निवेदन है कि जिन पाठकों और संस्थाओंको पावती न मिली हो, वे कृपया तत्काल सूचना दें जिससे पावती पुनः भेजी जा सके। कृपया अपनी ग्राहक संख्या लिखना न भूलें।

—व्यवस्थापक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐतिहासिक भाषा विज्ञान और भारतका भूगोल

[अंश : ३, खण्ड : २]

[डॉ. रामविलास शर्माका भाषा-चिन्तन]

—डॉ. राजमल बोरा

कोल भाषा परिवार

भारतके प्राचीन भाषा परिवारोंमें कोल भाषा परिवार भी है। इसे मुंडा परिवार भी कहतेहैं और आस्ट्रोएशियाटिक परिवार भी कहतेहैं। इस परिवारकी भाषाओंका क्षेत्र मध्यभारत, बिहार, पश्चिमी बंगाल और उड़ीसाके पहाड़ी क्षेत्र हैं। कुछ प्रमुख भाषाओंके नाम—मुंडारी, संथाली, कुर्कू, हो, सवर या सोर आदि हैं।

डा. रामविलास शर्मा, कोल भाषा परिवारके सम्बन्धमें विदेशी विद्वानों द्वारा प्रचलित अवधारणाओं का खण्डन करतेहैं। कोल परिवारसे सम्बन्धित भौगोलिक क्षेत्र दक्षिण पूर्वी एशियाके द्वीप समूहसे लेकर प्रशान्त महासागरके छोटे-बड़े द्वीपोंको समेटते हुए आस्ट्रेलिया तक व्याप्त बतलाया गयाहै। ऐसे भौगोलिक क्षेत्रोंमें अंग्रेजीभाषी लोग आकर बस गयेहैं और कोल परिवारकी भाषा बोलनेवाले समुदायोंको वे आदिवासी कहतेहैं। इस प्रकारका प्रचार भारतमें भी हुआ है। यह कहना कि द्रविड़ परिवार तथा आर्य परिवार की भाषाएं बोलनेवाले समुदायोंने कोल परिवारकी भाषाएं बोलनेवाले समुदायोंको पहाड़ों और जंगलोंमें खदेड़ दियाहै—ठीक नहीं है। इस अवधारणाका खण्डन करते हुए डा. रामविलास शर्मा लिखतेहैं—

> "अभी भारतकी कोल भाषाओंपर यथेष्ट विवरणात्मक कार्य नहीं हुआहै। आस्ट्रोनीशियन, मोनख्मेर आदिकी स्थिति बहुत भिन्न नहीं है। जितनी सामग्री सुलभ है, उसके आधारपर इतना कहा जा सकताहै कि भाषा परिवारोंके निर्माणके बारेमें पुरानी धारणाओंके आधारपर इन भाषाओं का वर्गीकरण सम्भव नहीं हैं। इन भाषा समुदायों के क्षेत्रोंमें, परिनिष्ठित भाषाओंका विकास कम हुआहै, अतः गण भाषाओंकी विविधता, ध्वनि रूपों, शब्दों आदिके विकल्पोंकी बहुलता इतनी अधिक है कि ऐतिहासिक-भाषाविज्ञानका इंडोयूरोपियन सांचा बार-बार टूट जाताहै। इसके अतिरिक्त भारतमें कोल भाषाएं आर्य-द्रविड़ परिवारोंसे इतनी प्रभावित हुईहैं कि उनके मूल तत्त्वोंको छांट कर निकालना सरल कार्य नहीं है।" [तीसरा खण्ड, पृ. ८७]

कोल भाषा परिवारके ध्वनितंत्र, शब्दतंत्र, रूपतंत्र पर विचार करनेके उपरान्त कोल और द्रविड़, कोल और कम्बोज तथा कोल और आस्ट्रिक भाषाएं—शीर्षकोंके अन्तर्गत कोल भाषा परिवारकी विशेषताओं को उजागर किया गयाहै।

कोल भाषा परिवारकी कुछ सामान्य विशेषताएं इस प्रकार हैं—

> "कोल भाषाओंमें एक काकल्य स्पर्शध्वनिका व्यवहार होताहै।
>
> द्रविड़ भाषाओंके समान कोल भाषाओंमें भी सघोष महाप्राण ध्वनियोंका अभाव है किन्तु द्रविड़ भाषाओंकी अपेक्षा ये महाप्राण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ध्वनियोंको अधिक सरलतासे स्वीकार करतीहैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंडोयूरोपियन परिवारकी भाषाओंमें हित्तीको छोड़कर अन्य किसी भाषामें उक्त काकल्य ध्वनिके चिह्न नहीं पाये गये। यदि हित्तीमें यह ध्वनि वास्तवमें थी तो जिस निकटतम भाषाई परिवेशसे वह उसे प्राप्त हो सकतीथी, वह भारतीय कोल भाषाओंका परिवेश है।

भारतसे बाहरकी इंडोयूरोपियन भाषाओंका कोई शब्दमूल कोल भाषाओंमें हो और कोल रूप यूरोपियन रूपसे प्राचीन हो, यह सब ऐतिहासिक भाषा विज्ञानकी प्रचलित मान्याओंके विपरीत है।

आर्य और कोल भाषाओंके प्राचीन सम्बन्धोंका एक प्रमाण क्रिया और संज्ञा रूपोंमें द्विवचनका प्रयोग है।

कोल भाषाओंमें क्रियापद रचना संयोगात्मक या संश्लिष्ट है। क्रियामूलमें प्रत्यय जोड़कर वचन-पुरुषका बोध कराना और क्रियाकी पूर्णता, अपूर्णता, निरन्तरता आदिका बोध कराना मुख्य बात है। इस दृष्टिसे संस्कृत और कोल भाषाओंकी क्रियापद रचनामें अत्यधिक समानता है।

[तीसरा खण्ड, पृ. ८७ से ९७ तक देखिये]

कोल भाषा परिवारका परिचय देते समय आर्य-भाषा परिवार, द्रविड़ भाषा परिवारके साथ उक्त परिवारका ऐतिहासिक सम्बन्ध बतलानेका प्रयत्न किया गयाहै। यों कोल भाषा परिवारपर अभी विस्तृत कार्य नहीं हुआहै। डा. रामनिवास साहूकी पुस्तक 'भाषा सर्वेक्षण' छप गयीहै। उक्त पुस्तकमें छत्तीसगढ़की मुण्डा भाषाओंका सर्वेक्षण है। मुण्डा भाषाएं—कोल भाषाएं ही हैं। यह सर्वेक्षण भारतके सम्पूर्ण कोल भाषा परिवारका नहीं हैं। अभी कोल भाषाओंका पूरा परिचय सर्वेक्षणके आधारपर प्रस्तुत करनेकी आवश्यकता है। इस दृष्टिसे डा. रामविलास शर्माने कोल भाषा परिवारपर जो कुछ लिखाहै, वह अब तक प्राप्त जानकारीको आगे बढ़ानेवालाहै।

भारतके प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी

तीनों खण्डोंका प्रधान शीर्षक यही है। और तीसरे खण्डके चौथे अध्यायका शीर्षक भी यही है। यह अध्याय तीन खण्डोंका समाहार प्रस्तुत करनेका प्रयत्न करताहै।

डा. रामविलास शर्माने इस अध्यायमें मूल स्थापनाएं प्रस्तुत करनेका प्रयत्न कियाहै। अध्यायके मुख्य शीर्षक निम्नलिखित हैं—

(१) भाषा परिवारोंका नामकरण
(२) प्राचीन संसारका सांस्कृतिक और भाषाई भूगोल
(३) ध्वनितंत्र सम्बन्धी मूल स्थापनाएं
(४) अर्थप्रक्रिया सम्बन्धी मूल स्थापनाएं
और (५) भाषा-परिवारोंके सम्बन्ध सूत्र

लेखकका इस अध्यायके सम्बन्धमें कहनाहै—

"इसमें तीन खण्डोंके मूल निष्कर्ष गिनानेके बदले मैंने ऐसी अनेक नयी बातोंका समावेश कियाहै जिनका सम्बन्ध पुस्तकमें विवेचित मूल समस्याओं से है।" [तीसरा खण्ड, भूमिका, पृ. ५]

तीनों ही खण्डोंमें भाषा-परिवारोंके नामोंका उपयोग हुआहै। ये सभी नाम डा. रामविलास शर्माने यथावत् स्वीकार करते हुए ही लिखेहैं और उनका विवेचन मान्य और स्वीकृत स्थापनाओंको प्रस्तुत करते हुए कियाहै। अपनी ओरसे 'नामकरणोंके सम्बन्धमें उनकी सार्थकतापर विचार कियाहै।

इंडोयूरोपियन परिवारके सम्बन्धमें

"इंडोयूरोपियन परिवारका नाम इंडियासे यूरोपको जोड़कर रखा गयाहै।···यूरोपमें हंगरी, फिनलैण्ड, बास्क भाषाक्षेत्र, अनेक ऐसे प्रदेश हैं जहां इंडोयूरोपियन परिवारकी भाषाएं नहीं बोली जातीं। इंडो और यूरोपियन दोनों परिवारोंमें अति व्याप्ति दोष है। ईरानी भाषा-समुदायका विशाल क्षेत्र मध्य तथा पश्चिमी एशियामें फैला हुआहै और यह क्षेत्र न भारतमें है, न यूरोपमें। यदि पश्चिमी एशियाके प्राचीन हित्ती गण-समुदायको ध्यानमें रखें तो इंडोयूरोपियन नामके अव्याप्ति दोषका बोध भी हो जायेगा।·· **फिर भी यह नाम प्रचलित है और भाषाविज्ञानी उसकी व्याप्ति-अव्याप्तिके विवेचनमें नहीं पड़ते।**" [तीसरा खण्ड, पृ. १११]

इंडोयूरोपियन परिवारके नामकरणकी भांति आस्ट्रोएशियाटिक नामको भी दोषपूर्ण मानाहै। कहा कि इस नामकरणमें इंडोयूरोपियन नामकी नकल है। आर्योंकी जैसे अलग नस्ल मान ली गयी वैसे ही 'आस्ट्रिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नस्लभी मान ली गयी। और सच तो यह है कि जो भाषाएं इस परिवारके अन्तर्गत बतायी गयीहैं, वे सब किसी एक आदि भाषाकी शाखाएं नहीं हैं।

चीनी-तिब्बती परिवार, तिब्बत-बर्मी-भाषा परिवार, अल्ताई तथा यूरालिक आदि—भाषा परिवारके नामकरणोंकी अपनी-अपनी सीमाएं हैं। निष्कर्ष रूपमें लिखा—

"कोईभी भाषा-परिवार किसी आदि भाषाकी शाखाओं-प्रशाखाओंका समूह नहीं है; कोई भाषा-परिवार किसी खास नस्लके लोगोंकी भाषाओंका समूह न पहले कभी रहाहै, न आज है। परिवार शब्द ही भ्रान्तिपूर्ण है। उन्हें परिवारकी संज्ञा, यह सोचकर दी गयीथी कि इनका निर्माण मानव-परिवारके समान होताहै; आदि मातामही भाषासे लेकर आधुनिक नातिन-प्रनातिन भाषाओं तक पूरे वंशवृक्षका नक्शा बनाकर दिखाया जा सकता हैं। इस प्रकारकी कल्पनाएं निराधार हैं।" [तीसरा खण्ड, पृ. १२२]।

डा. रामविलास शर्माने इस प्रकार भाषा-परिवार की अवधारणाका ही खण्डन कियाहै। यह खण्डन तो करते ही हैं किन्तु तीनोंही खण्डोंमें उन्होंने भाषा-परिवारोंका विवेचन मान्य (या स्वीकृत) नामकरणोंका उल्लेख करते हुए ही कियाहै। उदाहरणके लिए 'इंडोएर्यन' के सम्बन्धमें लिखाहै —

"ऐतिहासिक भाषा विज्ञानमें 'इंडोएर्यन' शब्दका व्यवहार भी व्यापक रूपसे होताहै। इससे ध्वनि यह निकलतीहै कि जो आर्य भारत आये, वे 'इंडोएर्यन' हुए, जो बाहर बस गये, वे अन्य नामोंसे पुकारे जाने लगे। आर्य चाहें बाहरसे आयेहों, चाहे अनादिकालसे भारतमें रहते आयेहों, माना यह जाता रहाहै कि वे सब रंगरूप, आकृति-आकारमें एक-से थे और सबकी भाषा एक थी। मैंने इस धारणाका खण्डन कियाहै।" [तीसरा खण्ड, पृ. ११२]

लेखकने 'इंडोआर्यन' के स्थानपर आर्य शब्दका व्यवहार किया। इसी प्रकार आर्यभाषा परिवारके स्थान पर 'आर्य-भाषा-समुदाय' का व्यवहार किया। द्रविड़ नामकरणकी अपनी सीमाएं हैं किन्तु द्रविड़-भाषाप्रेमियों ने इस नामको स्वीकार कर लिया। लेखकने इस नाम को विशाल भाषा समुदायके साथ जोड़ाहै। स्पष्टीकरणके रूपमें लिखाहै—

"इस पुस्तकमें जैसे आर्य-भाषा-समुदायका सम्बन्ध आर्यवादसे नहीं है, वैसे ही द्रविड़-भाषा समुदायका सम्बन्ध द्रविड़वादसे नहीं है। न आर्य नामकी कोई नस्ल थी, न द्रविड़ नामकी।" [तीसरा खण्ड, पृ. ११३]।

वस्तुतः नामकरणके साथ इतिहासकी संगति बैठती नहीं है। नामकरणमें भौगोलिक तत्त्व प्रधान रहतेहैं और ये सब भी इतिहाससे प्रभावित रहतेहैं। देशोंके नामकरणोंमें परिवर्तन हुआहै और नदियोंके नामकरण भी बदलेहैं। ऐसी स्थितिमें नामकरणोंमें व्याप्ति-अव्याप्तिके दोष मिलते रहतेहैं। इसी प्रकार नामोंका उपयोग, जिनका वह नाम होताहै, वे लोग बादमें [प्रसिद्धि प्राप्त होनेके बाद] करतेहैं और उनका उपयोग दूसरे लोग [अपनी-अपनी सुविधाके लिए] अधिक करतेहैं। इसीलिए नामकरणोंसे सम्बन्धित शब्द उस-उस भाषाके शब्द न भी रहें तो आश्चर्य नहीं करना चाहिये। प्रचलित नामोंमें ऐतिहासिक बल रहताहै, और इस बलके कारण नामको मान्यता मिल जातीहै। डा. रामविलास शर्मा प्रचलित नामोंका उल्लेख इसीलिए—न चाहनेपर भी—करते रहेहैं। हां, उसके दोष अपनी मान्यताके अनुसार उन्होंने बतला दियेहैं।

तीनों खण्डोंके पुस्तकके नामकरणमें 'भाषा परिवार' शब्द है, 'भाषा-समुदाय' शब्द नहीं है। परिवारकी अवधारणाको अनुपयुक्त बतलाकर वहां 'समुदाय' शब्दकी स्थापना वे अपनी पुस्तकके नामकरणमें नहीं कर सके हैं। नामकरणका अपना बल होताहै [ऐतिहासिक मान्यताके कारण] और उससे जूझनेके लिए, उसकी पहचानमें परिवर्तन लानेके लिए प्रचलित नामको लिखना ही पड़ताहै।

ऐतिहासिक भाषा विज्ञानको भौगोलिक संदर्भोंमें परखनेकी आवश्यकता है। ऐसा प्रयत्न डा. रामविलास शर्माने कियाहै। 'प्राचीन संसारका सांस्कृतिक और भाषाई भूगोल'—शीर्षकके अन्तर्गत जो कुछ लिखाहै, वह सब इसी बातका प्रमाण है।

सामान्य रूपसे 'भाषा-परिवारों' के सम्बन्धमें जो कुछ लिखा गयाहै, उसमें भौगोलिक संदर्भोंकी उपेक्षा हुईहै। मैंने स्वयं इन तीन खण्डोंकी समीक्षा लिखते समय जो नामकरण किया वह है—'ऐतिहासिक भाषा विज्ञान और भारतका भाषा भूगोल' इसका कारण यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

है कि प्रधान विषय यही है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा विज्ञानकी पुस्तकोंमें भाषा-परिवारोंका जो विवेचन मिलताहै, वह प्रधान रूपसे ऐतिहासिक ही है। इस विवेचनको नये संदर्भोंमें प्रस्तुत करना ऐतिहासिक अवधारणाओंको बदलनेका प्रयत्न करनाहै। 'भारतके प्राचीन भाषा परिवार'—कहकर भी प्रश्न हुआ 'कितना प्राचीन'? सिंधु घाटीकी सभ्यताको प्राचीन मानें—तो कहां तक पहुंचेंगे? लिखा—"भारतका एक भाषा परिवार कमसे कम आठ हजार, साल पुराना है" और फिर सिंधु घाटीकी सभ्यता आठ हजार साल पुरानी नगर-सभ्यता है। इस सम्बन्धमें लिखाहै—

"वह (सभ्यता) आर्य हो चाहे द्रविड़, चाहे बाहरसे आकर बसनेवालोंकी सभ्यता हो, वह है भारतीय। यदि बाहरसे आकर बसने वालोंकी सभ्यता है, तो भी उन्हें बसे हुए सहस्राब्दियाँ बीत गयीथीं, उनकी सभ्यता रूढ़िबद्ध हो गयीथी। इतना समय उनके भारतीयकरणके लिए काफी था।" [तीसरा खण्ड, पृ. ११६]

सिन्धु घाटीकी सभ्यताकी भांति सुमेरी सभ्यता पर विचार किया। और विलडूरेण्टका आधार देते हुए लिखा कि सुमेरी जन किस नस्लके थे और सुमेर किस मार्गसे आयेथे वह हम बहुत अनुसन्धानके बाद भी नहीं कह सकते। सामी और गैर-सामी भाषाओंपर विचार करते हुए लिखा—

"पुरानी भाषाओंमें अक्कदकी भाषा सामी है और सुमेरकी भाषा गैर-सामी है। यदि यह मत सही हो तो मानना होगा कि सामी सभ्यताके सबसे महत्त्वपूर्ण प्राचीन केन्द्रमें कम-से-कम दो स्रोतोंसे आनेवाली भाषाधाराओंका मिश्रण हो गयाथा। इतिहासमें जैसे आर्य नस्लको लेकर दुराग्रहपूर्ण भ्रान्तियां फैलायी गयीहैं, वैसेही सामी नस्लको लेकर निराधार नस्लपंथी कल्पनाएं की गयीहैं। यह स्पष्ट है कि सभ्यताके प्राचीन केन्द्र मानवताके अलग-थलग पड़े हुए टापू नहीं है अपितु ऐसे संगम हैं जहा मानवताके अनेक स्रोत घुलमिलकर एक हो जातेहै।" [तीसरा खण्ड, पृ. ११८]

प्राचीन भाषा परिवारोंमें यूरोपकी भाषाएं नहीं आतीं। वे सब एशियाकी भाषाएं हैं लेखक प्रश्न पूछने की भाषामें लिखतेहैं—

"प्राचीन भाषा-परिवार कितने प्राचीन हैं? एशिया के जिस भागमें सभ्यताका प्राचीनतम प्रसार हुआ है, उसके भाषा-परिवार कमसे कम दस हजार साल पुराने हैं। इंडोयूरोपियनका 'इंडो' प्राचीन सभ्यताकी इस परिधिमें हैं, 'यूरापियन' इससे बाहर हैं।" [तीसरा खण्ड, पृ. १२१]

भाषा-परिवारोंका अध्ययन प्रस्तुत करनेके बाद कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष डा. रामविलास शर्माने दियेहैं। वे इस प्रकार हैं—

- आधुनिक भाषा-परिवारोंकी संख्याकी तुलना में प्राचीन भाषा-परिवारोंकी संख्या बहुत अधिक थी। संख्या अधिक थी; उनका व्यवहार क्षेत्र सीमित था।
- प्राचीन भाषाई भूगोल आधुनिक भाषा भूगोल से बहुत भिन्न था।
- एक भाषा परिवारको पूर्ण स्वाधीन, स्वायत्त व्यवस्था न मानकर हम क्षेत्रीय आधारपर अनेक भाषा परिवारोंके संदर्भमें उसकी निर्माण-प्रक्रियाका अध्ययन करें।
- भाषा तन्त्रको गतिशील मानते हुए प्राचीन भाषाओंके ध्वनितन्त्र, शब्दतंत्र और विन्यास-तन्त्रपर हम अपनी आधुनिक धारणाओंको आरोपित न करें।
- प्राचीन भाषाओंकी शब्द-सामग्रीका तुलनात्मक विवेचन करते हुए अर्थ प्रक्रियाकी विशेषताएं ध्यानमें रखनी चाहियें।
- 'प्राचीन जनोंकी सामाजिक परिस्थितियोंके साथ उनकी सांस्कृतिक परिस्थितियोंको भी उस विशद् संदर्भमें सम्मिलित कर लेना चाहिये जिसके बिना अर्थ-प्रकियाका विवेचन असम्भव है।

'ध्वनितन्त्र सम्बन्धी मूल स्थापनाएं'—शीर्षकके अन्तर्गत जिन ध्वनिरूपोंपर विचार किया वे इस प्रकार हैं: (क) अ, अँ, ऑ (ख) र्, स्, न् (ग) गम्, गत्, (घ) र्, य्, व्, (ङ) र् की आदिस्थानीय भूमिका (च) सघोष महाप्राण ध्वनियोंकी भूमिका (छ) घ्, ध्, भ् के रूपान्तर।

डा. रामविलास शर्माने ध्वनि-केन्द्रोंको पहचाननेका प्रयत्न कियाहै। इस पहचानमें भाषा-भूगोलका स्वरूप पहचाननेका प्रयत्न है। उनका कहना है कि /अ/, /इ/, /उ/ अथवा /अ/, /अँ/, /ऑ/ स्वरोंका विकास अलग-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलग केन्द्रोंमें हुआ; इन केन्द्रोंमें परस्पर सम्पर्कके फल-स्वरूप जब भिन्न स्वरों किन्तु समान अर्थवाले शब्द एक ही भाषा-व्यवस्थामें सिमट आये, तब ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई मानो स्वरोंका स्वच्छन्द संचरण हो रहा हो, मानो शब्दमें किसी स्वरका प्रयोग कर दो, अर्थमें भेद न होगा। यह पहचान अखिल भारतीय स्वरूपकी है। /अ/, /इ/, /उ/—के केन्द्र आर्य गण भाषा केन्द्रों में बतलाये तथा/अ/, /अॅ/, /आॅ/के केन्द्र द्रविड़ भाषाके केन्द्रोंमें बतलाये। और फिर दोनोंको मिलाकर लिखा—

"आर्य-द्रविड़ भाषाओंमें अ—अॅ—आॅ—स्वरोंकी जो स्थिति है, उससे मिलती-जुलती स्थिति यूनानी भाषाओंमें इन स्वरोंकी है। यह समानता आकस्मिक नहीं हो सकती। शब्दोंके पुराने रूपों पर विचार करनेके लिए हमें इस स्थितिका सामना करनेके लिए तैयार रहना चाहिये।"

स्वरोंकी भांति व्यंजनोंके व्यवहारको पहचानने का प्रयत्न भी किया गयाहै। इस पहचानमें इतिहास और भूगोल दोनोंका उपयोग हुआहै। ध्वनियोंके व्यवहार में परिवर्तनकी स्थितियोंको पहचाननेके लिए उन्होंने कुछ विशेष ध्वनियोंका चयन कर उनका विवेचन किया। —र्, स्, न् / गम्, गत्/ र्, य्, व्/ र् की आदि स्थानीय भूमिका/सघोष महाप्राण ध्वनियोंकी भूमिका/ तथा / घ्, ध्, भ्/ के रूपान्तर—इन सबका विवेचन इसी संदर्भमें हुआहै। इस विवेचनमें अर्थको सुरक्षित रखते हुए ध्वनि परिवर्तनको पहचाना गयाहै। दूसरी बात अर्थ-प्रक्रियाके अंतरंगको भी इस माध्यमसे उजागर किया गयाहै।

अर्थ प्रक्रिया सम्बन्धी मूल स्थापनाएं लिखनेसे पहले ध्वनि-प्रक्रिया लिखकर उसे अर्थ प्रक्रियासे जोड़ा गयाहै। अपनी बात स्पष्ट करनेके लिए उन्होंने लिखा—

"यह अध्याय लिखनेसे पहले मैंने जहां-तहां अर्थ-संसर्ग, अर्थ-विस्तारकी प्रक्रियाका उल्लेख कियाहै, विशेषतः पुस्तकके दूसरे खण्डमें, किन्तु ध्वनि-परिवर्तनकी रीतियोंके साथ अर्थ रीतियों को मिलाकर विस्तारसे इनका अध्ययन पहले नहीं किया। यहां घ्, ध्, भ्—ध्वनियोंवाले शब्द-मूलोंको आधार बनाकर मैंने सम्बद्ध अर्थोंवाले शब्दोंकी शृंखलाएं निश्चित कीहैं। ऐसी शृंखलाएं औरभी हो सकतीहैं; जो शब्द शृंखलाएं दीहैं, उन्हें उदाहरण स्वरूप मानना चाहिये। अनेक स्थलोंपर शब्दोंकी व्युत्पत्तिके बारेमें अपनी पूर्व मान्यताएं मैंने बदलीहैं। जो कुछ यहां कहाहै, उसमें फिर परिवर्तन करना पड़े, यहभी सम्भव है।" [तीसरा खण्ड, पृ. १४०]।

अर्थ प्रक्रिया संबंधी मूल स्थापनाओंके अन्तर्गत जिन शीर्षकोंको मूल आधार बनाकर अर्थ प्रक्रियाका विश्लेषण कियाहै, वे शीर्षक हैं: [क] जल और प्रवाह [ख] घूमना, चक्कर खाना [ग] भ्रमण करना, भटकना [घ] मुड़ना, टेढ़े चलना [ङ] घेरना, रक्षा करना [च] छाँकना, छिपाना, [छ] पार उतारनेकी क्रिया [ज] सांस्कृतिक और भाषाई विकास तथा गतिरोध [झ] वायु वेग, ऊर्जा [ञ] वृद्धि, उच्चता, पर्वत [ट] बहना, वहन करना [ठ] गतिबोध और स्थिरता [ड] नहाना, तैरना, भरना [ढ] पानी, पान, पात्र [ण] प्रकाश, वर्ण, ऊष्मा [त] प्रकाश, दर्शन ज्ञान [थ] अग्नि, आह्वान, वाणी [द] अग्नि, पवित्रता, उपासना तथा [ध] मुख्य निष्कर्ष।

अर्थ-प्रक्रियाका यह विवेचन तथा विश्लेषण लेखक के भाषा-चिन्तनका परिणाम है। अपने आपमें मौलिक है। ध्वनि-तत्त्व और अर्थ-तत्त्वकी संगतिका विविध भाषाओंके बीच पहचाननेका प्रयत्न इनमें हैं:

ध्वनि-तत्त्व तथा अर्थ-तत्त्व किसी भाषा विशेष तक सीमित नहीं हैं। इसमें प्रधान रूपसे भारतीय भाषाओं की अर्थ-मीमांसा है। अर्थकी प्रक्रिया एक भाषासे दूसरी भाषामें कैसे चलायमान रहतीहै और इस प्रकारसे चलायमान होनेमें ध्वनि-तत्त्वोंका योगदान क्या रहताहै —यह सब स्पष्ट किया गयाहै। शब्द शृंखलाओंके रूप में यह सब कुछ लिखा गयाहै।

अर्थ-प्रक्रियाका सारा विवेचन व्यावहारिक है। इस व्यावहारिक विवेचनके निष्कर्ष कुछ इस प्रकार हैं:

"किसी समय/घ्/, /ध्/, /भ्/—ध्वनियां स्वच्छंद संचरणकी स्थितिमें रहीहै। यदि/घर्/शब्दका अर्थ बहना है, तो/धर्/और/भर्/शब्दोंका अर्थ भी यही है। ये तीनों ध्वनियां तीन भिन्न केन्द्रोंमें विकसित हुईहैं, साथ ही ये केन्द्र एक दूसरेके इतना निकट रहेहैं कि 'घर', 'धर्', 'भर्' आदि शब्दोंकी निर्माण-प्रक्रिया, अर्थ-विस्तारकी प्रक्रिया एक-सी है। इनके साथ /अ/, /अॅ/, /आॅ/ स्वरोंके तीन केन्द्र हैं जिससे /घर्/के साथ/घॅर्/और/घॉर/,/धर्/ के साथ/धॅर/और/धॉर/, /भर्/के साथ/भॅर्/और/ भॉर/के अस्तित्वका प्रमाण मिलताहै।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उक्त रूपोंमें जैसा परिवर्तन एक ध्वनिके साथ होता है, लगभग वैसे ही परिवर्तन दूसरी ध्वनिके साथ होताहै। यदि/घ्/ सघोष अल्पप्राण/ग्/ रूपमें ग्रहण किया जाताहै तो/ध्/ भी/व्/रूपमें ग्रहण किया जाताहै। इससे आशय यह नहीं है कि क्-त्-प् सर्वत्र घ्-ध्-भ् के रूपान्तर हैं। संभावना यह है कि घ्-ध्-भ् के समान क्-त्-प् के भी भिन्न और स्वतंत्र केन्द्र थे।" [तीसरा खण्ड, पृ. २१५]

इस निष्कर्षको पढ़कर ग्रिमका ध्वनि-नियम याद आ गया। ग्रिमके ध्वनि-नियमका प्रधान आधार ऐतिहासिक है ऐतिहासिक क्रममें ग्रिमने दो बार परिवर्तन बतलाये। डा. रामविलास शर्मा ध्वनि-परिवर्तनको अलग-अलग केन्द्रोंमें प्रस्तुत करतेहैं। अलग-अलग केन्द्रों की संभावनाओंपर विचार करतेहैं। ये ध्वनि केन्द्र निश्चित ही भौगोलिक हैं। इन भौगोलिक केन्द्रोंका पूरा-पूरा स्पष्टीकरण वे नहीं दे सकेहैं किन्तु जो संकेत उन्होंने दियेहैं, उनके आधारपर पाठकोंको अनुमान करना पड़ेगा। दूसरी बात वे प्रधान रूपसे ध्वनि-प्रवृत्तियोंका विवेचन अर्थ-प्रक्रियाके संदर्भमें कर रहेहैं। ध्वनि-नियम बतलाना उनका प्रयोजन नहीं है।

ध्वनियोंका यह विश्लेषण अर्थ-प्रक्रियासे सम्बन्ध रखनेवाला है। इसमें आर्य परिवार और द्रविड़ परिवारके आपसी सम्पर्कको बतलानेका प्रयत्न भी किया गयाहै। लिखतेहैं—

"द्रविड और इंडो यूरोपियन परिवारोंकी भाषाएं बोलनेवाले पड़ोसी थे। इनका क्षेत्र बृहत्तर भारत का उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश था। इनकी भाषाओंकी विकास-प्रक्रिया बहुत पुरानी है; वैदिक भाषाकी विकास-परम्परा सुमेर और सिन्धु घाटी की सभ्यतासे पुरानी है, अर्थात् वह पांचवीं सहस्राब्दी ई. पू. से पहलेकी हैं। इस प्रकार ऐतिहासिक भाषाविज्ञानके लिए देशकालकी एक अपेक्षाकृत मूर्त रूपरेखा प्राप्त होतीहै।

ऐतिहासिक भाषा विज्ञानके ग्रन्थोंमें ध्वनि परिवर्तनपर बहुत लिखा गयाहै। इस ध्वनिपरिवर्तन की चर्चाको अर्थ विस्तारकी प्रक्रियासे अलग रखा गयाहै। मेरे विचारसे दोनोंको साथ रखकर देखना चाहिये। क्योंकि वे सम्बद्ध प्रक्रियाएं हैं। केवल ध्वनिपरिवर्तनका विश्लेषण करते समय यदि प्रत्येक भाषा-समुदायको निरपेक्ष स्वाधीन इकाई माना जायेगा, तो ध्वनि परिवर्तनका समस्त प्रक्रिया आकस्मिक और अकारण प्रतीत होगी। जहां हम विभिन्न ध्वनि-केन्द्रोंकी कल्पना करतेहैं, वहाँ परिवर्तनके कारण दिखायी देने लगते है। यदि/भ्/ध्वनि अनेक द्रविड़ और इंडोयूरोपियन भाषाओंमें/प्-वत्/ग्रहण की जातीहै, तो इसका कारण दो भाषा केन्द्रोंका अस्तित्व है, एक सघोष महाप्राण ध्वनिवाला, दूसरा अघोष अल्पप्राण वाला। इस प्रकारके परिवर्तन भाषा परिवारोंकी सीमाएं तोड़ते हुए सम्पन्न होतेहैं। यदि /क्/ का तालव्यीकरण आर्य भाषाओंमें होताहै तो वह द्रविड़ भाषाओंमें भी होताहै। इस प्रकार तालव्यीकरणके मुख्य केन्द्रोंकी भौगोलिक स्थितिका पता लगानेमें सहायता मिलतीहै।"

(तीसरा खण्ड, पृ. २१७)

भाषा परिवारोंके सम्बन्धसूत्र बतानेके लेखकने कुछ आधार बताये हैं। ये आधार प्रधान रूपसे व्याकरणिक हैं। इस दृष्टिसे निम्नलिखित व्याकरणिक रूपोंपर अलग-अलग शीर्षकोंमें—विचार किया गयाहै: (क) कृदन्त (ख) सर्वनाम: उत्तम पुरुष (ग) सर्वनाम: मध्यम पुरुष (घ) सर्वनाम: अन्य पुरुष (ङ) सर्वनाम: संज्ञा-क्रियापद-रचना (च) सर्वनाम: विशेषक-कारक-रचना (छ) संश्लिष्ट भाषा-पद्धति (ज) भाषा परिवारों का निर्माण (झ) ऐतिहासिक भाषा विज्ञान और द्रविड़ (ञ) हिन्दी, संस्कृत और मध्यदेश

व्याकरणिक रूपोंपर विचार करते समय ध्वनियों का विवेचन भी हो गयाहै। ये सभी रूप ऐसे हैं जिनके आधारपर भाषा परिवारके सम्बन्धसूत्र पहचाने जा सकतेहैं। संख्या-वाचक विशेषणका भी भाषा परिवार की पहचानका सूत्र माना गयाहै। इस रूपका विवेचन नहीं है। व्याकरणिक रूपोंमें कृदन्तोंको एशिया और यूरोपकी भाषाओंके विकासको महत्त्वपूर्ण घटना माना गयाहै और इस आधारपर कहा कि यदि भारतीय क्रियामूलोंसे बने कृदन्तोंको यूरोपकी भाषाओंने मूल क्रिया मानकर अपनायाहै, तो इससे यह सिद्ध होताहै कि वे क्रियामूल प्राचीन हैं, उनसे बने कृदन्त बादके हैं, उन कृदन्तोंको मूल क्रिया बनानेकी प्रक्रिया औरभी बादकी है। तदर्थ उपयुक्त उदाहरण भी दियेहैं।

सर्वनामोंपर बहुत विस्तारसे लिखाहै। अपनी मान्यताएं भी अलगसे स्पष्ट कीहैं। उत्तम पुरुष सर्व-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामका मूल रूप/मध्/मानाहै। कहाहै :

"आर्य-द्रविड़-कोल भाषाओंमें, भारतमें बाहरकी ग्रीक-फारसी आदि भाषाओंमें, एशियाकी तुर्क मंगोल, एशिया-यूरोपकी फिनो उग्रियन भाषाओंमें उत्तम पुरुषके लिए ऐसे सर्वनामका व्यवहार होता है जिसका मूल रूप/मध्/था।"

(तीसरा खण्ड, पृ. २१९)

कई उदाहरण दियेहैं। अन्तमें निष्कर्ष रूप में लिखा :

"द्रविड़ और कोल परिवारोंके सर्वनामोंका मिलान करनेपर परिणाम यह निकलताहै कि उक्त सर्वनाम मूल कोल भाषाओंमें द्रविड़ क्षेत्रसे पहुंचेहैं। द्रविड़ भाषाओंमें ध्वनि रूपान्तरोंकी सारी कड़ियां विद्यमान हैं।·· कोल भाषाओंसे मिलती-जुलती स्थिति नाग भाषाओंकी है ··"

(तीसरा खण्ड, पृ. २२१)

मध्यम पुरुष सर्वनाममें सम्बन्धमें 'म्' और 'न्' से आरम्भ होनेवाले रूपोंको प्रधान माना और ब्रुगमनकी टिप्पणी इस प्रकार प्रस्तुत की—

"ब्रुगमनने इंडोयूरोपियन भाषाओंमें उत्तम और मध्यम पुरुषके लिए एक-से सर्वनाम रूपका व्यवहार देखकर परिणाम निकालाथा कि इन पुरुषोंका आदिम भेद आगे चलकर मिट गया। लोग बहुवचन रूपोंकी जगह एकवचन रूपोंका व्यवहार करने लगे, वे वचन-भेद भूल गये। वे मध्यम पुरुष रूपोंकी जगह उत्तम पुरुष रूपोंका व्यवहार करने लगे, वे पुरुष-भेद भूल गये। किन्तु इस धारणाके विपरीत यह भी सम्भव है कि पहले पुरुष भेद सुनिश्चित न हो, इस कारण वक्ता और श्रोता दोनोंके लिए एकही रूप प्रयुक्त होताहो।"

(तीसरा खण्ड, पृ. २२१-२२२)

अन्य पुरुष सर्वनामके सम्बन्धमें बहुत विस्तारसे लिखा गयाहै। सार्वनामिक ध्वनियोंका विस्तार अन्य व्याकरणिक रूपोंमें भी हुआहै। इन रूपोंने संज्ञा-क्रिया-पद-रचनाको प्रभावित कियाहै। ऐसे कई उदाहरण दिये गयेहैं। उदाहरण प्रस्तुत करते-करते लेखकको अनुभव हुआ कि पीछे जो उदाहरण (दूसरे खण्डमें) दिया था, वह गलत होगया। यहांपर साफ लिख दिया—

"तमिल/अत्तन्/का अर्थ है पिता; 'त' जोड़ा तो तमिल/ताता/ (पितामह), पर्जि/तात/पिता रूप बने। इस पुस्तकके दूसरे खण्डमें/तात/का सम्बन्ध मैंने प्रजनन सूचक क्रियासे जोड़ा है, वह सही नहीं है।" (तीसरा खण्ड, पृ. २२६)

कहना यह है कि लेखकके विचार लिखते-लिखते भी बदल गयेहैं। वह अपने लेखनके प्रति अति सजग है।

सर्वनामोंके रूपोंपर विचार करते समय लेखकका ध्यान भारतकी प्रायः सभी भाषा परिवारोंकी भाषाओं पर रहाहै। उसमें आर्य परिवारकी भाषाएं मात्र नहीं है। सर्वनामोंका प्रवेश अन्य रूपोंमें मूल ध्वनियोंके आधारपर हुआहै। इस दृष्टिसे काफी उदाहरण दिये गयेहैं। व्याकरणिक रूपोंके आधारपर कुछ निष्कर्ष भी देनेके प्रयत्न किये गयेहैं। कुछ निष्कर्ष—

▭ "सर्वनामोंके विवेचनसे सिद्ध होताहै कि उक्त विन्यास-पद्धति और तिङन्त क्रियापद रचनाका स्रोत आर्यभाषा क्षेत्र है। इससे जो भिन्न पद्धति है, जिसमें कृदन्त-व्यवहार प्रधान है, उसका स्रोत भी आर्यभाषा क्षेत्र है। कारण यह कि तिङन्त-प्रयोग पूर्वी आर्यभाषा क्षेत्रकी विशेषता है तो कृदन्त-प्रयोग उत्तरी क्षेत्रकी।

▭ संज्ञाके बाद कारक चिह्न जोड़नेकी प्रथा, भाषाको संश्लिष्ट रूप देनेकी प्रथा वहींकी है, जहां के सम्बन्धक हैं; जो निरन्तर व्यवहारसे कारक चिह्न बनेहैं। क्रियामूलसे कृदन्त बनानेकी प्रथा वहींकी हैं जहां/घ्/ध्/, /भ् इन मूल प्रत्ययोंका व्यवहार होताथा। इस प्रकार एशिया और यूरोप की भाषाओंके अनेक स्तरोंपर भारतीय आर्य भाषाओंसे उनके सम्पर्ककी छाप है।"

(तीसरा खण्ड, पृ. २२९)

भाषा परिवारके निर्माणमें सर्वनामोंके महत्त्वको स्वीकार किया गयाहै। तदनुसार विवेचन तथा विश्लेषण करनेके बाद देखा गया कि एशिया और यूरोपकी भाषाओंमें बड़ी समानता है। इस आधारपर आर्य परिवार और द्रविड़ परिवारके सम्पर्कको बतलानेका प्रयत्न कियाहै। मान्यता यह है कि क्रियाके बाद सर्वनाम जोड़नेकी पद्धति किसीभी भाषा परिवारकी मूल विशेषता मानी जायेगी। और यदि ऐसी विशेषता अन्य भाषा परिवारमें मिले तो मानना चाहिये कि भाषा परिवारों की मूल विशेषताएं एकान्त शून्यमें विकसित नहीं होतीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत भाषाके सम्बन्धमें डा. रामविलास शर्माकी मान्यता इस प्रकार है :

"भारतमें संस्कृतका मूलाधार कोसलकी भाषा हैं; वैदिक काल तक कोसलकी भाषाने कौरवीसे प्रभावित होकर नया रूप ग्रहण किया और यह संस्कृत भाषा अन्तःजनपदीय विचार-विनिमयका प्रमुख साधन बनी।" (तीसरा खण्ड, पृ. २३०)।

इस कथनको स्पष्ट करनेकी आवश्यकता है। इस कथनमें प्राकृत तथा संस्कृतके सम्बन्धको उजागर नहीं किया गयाहै। यों डा. रामविलास शर्मा, पं. किशोरीदास वाजपेयीके कथनको स्वीकार करतेहैं और उन्हें उद्धृत भी करते हैं। कोसलमें कौनसी प्राकृत थी और कुरु प्रदेशमें कौन-सी प्राकृत थी—यह कहा नहीं गयाहै। **'कोसलकी भाषा'** को संस्कृतकी मूलाधार भाषा कहा गयाहै, अर्थात् वह प्राकृतका ही एक रूप हैं—प्राचीन (प्रथम) रूप कह लीजिये। इतनी बात स्पष्ट है कि पूर्व और पश्चिमके योगसे संस्कृतका रूप बनाहै। पश्चिमको मूल रूप मानें या पूर्वको मूल रूप मानें—इसपर विवाद हो सकताहै।

संस्कृतकी भांति यदि हिन्दीपर विचार करें तो मूल रूप पश्चिमका है (खड़ी बोली हो या ब्रजभाषा हो) और उसका संस्कार पूर्वमें (अवधी और भोजपुरीके क्षेत्र में) हुआहैं। अवधके क्षेत्रकी भाषाको मूलाधार नहीं कह सकते। मूलाधार पश्चिममें है और संस्कार पूर्व में हुआहै। ऐसी स्थिति संस्कृतके सम्बन्धमें भी संभव है। इस सम्बन्धमें प्राकृतके प्राचीन रूपोंको पहचाननेकी आवश्यकता अब भी बनी हुईहै।

डा. रामविलास शर्मा **'गणभाषाओं'** की बात करते हैं। गण भाषाओंकी पहचानका आधार भौगोलिक है। अपनी बातको स्पष्ट करते हुए वे लिखतेहैं :

"भिन्न गणभाषाओंकी विशेषताएं जब एक जगह सिमट आतीहै, तब उनका आपसी भेद लुप्त नहीं हो जाता। अतः प्रत्येक भाषा परिवारमें, हर स्तर पर, एकही समयमें, कभी कभी एकही स्थानपर, विरोधी प्रवृत्तियाँ सक्रिय होतीहै। प्रत्येक भाषाका निर्माण विभिन्न प्रभावोंसे हुआहै, अतः प्रत्येक भाषा किन्हीं एकरूप लक्षणोंका जड़ समवाय नहीं होती। भाषा-व्यवस्थामें विरोधी तत्त्व सक्रिय रहते हुए समन्वय स्थापित करतेहैं। भाषाका स्वरूप, उसकी अस्मिता इस समन्वयपर निर्भर है; उसका विकास, भाषा-व्यवस्थाकी परिवर्तनशीलता विरोधी तत्वोंकी क्रियाशीलतापर निर्भर है।" (तीसरा खण्ड, २३०)।

डा. रामविलास शर्माने भारतकी समस्त गण भाषाओं (प्राचीन और आधुनिक दोनों ही) का मानचित्र प्रस्तुत नहीं किया। इससे भाषाओंकी भौगोलिक स्थितियोंका परिचय ठीक-ठीक मिल सकताथा।

डा. रामविलास शर्मा किसी भाषाको किसी परिवारकी मूल भाषा माननेके लिए तैयार नहीं है। साफ लिखते हैं—

"ग्रीक भाषा तमिलकी पुत्री नहीं है, वह संस्कृत की पुत्री नहीं है, संस्कृत किसी आदि इंडो यूरोपियन भाषाकी पुत्री नहीं है। ग्रीक, जर्मन, केल्त, स्लाव आदि भाषा समुदायोंके अपने स्वतंत्र केन्द्र थे, हर समुदायका एक मूल केन्द्र नहीं, अनेक केन्द्र थे ..." (तीसरा खण्ड, पृ. २३२)

'ऐतिहासिक भाषा विज्ञान और द्रविड़'—शीर्षक के अन्तर्गत द्रविड़ परिवारकी कुछ विशेषताओंका परिचय दिया गयाहै। आर्य परिवार और द्रविड़ परिवारका सम्बन्ध बहुत पुराना है। दोनों एक परिवारकी शाखाएं नहीं हैं। द्रविड़ परिवारकी उत्पत्ति संस्कृतसे नहीं हुई और प्राचीन तमिलसे संस्कृतकी उत्पत्ति नहीं हुई। द्रविड़ किसी विशेष वर्ण और शारीरिक गठनके जनसमुदायका नाम नहीं है। द्रविड़ नामकी कोई नस्ल भी नहीं थी। सबसे प्रधान बात यह है कि द्रविड़ भाषा क्षेत्रमें किसी एक मानक अन्तःजनपदीय भाषाका प्रसार उस प्रकार नहीं हुआ जिस प्रकार आर्य-भाषा क्षेत्रमें संस्कृतका प्रसार हुआ। प्राचीन गण भाषाओंकी विविधता द्रविड़ प्रदेशोंमें अधिक सुरक्षित है। लेखककी मान्यता ऐसी ही है।

यह बात बिलकुल ठीक है कि आर्य-भाषा क्षेत्रमें संस्कृतका प्रसार अन्तःजनपदीय भाषाके रूपमें हुआ। ऐसा प्रसार किसी मानक द्रविड़ भाषाका (स्वयं तमिल का) द्रविड़-भाषा-क्षेत्रमें नहीं हुआ। सच तो यह है कि दोनों परिवारोंके अलगावको स्वीकार करवानेमें काल्डवेल सफल हो गयाहै। उसोने संस्कृतको आधार मानकर दोनों परिवारोंको अलगायाहै। डा. रामविलास शर्माभी अप्रत्यक्ष रूपसे काल्डवेलकी बात स्वीकार कर लेतेहैं। सच्चाई यह है कि संस्कृतका अन्तःजनपदीय भाषाके रूपमें जैसा प्रसार आर्य-भाषा-क्षेत्रमें हुआहै,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैसा ही संस्कृतका अन्तःजनपदीय भाषाके रूपमें द्रविड़-भाषा-क्षेत्रमें भी हुआहै। **संस्कृत अखिल भारतवर्षकी अन्तःजनपदीय भाषा आरम्भसे रहीहै। संस्कृतका सम्बन्ध जितना आर्य परिवारकी भाषाओंसे है, उतना ही उसका सम्बन्ध द्रविड़ परिवारकी भाषाओंसे भी है।**

संस्कृतके साथ द्रविड़ परिवारके सम्बन्धको उजागर करनेकी आवश्यकता है। ऐसा स्वतंत्र प्रयत्न डा. रामविलास शर्माने नहीं कियाहै। संस्कृत भाषाके निर्माणमें अखिल भारतवर्षकी भाषाओंका (चाहे वे किसी भाषा परिवारकी हो) योगदान है। संस्कृत भाषाके भारत वर्षमें भौगोलिक प्रसारको औरभी स्पष्ट करनेकी आवश्यकता है।

यह ठीक है कि आधुनिक आर्यभाषाओंका सम्बन्ध केवल संस्कृतसे नहीं है संस्कृतकी समकालीन और पूर्व की गण भाषाओंसे है। डा. रामविलास शर्माका 'गणभाषा' शब्द कुछ अस्पष्ट-सा है। गणभाषाओंके नाम नहीं दियेहैं। यदि नाम न दें तो प्रदेश भी बताये जायें तो ठीक होता। ऐसा उन्होंने सर्वत्र नहीं किया। गणभाषाओंको ही (भाषाओंका नाम ज्ञात न होनेके कारण) प्राकृतें कहा गयाहै। अगल-अलग क्षेत्रोंमें प्राकृतों के अलग-अलग रूप थे।

'हिन्दी, संस्कृत और मध्यदेश'—शीर्षकके अन्तर्गत मध्यदेशको गणभाषाओंके समुदायकी सामान्य लक्षणों वाली भाषाका क्षेत्र माना गयाहै। हिन्दी और संस्कृत का सम्बन्ध मध्यदेशसे जोड़ा गयाहै। हिन्दीके सम्बन्ध में लिखा—

> "हिन्दीका व्याकरण मूलतः बांगरूका है किन्तु उसके बोलचालवाले अन्तःजनपदीय ध्वनितन्त्र पर ब्रजभाषाकी गहरी छाप है। यही कारण है कि रेख्ता, हिन्दुई, पुरानी उर्दूमें/ ण्/ का अभाव है। उर्दूमें / ण्/ का अभाव अब भी है, हिन्दीमें/ ण्/ की पैठ बोलचालके स्तरपर कम, लिखित और शिष्ट भाषाके स्तरपर अधिक है। मानक हिन्दीके अनेक क्रियारूप अवधीके आधारपर बनेहैं·····मानक हिन्दीके निर्माणमें अनेक जनपदीय भाषाओंका योगदान है, विशेष रूपसे ब्रज और अवधीका और इनका सम्बन्ध प्राचीन मध्यदेशीय आर्यभाषासे है।' (तीसरा खण्ड, पृ. २५४)।

भारतका सम्बन्ध दक्षिण-पूर्व एशियाकी भाषाओंसे भी रहाहै। इस ओर ध्यान देनेकी आवश्यकता है। कहा गया कि दक्षिण पूर्व एशियामें भारतके उपनिवेश थे। तुर्कोंके अभियानसे पूर्वकी बात है। इंडोनेशियन भाषा कोल भाषाओंसे मिलतीहैं। आर्य-कोल भाषाओंमें सम्मिश्रणके रूप इंडोनेशियामें मिलतेहैं। द्रविड़ जन भी वहां पहुंचेहैं। इस दृष्टिसे इंडोनेशिया, मलय, जावा आदि क्षेत्रोंकी भाषाओंकी पहचानके प्रयत्न होने चाहियें। (आगामी अंकमें समाप्य)। □

विशेषण प्रयोग[1]

लेखक : डा. ब्रजमोहन

समीक्षक : डा. अम्बाप्रसाद 'सुमन'

व्यावहारिक भाषाविज्ञानमें हिन्दी-पर्यायकी का स्तुत्य श्रीगणेश आचार्य रामचन्द्र वर्माने कियाथा। उसे आगे बढ़ाया डा. ब्रजमोहनने। **शब्द-चर्चा, अर्थ-विज्ञान, मानक हिन्दी** शीर्षक तीन पुस्तकोंकी रचना करके डा. ब्रजमोहनने हिन्दी-व्यावहारिक विज्ञानके क्षेत्रमें अपना अभिनन्दनीय स्थान बनायाहै।

'हिन्दी-पर्यायकी' से सम्बद्ध संज्ञावाची और क्रियावाची शब्दोंपर तो डा. ब्रजमोहन अपनी पूर्व प्रकाशित पुस्तक **'शब्द-चर्चा'** में विवेचना कर चुकेथे। प्रस्तुत पुस्तक हिन्दीके विशेषण-पर्यायोंसे सम्बद्ध है।

इसमें विद्वान् लेखकने विशेषणके भेदों सहित पर्यायोंकी विवेचना कीहै। क्रिया-विशेषण और अव्यय शब्दोंके प्रयोगोंपर भी प्रकाश डाला गयाहै। यह विवेचना सरल और सुग्राह्य है, साथमें सुस्पष्ट भी।

विशेषणोंके भेदोंके प्रसंगमें प्रविशेषणका उल्लेख महत्त्वपूर्ण है। आचार्य किशोरीदास वाजपेयीने सर्वप्रथम इस गुत्थीको स्पष्ट कियाथा। अंग्रेजीके व्याकरणोंके आधारपर लिखे गये हिन्दी-व्याकरणोंमें विशेषण के विशेषणको क्रियाविशेषण बताया गयाथा।' बहुत गोरा लड़का' में 'बहुत' प्रविशेषण है। इस तथ्यका पल्लवन प्रस्तुत पुस्तकमें किया गयाहै, सुन्दरतासे किया गयाहै।

---

१. **प्रका. : राजकमल प्रकाशन, १-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : १३२; डिमा ९४; मूल्य : ८०.०० रु.।**

CC-0: In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेषण शब्द संज्ञा कैसे बन जाताहै—इसके कई उत्तम उदाहरण पुस्तकमें मिलतेहैं। **काला** और **गोरा** विशेषण शब्द हैं। जब कहा जाताहै कि—

"मेरे **काले** मुझे **गोरों** से बचा ले आऽजा" तब **'काले'** और **'गोरों'** संज्ञा बन जातेहैं। **सांवरा** विशेषण है; लेकिन घर आया मेरा **सांवरिया**, फिरसे बाजी बांसुरिया" में "**साँवरिया**' संज्ञा है और अर्थ 'पति' है।

'तू' सर्वनामसे **तेरा** विशेषण बन गयाहै। **'तेरा काम'** में **तेरा** विशेषण हैं। **'वह** आगया' में **'वह'** सर्वनाम है; लेकिन **'वह** आदमी आगया' में 'वह' विशेषण है।

'**अन्दर**' '**बाहर**' स्थानवाची क्रिया विशेषण या अव्यय हैं। इससे 'अन्दरूनी और **'बाहरी'** विशेषण शब्द बनेहैं।

'चलना' क्रियासे 'चालू' विशेषण बनाहै।

उपसर्गोंके योगसे भी विशेषणोंकी रचना होतीहै। 'निर्' के योगसे **'निर्धन'** विशेषण बनाहै।

संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण शब्द स्थानीय क्रियाविशेषण किस प्रकार बनतेहैं—इसके कई अच्छे उदाहरण लेखकने पुस्तकमें प्रस्तुत कियेहैं—(पृष्ठ ४३ पर)—

'संज्ञा' क्रियाविशेषणके रूपमें—

"दो कदमपर थक गया, चला क्या **पत्थर** ?"

सर्वनाम क्रियाविशेषणके रूपमें—

"लो मैं यह गया, वह गया।"

विशेषण क्रियाविशेषणके रूपमें—

"ऐ फ़लक ! गर तुझे **ऊंचा** न सुनाई देता।"

क्रियाविशेषण भी संज्ञा बन जातेहैं—इसे भी उदाहरण देकर विद्वान् लेखकने स्पष्ट कर दियाहै—(पृष्ठ ३६)।

'पीछे' क्रियाविशेषणके रूपमें—

"बेटीका ब्याह अपने सामने ही कर जाऊं, **पीछे** कौन करेगा।"

'पीछे' संज्ञाके रूपमें—

"उसका पीठ—**पीछा** है।"

अव्ययके भेदोंमें लेखक चार भेद बताताहै—(१) क्रियाविशेषण (२) सम्बन्धबोधक (३) समुच्चयबोधक (४) विस्मयबोधक।

इस प्रसंगमें लेखक 'विस्मयबोधक' के स्थानमें **'विस्मयादिबोधक'** कहता तो अधिक उचित रहता।

"**हाय** महादुख पायो सखा" में दुःखसूचक अव्यय शब्द **'हाय'** है। ऐसे शब्द विवेचनमें छूट गयेहैं।

हिन्दीमें क्रियाविशेषण विकारी भी होतेहैं—इसका उल्लेख भी लेखकको करना चाहियेथा। "बाज **तिरछा** उड़ताहै"। "चील **तिरछी** उड़तीहै।" इन वाक्योंमें **तिरछा तिरछी** विकारी हैं; लेकिन क्रियाविशेषण हैं।

पुस्तकके अन्तमें अंग्रेजीके विशेषणोंके साथ हिन्दी विशेषण-पर्यायोंकी तेंतीस मालाएं दी गयीहैं, जो हिन्दी भाषाके पाठकोंके लिए परमोपादेय हैं। जैसे—(१) अच्छा = good (२) उत्तम = best (३) बढ़िया = excellent (४) भला = noble, gentle.

सारांश यह कि सुविज्ञ लेखनने व्याकरणिक ज्ञानको लोक-व्यवहारसे रसमय बना दियाहै। मुद्रण और वर्तनी अप शुद्ध तथा नयनाभिराम है। ▭

रोचक, उत्साहक, उत्प्रेरक विराज-साहित्य

वनराजके राजमें
वन भ्रमण, शिकार एवं साहस भर प्रसंग २०.००

वनशाला
शिक्षामें वनों तथा वन-पशुओंके निकट सम्पर्कका महत्त्व, वनशालाका महत्त्व ५०.००

वे चिंघाड़ते हाथी
जंगली हाथियोंसे सामना। रोमांचक प्रसंग ७०.००

तीन गांधी हत्याएं
सर्वश्री मोहनदास गांधी, इन्दिरा गांधी और राजीव गांधीकी हत्याओंका मर्मस्पर्शी वृत्तान्त ३५.००

हरकी पैड़ी
शृंगार रसका सरस काव्य ४०.००

विषसे विकट शराब
शराबसे समाजपर होने वाले दुष्परिणाम ३५.००

हम हिन्दू हैं
हिन्दुस्तानके गौरवका उद्बोधक काव्य १२.००

शकुन्तला
'अभिज्ञान शकुन्तलम्'का औपन्यासिक रूपान्तर ३५.००

जादूगारनी मीडिया
यूनानी पुराण कथा मार्मिक उपन्यास १२.००

निजामशाही पर पहली चोट
हैदराबाद आर्य-सत्याग्रहकी आपबीती ४०.००

हेमगंगा प्रकाशन
२७ ए, राजपुर रोड, दिल्ली-५४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्तराग[1]

[असमीसे अनूदित]

लेखक : होमेन बरगोहाई
अनुवाद : डा. महेन्द्रनाथ दुबे
समीक्षक : डा. रामदेव शुक्ल

आज भारतीय गांव जिस हालतमें पहुंचा दिये गयेहैं, उसमें किसीभी ग्रामीणकी सबसे बड़ी लालसा क्या है ? निर्विवाद रूपसे यही कि उसका बेटा पढ़-लिखकर लायक बन जाये, बड़ा आदमी बन जाये। बेटा बड़ा आदमी बन जाये तो जनम-जनमका नरक कट जाये । सुखके सारे द्वार खुल जायें। सब दुःख-दरिद्र भाग जायें।' और सबके न सही, कुछ ग्रामीण मां बापकी सबसे बड़ी साध पूरी भी हो ही जातीहै। उनका बेटा पढ़ने-लिखनेमें तरक्की करता हुआ शहरके महाविद्यालय और विश्व-विद्यालयमें अपनी योग्यता प्रमाणित करता हुआ बड़ी छोटी या मझोली नौकरी पा लेनेकी अन्तिम योग्यता भी प्रमाणित कर देताहै । उसके बाद क्या होताहैं ? योग्य युवक सरकारी, अर्द्धसरकारी या गैर सरकारी नौकरीमें यदि विदेश चला गया तब तो वह दूसरे ही लोकका प्राणी बनकर घरवालोंके स्मरण और सपनोंमें आता है । ऐसे अप्रतिम कम होतेहैं जो देशमें ही योग्यता प्रमाणित करते रहतेहैं, उनकी सबसे बड़ी साध क्या होतीहै ? जैसे-तैसे शहरमें एक मकान । इसके पीछे एक सटीक अकाट्य तर्क होताहै, 'हम तो जैसे तैसे गांव के नरकसे निकल आये । अब बच्चोंको वह नरक न भोगना पड़े, इसलिए शहरमें घर तो चाहिये ही । और साहब बीमारी परीशानीमें गांवमें क्या मिलेगा, न दवा, न डाक्टर। इसलिए भी गांव लौटनेका तो सवाल नहीं। रिटायर होंगे, बूढ़े होंगे तो गाँवमें कैसे रह पायेंगे ? इसलिए चाहे जैसे हों, शहरमें एक मकान तो हर हालमें चाहिये ही। अब इस योग्य युवककी चिन्ताके केन्द्रमें होताहै शहरका जीवन । जितनी जल्दी हो सके, अपने बच्चोंके भविष्य और अपने बुढ़ापेके सुखका आरक्षण आवश्यक है। अब लौटिये उन माता-पिताकी ओर जिन्होंने अपनी ग्रामीण अर्थव्यवस्थाके सारे ताने-बानेको निचोड़कर एक ही जगह केन्द्रित कर दियाथा —पढ़ाईमें तेज अपने बेटेको नौकरी मिलने तक आर्थिक रूपसे सम्हाले रहना। वे बूढ़े होगये । शरीर शिथिल । खेतीमें श्रम और साधन दोनों नहीं लगा सकते। शहरी आकांक्षाके बावजूद जो बेटे सपूत होतेहैं वे मां-बापसे कहतेहैं—:छोड़िये यह सब। क्या रखा है यहाँ। चलिये हमारे साथ शहरमें । वहां डाक्टर हैं; अस्पताल हैं। सब सुविधाएं हैं । वहीं आरामसे बुढ़ापा बिताइये।' अपने बेटेकी योग्यता, बहूकी सुशीलता और नाती पोतों के मोहसे घिरे बूढ़े अपना जनम-जनमका गांव छोड़कर शहर आ जातेहैं। बेटा, बहू, नाती-पोते खूब लायक हैं। पिता-ससुर और दादाके रूपमें घर भरका आदर पाता बूढ़ा ग्रामीण शहरमें सुखी हो जाये—क्या हर्ज है इसमें ? पर बूढ़ा इस शहरी सुखका क्या करताहै ?

देखना हो तो पढ़ना चाहिये असमी भाषाके कथा-शिल्पी होमेन बरगोहाईका उपन्यास 'अस्तराग'। 'अस्तराग' असमके गांवके वृद्धके इसी स्वर्गकी कथा है। दिलीप योग्य पुत्र है। शहरके विद्यालयमें योग्य अध्यापक है। पत्नी सुशील है । पुत्र-पुत्री मेधावी शिष्ट और विनीत हैं। वृद्ध पिता गांवमें बीमार पड़ जातेहैं तो दिलीप उनको अपने पास ले आताहै । उनकी भरपूर सेवा की जातीहै । सब लोग उनका ख्याल रखतेहैं।

---

१. प्रका. : भारतीय ज्ञानपीठ, १८ इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-११०००३। पृष्ठ : १४३; डिमा. ९१; मूल्य : ५५.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु बुढ़ापेकी बीमारी और गंवई मन। बार-बार वे अपने बेटेसे कहतेहैं—"दुल बेटे! अब मुझे घर लौटा भेजनेकी व्यवस्था करदे।"

कारण क्या हो सकताहै? बेटेकी हालत यह हैं कि "बस यही बात सुन पानेके साथही उसे ऐसा लगा, जैसे उसका कलेजा दो हाथ नीचे धंस गयाहै। उसे बोध हुआ कि उन लोगोंके किसी आचार-व्यवहारसे उसके पिताको मनही मन भारी चोट पहुंचीहै। अगर ऐसा न हुआ होता, तो जो आदमी हमेशाके लिए गांवके घर को छोड़कर यहाँ रहनेके उद्देश्यसे आया, वह अभी एक महीना भर पूरा होते न होतेही, फिरसे गांव लौट जानेकी बात क्यों उठायेगा? परन्तु आखिर वह कौन-सी चोट है—जिसकी प्रखर वेदनाका अनुभव करके—जिसके कारण अपने बेटे-बहू, नाती-नातिनके संग साथमें रहनेकी अपेक्षा गांवके घरकी उदास-नीरस-कष्टकारक निस्संगताको, वे अधिक अच्छा समझ रहेहैं।" (पृ. ९७-९८)।

शहरमें 'क्वालिटी आव् लाइफ' का आस्वादन करता दिलीप ग्रामीण किसानके दुःखको कैसे समझ सकताहै? मजेकी बात यह है कि इस दुःखको भोगनेवाला तिरासी वर्षीय ग्रामीण वृद्धभी क्या साफ-साफ अपने अन्तःकरण में छिपे असन्तोष और उसके कारणोंकी पहचान कर पाताहै?

"उनसे यदि कोई पूछ बैठे कि जरा बतलाइये तो कि अपने बेटेकी पत्नी यानी अपनी पतोहू और अपने बेटेके बेटे-बेटी यानी अपने नाती-नातिनके किस विशेष आचरण-व्यवहारसे आपको ठेस लगीहै? किस व्यवहार में आपको बुराई दिखायी पड़ोंहै? कष्टका अनुभव हुआ है? तो वे इसका कुछ भी उत्तर नहीं दे पायेंगे। वस्तु-स्थिति तो यह है कि उनमें से किसी भी सदस्यके विरुद्ध उनका कोई स्पष्ट अभियोग नहीं है सीधे किसीसे भी कोई शिकायत है ही नहीं। उनकी पतोहू बेचारी तो जैसे घड़ीकी सुइयोंको देखकर निर्धारित समयपर बिल्कुल ठीक वेलामें जलपान चाय-नाश्ता और भोजन-छाजन की व्यवस्था करतीहै और दिनमें दो बार ठीक समयपर उनकी सुविधा-असुविधा, कुशल क्षेम पूछताछ कर जाती है।

कुणाल और अदिति (नाती नातिन) रोज रोज सन्ध्या ढलते ही कुछ समयके लिए उनके पास आ बैठते हैं और उनसे बातचीत करनेकी हर सम्भव कोशिश करतेहैं। उनकी बातचीत और आचार-व्यवहार इतना अधिक सुन्दर और शिष्ट होताहै कि जिसको कोई कल्पना भी नहीं कर सके।...परन्तु जान पड़ताहै कि संभवतः वही सब दिलीपके पिताकी आन्तरिक व्यथाका मुख्य कारण है। प्रत्येक आचार-व्यवहारमें बराबर हर समय वे यही अनुभव करते रहतेहैं कि पतोहू और नाती वगैरह उनके साथ बस अपनी-अपनी भूमिकाका सही निर्वाह भर करते चले जा रहेहैं। तो क्या उन्होंने निश्चयपूर्वक ठान लियाहै कि बाबाको सन्तुष्ट रखना उन सबका परम कर्त्तव्य है?...उनकी उस बर्फ जैसी ठण्डी सभ्यता और शिष्टताकी आड़में उचित-अनुचित का ध्यान रखनेका भाव जितना प्रबल होताहै, उसकी तुलनामें प्राणोंका संस्पर्श, ममताका भावबोध इतना हल्का होताहै कि उसके समानान्तर उसे शून्य ही कह सकतेहैं, यानी कि ममत्वसे एकदम खाली-खाली।" (पृ. ९९-१००)।

दोनों पक्षोंमें किसीका कोई दोष नहीं है किन्तु सचाई यही है कि कोई सन्तुष्ट नहीं है। कारण क्या ग्रामीण किसानके सपनेकी बुनियादका खोखलापन ही नहीं है कि शिक्षितका अर्थ होताहै, शहरमें नौकरी करने वाला। अब जो शहरमें नौकरी करेगा उसके सपने उस परिवेशके सपने होंगे जिसमें वह सांस ले रहाहै। तब वह क्या करे अपने अतीतका और अपने अतीत (मां-बाप) के भी अतीत (उनके बचपनकी धूल माटीकी दुनियां) का? कहांसे लाकर वह उन्हें उनका वह जीवन सौंप दे? यह विडम्बना किसकी है? भारतीय समाजका यह एक ज्वलंत प्रश्न है। आधुनिक शिक्षाने इतनी गहराईमें जाकर भारतीय जीवनको खोखला कियाहै और आगे कितनी दूर तक करेगी, कुछ कहा नहीं जा सकता।

दिलीपके पिता शहरमें आकर शहरके लोगोंसे कुछ परिचित होतेहैं। उनकी व्यथाका सूत्र यहां है—"जिस घड़ीसे वे शहरमें आयेहैं उस घड़ीसे ही वे इस बातका अनुभव करने लगेहैं कि वृद्धावस्था आधुनिक मनुष्योंकी दृष्टिमें एक अपराध है। इस बातको अपने मुंहसे साफ-साफ तो कोई नहीं कहता, परन्तु बूढ़े आदमियोंके प्रति ये तथाकथित आधुनिक लोग जो आचार-व्यवहार करते रहतेहैं, उसीसे उनके मानसिक भाव अपने आप प्रकट हो जातेहैं।" (पृ. १०१)।

पड़ोसके बूढ़े दम्पतीके बड़े बेटे अपनी बहुओंके साथ अन्यत्र चले गये। छोटा उनके साथ है। साइटिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कारण घिसटती हुई चलकर भी बूढ़ा घरके सारे काम करतीहै। उसके छोटे बेटको बहू नहीं मिल पाती। कारण ?—"आजकलकी नयी फैशनकी लड़कियां सास-ससुर न हों, ऐसे एक निर्झंझट परिवारको पसन्द करतीं हैं। इसी कारण कन्याके मां-बाप भी जहांतक हो सकता है अपनी ओरसे हर सम्भव प्रयत्न करतेहैं कि वर ऐसा मिले जिसके बूढ़े मां बाप न हों अथवा यदि हों भी तो मां बापसे अलग हटकर, अपना स्वतंत्र घर या क्वार्टर लेकर रहताहो। ऐसेही वरसे मां बाप अपनी कन्याओं का ब्याह करना चाहतेहै।" (पृ. १०४)।

आत्मकेन्द्रित आधुनिक शिक्षाको यह एक परिणति है। 'अस्तराग' का लेखक कुशल कथाशिल्पी है। पूरे उपन्यासमें वृद्ध व्यक्तिका नाम कहीं नहीं आता। कारण ? जैसे भारतीय समाजमें स्त्रीका अपना नाम तभीतक जाना जाताहै, जबतक वह पिताके घर है। पत्नी बननेपर वह अमुककी पत्नी और मां बननेपर अमुककी मां के नामसे ही जानी जातीहै। ठीक इसी प्रकार गांवसे उखड़कर शहरमें विस्थापित वृद्धकी अपनी क्या कौन-सी पहचान हो सकतीहै ? इसीलिए पूरे उपन्यासमें इस वृद्धका एक ही परिचय है—'दिलीपके पिता'। इस सूक्ष्म विन्याससे लेखकको अपूर्व सफलता मिलीहै—भारतीय गांवोंके किसान जीवनकी विडम्बनापूर्ण परिणतिको व्यंजित करनेमें।

लेकिन बोधके स्तर और भी गहरे हैं। दिलीप, कार्तिक, चन्द्रमा ये सब आधुनिक शिक्षा प्राप्त सफल शिक्षित लोग हैं। पश्चिमी साहित्यके ज्ञानसे पूर्ण हैं ये सब लोग। ये गेटेको जानतेहैं, ये नीत्शेको जानतेहैं, ये आधुनिक लेखकोंको जानतेहैं, उनके विचारोंको जानते हैं। कार्तिक सफल वकील हैं। वे अपने वृद्ध पिताको मृत्यु शैय्याके पास तक नहीं जाते। पिता मर जातेहैं। उनके पास न जानेका कारण बतातेहैं—"मैं अपने जिस पिताको जानता पहचानता रहाहूँ यह व्यक्ति बिल्कुल वही आदमी नहीं है। मेरे पिताजी एक अत्यन्त शक्तिशाली सक्षम मनुष्य थे। अपनी महान् शक्तिकी छाया में वे सबको आश्रय देतेथे। वे सभीको बल और भरोसा प्रदान करते थे। दुर्बलता क्या चीज हैं– यह तो वे जानते ही नहीं थे। मगर यहां इस समय जो आदमी कराहते-कराहते, चीखते-चिल्लाते आनेवाली मृत्युके क्षण-पल गिन रहाहै, वह मेरा पिता नहीं है। उसे तो मैं पहचान ही नहीं पा रहाहूं।...नहीं, नहीं, मैं तो उसकी ओर देख ही नहीं सकता।" (पृ. १२)।

उच्च शिक्षाके शिखरपर बैठा यह आधुनिक व्यक्ति अपने इस भावके लिए महान् यूरोपीय दार्शनिक कवि गेटेसे आत्मीय प्रेरणा प्राप्त करताहै। "गेटे मानव-देह की विकृतिको, उसके सुगढ़ सुडौल स्वरूपकी जगह उसके बदसूरत बेडौल रूपाकारकी छाया देखकर उसकी इस दुर्गतिको सह नहीं पाताथा। इसी कारणसे ही मृत्यु-शैय्यापर पड़ी अपनी मांके हारे-थके, विकृत-विरूप मुंहकी ओर देखनेसे भी उसने बार बार मना कर दियाथा।" (पृ. १२)।

उच्च शिक्षा प्राप्त सभ्य, शिष्ट, सुशील, आज्ञाकारी दिलीपको जब गांवमें पिताके बीमार होनेका तार मिलताहै और वह गांवकी ओर चलताहै, तो उसकी "हे भगवान् ! हे प्रभु ! मेरे घर पहुंचनेके पहले ही पिताजीकी मृत्यु हो चुकी रहे।" (१६)।

लेखकने इस कुशलता, ईमानदारी और कलात्मक लाघवके साथ मनके निगूढ़ भावोंका अंकन कियाहै कि किसी पक्षपात या जल्दबाजीके निर्णयकी सम्भावना नहीं बचती। दिलीप पिताको यंत्रणासे बचानेके लिए ही यह प्रार्थना करताहै। किन्तु एक ऐसी स्थितिकी कल्पना कीजिए। कल्पना करनेकी जरूरत भी नहीं है, सिर्फ याद कर लीजिये। गांवका एक अपढ़ युवक परदेसमें है। गांवसे पिताकी बीमारीका तार पाताहै। गांवकी ओर चलता हुआ वह क्या सोचेगा ? सिर्फ एक प्रार्थना उसकी चेतनामें निःशब्द बजती रहेगी—"हे भगवान्। सिर्फ पल भर के लिए सही, मगर ऐसा हो कि मैं अपने पिताको जीवित देख लूं।"

'अस्तराग' में मृत्युकी छायामें जीवनका निराशाजनक नहीं,आत्माकी अमरताका संगीत गूंजताहै। गांव के घर लौटनेको आतुर वृद्धकी लोकयात्रा समाप्त होतीहै—यह घर जाना ही तो हुआ। दिलीप सोचता है—"पिताजी अपने जीवनके अंतिम मुहूर्तमें सचमुच ही किस विशेष घरकी बात कहन चाह रहेथे ?" (१४३)। मृत पिताके हाथ थामकर अशब्द कथन करताहै दिलीप —"आपने इस पृथ्वीसे, इस चराचर प्रकृतिसे अतिशय प्रेम कियाथा। इस जीवनको बहुत बहुत चाहाथा। आप शून्यमें विलीन होगये, परन्तु आपका वही अतिशय गम्भीर, अतिशय भाव-विह्वल प्रेम इस सुन्दर भुवनके प्रत्येक अणु-परमाणुमें परिव्याप्त हो जीवन्त रह गयाहै। मानव इस भुवनमें, इस धरा-धाममें आयेंगे और फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

चले जायेंगे परन्तु जो तत्व अनन्त काल तक अजर अमर होकर सदा सर्वदा वर्तमान रहेगा, वह है यह सुन्दर भुवन और रहस्यमय जीवनके प्रति मनुष्यका अतिशय गम्भीर प्रेम ।—उस प्रेमके भीतर ही आप अनन्त काल तक जीवित रहेंगे।" (१४३)।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने छात्र जीवनमें बँगलाकी सम्भवतः रवीन्द्र नाथ टैगोरकी सुन्दर कहानी पढ़ीथी 'घर वापसी' जिसमें स्कूलके हॉस्टलमें रहनेवाला बच्चा छुट्टियोंमें घर जानेके सपने देखता-देखता बीमार होकर अन्तिम यात्रापर निकल पड़ताहै अर्थात् 'घर' पहुंच जाताहै। 'अस्तराग' असमी जीवनके गांव-शहर, अपढ़-सुपढ़ और अतीत-वर्तमानका सुन्दर औपन्यासिक अंकन है, जिसमें एक ओर असमके गांव घरका पूरा परिवेश है तो दूसरी ओर आधुनिक शिक्षासे सम्पन्न शहरी वर्गका मानस भी उद्वेलित है। 'अस्तराग' जैसी कृतियोंसे कोई भी जान सकताहै कि मृत्यु इस देशमें ट्रेजेडी ही नहीं होती तो इसके कारण कितने गहन गम्भीर हैं।

विद्यापतिके काव्यलोकके मर्मज्ञ विद्वान् डा. महेन्द्र नाथ दुबेने इस उपन्यासका अनुवादभी बहुत रचनात्मक सावधानी और आत्मीयताके साथ कियाहै।

चट्टान नहीं पिघलती[1]

लेखक : यशपाल जैन

समीक्षक : डा. शत्रुघ्नप्रसाद

इस उपन्यासकी भूमिकामें उपन्यासकारने लिखाहै —'मुझे जो कहनाथा- वह मैंने इस उपन्यासमें कह दियाहै । × × × इस रचनामें आरम्भसे लेकर अंत तक पाठक प्रेमकी धारा प्रवाहित पायेंगे। मानव जीवन की कृतार्थता प्रेमके उदात्तीकरणमें हैं। आत्माकी भूख जब जाग जातीहै तो शरीरकी भूख स्वतः ही गौण हो जातीहै।

इससे स्पष्ट होताहै कि श्री यशपाल जैन प्रेमके अशरीरी व उदात्त रूपको दिखाना चाहतेहैं जहां शरीर की भूख गौण हो जातीहै। एक दूसरेका सान्निध्य तो अपेक्षित,अनिवार्य है और तब एक दूसरेके लिए मंगल-कामना तथा साथ-साथ दुःखी मानवताकी सेवा।

एक-दूसरेके सान्निध्यमें अनचाहा विवाह बाधक है। प्रेम और विवाहका द्वन्द्व उपस्थित होताहै। इस द्वन्द्व समाधान और सान्निध्यकी प्राप्तिका प्रयास ही इस उपन्यासका प्रतिपाद्य है। धर्म, समाज, राजनीति और बुद्धिजीवी वर्गकी समस्याए तो गौण है।

इस उपन्यासके प्रकाशनसे एक वर्ष पहले विष्णु प्रभाकरका चर्चित उपन्यास 'अर्द्धनारीश्वर' आयाथा जिसने नारीकी अस्मिता और स्वाधीन चेतनाके आधार पर स्त्री-पुरुषके सम्बन्धको स्थापित करनेका प्रयास कियाहै। अहंमुक्त पुरुष और अस्मितासे दीप्त नारीके मिलनसे ही 'अर्द्धनारीश्वर' की रचना संभव है। और इसीसे स्वस्थ समाजका रूप खड़ा हो सकताहै। अपहरण, बलात्कार, अनचाहा विवाह और विवशतापूर्ण विवाह—इन सारी स्थितियोंकी शिकार नारी होतीहै। इन स्थितियोंसे लड़नेके लिए स्त्री तत्पर हो, कोई पुरुष सहयोग दे, यही विष्णु प्रभाकरका संघर्ष है।

विष्णु प्रभाकर और यशपाल जैन—दोनोंही गांधीवादी हैं। परन्तु यशपाल जैनने नारी समस्याके वैविध्यपूर्ण विशाल धरातलको नहीं रखाहै। और न समस्याके संपूर्ण सामाजिक-नैतिक-मनोवैज्ञानिक आयामको अपनायाहै। इन्होंने प्रेमके उदात्त रूपको प्रस्तुत करनेके लिए आधुनिक दृष्टिसे प्रेम और विवाहके द्वन्द्वको प्रस्तुत कियाहै। इस दृष्टिसे यशपाल जैन वस्तुकी रचनामें अद्यतन हैं। परन्तु उदात्त प्रेम अशरीरी होताहै—इस मान्यताके रूपसे जैन दर्शन एवं गांधी दर्शनका आत्यन्तिक रूप आयाहै जो मनोवैज्ञानिक एवं नैसर्गिक प्रतीत नहीं होता।

कथावस्तुके आरम्भमें नारी जीवनकी विडम्बना सामने आ जातीहै । दोनों नारी पात्रों—सरोज और मनीषाको अनचाहे विवाहके विरोधका साहस नहीं होता। उच्च शिक्षा पात्र विनोद भी विरोध नहीं कर पाता। समाजकी प्रथा और परिवारकी परम्परासे सभी समझौता कर लेतेहैं । पर इस समझौतेसे प्रेम नहीं पाते। इनकी आत्माकी पीड़ा उभर आतीहै। अन्तःसंघर्ष शुरू हो जाताहै । पर ये संघर्षके लिए सक्रिय नहीं हो पाते। मानो, यह मात्र आन्तरिक मर्म व्यथा है।

सरोज विनोदसे प्रेम करतीहै और विनोद सरोजको

---

१. प्रका. : सस्ता साहित्य मण्डल, एन-७७ कनाट सर्कस, नयी दिल्ली-११०००१। पृष्ठ : १४६; क्र. ९३; मूल्य : २०.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदयसे चाहताहै। वह अध्ययनके लिए विदेश जाताहै। इस स्थितिमें सरोजका विवाह लंदनवासी रानीखेतके डाक्टर उमेशसे हो जाताहै। वह विरोध नहीं कर पाती। वह विवाहिता होकर पति डा. उमेशके साथ लंदन चली जातीहै। जब विनोद लौटताहै तो वह सरोजको न पाकर 'मांके दबावसे मनीषासे विवाह कर लेताहै। मनीषा भी दूसरेसे प्रेम करतीथी। वह भी विरोध नहीं कर सकी। विनोदने अनुभव कर लिया। मनीषा अपने मनसे प्रेमपात्रको निकाल नहीं सकी। वह विनोदको छोड़कर चली गयी। उसने मृत्युका आलिंगन कर लिया। अब विनोद एक लेखकके रूपमें अकेला जी रहा है। लेखकके रूपमें यशस्वी बन रहाहै। पर उसमें सरोजकी स्मृति है। मनीषाकी मृत्युका दर्द है। जीवन के अकेलेपनका दंश है। यह अथाह पीड़ा डायरीमें शब्दबद्ध हैं। लंदनसे आनेपर सरोज इस डायरीको पढ़-कर व्यथित हो जातीहै।

सरोज लंदनमें अपने पतिसे सुख-सुविधा पातीहै। पर पतिका प्रेम नहीं मिलता क्योंकि डा. उमेश मरीजों और पैसोंमें उलझा रहताहै। अतः सरोजकी आत्मा प्रेम के लिए तड़पती रहतीहै। लंदनका समृद्ध जीवन भार बन जाताहै। नौकरी भी उसके खालीपनको भर नहीं पाती। मनकी इसी स्थितिमें पति द्वारा भारत जानेकी अनुमति मिल जातीहै। और सरोज, भारतमें प्रियपात्र विनोदके पास पहुंच जातीहै, संन्यासी पिताके पास नहीं। वह उमेशकी विवाहिता है जो विनोदकी प्रेमिका रहीहै। उसका प्रेमभाव जागृत है। यह मात्र आत्मिक भाव है। सेक्सका आकर्षण नहीं है। श्री जैनने आद्यन्त इस प्रेमभावको सेक्सके वृत्तसे बाहर रखाहै, जो अस्वाभाविक लगताहै। पिताके पास न जाकर विनोद के साथ रहना एक नैतिक-सामाजिक प्रश्न उभारताहै। पर लेखकने इसे प्रश्न नहीं मानाहै। कहींसे कोई शंका नहीं उठती। आश्चर्य है!

जब प्रेम और विवाहका द्वन्द्व आरंभ होताहै। दोनों एक साथ रहकर प्रसन्न हैं, संतुष्ट हैं। यह मात्र प्रेम भावकी संतुष्टि है, संतृप्ति है। दोनों परेशान भी हैं कि कब अलग होना पड़ेगा। पर सरोज लंदन जाना नहीं चाहती। सरोजके पिता संन्यासीके रूपमें गंगोत्रीके पास रहतेहैं। मिलनेपर वे भी जीवनके उदात्त रूपपर प्रकाश डालतेहैं। पुत्रीको विनोदके सान्निध्यके संबंधमें कुछ नहीं कहते। अतः दोनों द्वन्द्वसे उबरने लगतेहैं। विनोदकी सहायतासे सरोज कालेजमें प्राध्यापिका बन जातीहै। अब भारतमें रहनेके लिए स्वावलम्बन मिल जाताहै। प्रेमभावका आलम्बन विनोद मिलही गयाहै। वह प्रेमिका बनकर साथ रहतीहै, पत्नी या रक्षिता बनकर नहीं। तन और मनका कलुष नहीं है। किसीकी उंगली भी उठ नहीं रहीहै। पर विवाह बन्धन का भार है। अतः अन्तस्के भाव और सामाजिक बन्धनके भारका द्वन्द्व है। पीड़ा है। इसे झेलना है। आश्चर्य है कि साथ रहने याने बाध्य दृष्टिसे अनैतिक जीवनपर किसीकी उंगली नही उठ रहीहै। अतः यह झेलना झेलना तो नहीं है।

विनोदके उपन्यासके अनुवादक श्री रमेशके माध्यम से डाक्टर उमेशके पास पत्र भेजा जाताहै जिससे स्थिति स्पष्ट हो सके। डाक्टर उमेशने अपने जीवनकी त्रुटिको स्वीकार किया। सरोजकी पीड़ाकी अनुभूति की : लौट आनेका अनुरोधभी किया। तात्पर्य यह है कि इस द्वन्द्व का दूसरा पक्ष पश्चिममें रहकर भी मानवीय संवेदनाको कुंठित नहीं कर पाता। एक ओर उसे प्यार देनेका समय नहीं है। दूसरी ओर वह अपनी गलती स्वीकार

भाव-चिन्तन

[विचारात्मक एवं मनोवैज्ञानिक निबन्ध]

लेखक : डा. दरवेश सिंह

हिन्दीकी निबन्धधाराके विकासकी गति और दिशा भिन्न-भिन्न समयोंमें भिन्न-भिन्न रहीहै, फिर भी उसे निरन्तर आगे बढ़ानेमें मेधावी और चिन्तनशील लोग सदा प्रयत्नशील रहेहैं। लेखक श्री दरवेश सिंहके निबन्ध इस क्षेत्रको और समृद्ध बनातेहैं। अधिकांशतः निबन्ध मनोवैज्ञानिक हैं जो सरल, सरस तथा साहित्यिक हिन्दी में लिखे गयेहैं।

इन निबन्धोंका एक आकर्षण यह भी है कि लेखक ने अपने निबंधोंमें मूल भारतीय कथन शैली अपनायी है। अभिव्यक्ति और अभिव्यंजनाके स्तरपर, प्रतीकों द्वारा बिम्ब-सृष्टि निबन्धोंका रसास्वाद करातीहै।

भाषा शैली स्वयं पुस्तक पढ़नेको निमन्त्रित करती है।

डिमा. आकार १८८ पृष्ठ मूल्य : १००.०० रु.

प्राप्ति स्थान :

कुसुम प्रकाशन
आदर्श कालोनी, मुजफ्फरनगर (उ. प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

करताहै। तीसरी ओर वह विनोदपर रुष्ट नहीं होता। जब दूसरे पत्रमें सरोजका निर्णय मुखरित होताहै कि वह भारतमें ही रहकर समाजकी देशकी सेवा करेगी, दूसरा विवाह नहीं करेगी, उमेश दूसरा विवाह कर सकताहै। इसके बाद भी पति-पुरुष क्रोधमें नहीं आता। उसका पुरुष सहर्ष इस निर्णयको मान लेताहै। वह भारत आताहै। मिलकर बता देताहैं कि वह डा. निर्मलाके साथ चिकित्सालय चला रहाहै। उमेश हृदयसे सरोजको अपने बन्धनसे मुक्त कर देताहै। ऐसा लगताहै कि लेखकने सभी पात्रोंको गांधीवादी, अहिंसक और करुणामय बनाकर प्रस्तुत कियाहै जिससे संघर्ष भीषण न हो सके। जीवन उदात्त बन सके। मानवताका पूर्ण विकास हो सके। यह असंभव तो है—एक सीमातक। पर यह भव्य एवं दिव्य लगताहै। छायावादका प्रेम-भाव भी फीका लगताहै।

उपन्यासकारने स्वाधीनताके बाद भारतके राज-नीतिक-आर्थिक जीवनके पतनको संक्षिप्त रूपमें दिखाया है। स्वाधीनताके बाद सत्ताकी भूख बढ़ीहै। गाँधीका आदर्श खण्डित हुआहै। सरोज द्वारा स्थापित नारी केन्द्र भी पद लोलुपोंके हाथमें चला जाताहै। सरोज रोक नहीं पाती। आर्थिक क्षेत्रमें काला धन बढ़ रहाहै। इसपर कैसे अंकुश लगे? स्त्रियां अंकुश लगा सकती हैं। पर जड़ धनके विवेकसे उपयोगपर विचारकर मौन हो जाना पड़ताहै। देशकी विषम स्थितियोंपर विचार करनेके लिए साहित्यकारोंकी गोष्ठी बुलायी जातीहै। दूसरे प्रयासमें गोष्ठी होतीहै। वहां केवल बहस भर हो पातीहै। स्त्रियोंपर बढते अत्याचार और बढ़ते अपराधके सम्बन्धमें विचार विमर्शके लिए पुलिस अधिकारियोंके साथ बैठना होताहै। पर पुलिस अधि-कारी अपनेको जनतासे ऊपर समझतेहैं। उसका दर्द बाधक बनताहै। विचार विमर्श सफल नहीं होपाता। यही आजका यथार्थ है। यह यथार्थ प्रसंगवश आ गया है। लेखकने निष्ठाके साथ इस यथार्थको रखाहै।

आश्चर्यका विषय है कि इतने दिनोंके यथार्थ एवं कटु अनुभवके बाद भी गांधीवादी साहित्यकार साम्प्र-दायिक उपद्रवका साहसके साथ विश्लेषण नहीं कर पाता। साहित्यकारोंकी गोष्ठी पहली बार साम्प्रदायिक दंगेके कारण स्थगित हो जातीहै। यह साम्प्रदायिक दंगा क्यों होता है? कौन दोषी है? कौन साम्प्रदायिक उग्रता तथा अलगाववादको भड़काकर देशको बांटने-तोड़ने का षड्यन्त्र करताहै? इस अलगाववादी आतंकका अन्तर्राष्ट्रीयकरण क्यों होताहै? इस भयानक सत्यपर आवरण क्यों डाला जाताहै? भय क्यों है? थोक मत का लोभ क्यों है? सन् १९४६-४७ में गांधीजी न उपद्रव रोक सके और न भारतका विभाजन। नेहरूजी कश्मीरको भी आतंकवादसे बचा न सके। अब साहित्य-कारको भय, लोभ और अतिरिक्त उदारतामें बचकर सत्यको सामने रखना चाहिये। श्री जैन सत्यको रख नहीं सकेहैं।

इस उपन्यासमें श्री जैन न प्रेमचन्दकी भांति संघर्ष-शील गांधीवादी हैं, न जैनेन्द्रके समान द्वन्द्व और आत्म-पीड़नके दर्शनवाले गांधीवादी हैं और न विष्णु प्रभाकर के समान नारी-समस्याके नग्न यथार्थसे टकरानेवाले हैं। ये तो प्रेमको आत्माका भाव समझकर प्रेममय जीवनकी खोज करतेहैं। भारतीय परिवेशमें रूढ़िबद्ध प्रथाओंसे परे जाकर अशरीरी प्रेमकी प्रतिष्ठा करतेहैं। सरोज और विनोदके जीवनमें परम्परामुक्त विवाह बन्धनसे मुक्त होनेके बाद प्रेमका प्रवाह अबाधित रूपमें फूट निकलताहै। दोनों आर्थिक दृष्टिसे स्वावलम्बी हैं। दोनों चिन्तनशील हैं। दोनों स्वामी सत्यानन्दसे उद्-बोधन पातेहैं। सरोजका प्रेमभाव तो चट्टानके समान अटल है। पर विनोदसे विवाह न करके मात्र प्रेमभाव के साथ रहना एक प्रयोग है। अशरीरी प्रेमका यह प्रयोग अद्भुत हैं। कभी यह प्रयोग वायवीय प्रतीत होताहै। कभी यह जन सामान्यकी धारणासे परे एक अपवाद मात्र। यौनाकर्षणके युगमें तनसे असम्पृक्त आत्माकी भूखके रूपमें प्रेमकी प्रतिष्ठा—एक महत्तर प्रयोग है। इस दृष्टिसे उपन्यासका अपना महत्त्व है।

प्रेम एक उच्चतम जीवनमूल्य है। इसे प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक स्त्रीको प्राप्त करनाहै। इसके लिए रूढ़ियोंसे लड़नाहै। पीड़ाको झेलनाहै। त्याग करना है। तभी इस जीवन मूल्यको प्राप्त कियाजा सकता है। समाजको भी स्वीकार करनाहै। आत्माके भावके रूपमें प्रेमकी स्वीकृति महत्तम उपलब्धि हो सकतीहै। पर कब प्रेम कामसे सर्वथा मुक्त कैसे हो सकताहै? ये प्रश्न तो कौंधते रहेंगे। वैदिक युगके यक्ष-यक्षी संवादसे लेकर आधुनिक युगमें पद्मजा नायडूके अविज्ञापित राग-भाव तक ये ही प्रश्न कामाध्यात्मके चिन्तकको परेशान करते होंगे। ▭

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्त अव्यक्त[1]

लेखिका : स्नेहलता पाठक
समीक्षिका : डा. उषा सक्सेना

युग-युगसे नारी साहित्यकारोंकी सर्जनाका केन्द्र-बिन्दु रहीहै। इतना अवश्य है कि समयानुसार उसका रूप परिवर्तित होता रहाहै। व्यक्त-अव्यक्त भी कथा लेखिकाका ऐसाही संकलन है, जिसमें नारी जीवनके विविध पक्षोंको मनोवैज्ञानिक धरातलपर प्रतिष्ठित कर नारी मनको सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओंका अंकन हुआहै। नारी स्वातंत्र्यकी ललक, अनेक वर्जनाओंसे मुक्त हो अपने ढंगसे जीवन जीनेकी चाह, अपने अस्तित्वकी प्रतिष्ठा, आर्थिक स्वतंत्रताके प्रयासके साथ संवेदना, समर्पण और आत्मोत्सर्गसे परिपूर्ण नारीके सर्वसहा रूप को भी उजागर करताहै यह संकलन। कहानियोंमें वास्तविकताका जीता जागता चित्रण इस सीमा तक हुआहै कि इनकी कथावस्तु भोगे हुए यथार्थकी-सी जान पड़तीहैं। स्वयं लेखिकाके शब्दोंमें लोग कहतेहै कि कवि और लेखक चोट खाये होतेहैं। वे ठीक कहतेहै। स्वतः लेखनी उठती ही तभी है जब व्यक्ति विवश होता है पीड़ासे आक्रोशसे। पीड़ा चाहे व्यक्तिगत हो या समष्टिगत। वास्तविक अर्थोंमें उसकी लेखनी उसका अस्त्र ही होतीहै मनकी वेदना व्यक्त करनेका, आक्रोश प्रकट करनेका"।

ये कहानियां हमारे जीवनसे चुनी-सी जान पड़तीहैं और इनके पात्र हमारे चारों ओर घूमतेहैं। उनके अन्तर्द्वन्द्व, परिस्थितियोंसे जूझनेकी क्षमता, न चाहनेपर भी आरोपित जीवन जीनेकी विवशता, घुटन और तनाव मनको छू जातेहैं। कहानियोंमें तन्मयता और अस्तित्वकी प्रतीति ऐसी है कि लेखिका पाठकोंसे एक अविच्छिन्न बंधनमें बंध जातीहै। ये कहानियां किसी नयी लहर, नयी विधा, नये स्वरूप एवं नये आयामोंसे अछूती, अप्रभावित मौलिक-सी लगतीहैं।

नौ कहानियोंके संकलनकी प्रथम कहानी है 'सुरभि।' परिस्थितियों और नियतिसे पराजित थकी हारी सुरभिके जीवनमें अनायास ही आताहै समीर और एक अज्ञात आकर्षण सुरभिके मनमें जन्म ले लेताहै। उसकी कल्पनाको पंख लग जातेहैं, मन उन्मुक्त उड़ान भरताहै, प्रणयाकाशमें विचरण करताहै मन पखेरु, किन्तु सहसा पंख टूट जातेहै और वह ऊंचे आकाशसे गिरता है धरतीपर। पंख टूट जातेहैं। एक भयावह अन्त! सुरभि बिल्कुल टूट जातीहै। 'पर नहीं वह यूं नहीं रह सकती, जी नहीं सकती तो मर तो सकतीहै और सुरभि सो जातीहै चिर निद्रामें।

नारी मनके अन्तर्द्वन्द्व विवशताओं और कुण्ठासे छटपटाते मनका सहज स्वाभाविक और मर्मस्पर्शी चित्रण लेखिकाने कियाहै।

अपनी भावनाओंपर नियंत्रण रख, अपनी सीमाओं को समझते हुए, अपने दायरेमें ही सिमटकर रहना नारी की मर्यादा है। इसी सत्यको उजागर करतीहै कहानी 'दायरे'। सीमा असीमके प्रति अनुराग और दुर्बलताका अनुभव करते हुएभी उसके जीवनसे दूर चली जातीहै क्योंकि वह उसकी सहचरी रेखाका पति है। उसका एक संसार है भलेही उसमें पतिकी भूमिका मात्र औपचारिक ही क्यों न हो। 'उसने सोचा कि इससे पहले कि संबंधोंके दायरे सिमट जायें, उसे दूर चला जाना चाहिये जिससे कहीं कोई भ्रम न बने, न ही कोई भ्रम टूटे।

'निलय' पुरुषके प्रणयी मनकी घुटन, टूटन और निराशाको अनावृत करतीहै। यौवनके प्रारम्भमें प्रेयसी के साथ एक सुखद संसार रचा बसा लेनेका उन्माद पल

---

१. प्रका. : सुबोध पाठक, १/३०९ विकास नगर, लखनऊ। मूल्य : ५०.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भरमें बिखर जाताहै, प्रेयसीका आकस्मिक एक दुर्घटनामें निधन हो जाताहै। सपने ढह जातेहैं, कल्पनाएं विश्रृंखलित हो जातीहैं और रह जातीहैं केवल अतीत की मादक मधुर स्मृतियां। रह-रहकर याद आताहै जब साहचर्यके सुखद क्षणोंमें एक स्मारकको देखकर रश्मिने कहाथा—'कितना सुन्दर नाम रखाहै' 'निलय' अर्थात् घर। कहां बन पाया बेचारोंका घर। उनका स्वप्न ही अधूरा रह गया।' रश्मिने तब कल्पना भी न की होगी कि उसका स्वप्न भी अधूरा रह जायेगा। उसका प्रणयी अविराम व्यथा झेलता अभिशप्त जीवन व्यतीत करताहै। एक पलके लिए भी रश्मिको विस्मृत नहीं कर पाता।

'यथार्थ' वैवाहिक जीवन, पति-पत्नीके टूटते सम्बन्धों और एक परित्यक्ताका वास्तविक चित्र है। पतिका धनलोलुप होना, पत्नीके मायकेवालोंसे निरन्तर धनका दुराग्रह, पत्नी और बच्चोंके साथ दुर्व्यवहार ही पत्नीको गृहत्यागके लिए विवश करता है। बच्चोंके भविष्यके लिए कैरियरको अपनाना ही नारीकी विवशता बन जातीहै। नकली मुखौटा लगाकर जीना पड़ताहै। पीड़ा और आत्मोसर्ग तो नारीको उपहारमें ही मिलतेहैं अतः समझौता तो करना ही पड़ता है "यह जिन्दगी वास्तविकताकी है फिल्मकी नहीं। यूं ही गुजारनीहै—"

जीवनके कटु सत्यको उजागर करतीहै कहानी 'वापसी'। कर्मठ, कार्यशील और योग्यतम, प्रेयसी अपने प्रणयीसे उच्चस्तरीय पद प्राप्त करनेपर भी रंचमात्र नहीं बदलती उसके निश्छल स्नेह और समर्पणमें कमी नहीं आती। नायिका जब पदोन्नति प्राप्त कर अथक प्रयासके उपरान्त अपने प्रणयीके पास लौटतीहै तो हतप्रभ रह जातीहै क्योंकि वह उसकी प्रतीक्षा न कर आत्महीनताकी यातनासे ग्रस्त हो अन्यत्र विवाह कर लेताहै—कांचकी किरचोंकी भांति भावनाएं बिखर जातीहै और विवश हो जीना पड़ताहै आरोपित जीवन।

पुरुषके स्वार्थ और नारीके मानसिक तनावकी कहानी है 'अंततः'। शमीम शफीके प्रेम और सान्निध्य की मधुरतम स्मृतियोंको अन्तर्मनमें संजोये जीवनके लगभग बीस वर्ष बिता देतीहै। प्रणयकी मधुर स्मृतियां ही जीवन यात्राका सम्बल बन जातीहै क्योंकि पिताकी असहमतिसे दोनों विवाहके बंधनमें नहीं बंध सकेथे। वर्षोंके उपरांत जब दोनोंकी भेंट होतीहै तो शमीमके हृदयपर वज्रपात होताहै। शफी अपनी पत्नी और बच्चोंके साथ अत्यन्त संतुष्ट था, 'उनकी किसी बातसे मुझे ऐसा नहीं लगा कि उनके जीवनमें मेरे लिए कोई स्थान था। मैं कुछ थी ही नहीं ज्योति, तुम सोच नहीं सकती कि मुझे कितना दुःख हुआ होगा।' कुछ समयके बाद शमीम प्रोफेसर सुहेलसे विवाह कर लेतीहै किंतु सुप्त कोमल भावनाओं और बढ़ती वयसकी प्रतिक्रिया स्वरूप दोनों एक दूसरेके पूरक नहीं बन पाते। अन्ततः प्रारम्भिक प्रणयकी परिणति होतीहै तलाकसे, फिरभी जीवन तो जीना ही पड़ताहै।

बहुत कुछ पानेकी चाह मनुष्यको दिग्भ्रमित कर देतीहै। सुख और तृप्ति पानेके प्रयासमें अप्राप्यकी ही पुनरावृत्ति होतीहै। 'पुनरावृत्ति' में इसी प्रत्ययका उद्घाटन हुआहै। मानसिक शान्ति, काल्पनिक उच्च स्तरीय सुख और पत्नीमें देवीकी तलाशमें पति अपनी समर्पिता पत्नीको त्याग दूसरी स्त्रीको अपना लेताहै और उसमें अपने स्वप्नोंको साकार करना चाहताहै किन्तु प्रतिदानमें पाताहै उपेक्षा अवहेलना और तिरस्कार। उसे रह रहकर स्मरण हो आतीहैं प्रथम पत्नी शोभाकी पंक्तियां 'राहुल फिर सोच लो! अभी तुम्हें शैला सर्वगुण सम्पन्न लग रहीहै क्योंकि वह तुम पर अपना अधिकार नहीं समझती, पर तब जब तुम उसे मेरा स्थान दे दोगे तो सिर्फ एक पुनरावृत्ति मात्र होगी जीवनकी।

'सुखका आधार' बच्चोंके लिए शिक्षाप्रद कहानी है। आर्थिक सम्पन्नतामें पला रिंकू अध्ययनके प्रति उदासीन है। फलतः परीक्षामें न्यूनतम अंक प्राप्त करता हैं। मांसे प्रेरणा पाकर, पश्चातापकी अग्निमें तपकर एक बार पुनः कुंदन-सा दमक उठताहै 'उसे अपनी मम्मी पर बहुत श्रद्धा हुई। उसे लगा परिश्रम ही सच्चे सुख का आधार है।'

'कावेरी' अतीतकी लोकप्रसिद्ध अभिशप्त प्रणय कथाओंकी पुनरावृत्ति है। युग, परिवेश, संदर्भ सभी बदल जातेहैं किन्तु नहीं बदलती तो मानव मनकी रागानुरागभरी कोमलतम भावनाएं। कावेरी और विनय बाल्यकालसे ही प्रगाढ़ स्नेह सूत्रमें आबद्ध थे किन्तु परिस्थितिवश कावेरीका विवाह अन्यत्र हो जाताहै। पतिका असीमित प्रेम भी कावेरीका मन नहीं जीत पाता और विनय तो बिल्कुल ही टूट जाताहै। अहर्निशि बिछोह, पीड़ा, व्याकुलताकी जलनसे विक्षुब्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

विनय आत्महत्या कर लेताहैं और कावेरी ? वह भी जी नहीं पाती 'विनयकी Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri नकार नहीं सकी। जो काम जिन्दगी नहीं कर सकी उसे कावेरीकी मौतने पूरा कर दियाथा।' अन्तर्मनकी गहराइयोंको छू लेनेवाली कहानी है 'कावेरी।'

संपूर्ण संग्रहमें नारी मनकी आकुलता और अन्तर्द्वन्द्वका सहज एवं स्वाभाविक चित्रण हुआहै। कथावस्तु अभिजात वर्गसे संबद्ध है उसीके अनुकूल शब्दावलीका प्रयोग है। भाषा, संवाद पात्रों ओर परिवेशके अनुकूल हैं। कनवासपर बहुरंगी ! भावनाओंसे बनाये गये चित्र मनपर अपनी छाप छोड़ जातेहैं। नारी मनकी भावनाओंको व्यक्त करनेवाली इस कृतिका साहित्य जगत्में स्वागत होगा ऐसी आशा है। ▭

इन हालातमें[1]

कहानीकार : राकेश वत्स

समीक्षक : डा. विपिनबिहारी ठाकुर

दस कहानियोंके प्रस्तुत संकलनमें कथ्य और अनुभूतिकी विविधताओंके दर्शन होतेहैं। प्रायः सभी कहानियोंमें मानवीय अनुभूतियों एवं संवेदनाओंकी गहराई उभरकर प्रकट हुईहैं। 'रिहाई', 'इन हालातमें', 'नौकरी', 'चरवाहा' और 'यात्रा' शीर्षक कहानियोंमें मानवीय चेतनाकी सघनता मिलतीहै।

'रिहाई' इस संकलनकी पहली कहानी है जिसमें कथानायक वीरेन्द्र जैनके जीवनके कारुणिक अन्तका मार्मिक चित्र उभरकर आयाहै। वीरेन्द्र जैन अपनी कम्पनीके पार्टनर श्यामलालके शिकंजेसे टाइपिस्ट अनुराधाको बचानेके क्रममें इतना उत्तेजित और असंतुलित हो जाताहै कि उसके घातक प्रहारसे श्यामलालकी मृत्यु हो जातीहै। वस्तुतः उसकी उत्तेजनाके पीछे उसकी वह मनोदशा थी जिसमें उसने श्यामलालके चंगुलसे अपने शीलकी रक्षाके लिए छटपटाती हुई अनुराधाके रूपमें अपनी युवा पुत्री अनुकम्पाकी कल्पना कर ली थी। कानूनी लड़ाई लड़कर वह अपनेको फांसीके फन्दे से बचा तो लेताहै लेकिन रिहाईके उपरान्त परिवारके सदस्यों द्वारा अपमानसे वह इतना क्षुब्ध और [illegible] हो जाताहै उसे अपने जीवित रहनेकी कोई अर्थवत्ता नहीं प्रतीत होती। 'पलभर बाद ही उसे लगा कि सिर्फ पत्नी और बेटियां ही नहीं बल्कि पूरा संसार ही उससे मुंह चुराकर भाग रहाहै।··· विचित्र प्रतीतिके साथ उसने अनुभव किया कि उसके अंदर कोई घायल परिंदा है जो दर्दभरी आवाजमें कुरला रहाहै और पिंजरेसे बाहर आनेके लिए पिंजरेकी सलाखोंके साथ सिर पटक रहाहै।' (पृ. सं.—१४)। अपमान-बोधकी तीव्रता उसे इतना दग्ध कर देतीहै कि वह अपने कमरेमें फांसी लगाकर आत्महत्या कर लेता है। वीरेन्द्र जैनका यह आत्मघात निश्चयही कारुणिक प्रभाव छोड़ताहै।

'इन हालातमें' संकलनकी एक दूसरी अपेक्षाकृत श्रेष्ठ और सशक्त कहानी है जिसमें मानवीय निष्ठा और सामाजिक सौमनस्यके बोधको उभारा गयाहै। इस कहानीमें पंजाबके एक विशिष्ट नगरकी पृष्ठभूमिमें एक ऐसे शिक्षकका वर्णन किया गयाहैं जो आतंकवादियोंके उत्पातके कारण एक क्षेत्र विशेषमें स्कूटरसे जानेमें डरताहै, परन्तु बादमें उस यात्रामें उसे सिक्ख युवकों द्वारा ही सहायता पहुंचायी जातीहै और वह उनके प्रति कृतज्ञताके भावसे भर जाताहै। वस्तुतः अविश्वास और अशान्तिके वातावरणमें विश्वास, आस्था और मानवीय प्रेमका संदेश देना ही इस कहानीका मूल लक्ष्य है। 'नौकरी' भी इसी कोटिकी कहानी है जिसमें युवा पुत्री आभाके नौकरीपर दूसरे शहरमें चले जानेपर उसके माता-पिता और बहन सभी बाहरके जीवनमें प्रतिदिनके उपद्रवोंके कारण आतंकित हैं और इसी मनोदशामें वे यह भी सोच लेतेहैं कि अपनी सुरक्षाके निमित्त उसे नौकरीसे त्यागपत्र दे देना चाहिये। किन्तु स्थिति इसके विपरीत होतीहै, क्योंकि आभा दो-चार दिनोंकी छुट्टी लेकर घर आतीहै और यह बतातीहै कि नौकरी करनेमें उसे कोई परेशानी अथवा खतरा नहीं हैं। कहानीका अंतिम प्रभाव मानवीय आस्था, विश्वास और प्रेमपर बल देताहै।

'चरवाहा' कहानीमें अब्दुल की यह मानवीय संवेदना बहुत तीव्रताके साथ उभरकर प्रकट हुईहै। अब्दुल अपने मालिकके यहां रहकर भेड़ों और बकरियोंको पालताहैं और फिर उसका मालिक इन जानवरोंके ठेकेदारके हाथ बेच देताहै। ठेकेदार ग्राहकोंकी इच्छानुसार

१. प्रका. : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १२९; क्रा. ९२; मूल्य : ४०.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन जानवरोंको बुचड़ीमें कटवा देताहै। अब्दुल नित्य-प्रति अपने प्यारे जानवरोंको बुचड़ीमें कटते देखकर भी यही माना करताहै कि वह उन्हें अल्लाह तालाके लिए कुर्बान किया करताहै। वह 'लेले' नामक भेड़को बिल्कुल अपने बच्चे जैसा प्यार करताहै, इसका एक कारण यह भी हो सकताहै कि वह स्वयं नि सन्तान है। ऐसीही परिस्थितिमें एक दिन ठेकेदार लेलेको भी बेचना चाहता है, परन्तु इतनी छोटी उम्रके प्यारे लेलेको छुरीके नीचे लाना उसे हराम जैसा लगताहै। इसलिए वह उसे रामलाल नामक कसाईके हाथोंमें जानेसे बचानेके लिए उसे चुराकर दूर निकल जाताहै। निश्चय ही लेले नामक भेड़को चुरानेका उसका यह कार्य अपने मालिक के प्रति विश्वासघात तो है, किन्तु इस क्रियाका एक दूसरा पहलू उसके मानवीय दृष्टिकोणसे भी जुड़ा हुआ है। लेलेकी चोरीके जुर्ममें वह पकड़कर थाने लाया जाताहै जहां उसे यातना भी दी जातीहै पर इस स्थिति में भी लेलेके प्रति उसके मनकी ममता कम नहीं होती। थानेपर लेलेकी लाचारी उसे द्रवित कर देतीहै। "पर सूरज डूबनेसे पहले ही वह थानेके अहातेकी ठंडी जमीन पर बैठा बार-बार अपना सिर खुजला रहाथा। उसका लेले मालिकके हाथकी रस्सीमें बंधा लंबी-लंबी सांसें खींच रहाथा। जाहिर था कि वह भूख और प्यास दोनों से व्याकुल है।" (पृ. सं.—१०६)। निश्चय ही यह कहानी जीव दया, करुणा और मानवीय प्रेमके तत्त्वोंसे युक्त होनेके कारण पाठकोंकी संवेदनाको बहुत उदीप्त करतीहै।

आलोच्य कृतिकी कुछ प्रभावोत्पादक कहानियां ऐसीभी हैं जो वर्तमान युग-जीवनमें व्याप्त दुर्बलताओं और विकृतियोंको खोलकर रख देतीहै। 'अवशेष', 'बिरजू तो मारा ही जायेगा' और 'लूटेरे' शीर्षक कहानियां इसी कोटिकीहैं। 'अवशेष' में उच्चवर्गीय पात्रोंकी विलासिता, अनैतिकता और पाशविकता जैसी कमजोरियां उभरकर प्रकट हुईहैं। फारेस्टके बीचमें पुराने डाकबंगलेमें दत्ता, रावत, शर्मा, चावला जैसे धनाढ्य लोग रातमें शराब पीनेके लिए जितनी असंतुलित आतुरताका परिचय देतेहैं उससे यह साफ पता चल जाताहै कि ये लोग देशकी हालतकी ओरसे आंखें बन्द करके विलासिताका जीवन जी रहेहैं। इस कहानीका चरम उत्कर्ष तो तब देखनेको मिलताहै जब इनके लिए शराबकी बोतलें लानेवाली जीपके नदीमें गिर जानेकी खबर लेकर जो आदिवासी युवती उनके पास आतीहै, ये उसके साथ भी बलात्कार करनेका प्रयास करतेहैं। डाकबंगलाके नौकर-चाकर जिस प्रकार रामदीनके नेतृत्वमें आदिवासी युवतीको मुक्त करातेहै उससे अन्यायका प्रतिकार करनेवाली इनकी साहसिकता और संगठन शक्तिका पता चलताहै। वस्तुतः यह कहानी धनाढ्य लोगोंकी आचरणगत कुत्साओंपर गहरी चोट करतीहैं। 'बिरजू तो मारा ही जायेगा' में भी यही दिखाया गयाहै कि रामपुर नामक गांवमें मोहनकी इकलौती बहन संध्याके साथ बिरजू नामक ठेकेदारने न केवल बलात्कार किया, बल्कि अपनी हवस मिटानेके बाद उसकी हत्या भी करदी और अपने मामा इंस्पेक्टर जादवके प्रभावसे कानूनके बन्धनसे निकल भी गया। यह कहानीभी समाजमें कमजोर लोगोंपर होनेवाले अनाचारकी भयावहताका ही चित्रण करतीहै। 'लुटेरे' में मुरमेख नामक आतंकवादी हत्या और लूटके आरोपसे पुलिसके द्वारा पकड़ा तो जाताहै, लेकिन अपने भाईकी दौलत और पैरवीके प्रभावसे पुलिसके चंगुलसे छुटकारा पा लेताहै। इस कहानीका मन्तव्य उस सामाजिक व्यवस्थापर आघात करनाहै जिसमें रुपए और पैरवीके बलपर अपराधी भी कानूनके शिकंजेसे मुक्त हो जातेहैं।

'सावित्री' और 'चन्द्रपाल' कहानियां क्रमशः नारी-व्यक्तित्वकी अर्थवत्ता और साहित्यिक रचनाधर्मिताके महत्त्वको रेखांकित करतीहैं। 'सावित्री' शीर्षक कहानी में निम्नवर्गीय स्त्री सावित्री अपने मालिकके परिवारमें नौकरी करते हुए भी अपने व्यक्तित्वकी स्वतंत्र पहचान बनानेके लिए जागरूक और क्रियाशील है। कहानीके अन्तिम अंशोंमें यह स्पष्ट हो जाताहै कि वह अपने जीवनके स्वाभाविक विकासके लिए पतिसे तलाक लेना चाहतीहै और अपने मालिकके यहाँसे अपने शारीरिक श्रमके मूल्यके रूपमें तीन हजार रुपए लेकर अपनी विकलांग बेटीके पैरोंका आपरेशन करवाना चाहतीहै। उसकी इन दोनों ही आकांक्षाओंसे यह स्पष्टतः परिलक्षित होताहै कि वह अपने नारी-जीवनकी अर्थवत्ता की उपलब्धताके लिए आतुर है। 'चन्द्रपाल' कहानीमें जहां एक ओर हिन्दी और पंजाबीके साहित्यकार चन्द्रपालके व्यक्तित्वकी सादगी, शारीरिक श्रमके प्रति लगाव, शासनके माध्यमसे प्राप्त होनेवाली सुविधाओंके प्रति विकर्षण और प्राणी मात्रके लिए सहानुभूति और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करुणा आदि महत्वपूर्ण विशिष्टताओंको उभारकर एक स्वाभिमानी एवं तेजस्वी साहित्यिक व्यक्तित्वका चित्र खींचा गयाहै, वहीं दूसरी ओर साहित्यिक जगत्में व्याप्त दुर्बलताओं, विकृतियों और क्षुद्रताओंको भी उजागर कियाहै। कहानीकारने इस रचनामें साहित्यकारोंकी आदर्शवादिताको ही केन्द्रीय रूपमें उभारनेका प्रयास कियाहै। 'यात्रा' इस संकलनकी अन्तिम कहानी हैं जिसमें व्यंग्यात्मक शैलीमें यह चित्रित किया गयाहै कि एक दफ्तरका किरानी स्कूटरसे दफ्तर तक की यात्राके क्रममें युगीन परिवेशकी खामियों और कमजोरियोंको लेकर अपने अन्तर्मनमें बहुत ही अतृप्त और कमजोरियोंको लेकर अपने अन्तर्मनमें बहुत ही अतृप्त और क्षुब्ध है किन्तु यह पहलू उसके व्यक्तित्वकी सही पहचान नहीं देपाता क्योंकि अपने दफ्तरमें आकर यह व्यक्तित्व स्वयं ही घूसखोरीमें लिप्त हो जाताहै। इस प्रकार यह कहानी भी व्यक्तित्वके दोहरेपनपर ही चोट करतीहै।

प्रस्तुत संकलनकी कहानियां शिल्पकी दृष्टिसे भी सशक्त और प्रभावोत्पादक प्रतीत होतीहैं। कहानीकार ने प्रसंगके अनुरूप अलग-अलग ढंगके भाषिक रूपोंका प्रयोग कियाहै। उसने जहां एक ओर वातावरणके सूक्ष्म चित्रणपर बल दियाहैं वहीं दूसरी ओर पात्रोंकी मनोभावनाओंके अंकनके क्रममें भी बहुतही संकेतात्मक और प्रतीकात्मक ढंगकी भाषाका प्रयोग कियाहै। 'रिहाई' शीर्षक कहानीकी निम्नोद्धृत पंक्तियोंमें वीरेन्द्र जैनके पारिवारिक सदस्योंकी निम्नस्तरीय जीवन-स्थिति का बड़ा ही चुभता हुआ वर्णन उपलब्ध होताहै :

"शहरके भरे-पूरे बाजारोंसे निकलकर जब वह अपनी शानदार कोठीकी बजाय शहरके उपेक्षित हिस्से में लिये गये एक कमरेके गंदे से मकानपर पहुंचा तो उसका सारा उत्साह काफूर हो गया। परिवारके सभी सदस्योंके फटे-पुराने कपड़े, मुरझाये हुए चेहरे, सूखे बाल, नंगे पैरोंपर जमी हुई मैलकी पपड़ियां देखकर उसे लगा जैसे वह भूलसे किसी भिखमंगोंकी बस्तीमें पहुंच गयाहै। उसे देखतेही बेटियोंके होंठोंपर जो मुस्कान दिखायी दी उसमें भी उसे भूख और विवशता झांकती नजर आयी।" (पृ. सं.... ८-९.)।

'बिरजू तो मारा ही जायेगा' की निम्नलिखित पंक्तियोंमें पात्रकी मनोवैज्ञानिकताको विश्लेषित करने की भाषिक शक्ति समाहित मिलतीहै :

"पलभरमें ही सीमा उसके सामने टी. वी. के रंगीन स्क्रीनकी तरह दमक उठा। पूरे स्क्रीनपर एक चेहरा उभरा, जानसे भी प्यारी इकलौती बहन संध्या का चेहरा, मरणासन्न औरतका चेहरा, टूटती हुई सांसों में एक काले नागका रहस्य खोलता हुआ चेहरा, जिस नाग ने उसके साथ जंगली सूअर जैसा व्यवहार किया था और अपनी हवस मिटाकर बहनकी देहको तेज धार वाले चाकूसे गोदकर फरार हो गयाथा।" (पृ. सं.... ३०)।

कथाकारने सम्भाषणके क्रममें छोटे-छोटे किन्तु चुभते हुए वाक्योंका प्रयोग कियाहै। इस सन्दर्भमें निम्नलिखित पंक्तियां द्रष्टव्य हो सकतीहैं—

"क्षमा करें पूज्यवर, अगर आप जैसे लोगही साहित्य और कलाके कामोंमें दिलचस्पी नहीं दिखायेंगे तो हमारे जैसे नादान लोगोंका मार्ग प्रशस्त कैसे होगा?"

"आप जैसे लोगोंका मार्ग प्रशस्त नहीं हो सकता?"

"ऐसा क्यों कह रहे हैं आप?"

"मार्ग प्रशस्त तो उन लोगोंका होताहै, जिनके पास कोई मार्ग हो। इन वातानुकूलित कोठियोंमें पहुंचकर तो मार्ग बंद होतेहैं, प्रशस्त नहीं।" (पृ. सं. —५७.)।

वस्तुतः 'इन हालातमें' की कहानियां राकेश वत्स के कथा लेखनके विकसित रूपका बोध करानेमें समर्थ मानी जा सकतीहैं। इन कहानियोंकी एक विशेषता यह भी मानी जा सकतीहै कि इनके माध्यमसे समकालीन हिन्दी कहानीके निखरते रूपका परिचय मिल जाताहै। यह आशा की जा सकतीहै कि यह कृति पाठकोंके बीच लोकप्रियता प्राप्त करनेमें समर्थ सिद्ध होगी। ☐

बिना चेहरेका पेट[1]

कहानीकार : सूर्यकान्त नागर
समीक्षक : डा. उत्तमभाई पटेल

यह कथाकारका तीसरा कहानी-संग्रह है। इसके पूर्व इनके 'गलत होते संदर्भ' और 'सूखते पोखरकी

---

१. प्रका. : दिशा प्रकाशन, १३८/१६ त्रिनगर दिल्ली-३५। पृष्ठ : ११९; मूल्य : ३५.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मछली और दरिन्दे' कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। प्रस्तुत संग्रहमें तेरह कहानियां है। संग्रहकी पहली कहानी 'तबादला' में कहानीकारने यह बतायाहै कि आजके युगमें ईमानदार, निष्ठावान् व्यक्तियोंका कोई मूल्य नहीं है। 'देश बचाओ' में हाथोंमें झंडा लहराते हुए, देशको मजबूत बनाने और उसका भविष्य सुधारने का नारा लगानेवाले किस प्रकार वर्तमानको ही घायल कर रहेहैं, चित्रित किया गयाहै। 'शरीफ आदमी' भी इसी प्रकारकी कहानी हैं। जिसमें छात्रावास चलानेवाले ठाकुर साहबकी खूंखारताका चित्रण करके देश-सेवकों की वास्तविक पहचान करायी गयीहै। 'देश बचाओ' और 'शरीफ आदमी' में लेखकके आक्रोश व विद्रोहकी सुन्दर अभिव्यक्ति हुईहै।

जो व्यक्ति जीवनसे ऊब चुकाहै, जो मरनेकी कामना करताहैं, वही व्यक्ति जब मृत्युको सामने देखता है तो कैसे उसकी जिजीविषा फिरसे जागृत हो उठतीहै, यह 'एक सच यहभी' में प्रस्तुत हुआहै। तो 'बिना चेहरे का पेट' में मध्यवर्गीय लड़की सुजाताकी बेबसी व मजबूरीका चित्रांकन हुआहै। जो थोड़े-से पैसे पाकर कैसे किसीको प्यार, आभार और कृतज्ञताकी नजरसे देखने लग जातीहै और किसीके स्पर्शका मौन उत्तर दे देतीहै। किन्तु बादमें वह ग्लानि महसूस करतीहै क्योंकि वह अपनीही दृष्टिमें गिरती जा रहीहै। तभी उसे लगताहै 'वह मात्र धड़ है, जिसके ऊपर कोई चेहरा नहीं हैं।' (पृ. ४६)।

'सपने' और 'महानताके मापदंड' अभिजात-वर्गके परिवेशसे जुड़ीहै। 'सपने' में नौकरानी नंदाके माध्यमसे निम्नवर्गके लोगोंके टूटते सपने समेटे गयेहैं। जो उच्च-वर्गके लोगोंके घरमें रहकर स्वभावतः अपने आपको भी अभिजात्य समझने लगतीहै। 'महानताके मापदंड' में हीराभाईके चरित्र द्वारा कहानीकारने यह बतायाहै कि अपने आपको उच्चवर्गके, पढ़े-लिखे वर्गके मानने मात्रसे वे महान् नहीं हो जाते। उनमें मानवता लेशमात्र भी नहीं होती क्योंकि 'ये लोग दर्जीके फीतेसे महानता नापनेमें विश्वास रखतेहैं।' (पृ. ७४)। मानवता और महानता तो हीराभाई जैसे लोगोंमें है, जो कम पढ़ा है, अफसर नहीं है, किन्तु मानव तो है।

'अफसर-जात', 'शून्य होती संवेदना' तथा 'दो आंखोंका सच' कहानियां अफसर-वर्गके वास्तविक चेहरों को सामने लातीहैं। 'अफसर-जात' में उच्च अधिकारियों द्वारा सामान्य नौकरीपेशा लोगोंका किस प्रकार शोषण किया जाताहै, बताया गयाहै। तो 'शून्य होती संवेदना' अफसरोंके झूठे वादे, नकली चेहरे और संवेदनहीनताको अभिव्यक्त करतीहै। 'दो आंखोंका सच' में अफसर-वर्ग की ज्यादतियोंका चित्रण है। मि. शर्मा, मि. कपूर जैसे भ्रष्ट अफसरसे मजबूर होकर पलायनवादी बननेकी कोशिश करताहै किन्तु डा. वर्मनसे प्रेरणा पाकर वह जुझारू व्यक्तिकी भांति बुराईसे टकरानेके लिए खड़ा होताहै।

'ध्वनियोंमें हांफता मन', 'आदमीयत' और 'कोई क्या कहे' पारिवारिक समस्याओंपर आधारित कहानियां हैं। 'ध्वनियोंमें हांफता मन' में यह बताया गयाहै कि नारी अब पुरुषके सहारेको नकारती हुई, अपने पैरों पर खड़ी होकर गौरवसे जीना चाहतीहै। आजकी नारी किसीकी दया-करुणापर जीकर आहत होना नहीं चाहती। वह तनसे टूटीहै, मनसे नहीं। मनसे अटूट नारीकी संभावनाओंको यह कहानी खोजतीहै। 'आदमीयत' में एक गरीब आदमी रामसनेहाकी इन्सानियतका, वात्सल्य-भावनाका सुन्दर परिचय दिया गयाहै तो 'कोई क्या कहे' में संयुक्त-परिवारकी समस्याकी बच्चोंके माध्यमसे सुलझाया गयाहै।

प्रस्तुत संग्रहकी कहानियोंको 'जीवन-मूल्योंके प्रति आस्थाकी कहानियां कहा गयाहै। इससे स्पष्ट है कि लेखकने इस दृष्टिकोणको ध्यानमें रखकर कहानियोंकी रचना कीहै। 'तबादला', 'देश बचाओ', 'महानताके मापदंड', 'शून्य होती संवेदना' तथा 'आदमीयत' इसी प्रकारकी कहानियां हैं। संग्रहकी अधिकतर कहानियां मध्यमवर्गीय जीवनके सत्योंको उजागर करतीहै। 'सपने' और 'महानताके मापदंड' में अभिजात्य-वर्गके चित्रण द्वारा लेखकका मूल उद्देश्य तो मध्यम-वर्गको प्रस्तुत करना ही रहाहै। जो कहानियां अफसर-वर्गपर आधारित है उनमें भी लक्ष्य मध्य-वर्ग ही है।

'देश बचाओ', 'एक सच यह भी', 'अफसर-जात', 'महानताके मापदंड', 'ध्वनियोंमें हांफता मन' तथा 'कोई क्या कहे' कहानियां आत्मकथनात्मक शैलीमें लिखी गयी हैं। अधिकतर कहानियोंके अंत आदर्शोन्मुख हैं। 'तबादला' कहानीका अंत विरोधाभासी प्रतीत होताहै, जबकि 'एक सच यह भी' एक कमजोर कहानी है। 'बिना चेहरेका पेट' की सुजाता, 'महानताके मापदंड' का हीराभाई तथा 'आदमीयत' क रामसनेहाके चरित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

जीवंत व स्वाभाविक बन पड़ेहैं। कहानीकारने पात्रोंके आदर्श व यथार्थके संघर्षका अच्छा चित्रण कियाहैं।

संक्षेपमें, नागरजीका यह कहानी-संग्रह मध्य-वर्गीय जीवनकी समस्याओं, सपनों व द्विधाओंको अभिव्यक्त करता है। ▭

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्य

कोई दूसरा नहीं[१]

कवि : कुंवर नारायण

समीक्षक : शलभ

कुंवर नारायणकी कविताएं कोई वक्तव्य नहीं है, वस्तुतः वे हमारे जीवन्त जीवन-यथार्थकी गवाह हैं, और जिनका पूरा मतलब है—सचाई, जिनकी पूरी कोशिश है—वेहतर इन्सान। ग. मा. मुक्तिवोधकी भी कभी यही चाहत थी कि 'जैसी दुनियां है/उससे वेहतर चाहिये।' वेहतर इन्सानियतके लिए, कविताकी भाषा में दिया गया वयान सचाई नहीं तो और क्या है? कविता 'सत्यम्' का रूपाकार होतीहै। अतः वह हमेशा इन्सानियतकी जवान वोलती रहे, इस कविकी भी यही कामना है। उसका यह कथन कि 'उसे (कविता को) कोई हड़बड़ी नहीं कि वह इश्तिहारोंकी तरह चिपके/जुलूसोंकी तरह निकले/नारोंकी तरह लगे/और चुनावोंकी तरह जीते'। हमें कविताकी इसलिए जरूरत हैं कि 'बहुत कुछ दे सकतीहै कविता/क्योंकि बहुत कुछ हो सकतीहै कविता/जिन्दगीमें/अगर हम जगह दें उसे/जैसे फूलोंको जगह देतेहै पेड़/जैसे तारोंको जगह देतीहै रात/'—वैसे भी हर कलाका सृजन वेहतर दुनियांकी संरचनाके लिए होताहै, उसे पूर्णतर वनानेके लिए होताहै।

कविका उपर्युक्त काव्यात्मक बयान, चाहे वह वक्तव्य न भी हो, इसी सचकी गवाही देताहै। कविता जीवनके लिए फूलों और सितारोंकी भांति ही अपरिहार्य सचाई है। यदि कोई चाहेभी तो इस सचाई को मिटा नहीं सकता। हालांकि भी यह भी यथार्थ है जो 'उसके पश्चात्' रचना उसकी यह गवाही भी देती है कि रचनाकारका 'कृतित्व, अमरत्व, मनुष्यत्व, अर्थवान् सान्त्वनीय'—'जो हो न सके एक देहका अवसान'। या फिर अन्ततः

किसी पुस्तककी पीठपर
एक विवर्ण मुखाकृति
विज्ञापित
एक अविश्वसनीय मुस्कान··!

—जैसी करुण-कोमल अनुभूतिका शेष रहा अवसाद? पर यह कवि जीवनसे जुड़ना और उसे झकझोरना चाहताहै, उसके काल्पनिक अक्षपर, ठीक उसी स्थानपर जहां वह कविता द्वारा सबसे अधिक वेध्य हो; यांत्रिकताकी अपेक्षा वह प्रगति बिन्दुः मनुष्यताकी ओर अधिक सरका हुआहो। यही नहीं, उसकी जीवेषणा जीवनको बदलनेके लिए प्रतिबद्ध है। 'अबकी अगर लौटा तो'—में उसके पूर्णतर हो लौटनेकी आकांक्षा—इस पीड़ित और आहत मनुष्यताके लिए कृतज्ञतर लौटनेमें है। उसे लगताहै कि 'यह यात्रा एक अवसर' और 'घर एक एक संभावना' है और—'ट्रेन बदलना/विचार बदलनेकी तरह हो/और हम जब जहां जिनके वीच हों/वही हो घर पहुंचना!' मनुष्यके प्रति ऐसी है यह गहरी आस्था। ईश्वरत्वका विश्वासी है यह

१. प्रका. : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १६०; मूल्य : ७५.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अन्तर्मन । 'जब बाहें फैलाई' जैसी रचना इसी प्रतीति का प्रोद्भास है,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथा—बिना सिद्ध किये, कुछ होता तो स्वयंसिद्ध
ईश्वर-सा कुछ अद्भुत होता या रूपबद्ध
आभासित होता या जल थलमें व्योम-सा
उच्चरित होता या अन्तरमें ओम्-सा !

यह आत्मालोचन उसकी वैचारिक संवेदनाका जीवन्त स्पंदन लिये हुएहै, और इसीलिए इन कविताओंमें 'एक आदमकद विचार संवेदन' रूपाकृति पा सकाहै : 'कोई दूसरा नहीं' की प्रायः रचनाएं 'सबके लिए एक बड़ेसे बड़े अपनत्वकी सृष्टि' है । अपनी अस्मिताका बोध और अविजित विश्वासकी साक्षी हैं—'गले तक धरतीमें',—जहां गले तक धरतीमें गड़े हुएभी वह सोच रहाहै कि 'बंधे हों हाथ और पांव तो आकाश ही जातीहै उड़नेकी ताकत' । यदि वह सिर्फ नाक हैं, कान हैं, जबान है, ओठ है और आंखें है तो गड़े हुए होनेपर भी, सुगन्धके कितने ही अर्थोंको महक, सूक्ष्मतम प्रतिध्वनियोंकी अनेक प्रार्थनाएं और संगीत, चीखें और हाहाकार जबानके लिए तरसती खामोशियां, क्रूरताओंको लज्जित करती एक बच्चेकी विश्वासी हंसीका बयान, तिलभर जगहके सम्पूर्ण विस्तारमें जगमगाती असंख्य सृष्टियां, सभीको

जितनी देर बचा रह पाताहै सिर
उतने समयको ही अगर
दे सकूं एक वैकल्पिक शरीर
तो दुनियांसे करोड़ों गुना बड़ा हो सकताहै
एक आदमकद विचार !

उसका यह कथन भी कि 'दुनियांमें आदमीके छोटेपन से ज्यादा छोटा और कुछ नहीं हो सकता और कि अपनेको बड़ा रखनेका छोटासे छोटा प्रयत्न, दुनियांको बड़ा रखनेका प्रयत्न है—मात्र एक संवेदनशील कथन ही नहीं, सार्थक सच भी हैं । 'एक महाभारतमें' प्रतिक्षण लहूलुहान हो रहे निहत्थे सम्मसुद्दीन चक्रव्यूहमें घिरा जल्दीही मारा जायेगा, पर अंधेरोंके विरुद्ध—केवल उसका उजाला लड़ेगा'—जैसी परिकल्पना, इन कविताओंमें कवि-मनके गहरे सामाजिक सरोकारको दीप्ति देतीहैं । इनका दृष्टिबोध सर्वत्र गहराई लिये हुए है—सतहीपन कहीं नहीं । रचनाकार अपनी भाषाके प्रति भी बहुत सजग है, वह अनुभव करताहै कि—,

एक भाषा जब सूखती
शब्द खोने लगते अपना कवित्व
भावोंकी ताजगी
विचारोंकी सत्यता—
बढ़ने लगते लोगोंके बीच
अपरिचयके उजाड़ और खाइयां ।

इसका उदाहरण है आज प्रकृतिका निर्जीव होता रूपायन—जहां प्लास्टिकके पेड़, नाइलॉनके फूल, रबड़की चिड़िया, टेपपर भूले बिसरे लोकगीतोंकी उदास लड़ियां—'भाषाकी ऐसी ध्वस्त परिस्थितिमें, आग यदि लगी तो पहले वहां लगेगी, जहां ठूंठ हो चुकी होगी अपनी जमीनसे रस खींचनेवाली शक्तियां—क्या खरतर सत्य नहीं है ?

कुंवरनारायण अपने चारों ओर फैले इस जागतिक परिवेशके प्रति भी अत्यंत सजग अन्तर्दृष्टि रखतेहैं । आजके बहुप्रचारित इस आंकड़ोंके वाइरसने सन्निपात के स्तर तक मनुष्यको पहुंचा दियाहै कि वह आंकड़ोंकी उल्टियां करने लगाहै । 'आंकड़ोंकी बीमारी' एक ऐसा ही काव्यात्मक प्रहसन है, जो चीखकर कह रहाहै कि हम आंकड़े नहीं आदमी हैं !' उसका यह पैना कटाक्ष कि "इस देशमें हर एकको अफसोसके साथ/ जीनेका पैदाइशी हक है/वरना/कोई माने नहीं रखते हमारी आजादी और प्रजातंत्र !"

इसी प्रकार "दिवंगतकी आत्मा" कि 'कविता की फिल्म नहीं बन सकतीं, ऐसा करतेही वह दिवंगत हो जातीहै'—के नजरियेके साथ, यह हकीकत फैन्तासी—'जहां लगातार होती रहनेवाली सभाओंकी यादें ऊंघ रहीथीं'—में बदल जातीहै । इसी प्रकार 'महाभारत' रचनाका वैचारिक व्यंग्य भी बहुत धारदार है, जो इस महादेशके चुनावी महाभारतमें—भारतसे महाभारत होता हुआ एक देश, शान्तभावसे गीता पकड़े श्रीकृष्ण और एक हाथसे गाण्डीव और दूसरे से अपना सिर पकड़े गुड़ाकेश, निस्सहायसे देख रहेहैं—दलोंके दलदलसे जूझ रहे—आठ धर्म, अट्ठारह भाषाएं अट्ठाइस प्रदेशोंकी । जहां धर्मराज और धूर्तराज दोनों ही जुआरी हों—वह न धर्मक्षेत्र है, न कुरुक्षेत्रही ।'

और 'अयोध्या १९९२'की शुरूआत ही इन पंक्तियों से होतीहै—

हे राम
जीवन एक कटु यथार्थ है
और तुम एक महाकाव्य !
तुम्हारे बसकी नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस अविवेकपर विजय
जिसके दस बीस नहीं
अब लाखों सिर—लाखों हाथ हैं ?
और विभीषण भी अब
न जाने किसके साथ है ?

और भी कि आजके इस विकट वर्तमानकी अयोध्यापर कि 'अयोध्या इस समय तुम्हारी अयोध्या नहीं, योद्धाओं की लंका है। 'मानस' तुम्हारा 'चरित' नहीं, चुनावका डंका है। यह त्रेतायुग नहीं, नेतायुग है' और कि 'तुम्हारा साम्राज्य तो एक विवादित स्थलमें सिमटकर रह गयाहै' एक शालीन दृष्टिका ही पैना व्यंग्य है, जो विचारोत्तेजनासे मनको झकझोरताहै। 'क्रौंच बध' रचना नफरतोंसे भरी इस दुनियांका चित्र सामने रखती है। शब्दोंके बदलते अर्थोंके गर्हित विपर्ययकी प्रहारक चेतना तो देखिये—

'सामूहिक बलात्कारसे'—
'सामूहिक' शब्दके साथ
'बलात्कार' शब्दका जुड़ना
'समूह' और 'बलात्कार' का
एकाकार होनाहै।
यानी 'समूह' जैसी महान् संज्ञासे जन्मे
'सामूहिक' जैसे विशेषणका
एक जघन्य क्रियासे किसी भी रूपमें जुड़ना
पूरे समूहका गुनहगार होनाहै।

ऐसीही लघुकाय अन्य रचनाएं भी है' जो मनको विचारोत्तेजनासे भर देतीहैं। 'बदलते पोस्टर' का वह गुमसुम उदास लड़का ही नहीं बदलता, जो ठेंकेपर सरकारी पोस्टर लगाताहैं—'बाप शराब पियेंगे और बेटे भूखों मरेंगे···लिरिल साबुनसे नहाती सुन्दरी, डालडा बनस्पतिसे पनपते बच्चे, इफको खादसे लहलहाती फसलें, सदा बहार पानके मसाले, एटलस साइकिलपर सवार प्रगड़ किसान, धनवर्षाका संदेश देते धनकुबेरोंके ऐसे खुशरंग पोस्टर और इन्हें चिपकानेवालेकी बदरंग जिन्दगी, कारुणिक चेतनाकी टीस पैदा करतीहै। खाड़ी युद्धपर 'एक शान्त युद्ध' रचना तथाकथित शान्तिके लिए लड़े गये युद्धकी विद्रूपताको उजागर करतीहैं, जहां 'विजेता हिंसाके सारे पापों, आरोपोंसे मुक्त, एक धर्मयोद्धाके प्रभामण्डलसे युक्त' और 'युद्ध युद्ध नहीं, बिल्कुल शान्ति हो जैसे/आकाशमें यूं छूटतेसे बम और रॉकेट/हर्षोल्लासके फूल बरसाते हों जैसे/'—इस तथाकथित वैज्ञानिक मनुष्यके विनाशकारी विज्ञान और उसकी पशुतापर प्रश्नचिह्न लगातीहै। कैसी विडम्बना हैं यह—कि जिन्दगी वो इतनी बड़ी नियामत थी, आज तमाम फिस्सड्डी हरकतोंका दस्तावेज होकर रह गयी, जिसमे सिवाय अपनी रोजमर्राकी हत्याके, दूसरा कोई गुनाह तक शामिल नहीं ?' 'असली बात' यही तो बतातीहै कि 'लचर बातोंकी गवाहोंमें, सिफारिशमें, हिफाजतमें फंसे रहे आजीवन'।

इस संकलनकी सबसे लम्बी कविता है—'एक यात्राके दौरान' जिसके दौरान अनेक उड़ते हुए विचार-बिम्ब, अन्तश्चेतनाके प्रवाहमें तिरते चलतेहैं। कविकी विस्फारित दार्शनिक अन्तर्दृष्टिमें तब स्थान-स्थानपर ऐसा जीवन-दर्शन कि—

एक प्राचीन शिलालेखके अधमिटे अक्षर
पढ़ते हुए चकित हूं कि इतना सब समय
कैसे समा गया दो ही तारीखों बीच
कैसे अंट गया एक ही पटपर
एक जन्म
एक विवरण
एक मृत्यु
और एक उपदेशसे दिखते
अमूर्त अछोर आकाशका अटूट विस्तार
× × × ×
केवल एक अदृश्य हाथ
अपने ही लिखेको कभी कहता स्वप्न
कभी कहता संसार !

सारी कविता एक खुशरंग फैन्तासी है—'अचानक वह ट्रेन जिसमें रखा हुआथा मैं/एक खिलौनेकी तरह छोटी हो गयी/और एक बच्चेकी हथेलियां इतनी बड़ी/कि उसपर 'रेल-रेल खेलने लगे फासले'—जैसे अनेक भाव-बिम्बोंसे रची-बसी है यह कविता। जहां 'उसकी कलाईमें बंधी पृथ्वी/ अकस्मात् बज उठी जैसे घुंघरु/रेलकी सीटी···' और याद आते कुछ बढ़ते हुए फासले, घेरती हुई कुछ असह्य नजदीकियां छोटे छोटे स्टेशनोंपर फैले बीमार रोशनीके मरियल मैले उजाले, गाड़ी छूटने की बौखलाहट, आरक्षण चार्टकी कार्बनकापी, इस छोर से उस छोर तक दौड़ती बदहवास जनता—उसके बीवी-बच्चे, सामान और अन्तर्दृष्टिमें उभरता यह बिम्ब-कुलीके साथही एक रॉकेट अंतरिक्षके लिए, एक डिब्बेमें ठसाठस भरा यह गरीब देश और एक साधारण आदमी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के चांदपर पहुंचनेका गर्व और अतीतके ज्ञान गौरवका यह प्रस्फुटित विचार-बिम्ब—

पृथ्वीके आकर्षणके विरुद्ध
आकाशकी ओरसे आनेवाले ज्ञानके
हम आदिम आचार्य हैं
न जाने कितनी बार उतरेहै
हमारी पवित्र धरतीपर
आमंत्रित देवताओंके विमान
न जाने कितनी बार हमने
स्थापित कियेहैं—गगनचुम्बी ऊंचाइयोंके
कीर्तिमान !

और तभी यह कवि-दृष्टि तुरन्त उस गर्वीली ऊंचाईसे देशकी वर्तमान 'गृहदशा' और 'ग्रहदशा' की असंगतियों को उकेरतीहै । 'एक यात्राके दौरान' की संरचना महत्त्वपूर्ण इसलिए भी है कि इस कविकी कविताई तमाम खूबियोंको अपनेमें समाहित किये हुएहै । मिथकों और प्रतीकोंका सृजनात्मक प्रयोग, इसकी अपनी विशेषता है—राम, कृष्ण, गुडाकेश, धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, महाभारत, मानस, दशरथकी पत्नियां आदिकी सार्थक संकेतवर्ती अर्थच्छायाओंमें परिवर्तित होती छवियां इसके प्रमाण हैं । एक टुकड़ा भारतीय समाज और उसके चरित्रोंका कोलाज है उपर्युक्त कविता ।

'गोलकुण्डाकी एक शाम'—साजिश, विश्वासघात और मौतकी रहम दिलघाटीमें उभरती एक ठण्डी शाम के चंद यादगार क्षण प्रस्तुत करतीहैं । एक और कविता 'नालन्दा और बख्तियार'—आत्मग्लानिकी अंधेरी कोठरीमें बन्द, शर्मसे दम तोड़ती, एक बर्बर विजेताकी महत्त्वाकांक्षा निरूपित करतीहै । 'नदी बूढ़ी नही होती' —तो अपनी संरचनामें रूप-रोमान्ससे उत्फुल्ल है ही, मांडूकी रानी रूपमतीकी प्रेयस स्मृतिगंधकी फैन्तासी है वह, यथा—"हवासे खेलते उसके केश/एक खुशबू उसे छूते हुए/ठहर गयीहै स्मृतिमें उकेरती हुई/एक इच्छा-मूर्ति !"

सारी रचना अवदमित स्वप्नोंसे उच्छलित है । ये महत्त्वपूर्ण रचनाएं वर्तमानके जीवन्त रूपोंके वैविध्यसे परिपूर्ण हैं । कविका जीवन्त दृष्टिबोध इन सभीमें अपना वैशिष्ट्य और निजता वनाये हुएहै, आत्मीयताके ऐसे सुखद संस्पर्श मनको बरबस खींच लेतेहैं, क्योंकि उनमें सतहीपन या भावनातिरेक कहीं नहीं है ।

आजकी ढेरों सारी बहुविज्ञापित रचनाओंसे नितांत हटकर हैं ये कविताएं, जो इस कविकी विचारानुभूतिके सामर्थ्य और सृष्टिबोधको व्यक्त करतीहैं । □

अकाल और भेड़िये[1]

कवि : श्री यशवन्त कोठारी
समीक्षक : डा. विजय कुलश्रेष्ठ

विधा-परिवर्तनमें सर्जनात्मक ऊर्जाका विकास एवं वैविध्यके प्रति सर्जककी चिन्तन-दृष्टिका परिचय मिलता है । श्री यशवन्त कोठारीका पहला परिचय 'हिन्दीकी आखिरी किताब' के साथ हुआथा । तब उन्हें व्यंग्य-विधाके सर्जकके रूपमें पायाथा और आलोच्य कृति 'अकाल और भेड़िये' में शीर्षकसे कितना व्यंग्य गंधायित होताहै, वह तो पाठक स्वयं अनुभव कर सकतेहैं, पर इन बावन कविताओंके छियत्तर पृष्ठोंके कलेवरमें सांस्कृतिक, राजनीतिक, बौद्धिक, सामाजिक प्रदूषणका गहरा परिचयभी उसी दिशाका समर्थ यात्री बनता प्रतीत होताहै ।

लगता यह है कि अनुभूतियोंकी सघनता, शब्दयात्रा में अर्थज्ञापनकी आवेगात्मकता और काल सापेक्ष विधागत चयनकी तत्परतामें' कविता ही अधिक सजग, सबल, सहज और सार्थक (?) सिद्ध होतीहै, तभी श्री कोठारी स्वयं कहतेहैं कि—कविताकी रचना मेरे लिए असम्भवके बादकी सबसे कठिन प्रक्रिया है, इसको मैं अपनी रचनाधर्मिताकी सबसे दुरुह यात्रा कहूं (शब्द यात्रा, पृ. ५) तो अन्यथा नहीं है । आधुनिक जीवनकी विसंगतियां और विद्रूपताओंके लिए अपने समग्र पर्यावरणके प्रदूषित हो जानेपर, आम आदमीकी सोच को अभिव्यक्ति दे पाना कविकी प्राथमिकता जहां गद्य विधा (व्यंग्य लेखन) में थी, वही काव्याभिव्यक्ति रूपमें बड़ी ईमानदार कही जा सकतीहै क्योंकि आक्रोशकी मुद्रा कविके हर तेवरमें उभरने लगतीहैं । कारण वह स्पष्ट करताहै कि—'अंधकारको मारना नहीं/पड़ता/ प्रकाश देखकर खुद/ मर जाताहै' (पृ. ९) । परन्तु आज तो आवश्यकताभी ऐसे प्रकाशकी हैं जो इतना सबल हो जो अंधकारको आतंकित कर सके, कारण यह है जब

---

१. प्रका. : श्रीनाथजी प्रकाशन, ब्रह्मपुरी बाहर, जयपुर-३०२००२ । पृष्ठ : ८४; डिमा. ९०; मूल्य : ५०.०० रु. ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शहरके लोग उनींदे हैं, प्रस्तावों और प्रयोगोंसे ऊब चुकेहैं तो सारी स्थितियां उन्हें बौना बना देतीहैं—समझसे और यत्नसे तभी कविको—'नारोंके बिना देश सूना लगताहै (पृ. १४) और स्वस्थ एवं सार्थक अभिव्यक्तिके लिए प्रतिबद्ध कवि या साहित्यकार अपनी असमर्थताका आकलन करताहै—एक/गहरी और अंधेरी/सुरंगमें मुझे/धकेल दिया गयाथा/·· यह कोई सपना नहीं/हकीकत बयान है (पृ. २१)। परिणामतः कवि पिंजरा मुक्तिके लिए कहताहै कि—'मेरे लिए जरूरी है/मैं कोई और रास्ता अख्तियार करलूं/ताकि आनेवाली पीढ़ी/अपने बच्चोंको मेरा इतिहास/बता सके/··· विशाल देशमें भी/मैं खुली हवामें/मर सका।

(पृ: २३)।

व्यंग्य गद्यमें आताहै या काव्यमें, कहीं न कहीं खरोंचता है, पर यह खरोंच पाठक या श्रोताको क्षणभर होतीहै, कुरेदती नहीं और न व्यंग्यका यह काम ही है कि घात करे। वह आघात तो करताहै, पर 'घायल' और 'कायल' उतना नहीं करता। उसकी सार्थकता भी इसीमें है। इसलिए शीर्षककी सार्थकताके पूर्वांश 'अकाल' से कवि व्यवस्थाके उन सन्दर्भोंपर दृष्टि डाल कर ही अकाल स्थिति पता करताहै—'सरकारी सस्ते अनाजकी दूकानें/लम्बी लाइनें/खाली डिब्बे/रोटीके लिए तड़पते/बचपन, जवानियां, बुढ़ापे (पृ. २४) से लेकिन—'नारोंकी लुभावनी लोरियां/फिर एक बार मुझे कुम्भकर्णी नींद/सुला जातीहै (पृ. २५)। जनताके लिए सहज होतेहैं/आश्वासन, परन्तु व्यंग्यकार कवि क्या इतनेसे हो सो सकाहै वह---लड़ताहूं मैं/अकाल, भूख, धूप/और प्यास से, /बिना हथियारोंसे, / सिर्फ, / फावड़ा, कुदाल और/ टूटी तगारीसे (पृ. २७) पर सरकारी बाबूका यौन-शोषण दुर्दान्त है तभी तो—अकाल और भेड़ियोंके लिए/संध्याका झुटपुटा फिर/कोई नयी सौगात लानेके? लिए अपने क्रूर/पंजे फैलाताहै (पृ. २९)।

वर्तमान युगकी मूल्यहीनताका संकेत 'टूटा हुआ आदमी', 'दिल्ली', 'ज्वार', 'रातके सन्नाटेमें', 'बाकी इतिहास' में मिलताहै और त्रासदियोंका आकलन अथवा विसंगतियोंका परिचय अपनी आत्मबोधक सर्जना क्षणों की रचनाओं—'काली किताब', 'आत्मनिवेदन', 'मौत-दर-मौत', 'शिशुके प्रति', 'मैं कहां नहीं हूं', 'मेरा लेखन'—में मिलताहै। कवि निष्ठाके साथ कहताहै—"प्रदूषणके नारेमें घुस आयीहै/राजनीति ! /और नारोंमें राजनीतिक घुसपैठ/से फैल गयाहै जहर···अतः अब आवश्यक हो गयाहै कि—'पहले करें हम प्रतिकार/राजनीतिके विषदन्तका/जिससे मुक्त हो सके/···और बच सके एक अदद पृथ्वी/जिसमें हम स्वतंत्र, गैर राजनीतिक/सांस ले सकें (पृ. ६१)।

कविकी सृजनधर्मिता गूंगी, बहरी नहीं और न अंधी है तभी वह लोकतंत्रके सूर्यपर आये कोहरेके प्रति गहरी सम्वेदनशीलक दृष्टि एवं यत्नसाध्य द्वारा सृजनके महात्माओंका आह्वान करताहै (पृ, ६८) तथा राजनीतिमें वोटोंकी खातिर जन भावनाओंके साथ खिलवाड़ करनेवालोंके विरुद्ध युवा पीढ़ीकी हताशाको ललकारते हुए कवि कहताहै—'मेरे युवा दोस्त/आत्मदाह किसी भी समस्या/का समाधान कभी नहीं रहा ··एक दिन आयेगा/जब तुम महसूस करोगे कि/आत्मदाह कोई समाधान नहीं है। / समाधान है संघर्ष ···समूची पीढ़ीके लिए (पृ. ६९)। कृतिके अन्तिम ग्यारह पृष्ठोंमें कविकी तेईस क्षणिकाएं हैं जिसमें 'समाजवादी बिलम्ब', 'नेता उवाच', 'पाठक', 'कथावस्तु', 'रायल्टी', 'सूरज', 'ऐशट्रे' 'विवाह' में सूक्ष्म व्यंग्य और सबल अभिव्यक्तिकी सार्थकता निहित है। दूसरे शब्दोंमें कहा जाये तो यह कि व्यंग्यकारने जब कविता विधामें कुछ कर दिखानेका प्रयास कियाहै तो व्यंग्यकी सफलतासे दृष्टि-निक्षेप कर पाना उसके लिए असहज और असामयिक भी था। अतः श्री यशवन्त कोठारीकी काव्यकृतिका स्वागत है। ग्राउण्डकी आधुनिक चित्रकलापरक पृष्ठभूमिमें हाथ उठाये चीखते हुए मनुष्यकी आकृति जहां सार्थक है, वहीं टाइटिल शीर्षकका डिजाइन कराया जाना और अधिक आकर्षक बना देता आवरणको। कहीं कहीं प्रूफ की अशुद्धियां पाठकको कष्ट देतीहैं। ▭

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिकन्दरकी पराजय[1]

लेखक : गंगाराम सम्राट्
समीक्षक : डा. शत्रुघ्नप्रसाद

प्रस्तुत कृति इतिहास सम्बन्धी शोधग्रंथ है। सन् १९८५ में प्रकाशित यह शोधग्रथ सिकन्दरके आक्रमण, युद्ध तथा पराजयका नया विश्लेषण करताहै प्रमाणोंके आधारपर। प्रचलित इतिहास ग्रंथोंकी मान्यताओंको अमान्य करताहै। अपनी मान्यताको प्रस्तुत करताहै। इसके पीछे शोधकर्ताकी शोध दृष्टि तो है, साथहो राष्ट्र-गौरवकी प्रतिष्ठाकी बेचैनी भी है। अल्पज्ञात शोधकर्ता श्री गंगाराम सम्राटने अपनी भूमिकामें स्पष्ट कियाहै — 'यूरोप जब अर्द्धसभ्य था तब भारत सभ्यताकी पराकाष्ठापर था। पर ये अर्द्धसभ्य जब भारतमें आये तो भारतको भी अर्द्धसभ्य बना डाला। × × × बौद्धिक दासता हमारे गलेमें पड़ गयी।" इतिहास लेखनके सम्बन्धमें भूमिकाके पृष्ठ ८ पर लिखाहै—"हीराडोटस को यूरोप इतिहासका पिता मानताहै, परन्तु मैंने उसके भारतसे सम्बन्धित अनेक मान्यताओंको पूर्णतया असत्य सिद्ध कर दियाहै। (सिंधु सौवीर, पृ. ७३)। जब हीराडोटस जैसा व्यक्ति, इतिहासका माना जानेवाला विद्वान् असत्य-असंगत लिख सकताहै तो बाकी लेखक किस कोटिके माने जायें ?"

यह तो सत्य है कि यूनानी, मुगल और अंग्रेज इतिहासकारोंने ही मुख्य रूपसे भारतके इतिहासको लिखनेका प्रयत्न कियाहै। वैदिक साहित्य, पौराणिक साहित्य, कथात्मक प्रबंध काव्य तथा राजतरंगिणीमें इतिहास है। राजतरंगिणी तो कश्मीरका इतिहास ही है। शेषमें इतिहासके तथ्य हैं, पर संपूर्ण इतिहास नहीं हैं। इसलिए यूनानी, मुगल तथा अंग्रेज इतिहासकारों के लेखनपर निर्भर रहना पड़ा। उनमें विदेशी विजेता का भाव रहाहै। अतः उनका इतिहास शुद्ध प्रामाणिक नहीं है। वामपंथी इतिहासकारका आधार भी यही रहा है। विजेताके लेखनके आधारपर मार्क्सवादी दृष्टिसे भारतीय इतिहासकी रचना स्वातंत्र्योत्तर भारतकी उपलब्धि रहीहै। इसने भी भारतके इतिहासके साथ न्याय नहीं किया। अतः इतिहासके पुनर्लेखनकी चर्चा आरंभ हो गयीहै।

मैंने 'इतिहासका पुनर्लेखन' नामक लेखमें लिखाथा —"इतिहास तो किसी देशके समग्र राष्ट्र जीवनका यथार्थ एवं रचनात्मक आलेख है। निरंतर कालप्रवाह का यथार्थ एवं सृजनक्षम आलेख है। × × तक्षशिलासे लेकर नवद्वीप तकके सम्पूर्ण पुस्तकालय नष्ट हो चुके। और विदेशी शासकोंने अपने शासनके लिए इतिहास लिखा। भारतेन्दुने भी अनुभव कियाथा। × × बीसवीं सदीमें अंग्रेजोंके प्रभावसे मुक्त रहकर कुछ विद्वानोंने— सर्वश्री जयचंद विद्यालंकार, सत्यकेतु विद्यालंकार, आचार्य भगवद्दत्त, डा. यदुनाथ सरकार, डा. राधा कुमुद मुखर्जी, डा. रमेशचन्द्र मजूमदार, डा. वासुदेवशरण अग्रवाल, डा. काशीप्रसाद जायसवाल, डा. देव सहाय त्रिवेद, श्री बी. डी. सावरकर आदिने भारतीय इतिहासके विभिन्न अध्यायोंपर इतिहास लिखनेका प्रयास किया।" (रांची एक्सप्रेस, ३ मई ९३)।

इस छोटी-सी पुस्तकमें लेखकने बीस पुस्तकों-पत्रिकाओंके आधारपर सिकन्दर एवं पुरु (पोरस) के युद्धका वर्णन कियाहै। और कुछ प्रमाणों तथा अनुमानके आधारपर सिकन्दरकी पराजयकी बात की। निस्सन्देह यह शोधका विषय है। शोधकर्त्ता लेखकने आरंभमें ईरानके साम्राज्य एवं यूनानकी स्थितिका वर्णन किया है। फिर बतायाहै सिकन्दरके अभियानके इतिहास

---

१. प्रका. : गंगाराम सम्राट्, कपिल प्रिंटिंग प्रेस, सैजपुर बोधा (अहमदाबाद)-३८२३४५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक पांच हैं—एरियन, डायाडोरस, प्लूटार्क, अस्टिन तथा कटियसन। प्रो. फ्रीमनके अनुसार ये समकालीन नहीं थे। पर इन्हींके आधारपर इतिहास लिखा गयाहै। इसीलिए यूनानी स्ट्रेबोने कहाहै कि जिन लोगोंने भी भारत संबंधी विवरण लिखाहैं, वे सबके सब झूठे हैं।

लेखककी कुछ मान्यताओंके प्रमाणों तथा अनुमानों पर चर्चा उपयुक्त होगी। पहली मान्यता हैं कि आँभी पोरसके प्रति द्वेषवश सिकन्दरसे मिल गयाथा। कुछने लिखाहै कि आँभीने सिकन्दरकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। अधीनताकी मान्यताको काटनेके लिए लेखकने प्लूटार्कको प्रमाण मानाहै। प्लूटार्कके अनुसार आंभीने पहली भेंटमें ही कहा कि यदि तुम हमारा अन्न-जल छीननेके लिए नहीं आये, जिसके लिए ही युद्ध हुआ करतेहैं तो हम-तुम एक-दूसरेमे क्यों लड़ें? और तुम धन की लालसासे आयेहो और यह समझतेहो कि मैं तुमसे अधिक धनी हूं तो जो कुछ हमारे पास है, वह ले लो और यदि तुम मुझसे अधिक धनी हो तो तुमसे लेनेमें, जो तुम लूट आयेहो, मुझे कोई संकोच नहीं होगा। (पृ. २१०)। इस प्रकार स्वार्थवश दोनोंमें मित्रता हो गयी। यह तो प्रामाणिक है। दूसरी मान्यता है कि सिकन्दरने १६ मील उत्तरकी ओरसे नदीको चुपकेसे पार किया। पोरस नदीके इस पार कड़ी के मैदानमें डटा हुआथा। विलम्बसे सिकन्दरकी चालका पता चला। और तब पुरुने अपने पुत्रको सेनाके साथ भेजा। अन्यने लिखाहै कि पुरुका पुत्र मारा गया। एरियनके अनुसार शोधकर्त्ताने मानाहै कि भारतीय राजकुमारके हाथों सिकन्दर घायल हो गया और उसका घोड़ा बकाफल्स मारा गया। (पृ. १७५)। यह तो संभव है कि इस युद्धमें राजकुमार मारा गयाहो और तब पुरुके नेतृत्वमें संग्राम आरंभ हुआ, दिनभर होता रहा। पोरसके हाथियोंने यूनानी सेनाको बहुत हानि पहुंचायी, जैसाकि कटियसने लिखाहै। एरियनके अनुसार भी हस्ति सेनाने व्यवस्थित यूनानी सेनाको कुचल डाला।

इस स्थितिको सबने स्वीकार कियाहै। इसके बाद एरियनने लिखाहै कि यूनानी सेना नाना प्रकारके शस्त्र लेकर हाथियोंको घायल करने लगी। त्रस्त होकर हाथी पीछेकी ओर भागे। उन्होंने अपने ही सैनिकोंको रौंद डाला। भारतीय आक्रमणका बल घट गया। पुरुभी घायल होगया। परन्तु गंगारामजीने डायोडोरसके कथनको रखाहै कि पुरुने शेष चालीस हाथियोंको इकट्ठा किया। वह शत्रुपर टूट पड़ा। शोधकर्ताका विचार है कि पुरुके इस दूसरे आक्रमणसे यूनानी सेनामें आतंक फैल गया। सिकन्दर हताश होकर सन्धिके लिए उद्यत होगया। इसकी पुष्टिके लिए एथ्योपिक लेख तथा फिर रौसीका वर्णन प्रस्तुत है। एथ्योपिक लेखके अनुसार सिकन्दरने कहा—"ओ भारतीय सम्राट्! मुझे क्षमाकर, मैं तेरे शौर्य तथा बलको जान गयाहूं।...।' (The Life and Exploits of Alexander (Ethiopic Texts) Edited by E. A. W. Budge Page-123)।

लेखकने पारसी महाकवि फिरदौसीको भी उद्धृत कियाहै। सिकन्दर अपनी सेनाका विनाश देखकर बोल उठा—' हे मान्यवर पुरुष! हम दोनोंकी सेनाओंका नाश हुआहै। × × हम दोनों वीर, योद्धा और बुद्धिमान् हैं, इसलिए सेनाका विनाश क्यों हो? (शाहनामू-शाहनामा प्रेस, मुम्बई, (१९१६) भाग-६,-पृ ८१)।

इन दो प्रमाणोंपर इतिहासविदों द्वारा गंभीरतासे विचार होना चाहिये। पूरी निष्ठासे अनुसंधान अपेक्षित है। पूर्वाग्रहसे मुक्ति आवश्यक है।

लेखकने इस सम्बन्धमें एक और महत्त्वपूर्ण बात रखीहैं। सिकन्दरने पुरुसे पूछा कि उसके साथ कैसा व्यवहार किया जाये। वास्तवमें यह बात स्वयं पुरुने पूछी कि बोल, अब तेरे साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये। तर्क हैं कि सिकन्दरने युद्ध अभियानमें कहीं भी उदारता तथा दयाका व्यवहार नहीं कियाथा। वह क्रूर था। उसने बैक्ट्रियाके शासक बेससका क्रूरतापूर्वक वध किया। उसने अपने मित्र क्लेटसको अमानुषी ढंगसे माराथा। भारतीय सीमापर मस्सारसे सन्धिकर उसका धोखेसे कत्ल कियाथा। नगरोंको जलायाथा। ऐसे क्रूर सिकन्दरसे पुरुके प्रति सद्व्यवहारकी आशा व्यर्थ है। पुरुने उसके साथ स्वाभाविक रूपसे सद्व्यवहार कियाथा।

अंतमें शोधकर्ताने लिखाहै कि यूनानियोंने वास्तवमें अपनेको विजेता तब कहा जब उनकी सेना अफगानिस्तान तक पहुंची। (पृ. ४९) और फिर यूरोपियन लेखकोंमें यूनानके इतिहासकारोंसे इसे ग्रहणकर प्रचलित किया। यूरोप तो यूनानको हो अपना गुरु मानता रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दीके प्रसिद्ध नाटककार जयशंकर प्रसादने अपने नाटक 'चन्द्रगुप्त मौर्य' में झेलम युद्धके बाद मालव-युद्ध में सिकन्दरको आहत होते दिखायाहै। झेलम युद्धमें सिकन्दर पुरुकी वीरतापर मुग्ध हुआ। पर मालव-क्षुद्रकोंके साथ युद्ध करनेपर प्रायः हार गयाहै जिसपर भारतीयोंने दया कीहै। परन्तु लक्ष्मीनारायण मिश्रने अपने नाटक—'वितस्ताकी लहरें' में झेलम युद्धमें ही आहत सिकन्दर अपनी प्रेमिका तायाके अपहरणके बाद हताश होकर हार मान गयाहैं। पुरुने पुत्रवत् प्यार दियाहै। उसकी प्रेमिका तायाको आदर मिलाहै यह कलाकारकी कल्पना है। पर कहीं-न-कहीं सिकन्दरकी हताशाकी अभिव्यक्ति हुईहै। उसे भारतको छोड़कर जाना पड़ताहै।

इतिहासकी खोज आरंभ हैं। झेलम युद्धमें सिकन्दर की हार हुई या पुरुकी—इसपर विचार होना ही चाहिये। लेखकके प्रमाण तो सिकन्दरकी पराजयको ही संकेतित कर रहेहैं। इस दृष्टिसे इस पुस्तकका महत्त्व है। प्रतीत होताहै कि इतिहासकारोंने इसकी उपेक्षा कीहै। पर इसके प्रमाण उपेक्षणीय नहीं हैं।

मुद्रणमें यत्र-तत्र अशुद्धियां हैं। अहमदाबादके मुद्रण में अशुद्धियां हों—यह क्षम्य नहीं है। ▭

विविध

हिन्दी अधिकारी : नाम एक काम अनेक[1]

लेखक : श्रीराम मुंढे

समीक्षक : डा. रवीन्द्र अग्निहोत्री

केन्द्र सरकारके कार्यालयों और विभिन्न सरकारी उपक्रमोंमें हिन्दी अधिकारी नियुक्त किये गयेहैं ताकि वहां भारत सरकारकी राजभाषा नीतिका कार्यान्वयन सुनिश्चित किया जा सके। पर, वह राजभाषा नीति कितनी नीतिविहीन है, यह किसीसे छिपा नहीं है। संविधानमें कहा गयाथा कि अंग्रेजीका प्रयोग १५ वर्ष तक ही जारी रहेगा, पर सरकारने राजभाषा अधिनियम बनाकर अंग्रेजीका प्रयोग अनन्तकाल तकके लिए स्वीकार कर लियाहै। कहनेके लिए सरकार कहतीहै कि किसी व्यक्तिको नौकरी आदिसे इसलिए वंचित नहीं रखा जायगा कि उसे अंग्रेजी या हिन्दीमें से कोई एक भाषा नहीं आती, पर सच्चाई यह है कि केवल हिन्दी जानकर "हिन्दी अधिकारी" तक को नौकरी नहीं मिल सकती। सरकार यहभी कहतीहै कि यदि किसी अधिकारीके कार्य ऐसे हों कि उन्हें सम्पन्न करनेके लिए दोनों भाषाओंका ज्ञान आवश्यक हो, तो उसे दोनों भाषाएं जाननेपर ही नौकरी दी जायेगी। उक्त अधिनियममें ही सरकारने कार्यालयी कामकाजके १४ प्रपत्र दोनों भाषाओंमें जारी/निष्पादित करना अनिवार्य बतायाहै; जिसका अर्थ यह हुआ कि जो अधिकारी इन प्रपत्रोंको तैयार/जारी/निष्पादित करे उसे दोनों भाषाओंका ज्ञान होना चाहिये, पर सरकारने अपने ऐसे किसी अधिकारीके लिए दोनों भाषाओंका ज्ञान अनिवार्य नहीं मानाहै। परिणाम यह हैं कि अंग्रेजीका प्रयोग करनेकी छूटका लाभ तो हर कोई उठा रहाहै, पर दोनों भाषाओंके प्रयोगकी ओर कोई मुंह उठाकर देखना भी आवश्यक नहीं समझता। अधिनियमके इस उल्लंघनके होते हुएभी न किसीको नौकरीसे वंचित रखा जाताहै, न पदोन्नतिसे, न कभी कोई अनुशासनिक कार्यवाई की जातीहै। कभी कोई वरिष्ठ अधिकारी किसीसे पूछता तक नहीं कि यह

---

१. : राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., २/३८, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १२८; डिमा. ९४; मूल्य : १२५.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उल्लंघन क्यों किया। फिरभी इसे "राजभाषा नीति" कहा जाताहै। वास्तविकता यह भी है कि सरकारी अफसरोंने इस राजभाषा नीतिको कार्यान्वित करनेका दायित्व "हिन्दी अधिकारी" पर डाल दियाहै जो शैक्षिक दृष्टिसे तो उच्चतम उपाधिधारी होताहै पर कार्यालयमें सबसे कनिष्ठ होताहै; जिसे कार्यालयके कार्यकलापोंकी कोई जानकारी नहीं होती, पर जिसे इन सबकी जानकारी देना संस्था अपना दायित्व भी नहीं समझती। संस्थामें जिसका सम्मान कहीं नहीं होता, अपमान जगह-जगह होताहै; जिसकी पदोन्नति दो-दो दशक तक नहीं होती, फिरभी जो संस्थाके अन्य अधिकारियोंकी तुलनामें दूना-चौगुना श्रम करताहै और राष्ट्रके माथेपर लगा भाषायी कलंकका टीका पोंछनेका प्रयास करताहै। इस काममें उसे सभी प्रकारकी भूमिका निभानी पड़तीहै। लगभग सभी लोगोंने मान लियाहै कि अनुवादक तो उसे होना ही चाहिये, यानी अंग्रेजी तो उसे अन्य अधिकारियोंसे बेहतर आनी चाहिये और हिन्दी (साहित्य नही, भाषा) इसलिए आनी चाहिये कि वह हिन्दी अधिकारी है। उसे अपनी संस्थाकी पारिभाषिक शब्दावली अंग्रेजी-हिन्दी और हिन्दी-अंग्रेजीमें कंठस्थ होनी चाहिये क्योंकि उसकी परीक्षा लेनेवाले कदम-कदमपर बैठे होंतेहैं, वैसे भी उसे आते-जाते, राह चलते अनुवाद करना पड़ेगा। उसे भाषाविद् भी होना चाहिये। जिस क्षेत्रमें काम कर रहाहै उस क्षेत्रकी भी भाषा उसे आनी चाहिये। उसे हिन्दीकी उन बैठकोंका संचालन करनेकी कला भी आनी चाहिये जिसके अध्यक्ष बैठकके लिए समय देनेको तैयार न हों, और जिसके सदस्य भी बैठकमें भाग लेनेके लिए समय न दे सकें, भूलेसे यदि आ जायें तो उसके सभी कामोंमें टांग अड़ायें, और यह तो स्पष्ट ही है कि वे उससे बहुत वरिष्ठ होंगे। उसे अच्छा वक्ता भी होना चाहिये, और अच्छा प्रबंधक भी। उसे नेता भी होना चाहिये और अभिनेता भी। अपने विभागीय कार्योंके लिए (तथा अपने वरिष्ठ अधिकारियोंके कार्योंके लिएभी) उसे जनसम्पर्क अधिकारीका काम भी आना चाहिये। स्थानीय समाचारपत्रोंके साथ (और यदि अपनी कुशल चाहताहै तो स्थानीय राजनीतिके साथ भी) अच्छा तालमेल होना चाहिये। गरज यह कि उसे 'हरफन मौला' भी होना चाहिये और प्रत्येक विषयका माहिर भी। उसे पीर, बावर्ची, भिश्ती···सभी प्रकारकी भूमिका निभानीहै।

जो लोग जन्मजात हरफन मौला होतेहैं, उनकी बात अलग है (वे सामान्यतया हिन्दी अधिकारी बनते भी नहीं), पर जो इस प्रकारके गुणोंसे युक्त नहीं हैं पर हिन्दी अधिकारी बन गयेहैं या बनना चाहतेहैं, उनके लिए समीक्ष्य पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी। पुस्तकके ११ में से ९ अध्यायोंमें लेखकने जो कुछ लिखाहै, वह अपने अनुभवके आधारपर लिखाहै। उसने स्वयं हिन्दी अधिकारीके रूपमें कार्य कियाहै और जिन प्रयोगोंसे उसे सफलता मिली, उनकी उसने चर्चा कीहै। सफलता की कहानी प्रेरणादायक होतीहै। अतः पुस्तकका महत्त्व निश्चित रूपसे बढ़ गयाहै। अंतिम दो अध्यायोंमें राजभाषा अधिनियम तथा नियम मूल रूपमें दियेहैं।

पुस्तकमें कुछ भूलें रह गयीहैं। "कार्यशालामें व्याख्यान" अध्यायमें लेखकने अलग-अलग प्रकारके तीन व्याख्यानोंका तरीका बतानेका उल्लेख कियाहै (पृ. ५०); पर आगे दो ही तरीके दियेहैं। राजभाषा कार्यान्वयन समितिके कार्यवृत्तको लेखकने राजभाषा अधिनियमकी धारा ३ (३) के अंतर्गत आनेवाला दस्तावेज बतायाहै। (पृ. ७५), जो गलत है। पुस्तकके अंतमें मूल रूपमें दिये राजभाषा अधिनियममें भी इसका उल्लेख नहीं है। प्रायः हिन्दी अधिकारी राजभाषा कार्यान्वयन समितिके कार्य विवरणको "संकल्प" मान लेतेहैं (जो धारा ३(३) का भाग है), पर अन्य बैठकोंके कार्य विवरणोंको नही मानते। वस्तुतः संकल्प अलग चीज है। किसी बैठकका कार्य विवरण संकल्प नहीं होता। प्रधानमंत्रीकी अध्यक्षतामें सम्पन्न होनेवाली केन्द्रीय हिन्दी समितिका कार्य विवरण भी सरकारका "संकल्प" नहीं होता।

जो कार्यालयी सामग्री अनुवादके लिए हिन्दी विभागमें आतीहै उसे सात वर्गोंमें बाँटकर लेखकने पत्र के दो भेद कियेहैं—कार्यालयीन और अर्धकार्यालयीन। अर्धकार्यालयी पत्रके सम्बोधन "माई डियर" अनुवादके लिए लेखकने लिखाहै कि इसके लिए "महोदय/महोदया या कुछ अवसरोंपर "मेरी जान" लिखना स्वाभाविक और भावानुकूल होताहै (पृ. ९९)।" बात कार्यालयी सामग्री की हो रहीहै, अतः यहां निजी पत्रोंका संदर्भ तो हो ही नहीं सकता; पर लेखकने कुछ अवसरोंके लिए हिन्दीमें जो सम्बोधन सुझायाहैं, वह कार्यालयी भाषाका भाग नहीं हैं। इस प्रकारका बाजारुपन पुस्तककी गरिमाके अनुरूप नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेल, फोन, ट्रैक्टर जैसे अंग्रेजीके माध्यमसे आये और सामान्य जनतामें प्रचलित होगये शब्दोंको स्वीकार कर लेनेके भारत सरकारके आदेशकी सराहना करते हुए लेखकने लिखाहै कि "अब जरूरी और ठीक नहीं है कि भाषा—हिन्दीको शुद्धीकृत करके सती-सावित्री बनानेके प्रयासमें विकृत और कमजोर बनाया जाये (पृ. ९५)।" संभवतः लेखकको पता होगा कि पौराणिक गाथाकी सती सावित्री न विकृत थी, न कमजोर। उसका उदाहरण तो दृढ़ संकल्पका प्रतीक है। शुद्ध भाषा कभी विकृत या कमजोर नहीं होती। विकृत और कमजोर भाषाका उदाहरण तो लेखकका उपर्युक्त वाक्य ही है। लेखक थोडा विचार करे कि "शुद्धीकृत करके" का क्या अर्थ हैं? लोक प्रचलित शब्दोंको अपनानेसे भाषा न अशुद्ध होतीहै, न विकृत, या कमजोर, पर लोक प्रचलित शब्दोंको अपदस्थ करके जो शब्द लाये जातेहैं उनसे अवश्य भाषा अशुद्ध, विकृत और कमजोर होतीहै। जैसे, मेजकी जगह टेबल (पृ. ९५), कथनकी जगह बयानात (पृ. ३४) या अर्धशासकीयके लिए नीम सरकारी (पृ. ९९)।

लेखकने एक ऐसे विषयपर पुस्तक लिखीहै जो लगभग अछूता है। इसके अतिरिक्त, उसने अपने अनुभवोंका सार प्रस्तुत कियाहै। इसके लिए हम उनका हार्दिक अभिनंदन करतेहैं। मुद्रणमें प्रूफकी कुछ कमियां रह गयीहैं, पर प्रकाशकने सुरुचिपूर्ण ढंगसे पुस्तक प्रकाशित कीहै। इसके लिए उसे बधाई। आशा है कि विभिन्न संगठनोंके हिन्दी अधिकारी अपने एक सहकर्मीके अनुभवोंसे लाभ उठाकर अपने गुरुतर दायित्वको अधिक अच्छे ढंगसे निभानेकी योग्यता अर्जित करेंगे।

विचारमूलक विश्वलोकोक्ति कोश[1]

सम्पादक : डा. ओम्प्रकाश गाबा

समीक्षक : डा. उत्तम एल. पटेल

समीक्ष्य पुस्तकमें लगभग १८० विषयोंसे संबंधित लगभग ढाई हजारसे भी अधिक ऐसी लोकोक्तियां, उद्धरण व सूक्तियां संगृहीत हैं, जिन्हें विश्वकी ३७ भाषाओंसे चुना गयाहै। इस कोशमें पहले हिन्दी लोकोक्ति या अन्य भारतीय भाषा या विश्व भाषाकी लोकोक्तिके हिन्दी रूपांतरके बाद उसका अंग्रेजी रूप या रूपांतर दिया गयाहैं। जहां लोकोक्ति संस्कृत अथवा हिन्दीकी उपभाषाओंके मूल रूपमें दी गयीहै, वहां भी उसका हिन्दी अनुवाद जोड़ दिया गयाहै।

प्रस्तुत कोशमें संपादकने लोकोक्तियोंके साथ-साथ सूक्तियां एवं उद्धरणोंको भी सम्मिलित कर लियाहै। भारतीय भाषाओंकी लोकोक्तियोंके अतिरिक्त अन्य भाषाओंकी लोकोक्तियां हिन्दी रूपांतरमें सूक्तियां बन गयीहैं। संपादकने उसका मूल रूप देवनागरीमें प्रस्तुत करके उसकी हिन्दी लोकोक्तियोंके साथ तुलना की होती, तो संगत होता, क्योंकि प्रयोग करनेपर लोकोक्तियां अपने मूल रूपमें ही रहतीहैं। मुहावरेकी भांति उनमें लिंग, वचन, काल आदिकी दृष्टिसे परिवर्तन नहीं होता। किन्तु संपादकने तो हिन्दी लोकोक्तियोंके मूल रूपमें परिवर्तन कर उन्हें मानक हिन्दीके अनुरूप बनानेका प्रयास कियाहै। परिणाम स्वरूप उनकी प्रभविष्णुता नष्ट हो गयीहै; क्योंकि लोकोक्तियोंकी प्रभविष्णुता बहुत कुछ उनकी शैली पर निर्भर करतीहै।

इस कोशमें बहुतसे नीति-कथन भी समाविष्ट कर लिये गयेहैं। लोकोक्ति, उद्धरण, सूक्ति और नीति-कथनके बीचके तात्त्विक अंतरका अज्ञान संपादकके लिए क्षम्य नहीं है।

संपादकने कहीं-कहीं लोकोक्तियोंकी भाषाके साथ-साथ उनके लेखकके नामका उल्लेख कियाहै। यही रीति उन्होंने ज्ञातनामा लोकोक्तियों, सूक्तियों या नीति-कथनोंके साथ नहीं निभायीहै। कहीं-कहीं तो सिर्फ लेखकके नामका ही उल्लेख है, भाषाका नहीं। (पृ. १)।

मूल भाषाके हिन्दी व अंग्रेजी रूपांतर भी कहीं-कहीं उचित नहीं हैं। जैसे 'बीतीं ताहि बिसार दे' (पृ. १३३) का हिन्दी रूपान्तर 'जो बीत गया, उसे भूल जाओ' के बदले बच्चनकी प्रसिद्ध पंक्ति 'जो बीत गयी, सो बात गयी' होना चाहियेथा। इसी प्रकार कहीं-कहीं अंग्रेजी रूपांतर अलग-अलग दिया है। जैसे, 'धूर्तके साथ धूर्तता बरतनी चाहिये' का अनुवाद पृ. ३२६ और पृ. २५० पर। इसी प्रकार एक

---

१. प्रका. : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : ३२४; डिमा. ९२; मूल्य : १७५,०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अंग्रेजी सूक्ति Early to bed and early to rise, makes a man healthy, wealthy and wise (पृ. १२९) का हिन्दी रूपांतर पृ. १२९ और पृ. १०६ पर अलग-अलग है। दोनोंमें उठताहै और जागताहै, बनताहै और होताहै; में अर्थका अंतर स्पष्ट है। हिन्दी शब्दोंके अंग्रेजी रूपांतर और अंग्रेजी शब्दोंके हिन्दी रूपांतर भी कहीं-कहीं अनुपयुक्त हैं। जैसे; छाछके लिए Cold milk (पृ. १९४), जबानके लिए word (पृ. २६९), Spilt milk के लिए दूध बिखर (पृ. २३०), momentry world के लिए अस्थिर संसार। (पृ. ९५)।

संपादकने जिन विषयोंको चुनाहै, उनके संदर्भमें बहुत-सी प्रसिद्ध लोकोक्तियाँ भारतीय भाषाओंमें मिलेंगी। 'साझा' विषयके अंतर्गत सिर्फ एक ही हिन्दी लोकोक्ति दी गयीहै; किन्तु हिन्दीमें इसके संदर्भमें—(१) साझा भला न बापका, ताव भला न तापका; (२) साझेका काम उखाड़े चाम; (३) साझेका बैल कीड़ा पड़े; (४) साझेका माल लबार खाय, (५) साझे की होली चौराहेपर; (६) साझेकी होली सबसे भली; (७) साझेके देवको भोग नहीं मिलता; (८) साझेके बापको सियार खातेहैं; (९) साझेकी मां गंगा न पावै; और (१०) साझेमें मुरौवत क्या।—प्रसिद्ध लोकोक्तियां हैं। पुस्तकमें मुद्रण-दोष भी हैं। (पृ. १, १९५, २७४, २७९, २८७, ३२०)।

इन त्रुटियोंके होते हुएभी पाठक विशेष विषयपर कुछ लोकोक्तियों, सूक्तियों, उद्धरणों व नीति-कथनोंको एक साथ देखना चाहें, तो इस कोशसे उन्हें सहायता मिल सकतीहै। □

यात्रा-वृत्त

हिमाचलके आंगनमें[1]

लेखक : डा. कुमुद
समीक्षक : विराज

यात्रा वृत्तान्तकी शृंखलामें 'बदरी केदारके पथपर' और 'आधी रातका सूरज' के बाद डॉ० कुमुदकी यह तीसरी पुस्तक है। डा. कुमुदको पर्यटनका भी शौक है और अपने अनुभवोंको पाठकोंके साथ बांट लेनेके लिए लिखनेका भी।

डॉ० कुमुदकी यात्रा-वृत्तान्त लिखनेकी अपनी शैली है। इसमें कुछ उनके यात्री साथी होतेहैं और कुछ वे लोग होतेहैं, जो उन्हें स्थान स्थानपर मिले होतेहैं। इन पात्रोंके वार्तालापके द्वारा वे बीच-बीचमें महत्वपूर्ण जानकारी देते चलतेहैं, जो पाठकके लिए उस दशामें उपयोगी हो सकतीहै, जब वे इन प्रदेशोंकी यात्रा करें। अपनी आँखोंसे देखे गये दृश्यों और घटनाओंका वर्णन इसके अलावा है जो अत्यन्त रोचक है।

डा. कुमुद कवि-हृदय हैं। इस यात्रा वृत्तान्तके अध्यायोंके शीर्षक भी उन्होंने कवित्वपूर्ण रखेहैं, जैसे हम जानत तीरथ बड़े, पुर्ज़ा पुर्ज़ा कट मरो, कबहूं न छोड़ो खेत, मनकी बिरथा मनु ही जाने, सूरज मुख मत जइवै, गगन घटा घहराती, इत्यादि।

'हिमाचलके आंगनमें' शीर्षकसे ऐसा लगताहै कि यह पुस्तक हिमाचल प्रदेशके बारेमें होगी। हिमाचल शब्दका प्रयोग हिमालयके लिए किया गयाहो, ऐसा भी प्रतीत नहीं होता, क्योंकि हिमालय तो कश्मीरसे अरुणा-

१. प्रका. : शील प्रकाशन. ए/३५, सोनारी पश्चिमी, जमशेदपुर-८३१०११। पृष्ठ : १६४; डिमा. ९२; मूल्य : १२०.०० रु.।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चल तक फैलाहै, जिसमें कुल्लू, मनाली, शिमलाके अतिरिक्त चकरौता, मसूरी, पौड़ी, नैनीताल, दार्जिलिंग आदि स्थान भी आ जातेहैं। परन्तु इस पुस्तकमें मुख्य रूपसे कुल्लू, मनाली, वशिष्ठ कुण्ड, हिडिम्बा मन्दिर आदिका वर्णन है। यह बात अलग है कि शुरूके पैंतालीस पृष्ठ रास्तेमें पड़नेवाले पंजाबके तीर्थ स्थानोंके विषयमें है। एक लम्बा प्रसंग लाहौरकी यात्राके विषय में भी है, जो लेखकने बरसों पहले कभी कीथी। इसी प्रकार एक पुराना प्रसंग पेशावरसे दर्रा खैबरके पास लंडी कोतलकी यात्राका भी है।

यात्रा-वृत्तान्तोंमें रोचक घटनाएं तथा चित्र-विचित्र पात्रों (व्यक्तियों) का भी समावेश हुआहै। शुरूमें ही दो साधुओंका वर्णन हैं जिसमें एक तो पुराने ढंगके तपस्वी विद्वान् पुरुष हैं और दूसरे आधुनिक साधु हैं, जो ब्रेकफास्टमें डबल आमलेट खातेहैं और जिनकी अटैची में स्कौच व्हिस्की और कीमती राथमैन सिगरेटोंके पैकेट भरेहैं।

इस पुस्तकमें ज्वालामुखी, कुल्लू, मनाली और रोहतांग यात्राका वर्णन है। परन्तु इन यात्राओंको करते हुए अन्य लोगोंने उन्हें न केवल अन्य स्थानोंका विवरण बता दिया, अपितु उन स्थानोंका इतिहास भी बता दिया। इस प्रकार इस जानकारीसे भरी इतिहास और भूगोलकी पुस्तक बन गयीहै।

इस पुस्तकसे न केवल इस प्रदेशके प्राकृतिक सौंदर्य की झांकी मिलतीहै, अपितु यहाँकी कृषि उपज, उद्योगों, तथा ऊर्जा स्रोतोंके विषयमें भी उपयोगी ज्ञान प्राप्त होताहै। इस प्रदेशके तीर्थों, मन्दिरों, उनके माहात्म्य और इतिहास तथा किम्वदन्तियोंका भी ज्ञान होताहै।

परन्तु जब पुस्तकको सर्वांग सम्पूर्ण बनानेके प्रयत्न में तालिकाबद्ध जानकारी दी जाने लगतीहै, जैसे कि पृष्ठ ४८ पर: लिखो बेटी, ऐवरैस्ट २९०२८ फुट, कंचनजंघा २८१४६ फुट, नंदादेवी २५६६० फुट, कामेत २५४४७ फुट, आबी गामीन २४१३० फुट, चौखम्बा २३४९० फुट, त्रिशूल त्रिशूल २३४०६ फुट, दून्नगिरि २३३२४ फुट, केदारनाथ २२७७० फुट, नंदा कोटि २२५२० फुट, मेरु २१९७८ फुट, गंगोत्री २१८९० फुट, त्रिशूल ईस्ट २१८५८ फुट, नीलकंठ २१७७० फुट, शिवलिंग २१४५३ फुट, नंदाघुटी २१२८६ फुट और बन्दरपूंछ २०८४६ फुट है, दी गयीहै, तो पुस्तक यात्रा वृतान्त न रह कर भूगोलकी पुस्तक बन जाती है। इस प्रकार अन्य कई प्रसंग हैं, जो वर्णनके स्वाभाविक प्रवाहमें नहीं आये, अपितु संकलनके लिए थोपे गये प्रतीत होतेहैं। बचेन्द्री पालका प्रसंग भी ऐसाही है। बचेन्द्री पाल वर्णनका रोचक विषय हो सकतीहै, परन्तु उसके लिए उचित पीठिकाभी तो बनानी चाहिये। अमुक आदमीने हमें बताया, कह कर आगे इतिहास या भूगोलकी पूरी पुस्तक तो नहीं उतारीजां सकतीं। इसमें प्रसंगके अनुसार कितना विवरण देना उचित होगा, इसका निर्णय लेखकको ही करना होगा। पाठक तो पढ़कर केवल अपनी राय बनायेंगे कि वह विवरण ठीक रहा या नहीं।

डॉ. कुमुदको कविताका शौक है, इसलिए पुस्तक में अनेक स्थानोंपर संस्कृत तथा हिन्दी और उर्दू की सूक्तियां उद्धृत की गयीहैं, जैसे नामदेवजीका यह दोहा।

नाना वर्ण गवा, उनका एक वर्ण दूध
तुम कहांके ब्राह्मण, हम कहाँके सूद।

कुछ पहाड़ी लोकगीत भी पुस्तकमें हैं; जैसे

झूरी नी लाणी, झूरी साबी दी बुरी
सांसो फिरो मानो भीतरी जिशी कोयला छुरी।
या देशां देशां ना शोभला देश कुल्लू रा प्यारा
आसे सै फुलै रे डोलहरु ए बगीचड़ो म्हारा।

कुल मिलाकर पुस्तक रोचक है और पाठकको घर बैठेही हिमाचलके रमणीय प्रदेशोंकी सैर करा देती है। ▭

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाली स्थान

विज्ञापनके लिए

आमन्त्रण है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'पुरस्कृत भारतीय साहित्य

'प्रकर' के "पुरस्कृत भारतीय साहित्य" विशेषांक वार्षिक-श्रृंखलाके अबतक बारह अंक प्रकाशित हो चुकेहै। इसके साथ पूरक रूपमें नवम्बर ९३ अंक भी प्रकाशित है। भारतीय साहित्यमें समग्र रूपसे जिस प्रवृत्तिके दर्शन होते हैं, उसके अन्तर्गत उसमें अपनी प्रादेशिक और क्षेत्रीय विशिष्टता होते हुए भी मूलतः समग्र भारतीय साहित्यकी एकात्मक अन्तश्चेतनाके दर्शन होतेहैं और अन्तःस्फूर्तिके समान स्रोत प्रबल रूपसे उभरकर दृष्टिगोचर होतेहैं। यह भी लक्षित किया जा सकताहै कि समग्र भारतीय साहित्य राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक प्रभावों एवं रूप-शैली-शिल्प, चिन्तन (बहुधा वादग्रस्त चिन्तन) यूरोपसे प्रचुर और आन्तरिक रूपसे प्रभावित है।

न हिन्दी, न अन्य भारतीय भाषाओंके साहित्यका इस दृष्टिसे योजनाबद्ध रूपमें अध्ययन प्रस्तुत हुआ है। उसके भारतीय साहित्यपर चेतनात्मक प्रभावकी सामान्य चर्चा भी नहीं हुई। फिरभी, 'प्रकर' संभावित अध्ययनकी चेतनाको जागृत करनेके लिए इन विशेषांकोंके माध्यमसे प्रयत्नशील है।

अबतक पूरक अंक सहित इन बारह विशेषांकोंमें विभिन्न भारतीय भाषाओंके ग्रन्थोंपर जो समीक्षा-सामग्री प्रस्तुत हुईहै, उनकी संख्या इस प्रकार है :

भाषा	ग्रन्थ संख्या	भाषा	ग्रन्थ संख्या	भाषा	ग्रन्थ संख्या
असमी	१०	डोगरी	१०	मराठी	१३
उड़िया	१३	तमिल	१३	मलयालम	१०
उर्दू	३	तेलुगु	११	मैथिली	१२
कन्नड़	१३	नेपाली	९	राजस्थानी	१२
कश्मीरी	६	पंजाबी	११	संस्कृत	९
कोंकणी	११	बंगाली	९	सिन्धी	११
गुजराती	१४	मणिपुरी	१२	हिन्दी	३५

सभी अंकोंकी कुल पृष्ठ संख्या : १३०० कुल समीक्षित ग्रन्थ २२७

इन ग्रन्थोंकी समीक्षाओंसे विदेशी साहित्यके स्पष्ट, प्रबल और गहरे (अनेक बार प्रचारात्मक) प्रभावका जिस रूपमें साक्षात्कार होताहै, वह हिन्दी तथा भारतीय भाषाओंकी गहरी अनुकरणी-प्रवृत्तिका संकेत है। साहित्यिक दृष्टिके साथ वैज्ञानिक विश्लेषणके लिए यह सामग्री सहायक है।

१९८३ से अबतक प्रकाशित 'पुरस्कृत भारतीय साहित्य' विशेषांकोंके पृथक्-पृथक् मूल्य इस प्रकार है : ८३—२०.०० रु.; ८४—२०.००; ८५—२०.००; ८६—३०.००; ८७—३०.००; ८८—३०.००; ८९—३५.००; ९०—३५.००; ९१—३५.००; ९२—४०.००; ९३—४०.०० रु.; नवम्बर' ९३—१०.००; ९४—४०.०० रु.।

अध्ययन और शोधकी दृष्टिसे यह सामग्री प्रत्येक पुस्तकालयमें संग्रहणीय है।

सभी बारह अंकोंका डाकव्यय सहित मूल्य : ३७५.०० रु.

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार : मुद्रक : संगीता कम्पोजिंग एजेंन्सी द्वारा रायसीना प्रिंटरी चमेलिया रोड, दिल्ली-६।

प्रकाशन स्थान : ए-८/४२ राण प्रताप बाग, दिल्ली-७ दूरभाष : ७११३७६३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकर

वैशाख : २०५२ [विक्रमाब्द] :: अप्रैल : १९९५ [ईस्वी]

आम्बेडकर और उनका साहित्य

[ले. : डा. हरिश्चन्द्र]

अज्ञेय चेतना के सीमान्त

[ले. : ज्वालाप्रसाद चेतन, समी. : डा. रामदेव शुक्ल]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अंक सामग्री

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आम्बेदकर और उनका साहित्य	१	डा. हारश्च
संस्मरण		
स्मृति शेष—शिवपूजन सहाय	५	डा. मूलचन्द सेठि
शोध : अध्ययन		
अज्ञेय : चेतनाके सीमान्त—डा. ज्वालाप्रसाद खेतान	८	डा. रामदेव शु
आद्य बिम्ब और गोदान—कृष्ण मुरारि मिश्र	११	डा. वीरेन्द्र
बीसवीं शतीकी कहानीका समाज-मनोवैज्ञानिक अध्ययन— डा. महेशचन्द दिवाकर	१३	डा. मदनमोहन त
भाषा विज्ञान एवं दिशाएं		
ऐतिहासिक भाषा विज्ञान और भारतका भूगोल [अंश : ३, खण्ड-३]	१५	डा. राजमल वो
सन्त-साहित्य : परिचय		
सुन्दर सवैया ग्रन्थ—डा. रमेशचन्द्र मिश्र	२१	प्रो. महेन्द्रकुमा
सुन्दर पदावली—उपर्युक्त	२२	डा. कृष्णबिहारी मि
डा. मिश्रका सन्त-साहित्य विषयक अध्ययन		डा. कृष्णदत्त पालीवा
उपन्यास		
और पसीना बहता रहा—अभिमन्यु अनत	२३	डा. कृष्णचन्द्र गु
दीक्षान्त—सूर्यबाला	२७	डा. मदनमोहन त
जलकुंभी—मधुर कमल	३०	डा. सूर्यनारायण रणगु
काव्य		
सपना अभी भी—धर्मवीर भारती	३१	डा. मूलचन्द सेठि
विश्व काव्यके विद्रोही स्वर—सम्पा., अनु. रणजीत	३५	डा. वसन्त चक्रव
कैकेयीका मनस्ताप—रंजना वर्मा	३७	डा. रामानन्द श
कहानी		
दूत—मंजुल भगत	३८	डा. भगीरथ बड़ो
इतिहासके नूपुर—आनन्द शर्मा	४१	डा. विजय कुलश्रे
नाटक		
प्रतिबिम्ब और आत्मकथा—महेश एलकुंचवार	४३	डा. भानुदेव शुक्ल
विविध		
व्रजनिधि : वनश्री— डा. हर्षनन्दिनी भाटिया	४५	डा. वेदप्रकाश अमिता
सूरज चमके सारी रात—डा. कुमुद	४७	श्री विरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोध, अध्ययन,
विवेचन-समीक्षा
की मासिक पत्रिका

प्रकर

सम्पादक
विद्यासागर विद्यालंकार

सहयोग
प्रकाशवती

वर्ष : २७ अंक : ४
वैशाख : २०५२ अप्रैल : १९९५

शुल्क

देशमें

आजीवन	१०००.००
वार्षिक	१००.००
एक प्रति	१०.००

विदेशमें

समुद्री डाकसे	२५०.००
विमान सेवासे	४८०.००

'प्रकर' मासिक
ए-८/४२, राणा प्रताप बाग,
दिल्ली-११०००७
दूरभाष : ७११ ३७ ६३

शुल्क बैंक-ड्राफ्ट अथवा मनिआर्डरसे 'प्रकर' के नामसे ही भेजें. दिल्लीसे बाहरके चैक स्वीकार करनेमें असमर्थ रहेंगे.

पुस्तकालय
दि०.....

आम्बेदकर और उनका साहित्य

आठ वेदियोंकी प्रदक्षिणा

—डा. हरिश्चन्द्र

डा. भीमराव रामजी आंबेडकरके विचार-वैभवकी आठ ग्रन्थाकार बानगियोंको उनको टटोलकर रपट देनीहै। कठिनाई यह है ऐसी बहियोंकी प्रासंगिकता स्मारकोंकी छाया-चित्रावलियों जैसी रह गयीहै। इनकी खूबी बस इतनी है कि ये बीते कालकी यादें ताजा करा देतीहैं, जो तलछट घी की तरह गंधाताथा, और अब बदले परिवेशमें विशेष प्रयोजनीय नहीं रहाहै। अतीतके घटना-चक्रको इतिहासके सम्भरणार्थ परिरक्षित कियाजा सकताहैं परन्तु उसे कथा-सुमिरनके समय देखना पड़ेगा, वैसे अभ्याससे सामाजिक सम्बन्ध जुड़तेहैं या टूटते, पारस्परिक सौमनस्य बढ़ताहै या घटता। इसके अतिरिक्त किसी वैचारिक सम्पदाकी गुण-ग्राहकता तबतक सम्भव नहीं हो पाती, जबतक उसके संचयकी परिस्थितियोंका खाका भी सामने न धरा हो। ध्यातव्य है आंबेडकर कोरी व्यक्ति-पूजाके विरोधी थे, जबकि भारतमें वही राष्ट्रधर्म बनता जा रहा है। चार धाम और चार तीर्थोंकी यात्राकी जायेगी, लेकिन शुरूआत पृष्ठभूमि-पूजनसे होगी।

आंबेदकरका जन्म हिन्दुओंकी महार उपजातिमें हुआथा, जो अछूत समझी जातीथी। होश सम्भालते ही आंबेडकरको अस्पृश्योंकी असमर्थताओं और सवर्णोंसे मिलनेवाली अवमाननाओंका अनुभव करना पड़ा। शृंखलाबद्ध दुर्व्यवहार से उत्पन्न टीसने उनके मनोमस्तिष्कमें स्थायी डेरा डाल दिया। उनकी प्रकृति विद्रोही, दृष्टि कटाक्षपूर्ण, वाणी तिक्त, लेखनी अम्लीय और चेष्टा एकांगी होती गयी। उच्च शिक्षा और उत्तुंग आसन पाकर भी वे संतुष्ट न हो सके। उन्हें अपने वर्गकी दुर्दशा निरंतर कचोटती रहतीथी। वे धर्मदूतकी भाँति उसके उद्धारमें जुट गये, परन्तु तुरन्त फल-प्राप्तिकी कामनाके साथ। आनन-फ़-आनन वह व्यथित स्थिति सुधर नहीं सकतीथी। वह सदियों पुरानी व्याधि थी। सामाजिक दुराचार जब रूढ़ हो जाताहै, तो उसके उन्मूलनमें समय लगताहै। आशु उपचारकी ललकमें आंबेडकरने स्वराज्य-तंत्रकी अवहेलना कर, सुराज-मंत्र और आंग्लभैरव यंत्रका नुस्खा अपनाया। आत्म-निर्णयका अधिकार पानेके लिए उद्योगशील कांग्रेस उन्हें मात्र पोंगापंथी ब्राह्मणोंकी स्वार्थी टोली नजर आयी। ब्राह्मण-समाजसे वे आरम्भसे बहुत विदकतेथे। उससे वे जितने उपेक्षित हुएथे, उससे कई गुने तिरस्कार-भावसे आगे चलकर उसे देखने लगेथे। लगता है। उनके धैर्यका बांध टूट गया, और निराश होकर वे उन कुटिल तत्त्वोंके हाथोंमें खेलने लगे, जो सब्ज बाग दिखाकर उनकी भूमिकासे स्वाधीनता-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आन्दोलनमें विघ्न डलवाना चाहतेथे। विधान मण्डलोंमें अल्पसंख्यकोंका प्रतिनिधित्व आरक्षित होनेके साथही मुस्लिम नेताओंने अछूतोंको हिन्दुओंसे पृथक् करनेकी गहरी चाल चली, और अंग्रेज शासकोंको उसमें शामिल कर लिया। उसके पीछे भाव यह था कि चतुर्थ वर्ण और अस्पृश्योंके हिन्दू समाजसे विलग होते ही हिन्दू और मुस्लिम स्थानोंका संख्यात्मक अंतर नगण्य हो जायेगा, और अंग्रेज-मुस्लिम गठबंधन फिर आज़ादीकी मांग करनेवाली तथाकथित हिन्दू कांग्रेससे अच्छी तरह निपट लेगा। अमीरअलीने अछूतोंके राजनीतिक प्रतिनिधित्वका प्रश्न पहले-पहल उठायाथा, और सन् १९ ९ में लंदन जाकर उसकी वकालत कीथी।

आंबेदकरका स्मरण करतेही गांधी अनायास मूर्त्त हो उठतेहैं। ये दोनों राजनीतिके क्रीड़ा-स्थलपर अनेक दशक तक गेंद खेलते रहे, प्रायः प्रतिद्वन्द्वी बनकर, एकाध बार सहयोगी होकर भी। कौन किससे बढ़कर खिलाड़ी था, आँकनेसे कोई लाभ नहीं। इतना जरूर हैं कि गाँधीके झूमरों (फ़ैन्स) की संख्या अपेक्षाकृत अधिक रही। विवादग्रस्त होकर पारी खेलनेकी ख्याति लगभग समान मात्रामें दोनों कौतुकियोंने अर्जित की। इनके बीच हुई एक परख-भिड़न्त (टेस्ट-मैच) का उल्लेख प्रबोधक होगा। आंबेदकर पहले गोलमेज सम्मेलन (नवम्बर १९३०) में दलित समुदायके एक प्रतिनिधिके रूपमें धाक जमाकर स्वदेश लौटे। पुरस्कारस्वरूप बम्बई महाप्रान्तकी सरकारने विधान परिषद्में उनका मनोनयन कर दिया। दूसरे सम्मेलनमें भाग लेने को पोतारोहणके एक दिन पूर्व (१४ अगस्त १९३१ को) वे गांधीसे मिलने गये। आंबेडकरने प्रथम गोलमेज सम्मेलनसे दलितोंको मिलनेवाले राजनीतिक प्रतिनिधित्वपर उनकी प्रतिक्रिया जाननी चाही। गांधीने बिना झिझकके जतला दिया वह अछूतोंको हिन्दुओंसे अलग करके राजनीतिक अधिकार देनेकी किसी आत्मघाती पेशकशका समर्थन नहीं कर सकते। आँबेदकर अपनासा मुंह लिये लौट आये। दूसरे गोलमेज सम्मेलन (सितम्बर १९३१) में गांधी भी लंदन पहुंचे। उसमें अल्पसंख्यकोंके हितोंकी रक्षाके नामपर जो बंदर-बांट-नामा प्रस्तुत हुआ, उसके दलित-खण्डपर गांधीने घोर आपत्ति की, और कड़े शब्दोंमें कह दिया वे अस्पृश्योंको सवर्णोंसे विलग करके उन्हें सदा-सदाके लिए अछूत वर्गीकृत किये जानेका समर्थन नहीं कर सकते। प्रस्तावके सर्वमान्य न हो सकनेपर ब्रिटिश प्रधानमंत्रीने उसे अपने शासनके विवाचनार्थ लम्बित कर दिया।

जिन्हें सेंत-मेंतमें हाथ लगनेवाली पतंगके, डोरसे विच्छिन्न न होनेकी आशंका हुई, उन्होंने जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाये, और ध्यानाकर्षक चिल्ल-पोंसे काम लिया। दौड़-धूप और कहनी-अनकहनी रास आयी। ४ अगस्त १९३१ को पंचाट उद्घोषित हुआ। उसमें दलितोंके निर्वाचन-समूह पृथक् कर दिये गये। गाधीने लिखित प्रतिवाद किया। ब्रिटिश प्रधानमंत्रीने उसे महत्त्व नहीं दिया। गांधी यरवदा जेलमें नज़रबंद थे। वे उपवास पर बैठ गये (२० सितम्बर १९३२)। खलबली मच गई। तू चल – मैं चल होने लगी। दलितोंके कई नेताओंने संयुक्त मतदानकी परिपाटीको जारी रखनेकी मांग की। आंबेदकर साम्प्रदायिक अधिनिर्णयके अश्वनाली चुम्बकसे चिपके रहे। दोनों महारथी हठी स्वभाव के थे। अड़ गये तो अड़ गये। तेजबहादुर सप्रूने लचीला दिमाग पायाथा। उन्होंने उभय पक्षोंके चारित्रिक लक्षणोंका मिलानकर एक सूत्र खोज निकाला। उसके अनुसार संयुक्त निर्वाचन-पद्धतिके यथावत् रहने पर कुल १७४८ स्थानोंमें दलितोंको मिलनेवाली ७२ सीटोंके बजाय दूनीसे भी अधिक १४८ जगह उपलब्ध करायी जा सकतीथीं। गांधीने चट हां कह दी, और आंबेडकरने पट सुझाव मान लिया। दोनों ध्रुव घड़ी भरको समीप आ गये। २५ सितम्बर १९३२ को पूना समझौता हस्ताक्षरित होकर ब्रिटिश प्रधानमंत्रीको लागू करनेके लिए संसूचित कर दिया गया। अगले दिन उसकी राजकीय विज्ञप्ति हो गयी।

किन्तु दलितोत्थानकी कार्य-शैलीको लेकर आंबेदकर और गांधीके बीच जो दरार पड़ चुकीथी, वह पटी नहीं, उत्तरोत्तर चौड़ी और गहरी होती गयी। आबेदकर सोचतेथे पृथक् निर्वाचन-पद्धतिसे वंचित होकर वे पंगु हो गये। गांधी चिंतित थे जब अपनेही गैरोंका-सा व्यवहार करनेपर उतर आये, तो परायों से क्या उम्मीद की जाये। आंबेदकर, गांधी और उनकी कांग्रेसके अछूतोद्धारकी प्रगतिसे संतुष्ट नहीं थे। उन्हें उसमें प्रदर्शन अधिक और प्रतिपालन कम दिखायी देताथा। वे समझतेथे धंसी बद्धभूमिकी लीपापोतीसे दलित वर्गको लुभाया जा रहाथा। मैथिलीशरण गुप्तने लिखा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पन्न हो तुम प्रभु-पदोंसे, जो सभीको ध्येय हैं।
तुम हो सहोदर सुरसरीके, चरित जिसके गेय हैं।
(भारत-भारती—भविष्यत् खण्ड, ८३)।

उस सुनियोजित अभियानको वे प्रवंचन-पर्वसे समीकृत करते गये। गांधीका लक्ष्य था राष्ट्रको स्वाधीन कराना, और स्वतंत्र होकर आंतरिक झमेलों का कारगर संवैधानिक समाधान ढूंढ़ना। आंबेदकर अपने सजातीयोंकी दयनीय स्थिति-परिवर्तनके लिए तत्काल कोई चमत्कार चाहतेथे। उस मनोरथ-पूर्तिके लिए उनसे जो उपाय जान पड़ा, उन्होंने किया। यहां तक कि जब "अंग्रेजो भारत छोड़ो" का नारा सारे भारतमें गूंज रहाथा और राज्य शक्तिका निर्मम-निरंकुश प्रयोग आजादी मांगनेवालोंपर हो रहाथा, आंबेदकर ब्रिटिश महाराज्यपालकी शासी-परिषद्में श्रम-सदस्यकी भूमिका निबाहने दिल्ली चले गये। गांधी कारावासीथे। क्षोभके क्षणोंमें एक दिन कह ही गये "वह (आंबेदकर) मेरा हमेशा विरोधी रहाहै। वह मुझे मार भी डाले तो मुझे अफ़सोस न होगा।" (मेरे समकालीन, पृ. १२१)।

जैसे-तैसे देशने पराधीनतासे मुक्ति पायी। गांधी की उसी कांग्रेसने, जिसके आंबेदकर अनवरत आलोचक रहेथे, उन्हें संविधान सभाके सूत्र-संचालक एकादशका सदस्य और संविधान प्रारूपण अष्टछापका मुखिया बनाया। और तो और केन्द्रीय सरकारमें विधिमंत्री के पदपर नियुक्त करवाया, भलीभांति जानते हुए कि संविधान सभामें वह अपने गृह-राज्य बम्बईसे असफल होकर, बंगालसे मुस्लिम लीगके समर्थनपर पहुंचेथे, और लीगके निर्वाचित सदस्य एकजुट होकर उस सम्मान्य सदनका बहिष्कार किये हुएथे। कांग्रेसको अपनी लाज बचानीथी। आंबेदकरकी बांह पकड़नेसे बढ़कर क्या उपाय हो सकताथा? ३० जनवरी १९४८ को गांधी परलोक सिधारे। देश-विदेशमें बसे प्रायः सभी मित्रों और शत्रुओं (यदि कोई थे) ने उनके बलिदानपर अपने-अपने ढंगसे खेद प्रकट करते हुए श्रद्धांजलि अर्पित की। उसी नगरीमें जहां गांधीका प्राणांत हुआ, वास करते हुए आंबेदकरने अपने चिर-सखाकी स्मृतिमें टूटे-फूटे दो शब्द कहना भी गवारा नहीं किया। शायद घड़ियाली आंसू बहाना उन्हे नहीं आताथा।

यदि आप चुनावमें प्रत्याशीको जीत उसकी फ़ौजी लोकप्रियताका कोई संकेतक होती हैं, तो निस्संकोच लिखना पड़ेगा आंबेदकरको वह कभी नसीब नहीं हुई। उन्होंने किसी सामान्य निर्वाचन अथवा उपचुनावमें विजय प्राप्त नहीं की। सदनमें जब कभी प्रवेश किया तो बैसाखीके सहारे, या पृष्ठ-द्वारसे होकर। भारतकी निर्वाचन-प्रणाली आरम्भसे कुटिल रहीहै।

समकालीन भारतीय राजनेताओंमें आंबेदकर सबसे विद्वान्, मेधावी, गम्भीर और कर्तव्य-निष्ठ व्यक्ति थे। पर वह शीर्ष-स्थानसे दूर रह गये। उनके एक प्रशंसक चतुरसेन शास्त्रीने अपने आत्मकथ्य 'यादोंकी परछाइयां' में लिखाहै—"मैं समझताहूं डाक्टर आंबेदकरमें भारत के राष्ट्रपति होनेकी योग्यता थी। यदि वे अछूतोंका प्रतिनिधित्व स्थान देते, और समूचे भारतीय राष्ट्र जनपदका प्रतिनिधित्व समष्टिमें करते, तो उन्हें भारतीय राष्ट्रपतिका पद मिलता, जिसके वह प्रकृत अधिकारी थे।" (पृ १८६)।

भारतके श्रम विभागमें आंबेदकरके एक वरिष्ठ सहयोगी शामधारीलाल आई. सी. एस. ने 'द सिविल सर्वेंट इन इंडिया' में व्यक्त कियाहै "वह-(आंबेदकर) निस्संदेह एक महान् राजनेता बन जाते यदि उनमें वह कटुता न होती, जो उचित होनेपर भी नियन्त्रणके बाहर रहतीथी।" पृ. १८)

आंबेदकरकी तुलनामें अनुसूचित जातिके दूसरे नेता कामराज कहीं बौने, किन्तु व्यापक दृष्टि-सम्पन्न थे। वह १९७६ में भारतरत्नके सर्वोच्च राष्ट्रीय अलंकरणसे सम्मानित हो गये। आंबेदकरको १९९० तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। यह भी नहीं कहा जा सकता यदि १९८९ में विभिन्न आकार-प्रकार और मत-लतके राजनीतिक दल मिलजुलकर शिवजीकी बारातका राष्ट्रीय प्रेक्षा-गृहमें सफल मंचन न कर पाये होते, तो उस वर्ष भी आंबेदकर भारतरत्न होनेके गौरवसे विभूषित हो ही जाते। कामराजका निधन १९७५ में, और आंबेदकर का १९५६ में हुआ। उस कालका राजनीतिक ग्रह-योग अभूतपूर्व और विलक्षण था। सधूम सूत्रों, प्रकल्पित प्रमेयों और बबूलके बीज-मंत्रोंसे प्रशासनके नये गणित की आधारशिला रखी गयी। संयोगसे १९९१ में आंबेदकरकी जन्मशती-पूर्तिका मुहूर्त निकल आया। वाहवाही लूटनेके लिए उस स्वर्णिम अवसरका भरपूर उपयोग किया गया।

आंबेदकरके व्यक्तित्व और कृतित्वको सरकारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संरक्षणमें उजागर करनेका संकल्प भी तभी हुआ। फिर क्या था, प्रकाशनोंकी बाढ़ सी आ गयी। 'प्रकर' को समीक्षार्थ-प्राप्त सामग्री उसी आप्लावनकी देन है। अफ़रा-तफ़री और छीना-झपटीके वर्तमान वातावरणमें लगभग सभी राजनीतिक महंत (परम गांधीवादी भी) आंबेदकरका नाम-संकीर्तन करनेमें लगेहै। इस बातकी प्रतिस्पर्द्धा है कि किसकी भजन मण्डली पंचम स्वर साधनामें आसंदीपर अधिक समय तक टिक पातीहै। नाड़ीविद् नेताओंको अहसास हो चुकाहै "आंबेदकरं शरणं गच्छामि, बाबा साहबं शरणं गच्छामि, दलित मसीहां शरणं गच्छामि" के शुक-पाठ किये बिना भिक्षामें उन्ह निर्णायक मत नहीं मिल सकते। और बे नहीं मिले, तो उनके मठ उजड़ जायेंगे, उनकी अप-जीविका खटाईमें पड़ जायेगी। माया तेरे तीन नाम : परसी, परसा, परसराम।

परन्तु यह पल्ले नहीं पड़ता कि आंबेदकरके सुयश की काव्य-कुण्डिलियोंमें गांधीके अपमान-अवमूल्यनकी तुकें किसलिए भिड़ाई जा रहीहै। क्या यह प्रयास आधुनिक 'टू इन वन कल्चर' का विस्तार है। 'वृत्त विहार' में संकलित जैनेन्द्रकुमारके ये विचार (पृ. ५९) शायद कुछ कामके हों— "हरिजनका प्रश्न लीजिये। आंबेदकर उनके सर्वोच्च नेता रहे। वह वर्ग उनकी पूजा करता है। पर हरिजन-उद्धारमें गांधीका योगदान किसीसे कम नहीं है। इस प्रश्नपर उन्होंने जानकी बाज़ी लगा दी थी, और उस वर्गके पृथक् निर्वाचनको मान्यता नहीं होने दियाथा। गांधी सवर्ण थे, और आंबेदकर महोदय जैसा आत्मीयताका दावा उनका नहीं हो सकताथा। फिरभी वह दावा उनका था, ओर उसकी प्रामाणिकता में किसी शंकाकी गुंजायश नहीं है। पर उस दावेका प्रकार दूसरा था। वह लौकिकसे अधिक आत्मिक था, और उसमें लाभ लेनेकी जगह वृत्ति अर्पित होनेकी थी।" ▭

इस प्रारम्भिक भूमिकाके बाद आगामी अंकसे डा. आम्बेदकरकी आठ पुस्तकोंकी समीक्षाएं क्रमशः तीन अंकोंमें प्रकाशित की जायेंगी। ये पुस्तकें हैं : १. स्वराज्यकी दिशा २. शूद्र कौन थे ३. अस्पृश्यः कौन और क्यों ४. अस्पृश्यता ५. डा. आम्बेदकरके विचार ६. डा. भीमराव आम्बेदकरके सामाजिक विचार ७. डा. आम्बेदकर : समाज वैज्ञानिक ८. डा. आम्बेदकरकी दृष्टिमें मुस्लिम कट्टरवाद।

पठनीय ग्रंथ

आलोचना

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य—सम्पा. महेन्द्र भटनागर	सजिल्द	६०.००
	विद्यार्थी संस्करण	४०.००
अन्धायुग : एक विवेचन—डा. हरिश्चन्द्र वर्मा (पुरस्कृत)	सजिल्द	५०.००
	वि. सं.	३०.००
छायावाद : नया मूल्यांकन—प्रो. नित्यानन्द पटेल	सजि.	५०.००
'प्रकर' : विशेषांक [पुरस्कृत भारतीय साहित्य' के १२ अंक, भारतीय साहित्य : २५ वर्ष, अहिन्दीभाषियोंका हिन्दी साहित्य, अन्य विशेषांक]		३७५.००

नाटक

देवयानी—डा. एन. चन्द्रशेखरन् नायर	२५.००
श्रेष्ठ एकांकी—डा. वासुदेवनन्दन प्रसाद	२५.००

'प्रकर' कार्यालय

'प्रकर, ए-८/४२ राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवपूजन सहायके संस्मरण : हिन्दी साहित्यका "टुकड़ा-टुकड़ा इतिहास"[1]

—डा. मूलचन्द सेठिया

आधुनिक हिन्दी साहित्यके विकास और भाषाके परिशोधनमें शिवपूजन सहायका अपूर्व योगदान रहाहै। उनका 'देहाती दुनियां' हिन्दीका प्रथम आंचलिक उपन्यास माना जाता है और 'मुण्डमाल' एवं 'कहानी का प्लाट' जैसी अनेक जीवन्त कहानियां उनकी लेखनीसे प्रसूत हुईहैं। अपनी जीवनगत परिस्थितियोंके कारण वे अपनेको सृजनात्मक साहित्य तक सीमित नहीं रख सके और पत्रकारिताको अपने जीवन-निर्वाहका साधन बनानेके लिए बाध्य हुए। परन्तु, पत्रकारिताको आपने व्यावसायिक स्तरसे ऊपर उठाकर अपने जीवनका मिशन बना लिया और 'मतवाला' 'माधुरी' 'गंगा' 'जागरण' 'हिमालय' 'नई धारा' और 'साहित्य' जैसी अग्रगण्य पत्रिकाओंके सम्पादन-कालमें आपको अनेक सहयोगी साहित्यकारोंके संस्मरण लिखनेका सहज सुयोग प्राप्त हुआ। 'स्मृति शेष' में संकलित अधिकांश संस्मरण संस्मृत साहित्यकारोंके मरणोपरान्त उन्हें श्रद्धांजलि समर्पित करनेके लिए सम्पादकीय टिप्पणियोंके रूपमें लिखे गयेहैं। इन पचहत्तर साहित्यकारोंमें प्रथम कवि 'ईश' और अन्तिम दिवाकर प्रसाद विद्यार्थी हैं और इनके मध्य हिन्दी प्रदेशकी एक शताब्दीसे भी दीर्घतर कालावधिकी साहित्यिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का सहज समाहार हो गयाहै। शिवपूजन सहायने वाणी-मन्दिरमें आरतीके दीपोंकी जो यह माला संजोयीहै, उसमें पं. मदनमोहन मालवीय, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, कवि 'रत्नाकर', पुरुषोत्तमदास टण्डन, महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्यामसुन्दर दास, चतुरसेन शास्त्री और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जैसे महान् साहित्यकारोंकी जीवन-ज्योतिकी जगमगाहट सम्मिलित है। एक अन्य कोटि उन सरस्वती पुत्रोंकी है जिन्होंने पत्रकारिता, इतिहास, पुरातत्व, दर्शन और भाषा-विज्ञान आदि साहित्येतर क्षेत्रोंको अपने प्रतिभा-प्रकाशसे आलोकित कियाहै। इनमें से कई शब्द साधक अपने युगके प्रमुख हस्ताक्षर होते हुएभी आजके पाठकोंके लिए अज्ञातनाम हो गयेहैं। लेखकने सभी साहित्यकारोंके प्रति समान श्रद्धा रखते हुए भी अपनी रुचि और प्रवृत्तिके आधारपर किन्हींको गिने-चुने शब्दों में अपनी भावाञ्जलि अर्पित कर दीहै तो किन्हींके स्नेह-स्मरण और गुणानुवादमें वे इतने तन्मय हो गयेहैं कि पृष्ठपर पृष्ठ लिखते चले गयेहैं। अमृतलाल चक्रवर्ती, शिवनन्दन सहाय, अक्षयवट मिश्र 'विप्रचन्द्र', सकल-नारायण शर्मा, ईश्वरीप्रसाद शर्मा, वृजनन्दन सहाय, रूपनारायण पाण्डेय आदि साहित्यकारोंके सम्बन्धमें उन्होंने समर्पित भावसे पूरे विस्तारके साथ लिखाहै।

शिवपूजन सहाय शब्द प्रयोगके प्रति अतिशय सावधान रहते हुएभी कलमके जादूगर थे। शुद्धताके साथ सौन्दर्यका भी उन्हें पूरा ध्यान रहताथा। उनकी भाषामें ठहराव नहीं, बरसाती नदीका-सा तेज बहाव था। उन्हें दो-चार रेखाओंसे ही पूरा चित्र अंकित कर देनेकी योग्यता और अभ्यास था। उनके ऐसे चित्रांकन और चरित्रांकनमें इतनी प्राणवत्ता और गतिशीलता होतीथी कि वे पाठकके स्मृति-पटपर अमिट रूपसे अंकित हो जातेथे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रका यह रेखाचित्र उनके व्यक्तित्वको उनकी पूरी जिन्दादिली और मौज-मस्तीके साथ प्रस्तुत करताहै :

"...हजारों पेज लिखा भी और संसारके अन्यान्य सुखोंका उपभोग भी किया। सम्भवतः प्रत्येक क्षण आनन्दमें ही बिताया। साहित्य-निर्माणसे छुट्टी मिली तो चित्र-संग्रहमें लग गये। उससे अवकाश मिला तो संगीत-सरितामें बह चले। कभी नाटक खेल रहेहैं, कभी

---

१. 'स्मृति शेष'--प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, १ बी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १८७; डिमा. ९४; मूल्य : १००.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताश-शतरंज-चौपड़ । कहीं सभामें व्याख्यान दे रहेहैं, कहीं, कवि समाजमें साहित्य-पूर्तियां सुना रहेहैं । मित्रों में बैठ गये तो हंसीके फव्वारे छूटने लगे, बालकोंमें मिल गये तो पूरे कुंवर कन्हैया बन रहे ।' भारतेन्दु युग तो जैसे जिन्दादिलीका उफनता हुआ झरना ही था; परन्तु द्विवेदी-युगके साहित्यकारोंने भी जीवनके अभावोंकी चिलचिलाती हुई धूपमें नंगे पांवों चलकर भी अपने अन्दरकी हरियालीको सूखने नहीं दियाथा । अपने मन की मस्तीके कारण सूखे टुकड़ोंको भी शराबमें भिगोकर खानेका उनका एक अनोखा अन्दाज था । ईश्वरीप्रसाद शर्माका स्मरण करते हुए वे लिखतेहैं "वैसे मस्ताने साहित्यकार अब दीख नहीं पड़ते ।" प्रसिद्ध उपन्यास-कार किशोरीलाल तनसे वृद्ध होते हुएभी मनसे चिर-युवा थे । "कोई वृद्ध साहित्यिक उनके जैसा जिन्दादिल देखनेमें नहीं आया ।" कवि 'नवीन' का एक पैर बाहर तो दूसरा जेलके अन्दर रहताथा, फिरभी 'उनमें सदा उमड़ती रहनेवाली एक विचित्र मस्ती थी ।" तभी तो उन्होंने प्रलय और प्रणयके गीत एकही सुरमें साधेथे ।

राजनीतिक और सामाजिक संघर्षके उन तूफानी दिनोंमें साहित्यकारोंके लिए न यूनिवर्सिटीकी कुर्सियां थीं, न आकाशवाणी और दूरदर्शनकी गद्दियां । जी-तोड़ मेहनतकर एक-एक पैसा कमातेथे तो चोटीका पसीना बहकर एड़ी तक आताथा । परन्तु, जीवनके प्रति उनका ऐसा आनन्दवादी दृष्टिकोण था कि उसके रस की आखिरी बूंद तक निचोड़ लेना चाहतेथे । 'मनोरंजन' के सम्पादक ईश्वरीप्रसाद शर्माके लिए शिवपूजन सहाय लिखतेहैं 'वस्तुतः विनोदी भी वे अव्वल नम्बरके थे । तरह-तरहके चुटकुले, लतीफे, हंसीके नुस्खे हर वक्त जबानकी छोरपर तैयार—हंसते-हंसते पेट फुला देते थे ।' परन्तु, इस वक्तव्यके साथ एक और वाक्यको भी मिलाकर पढ़ना होगा "एक टुटपूंजिया फक्कड़ गृहस्थ होकर भी वे दो साल तक 'मनोरंजन' की झांझरी नैया कैसे खेते रहे, यह हमीं जानतेहैं ।" शिवपूजन सहायने स्वयं अत्यन्त संयम और साधनाका जीवन व्यतीत किया था, उनका पूरा जीवन ही एक तप्त मरुस्थलके समान था । सम्भवतः यह भी एक कारण है कि मौज-मस्ती का जीवन व्यतीत करनेवाले अपने साथियोंके जीवनकी आनन्द आराधनाको उन्होंने क्षतिपूरकके रूपमें चाहभरी नजरोंसे देखा और सराहा । परन्तु, उनके सामने तस्वीर का एक यही पहलू नहीं था । उन्होंने अमृतलाल चक्रवर्ती के जीवनको भी निकटसे देखाथा, जो 'वृन्दावनके सोलहवें सम्मेलनके सभापति तो चुन लिये गयेथे, पर पासमें पैसे नहीं थे कि वहां जाने योग्य कपड़े बनवायें । जमीनमें बिछी हुई एक पुरानी दरीपर शीतलपाटी सोने-बैठनेके लिए, न जाने कबका एक पुराना कम्बल ओढ़ने के लिए । सम्मेलनके ही एक और सभापति थे, पं चन्द्रबली पाण्डेय, जो अलोना भोजन करतेथे और अंकुरित चने और मूंगके अतिरिक्त और कुछ न खाते थे । इन्हीं तपस्वी साधकोंकी सेवा और समर्पणके बल पर हिन्दी सिर उठाकर खड़ी हो सकीथी । शिवपूजन सहायने अपने समकालीन साहित्यकारोंको जीवनके हर रंगमें देखा और अपने संस्मरणोंमें उनका रंगारंग चित्रण कियाहै ।

'स्मृति शेष' में विभिन्न साहित्यकारोंके व्यक्तिगत संस्मरण संकलित किये गयेहैं परन्तु उन्हें सत्तावनकी राज्यक्रान्तिसे लेकर स्वातन्त्र्योत्तर भारत तक व्याप्त हिन्दी भाषा और साहित्यके संघर्ष और निर्माण युगका 'टुकड़ा-टुकड़ा इतिहास' भी कहा जा सकताहै । इन साहित्यकारोंकी 'आपबीती' में पिछले सौ-सवा सौ बरसोंके हिन्दी क्षेत्रकी 'जगबीती' भी समायी हुईहै । कलकत्तामें आयोजित हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अधि-वेशनका विवरण एक अध्यायमें स्वतंत्र रूपसे भी प्रस्तुत किया गयाहै, किन्तु डा. श्यामसुन्दरदासके संस्मरणमें उनकी ही अध्यक्षतामें आयोजित सम्मेलनके प्रयाग अधिवेशनके मंचपर उपस्थित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', महावीरप्रसाद द्विवेदी, हास्य रसावतार जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी और स्वयं श्यामसुन्दर दासके रंग-ढंग और सजधजका जैसे मुंह बोलता वर्णन उपस्थित किया गयाहै । शिवपूजन सहायने कलकत्ता के 'मतवाला-मण्डल'में रहकर बंगभूमिकी हिन्दी पत्र-कारिता और साहित्य-साधनाके जो सजीव चित्र अंकित कियेहैं, वे पुस्तकके निर्जीव पृष्ठोंकी पकड़से बाहर निकलनेके लिए कसमसाते हुए-से प्रतीत होतेहैं । खेद है कि इन 'स्मृति-शेष' साहित्यकारोंमें कविवर जयशंकर 'प्रसाद,' महाप्राण 'निराला' और 'उग्र' के संस्मरण नहीं है, हालांकि ये तीनों लेखकके परम आत्मीय थे और उनके जीवनकालमें ही स्वर्गस्थ हुएथे । 'निराला' और 'उग्र' उनके मतवाला-मण्डलके साथी थे और शिवपूजन सहाय जब कभी बनारसमें होते तो 'सुंघनी साहू' (प्रसाद) की नारियल गलीवाली दुकानकी साहित्य-गोष्ठीमें

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियमित रूपसे उपस्थित होतेथे।

कुल मिलाकर, 'स्मृति-शेष' के माध्यमसे हिन्दी साहित्य संसारका जो चित्र प्रस्तुत हुआहै, वह 'आग' और 'राग' के बीचसे गुजरती हुई दुनियांका चित्र है। आजकीं संविधान सम्मत राजभाषाको ही कोई नहीं पूछता तो उस अंग्रेजी राजमें तो हिन्दी और हिन्दीवालों के लिए सारे रास्ते बन्द थे। परन्तु, ये संस्मरण पुकार-पुकार कर कहतेहैं कि उस संघर्ष युगमें हिन्दी साहित्य-कारोंकी जेबें भले ही खाली रहीहों, उनके दिल और दिमाग राष्ट्र और राष्ट्रभाषाके प्रति सेवा-समर्पणकी भावनासे भरे हुएथे। अपने अभावग्रस्त और संघर्ष-संकुल जीवनमें उन्होंने कभी पूंजीपतियों और सता-धारियोंके सामने अपना सिर नहीं झुकाया। उनके लिए हिन्दीकी अस्मिताका संघर्ष राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्रामका ही एक अविभाज्य अंग था और हिन्दी सेवा राष्ट्र-सेवा का ही पर्याय था। माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और किशोरीदास वाजपेयी हिन्दीके सिपाही होनेके साथ ही राष्ट्रीय स्वतंत्रता-संग्रामके भी सेनानी थे। अभी हिन्दी सेवियोंको अपनी राष्ट्रभारतीके लिए और भी कई मोर्चोंपर लड़नाहै और ये प्रेरक संस्मरण उन्हें अपने संघर्षमें शक्ति और स्फूर्तिका सम्बल प्रदान करेंगे।

शिवपूजन सहाय उस युगकी प्रसूति रहेहैं जो भाषा और शब्द-प्रयोगकी शुद्धताके प्रति अतिरिक्त रूपसे आग्रही रहाहै। आपने लिखाहै कि अक्षयवट मिश्र कहते थे रईस लोग लड्डू और पेड़ोंको छीलकर खातेथे और हम लोग रात-दिन शब्दोंको ही छीलकर खातेहैं।' वे लोग मानो शब्द विचारके व्यसनी थे। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदीके बारेमें शिवपूजन सहायने लिखाहै "शायद ही कोई ऐसा शब्द मिले, जो द्विवेदीजीने न तराशा हो।" 'स्मृति शेष' के रचनाकारने शब्दोंको तराशा ही नहीं है, उनकी नक्काशी भी कीहै। दो-चार शब्दोंमें ही उन्होंने कई बातोंको ऐसे समेट लियाहै, मानो गागरमें सागर भर दियाहो। दो-चार वाक्य नमूनेके तौरपर पेश किये जा रहेहैं—

"यदि यह कहा जाये कि हिन्दी टण्डनजीकी सांस है, तो अत्युक्ति न होगी।"

"वे बात बनाते नहीं, बात संवारतेथे। बात-बातमें करामात पैदा करनेकी कलामें पारंगत थे।"

कवि 'रत्नाकर' जी के शरीरका जैसा डीलडौल था, हृदय उससे कहीं अधिक विशाल था।'

पं. ज्वालादत्त शर्माके सन्दर्भमें शिवपूजन सहायने लिखाहै "बड़ी ग्लानिका विषय है कि हिन्दीके अनेक पुरातन साधक-सेवक अपने साथ ही साहित्यिक संस्मरणों को लेते चले गये।" हमें कमसे कम शिवपूजन सहायसे यह शिकायत नहीं हो सकेगी। उन्होंने अपने संस्मरणों के माध्यमसे हमें हिन्दी भाषा और साहित्यकी एक शती व्यापी विकास यात्राके अनेक मोड़ों और पड़ावोंकी ओर झांकनेका अलभ्य अवसर प्रदान कर दियाहै। उनके इन संस्मरणोंको सुसम्पादित रूपमें प्रस्तुत कर मंगलमूर्तिने पितृ ऋणका शोध ही नहीं कियाहै, हम सबको अपना आभारी बना लियाहै।

विशेष निवेदन

'प्रकर' अपने प्रारम्भ कालसे अब तक कभी आत्म-निर्भर नहीं रहा, परिणामतः 'प्रकर' को निरन्तर संकटोंका सामना करना पड़ता है। इस स्थितिसे निपटनेके लिए 'प्रकर' की स्थायी निधि बनानेका प्रस्ताव किया गया है जिसके लिए हम सभी वर्गोंसे अनुरोध कर रहेहैं कि वे 'प्रकर' की इस निधिमें न्यूनतम १०००.०० रु. अथवा इसकी गुणक राशि प्रदान कर 'प्रकर' को अस्थिर जीवनसे मुक्त करने के लिए सहयोग प्रदान करें। आशा है इस निवेदनका स्वागत करते हुए 'प्रकर-निधि' की स्थापनामें सहयोग प्रदान कर आजीवन सदस्यता स्वीकार करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोध : अध्ययन

अज्ञेय : चेतनाके सीमान्त[1]

लेखक : डा. ज्वालाप्रसाद खेतान
समीक्षक : डा, रामदेव शुक्ल

प्राय: दिखताहै कि एक व्यक्ति है। उसके स्थूल-सूक्ष्म अंग हैं। इसी प्रकार मन, बुद्धि, चित्त, अह'कार भी हैं, जिन्हें एक भी माना जाताहै और सूक्ष्म अन्तरके साथ अलग-अलग भी पहचाना जाताहै। 'विनय पत्रिका' में तुलसीदास कहतेहैं—

विटप मध्य पुतरिका सूत मँह कंचुकि बिनहि बनाए,
मन मँह तथा लीन नाना तनु प्रकटत अवसर पाए ॥

वृक्षके भीतर लकड़ीसे बननेवाली असंख्य आकृतियां छिपीहैं। बढ़ई और कलाकार उन्हें उजागर करते हैं। सूतमें अगणित प्रकारके वस्त्र छिपेहै। उन्हें बुनकर दर्जी और फैशन डिजाइनर उजागर करतेहैं। ठीक वैसे ही व्यक्तिके एक मनके भीतर असंख्य शरीर छिपे होते है। ये शरीर अवसर पाकर प्रकट होते रहतेहैं। मनसे निकलकर शरीरोंको अविश्वसनीय आचरण करते हुए संसारमें प्रतिक्षण देखा जाताहै। एक व्यक्तिके ही कुछ समयके आचरणको पूरा देखने समझनेका अवसर मिले तो मनके भीतर छिपे रहनेवाले तनके कितने रूप दिख जायेगे।

पश्चिमी मनोविश्लेषण विज्ञान चेतन, अर्द्धचेतन और अचेतनका भेद करके मनकी अगम गतियोंको समझनेकी चेष्टा करताहै। इस क्षेत्रमें फ्रायड, एडलर और युंगके कार्योंसे विश्वके असंख्य विचारक प्रभावित होते रहेहैं। इसी आधारपर साहित्यमें मनोविश्लेषणात्मक समालोचनाकी धारा गतिशील है।

साहित्य मानवीय मन और उसमें उपजे भावोंकी ही खेती करताहै, उन्हींका व्यापार करताहै, इसलिए साहित्यके स्रष्टाकी सृष्टि तक ही अपनेको सीमित न रखकर पाठक और समालोचक साहित्यके सूत्रोंको उघाड़कर उनके सहारे रचनाकारके मानस-लोक तक पहुंचनेके प्रयत्न करतेहैं।

आधुनिक हिन्दी साहित्यमें मनकी गहराइयोंकी यात्राको समर्पित रचनाकार 'अज्ञेय' विवादास्पद व्यक्तित्व रहेहैं। उन्होने गद्य और पद्यकी अनेक विधाओं में रचना करते हुए, सम्पादन करते हुए लम्बे समयतक रचनाकारोंको प्रेरित प्रभावित भी किया और अनेक विवादोंको जन्म भी दिया। सन् १९६० ई. के आसपास उभरते रचनाकार अज्ञेयको नकारकर स्थापित होनेका प्रयत्न करते देखे गये और अज्ञेयके प्रभामण्डलसे आत्मालोकित होनेके प्रयत्न करते भी देखे गये। अभी अज्ञेयका समग्र मूल्यांकन होनेको हैं।

डा. ज्वालाप्रसाद खेतान अध्यापनजीवी मसिजीवी और इसीलिए तथाकथित बुद्धिजीवी नहीं हैं। अज्ञेयको स्वीकार या अस्वीकार करके अपनेको स्थापित करनेकी चिन्तासे वे मुक्त हैं। विद्याका व्यसन उन्हें बिना किसी इतर उद्देश्यके साहित्य-चिन्तनमें लगाये रखताहै। स्वाभाविक है कि वे अज्ञेय और उनके साहित्यके प्रति आकृष्ट होते। डा. खेतानको 'अज्ञेयकी रचनामें काम-तत्त्व और उसकी परिणति' विषयपर १९७४ ई. में बम्बई विश्वविद्यालयसे पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त हुई उसके बाद अज्ञेय साहित्यमें उनकी रुचि बढ़ती चली गयी। मनोविज्ञान, दर्शन और साहित्यसे लगातार जुड़े रहनेवाले डा. खेतानकी प्रस्तुत कृति अज्ञेयके रचना-संसारमें चेतनाके सीमान्तकी तलाश करतीहै।

अज्ञेयकी रचनाओंमें डा. खेतान चेतनाके चार सीमान्त बतातेहै—१. चिन्तन, २. अनुभूति, ३. प्रेरणा और ४. व्यक्ति निरपेक्ष सृजन।

---

१. प्रका : विश्वविद्यालय प्रकाशन, विशालाक्षी भवन, चौक, वाराणसी-२२१००१ : पृष्ठ : २३०; डिमा. ९३; मूल्य : ८०.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेतनाके निर्धारणमें डा. खेतानने 'सीमान्त' शब्दको क्यों चुना ? बहुत उचित कारण है। स्वयं अज्ञेयने चेतनाके साथ इसका प्रयोग कियाहैं । अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'नदीके द्वीप' में अज्ञेय लिखतेहैं—"आत्माके नक्शे नहीं होते कि हम चट फैसला दे दें, इस सीमान्त के इधर स्वदेश, उधर विदेश, इधर पुण्य, उधर पाप, आत्माके प्रदेशमें सीमान्त हर क्षण, हर सांसके साथ बदल सकताहै, क्योंकि हर क्षण एक सीमान्त है।"

डा. खेतानकी पुस्तकके आठ अध्यायोंमें पहला संक्षेपमें मनोवैज्ञानिक आलोचनाके स्वरूप, उसकी प्रासंगिकता और उसकी सीमाओंका संकेत करताहैं। 'कोई भी रचना अचेष्टित आत्मकथा होतीहै'—नीत्शेके इस कथनसे लेकर फ्रायडके इस कथन तक पर विचार किया गयाहै कि 'कलाकृतिकी आधारभूमि मानस रुग्णता होतीहै।' टामस मानने न्यूरासिसके आधारको इस रूप में लिया कि 'न्यूरासिससे कला उसी प्रकार उत्पन्न हो सकतीहैं, जिस प्रकार सीपीसे मोती उत्पन्न होताहै।'

लेखकने कार्ल गुस्तेव युंगका स्मरण कियाहै जिनके अनुसार 'कला प्रतिभा अन्ततोगत्वा एक स्वतंत्र भावबन्ध हो सकतीहै, जिसके स्रोतके बारेमें हम कुछ नहीं जानते।' अज्ञेयकी भी स्पष्ट मान्यता है कि 'सर्जना प्रतिभाके पीछे अचेतनकी बहुत बड़ी भागीदारी होतीहै और इस भागीदारीको प्रत्येक कलाकार जानताहै। वह उसे चाहे सरस्वतीकी कृपा कहे, प्रेरणा कहे, चाहे अधिक वैज्ञानिक नाम दे; किन्तु सभी यह स्वीकार करतेहै कि श्रेष्ठतम रचना प्रक्रियामें अचेतनका बहुत बड़ा हाथ होताहै, जिसमें बाहरी या आन्तरिक घटनाएं उसके उन्मेषका निमित्त मात्र होतीहैं।

कलाकृति पाठकको 'अनुभूतियोंसे छुटकारा दिलाकर नहीं, वरन् आनन्दके मूल स्रोतोंकी पहचान कराकर आनन्द देतीहै। अज्ञेयकी इस मान्यताको उनके उपन्यास 'शेखर : एक जीवनी' में शेखरके वक्तव्यमें डा. खेतान खोज लेतेहैं। शेखरका विचार है कि "मैं अपने पहले बीते हुए असंख्य युगोंका निचोड़ हूं।··· प्राथमिक जीवनके उद्भवकी, और उससे उत्पन्न विभिन्न जातियोंके उद्भिज, अण्डज, स्वेदज और पिण्डज जीव जन्तुओंकी वसीयतकी छाप मुझपर है। पिछले करोड़ों वर्षोंमे निरन्तर उन्नत होती जा रही नृजातिके उच्चतम आदर्शोंका केन्द्रीभूत पुंज भी मैं ही हूं।"

डा. खेतान शेखरके उपर्युक्त कथनमें युंगके सामूहिक अवचेतनमें निवास करनेवाले आद्यबिम्बोंकी पहचान करनेका प्रयत्न करतेहैं। सेमेटिक संस्कृतियोंमें पुनर्जन्मका विचार नहीं है, इसलिए यूरोपीय विचारक इस प्रकारकी 'स्मृति' को सामूहिक अवचेतन और आद्यबिम्बके रूपमें पहचानतेहैं तो ठीक करतेहैं। भारतीय परम्परामें आत्माकी अमरता और पुनर्जन्मका विचार रीढ़के समान काम करताहै। इस सन्दर्भमें शेखरकी करोड़ों वर्षोंकी यात्राकी स्मृतिको भक्त कविकी इस 'स्मृति' में क्यों नहीं खोजा जाना चाहिये कि—

अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल।
कोटिक कला काहि दिखराई जलथल सुधि नहिं काल।

कोटि कोटि जन्मोंका नाच—जिनका देश-काल तक याद नहीं—चलता ही रहेगा—चलता ही रहेगा। तबतक चलेगा जबतक वह 'कारण' नहीं हट जाता। इसलिए आर्त भक्तकी कातर प्रार्थना है—

सूरदासकी सबै अविद्या दूरि करौ नन्दलाल।

भारतीय साहित्यमें अभिव्यक्त मानसको समझनेका प्रयत्न करते समय भक्तिकाव्यमें अभिव्यक्त 'मन' को छोड़कर केवल पश्चिमी सिद्धान्तोंके सहारे काम नहीं चल सकता।

डा. खेतान मनोवैज्ञानिक आलोचनाकी सीमाका भी संकेत करतेहैं यह कहकर कि "रचनाकी महत्ता उसकी साहित्यगत विशेषताओंके कारण होतीहै, जो मनोवैज्ञानिक आलोचनाका क्षेत्र नहीं हो सकती।'

दूसरे अध्यायमें युंग द्वारा बतायी गयी चार करण शक्तियों द्वारा चेतनाके संगठनका उल्लेख हैं। चेतनाको संगठित करनेवाली करण शक्तियां हैं—चिन्तन, अनुभवन, प्रेरण तथा संवेदन। अनेक रेखाचित्रोंके द्वारा लेखकने व्यक्तित्वके विकासको समझायाहै। अज्ञेयको चिन्तन प्रधान करण शक्तिवाला व्यक्ति मानकर डा. खेतान उनके पूरे लेखनको कालक्रमानुसार विभाजित करतेहैं।

१. चिन्तन प्रधान काल—१९३४-४६ तक है, जिसमें 'शेखर : एक जीवनी'के दोनों भाग आतेहैं और 'चिन्ता' नामक काव्य संग्रह आताहै।

२. अनुभवन प्रधान काल—१९४७ से ५८ तक है जिसमें 'हरी घासपर क्षणभर' 'बावरा अहेरी', 'नदी के द्वीप', और 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये' का प्रकाशन होता है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. प्रेरणा प्रधान काल हैं—१९५४ से ७५ तक, जिसमें 'अरी ओ करुणा प्रभामय', 'आँगनके पार द्वार', 'चक्रान्तशिला' भवन्ति अन्तरा, आदिका प्रकाशन होता है।

४. संवेदन प्रधान काल १९६१ से ७९ तक है, जिसमें भवन्ति, अन्तरा और शाश्वती जैसी रचनाएं आतीहैं।

५. व्यक्ति निरपेक्ष सृजनके अन्तर्गत 'चक्रान्त शिला' 'असाध्य वीणा' 'निःसंग ममेतर' और 'सागर मुद्रा' आदिको रखा गयाहै। इस विभाजनमें १९४६ से १९४७ तक समय छूट गयाहैं और १९५४ से ५८ तक तथा ६१ से ७५ तक की गणना एकाधिक बार है। यह विभाजन वर्ष क्रमसे न होता तो यह उलझन न होती।

लेखकने अज्ञेयकी चेतनाके विकासके चार चरणों के लिए चार रेखाचित्र भी प्रस्तुत कियेहैं, जो युंग द्वारा प्रयुक्त चित्रोंके आधारपर बनाये गयेहैं।

आलोचकने अज्ञेयके सर्जनात्मक साहित्यके गहन अध्ययनके साथ साथ उनकी चिन्तन सामग्रीका भी अवगाहन कियाहै। उनका उचित निष्कर्ष है कि "अज्ञेय का चिन्तन उनकी रचनाओंको परिभाषित करताहै तथा उनकी रचनाएं उनके चिन्तनको प्राथमिक अनुभूतिकी प्रामाणिकता प्रदान करतीहैं।···चिन्तन, रचना तथा व्यक्तिचेतनाकी रासायनिक एकता अज्ञेयके रचना-संस्कारका एक दुर्लभ आयाम है, जो मानव अनुभूतियों तथा सम्भावनाओंके नित नये सीमान्तोंको उजागर करती दिखायी देतीहै।" (पृ. १३)।

'प्रथम सीमान्त : बौद्धिकताका ताप' में लेखक के भीतर यौन वर्जना, उसका विस्तार और उसका तिरोभाव दिखानेका प्रयत्न करताहै। यहाँ भी फ्रायड, फेचनर, एलेनबरगर और युंगके जीवन और लेखनके आधारपर आद्यबिम्बों-चिरन्तन नारी और क्रान्तिकारी व्यक्तित्त्वके मुखौटों आदिके सहारे अज्ञेयके अन्तर्जगत्की यात्राका प्रयास किया गयाहै।

'द्वितीय सीमान्त : अनुभूतिका क्षण' की अन्तर्यात्रा होतीहै अज्ञेयके उपन्यास 'नदीके द्वीप' के सहारे। उपन्यासके चारों प्रमुख पात्रों भुवन, रेखा, गौरा और चन्द्रमाधवके व्यक्तित्वोंको रेखाचित्रोंके सहारे खोलनेका गम्भीर प्रयत्न करता हुआ आलोचक अज्ञेयके काव्य-संग्रहोंकी कुछ प्रसिद्ध कविताओंको खोलकर देखताहै। अन्तमें 'अपने अपने अजनबी' तक पहुंचकर आलोचक अज्ञेयकी उन मनोदशाओंका संकेत करताहै, जिनमें 'दूसरी दुनियाँ, पराभौतिक प्रतीतियोंकी दुनियां' की झाँकी उन्हें प्रश्नाकुल करतीहै—"कौनसी दुनियां? दुनियां है, कौन-सी दुनियां अधिक सच है, या दोनों सच हैं?'

पांचवां अध्याय है—'तृतीय सीमान्त : प्रेरणा प्रधान' इसे आलोचक 'पराभौतिक प्रतीतियोंका संसार' कहताहै। इसमें भी जलौन जैकोबीकी सार्वभौम अनुभूतियों, सामूहिक अचेतन और आद्यबिम्बोंवाली प्रसिद्ध स्थापनाके साथ अज्ञेयकी अन्तर्यात्राके पड़ाव खोजे गये हैं। इस अध्यायमें विश्वप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिकों, एल. एस. डी. के नशेमें इन्द्रिय-चेतनाके अतिचेतन अनुभवके व्याख्याताओं और विवादास्पद विचारक रजनीशके वक्तव्योंके प्रकाशमें अज्ञेयके अनुभव-संसारकी परख की गयीहै। चेतनाके विकासकी—युंग द्वारा व्याख्यायित चरम अवस्थामें 'आद्यबिम्ब-आत्मपद' को समझांनेके बाद 'भवन्ति' में अज्ञेय द्वारा अंकित दलाईलामा सम्बन्धी उनके स्वप्नकी व्याख्या की गयीहै। 'अन्तरा' में अंकित 'बहू' वाला स्वप्न भी उल्लिखित है।

इन दोनों स्वप्नोंकी आलोचनात्मक व्याख्याके बाद 'चक्रान्त शिला' से आरम्भ होताहै 'छठा अध्याय : व्यक्तिनिरपेक्ष सृजन'। घूमनेवाली शिला—कालके प्रवर्तनको संकेतित करती शिला 'चक्रान्त शिला' की कविताएं प्रार्थनाके शिल्पमें हैं। आलोचकका निष्कर्ष है —"व्यक्ति जीवनकी सन्ध्यामें अज्ञेयकी चेतना उस परिदृश्यको आत्मसात् करती प्रतीत होतीहै, जहां काल स्थिर हो जाताहै, सत्ता रह जातीहै "किसी अतिमानवीय अलौकिक परिव्याप्तिके बोधसे आप्यापित अन्तर्भव सत्य के उदयकी प्रतीक्षमाण।"

आठवें अध्यायमें अध्ययनका निष्कर्ष है—अज्ञेयकी काव्ययात्रा : कुण्ठासे कैवल्य तक।' अंतिम अध्याय 'अज्ञेयका चिन्तन : रचनात्मकताके सन्दर्भमें' आलोचक को इस निष्कर्ष तक पहुंचाताहैं कि 'व्यक्ति चेतना कालका अतिक्रमण करतीहै। इसीको अज्ञेयके समस्त-चिन्तन और रचनात्मक अनुभवका निष्कर्ष माना गया है।

परवर्ती अध्यायोंमें डा. खेतान 'आत्मपद' की तलाशमें जितना श्रम पश्चिमी मनोवैज्ञानिकों और एल. एस. डी. सेवन करनेवालोंकी प्रकाशमयी अनु-

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूतियों' और 'आद्यबिम्बों' के विश्लेषणमें करतेहैं, उतना कबीर और गोरखनाथके साहित्यमें बार-बार आये हुए 'गगन गुफा' जैसे बिम्बोंके विश्लेषणमें करते तो अज्ञेयकी मनीषा कुछ अधिक स्पष्टतासे व्याख्यायित हो पाती। अज्ञेयने हो सकताहै सन्त-सिद्ध और नाथ कवियोंका साहित्य बहुत गम्भीरतासे न पढ़ा हो और उनपर इनका सीधा प्रभाव न हो किन्तु अज्ञेयको भारतीय परम्पराके सूत्रोंको समझने सुलझानेकी जो ललक थी, उसे देखते संस्कार रूपमें इनके अप्रत्यक्ष प्रभावको नकार देनेके स्पष्ट कारण नहीं हो सकते।

पुस्तकके आमुखमें प्रसिद्ध विद्वान् और प्रतिष्ठित समालोचक आचार्य डा. रामचन्द्र तिवारीने सीधा प्रश्न कियाहै—"भारतीय अध्याय चिन्तनमें 'आत्मा' अवस्था त्रयमें—जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति—से असंग सब कर्मोंसे अलिप्त, अज, अक्षर, अमर, द्वैतरहित, सर्वतंत्र स्वतंत्र और पूर्ण है। इस 'आत्मपद' की उपलब्धिही 'आत्मपद लाभ' है। प्रश्न है कि क्या अज्ञेयको इस आत्मपदकी प्राप्ति हुईथी ?" (आमुख ६)।

डा. खेतानका निष्कर्ष है कि अज्ञेयको अलौकिक अनुभूतियां भारतीय आध्यात्मिक अनुभूतियोंके सन्निकट हैं। वे कहतेहैं "मानव चेतनाकी विकासशीलता पदार्थसे अपदार्थकी ओर है जो मानवजीवनका आध्यात्मिक पक्ष है। लौकिकता अपने चरम विकासके क्षणोंमें अलौकिकताका दर्शन कर शमित हो जातीहै। यही अज्ञेयकी रचना चेतनाकी आत्यन्तिक परिणति है।"

एक छोटा-सा प्रश्न मेरे मनमें उभर रहाहै—अध्यात्मके क्षेत्रमें कुछ उपलब्ध करनेका अर्थ होताहैं 'अहम्' से पूर्ण मुक्ति। इसका प्रमाण साधनाके क्षेत्रमें 'कुछ' उपलब्ध करनेवाले व्यक्तिकी 'रहनी' में साफ-साफ दिखायी पड़ताहै। 'कबीरसे लेकर रामकृष्ण परमहंस और रमण महर्षि तकका जीवन ज्वलंत प्रमाण है कि 'आत्मपदलाभ' के बाद व्यक्ति कितना सरल, सहज, शिशुवत् हो जाताहै। क्या 'अज्ञेय' की 'रहनी' में इसकी कोई झलक भी है ?

अपने निश्चिन्त विद्या-व्यसनमें डा. खेतानकी यात्रा 'अज्ञेय' को 'ज्ञेय' बनानेकी दिशामें पूर्ण हो, यही शुभकामना है। ▭

आद्यबिम्ब और गोदान[1]

लेखक : कृष्णमुरारि मिश्र
समीक्षक : डा. वीरेन्द्रसिंह

डा. कृष्णमुरारि मिश्रकी आलोचना-दृष्टि अंतः-अनुशासनीय है क्योंकि वे अपनी आलोचनामें भिन्न ज्ञानानुशासनोंका सहारा लेतेहैं और इस दृष्टिसे आद्यबिम्बों और मिथकोंका उनका विवेचन मिथकीय आलोचनाको 'गति' देताहै। इससे पूर्व वे मुक्तिबोध और नयी कवितामें आद्यबिम्बोंके संदर्भ और अर्थको विवेचित कर चुकेहैं। इस पुस्तकमें वे कविताके क्षेत्रको छोड़कर उपन्यास के क्षेत्रमें पदार्पण करतेहैं और इस प्रकार, वे आद्यबिम्बों के जातीय एवं वैयक्तिक संदर्भोंको औपन्यासिक संरचना में रेखांकित करतेहैं। आद्यबिम्ब जातीय अचेतनके मनः तत्त्व हैं और उनका सम्बन्ध तेजस ऊर्जासे है। लेखकने उनके कार्य-कारण सम्बन्धको युगपत् (बाह्य व आन्तरिक सामंजस्य) सिद्धांत (युग का) के समान मानाहै (पृ. २६-२७)। इस प्रकार, आद्यरूपात्मक प्रक्रियाओं की व्याख्या युगपत् सिद्धांतके द्वारा ही संभव हैं। लेखक ने इसी मतको स्वीकार करते हुए आद्यबिम्बका विवेचन कियाहै।

पुस्तकका दूसरा अध्याय "आद्यबिम्ब और उपन्यास" उस सैद्धांतिक आधारको प्रस्तुत करताहै जिसपर 'गोदान' का विवेचन आश्रित है। लेखकने नृतत्त्व शास्त्रीय मिथकीय आलोचना और मनोवैज्ञानिक मिथकीय आलोचना का विवेचन करते हुए यह ठीक कहाहै—कि मनोवैज्ञानिक मिथकीय आलोचना मूल्यांकन सापेक्ष है (जबकि नृतत्त्वशास्त्री ऐसा नहीं मानते) वह मात्र प्रयोगों तक सीमित नहीं है। (पृ. ३६)। दूसरा तथ्य यह है कि जैसे जैसे यह आलोचना सौंदर्यशास्त्रियों और आलोचकोंको आकृष्ट करती गयी वैसे-वैसे इसका क्षेत्र क्रमशः व्यापक होता गया। औपन्यासिक संरचनामें लेखकके अचेतन चित्तकी भूमिकाको नकारा नहीं जा सकता, अतः उपन्यासकी देश-कालबद्ध संरचना अंततः सामूहिक

१. प्रका. राधाकृष्ण प्रकाशन २/३८ अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १३९; डिमा. ९२; मूल्य : १२५.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अचेतनके दिक्-कालातीत आद्यरूपसे सम्बद्ध है। (पृ. ४०)। प्रेमचंदका 'आश्रम' उनके अचेतन मनका आद्य-बिम्ब है जो उनके उपन्यासोंमें हैं। यहां एक बात यह ध्यान देनेकी है कि आद्यरूप सामूहिक अचेतन मात्रके बिम्ब नहीं हैं अपितु वे व्यक्तिगत अचेतनसे भी सम्बद्ध हैं, व्यक्तिगत और सामूहिक दोनोंका सापेक्ष सम्बंध है। लेखककी दृष्टि इस तथ्यको अनजानेमें पृष्ठभूमिमें डाल देतीहै। दिक्-काल बिम्बमय होताहै, यही कारण है कि रचनाकार बिम्बोंकी सृष्टि करताहै जो भिन्न प्रकारके होतेहैं। आद्यबिम्ब इन्हींमें से एक प्रकार हैं जो कभी-कभी जातीय स्मृतिके गहरे रूपोंसे जुड़े रहतेहैं। लेखकने ऐसे आद्यबिम्बोंका सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया है। इस संदर्भमें उसने शीर्षकका आद्यबिम्बत्व और कथानकके आद्यबिम्बत्वका जो विवेचन कियाहै, वह मेरी दृष्टिसे एक नया परिदृश्य है। मातृबिम्बात्मक शीर्षक (जैसे कामायनी, गोदान आदि) इस तथ्यको प्रकट करते है कि रचनाकारके मानसमें आद्यरूप किस प्रकार अपने समयका अर्थ देतेहै और साथ ही जातीय ऐतिहासिक मानसको पुनः पुनः अर्थ देतेहैं। 'पुनर्नवा,' 'जल टूटता हुआ' आदि उपन्यासोंके शीर्षकोंको लेखकने इसी दृष्टि से विवेचित कियाहै। कथानकके आद्यरूपका सम्बन्ध लेखकने मायाके सृजन एवं विलय पक्षसे जोड़ाहै। यह अचेतनकी सृजन-ऊर्जा है जो विश्वके मिथकोंमें "दैवी शक्ति" का रूप रहीहै। (पृ. ५१)। कथानकके संयोजन में मातृ (माया आदि भी) तथा पितृबिम्बके अनेक आद्य-रूप कार्य करतेहैं जिसे लेखकने 'गोदान' के विशेष संदर्भ में विवेचित कियाहै। पुरुषमें मातृबिम्ब और नारीमें पितृबिम्बकी अनेक जटिलताए रहतीहैं जो ग्रंथियोंका निर्माण करतीहैं। उपन्यासमें ये ग्रंथियां (मातृ-पितृ) भिन्न रूपोंमें कार्य करतीहैं।

लेखकने 'गोदान' में 'गो' के आद्यबिम्बका जो विवेचन कियाहै, वह पूरे उपन्यासकी संरचनामें परिव्याप्त है। गायका बिम्ब जहां एक ओर सुखोंका प्रतीक है, वहीं वह माताके आद्यबिम्बसे सम्बन्धित है (पृ. ६७)। इसीसे गायको 'माता' नाम दिया गया। होरीके लिए गाय सुख देनेवाली 'वत्सला' भी है और मृत्यु देने वाली भयावह बिम्ब। यही कारण है कि उपन्यासमें 'गाय' का आद्यबिम्ब एक पूरी सांस्कृतिक परम्पराको प्रतीकीकृत करताहै। पर मातृबिम्बके सकारात्मक एवं नकारात्मक (मृत्यु) दोनों रूपोंको एक साथ चरितार्थ करताहै। गायका हत्यारा 'हीरा' होरीका ही प्रतिरूप है, उसकी छाया है। यह मातृबिम्बका नकारात्मक रूप है। (पृ. ७७-७८)।

लेखकने 'गोदान' को चेतन और अचेतनका बिम्ब माना है जो बाह्य संघर्षों और आंतरिक उद्वेलनोंसे गतिशील होताहै। होरीकी कथाके दूसरे सोपानमें चेतन अचेतनकी जीवन्त अभिव्यक्ति हुईहै। यहाँ धनिया (होरीकी पत्नी) का बिम्ब विद्रोहमूलक है जो प्रेम-चन्दके चित्तमें मायाके आद्यबिम्बका उद्दीप्त रूप है जो बिरादरी, पंचोंसे विरोध तथा झुनियाको आश्रय देनेमें चरितार्थ हुईहै। (पृ. ८३-८४) यह पूरा प्रसंग अत्यन्त प्रभावशाली है, और लेखकने उपन्यासकी अर्थवत्ता को एक नये संदर्भमें प्रस्तुत कियाहै।

लेखकने अपने विवेचनमें गोदानकी मूल संवेदना को किसानकी ऋणग्रस्ततामें मानाहै और साथही इसका कारण 'गो' को स्वीकाराहै (पृ. ९१-९२)। लेखक के अनुसार यह प्रेमचन्दकी बहिर्मुखी प्रवृत्ति है और गऊ मातृबिम्ब होनेके नाते, आतंरिक लालसा तथा बाह्य संघर्षके मध्य अपना स्थान रखतीहै। गऊका यह रूप लेखकने पूरे रूपमें उभारा नहीं है क्योंकि उसका विवेचनमात्र बाह्य यथार्थ तक सीमित होनेके कारण (केवल यही प्रसंग) इस पक्षकी ओर नहीं गयाहै जबकि गायको वह वत्सला रूपमें चित्रित कर चुकाहै। इसी प्रकार गोबर स्फीत अहंका विरोधमूलक बिम्ब है जो एक सीमा तक होरीका विलोम है।

इस विवेचनमें एक बात जो विचारोंको उत्तेजित करतीहै, वह है मार्क्सवाद और गांधीवादका सीमित सन्दर्भ। यह सही है कि प्रेमचन्दने मार्क्सवादको स्वी-कारा है, किन्तु यह विचारधारा उनके अचेतन चित् को पूरे रूपमें आकृष्ट नहीं कर सकी। अचेतनका सहयोग न मिल पानेके कारण प्रेमचन्दकी मार्क्सवादी व्याख्या संकुचित रहीहै। यही गोदानकी संरचनात्मक दोषोंके लिए उत्तरदायी है। (पृ. १०२)। इसपर लेखककी टिप्पणी है कि बहिर्मुखी होनेके कारण प्रेमचन्द किसीभी जीवन दर्शनको संपूर्ण रूपमें स्वीकार नहीं कर सके, अतः उनके अनेक उपन्यासोंकी संरचना शिथिल रह गयीहै। यह मत सही नहीं है क्योंकि अनेक बहिर्मुखी प्रवृत्तिवाले भी प्रतिबद्ध रहेहैं यथा रूसके कुछ लेखक तथा भीष्म

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहनी आदि। अतः मात्र बहिर्मुखी होनेसे संरचना शिथिल होतीहै, यह मत उचित नहीं है और न ही तार्किक। जन सामान्यकी शोषण मुक्ति और सुखमय जीवनकी कामनामें माताका आद्यरूप बिम्बित है (पृ १०३)—यह लेखकका कथन अवश्य मार्क्सवादके आद्यरूपकी व्यंजना करताहै।

गोदानकी भाषिक संरचना भी आद्यबिम्बात्मक है जो मुहावरे, किंवदंतियां तथा रूपकों आदिके प्रयोगमें आद्यबिम्बोंके निर्धारणमें है (पृ. ११०-११३)। गोदानकी भाषिक संरचनामें ऐसे प्रयोगोंकी एक लम्बी पंक्ति है जिसे लेखकने विवेचित कियाहै। यहां उसका पूरा विवेचन संभव नहीं है क्योंकि लेखकने कुछ ही ऐसे प्रसंगोंको दियाहै। यह अध्याय एक 'नये संदर्भको तो प्रकट करताहै पर उससे पूर्वके दो अध्याय जिनका संकेत ऊपर है वे अधिक सारगर्भित एवं विचारोत्तेजक है।

समग्रतः, कृति एक ऐसे नये आयामको प्रस्तुत करतीहै जो अंतःअनुशासनीय दृष्टिके द्वारा ही संभव हो सकीहै। इससे यह स्पष्ट होताहै कि लेखक किसी न किसी स्तरपर अंतःअनुशासनीय सरोकारके प्रति आश्वस्त है जैसाकि उसने इस पुस्तकमें स्वीकार किया है। ▭

बीसवीं शतीकी कहानीका समाज-मनोवैज्ञानिक अध्ययन[1]

लेखक : डा. महेशचन्द्र दिवाकर
समीक्षक : डा. मदनमोहन तरुण

प्रस्तुत ग्रंथ डी. लिट् की उपाधिके लिए स्वीकृत मूल शोध-प्रबन्धका 'परिष्कृत एवं संशोधित' संस्करण है। लेखकने अपने शोधका मूल कार्य—'बीसवीं शताब्दी पूर्वार्ध एवं उत्तरार्धकी हिन्दी कहानियोंका समाज-मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे तुलनात्मक अध्ययन'—शीर्षकके अन्तर्गत सम्पन्न कियाथा।

लेखकका यह शोधकार्य सात अध्यायों—भूमिका, हिन्दी-कहानी-साहित्यपर विभिन्न प्रभाव, सामाजिक व सांस्कृतिक निरूपण, मनोवैज्ञानिक निरूपण, समाज-मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, कहानियोंमें समाज-मनोविज्ञान एवं तुलना तथा हिन्दी-कहानीका आधुनिकतम स्वरूपमें सम्पन्न हुआहै।

'प्राक्कथन' में अपने शोधकार्यके लक्ष्यपर प्रकाश डालते हुए डा. दिवाकरने लिखाहै—"प्रस्तुत शोध-प्रबन्धका लक्ष्य यही है कि आधुनिक समाज-मनोविज्ञान की विभिन्न अध्ययन-पद्धतियों, कारकों एवं विचार-धाराओंके आधारपर हिन्दी कहानीका विश्लेषण, विवेचन तथा मूल्यांकन किया जाये।"

सामान्यतः शोधकार्योंकी भूमिकामें विषयगत अवधारणा, उसके सैद्धान्तिक पक्ष, अध्ययनकी सार्थकता एवं सीमाओंका निर्धारण करते हुए अपना गन्तव्य निश्चित किया जाताहै कि शोधकर्ताके पास अपने अनुसंधान-विषयका ठोस आधार हो और वह अतिकथन, न्यूनता अथवा अनावश्यक दिग्भ्रांतिसे अपनी रक्षा करते हुए मूल विषयपर अपना ध्यान निरन्तर केन्द्रित रख सके।

इस शोध-प्रबन्धका 'प्राक्कथन' इसके विभिन्न अध्यायोंकी परिचयात्मक टिप्पणी भर है, वह भूमिकाके गंभीर दायित्वोंका निर्वाह करनेमें असमर्थ है, विशेषकर ऐसी स्थितियोंमें जब शोध-विषय ज्ञानकी किसी साहित्येतर शास्त्रीय विधाके तुलनात्मक अध्ययनपर आधारित हो।

लेखकने 'भूमिका' का उपयोग उस वैज्ञानिक अथवा व्यवस्थित अध्ययन-पद्धतिके स्पष्टीकरणके लिए नहीं कियाहै जिसकी निश्चित एवं ठोस कसौटीपर शोध-सामग्रीका संग्रहण अथवा मूल्यांकन किया जाताहै। उन्होंने इस अध्यायमें समाज-मनोविज्ञानकी विभिन्न अध्ययन-पद्धतियों, कारकों एवं विचारधाराओंका भी विवेचन प्रस्तुत नहीं किया जिससे उनके अनुसंधान की योजनाका अनुमान लगाया जा सके।

'भूमिका' शीर्षकसे लिखित प्रथम अध्यायमें लेखक ने विभिन्न उपशीर्षकोंमें हिन्दी कहानीका इतिहास प्रस्तुत कियाहै, समकालीन आन्दोलनोंकी चर्चा कीहै तथा विभिन्न सामाजिक, ऐतिहासिक आदि आधारोंपर कहानीका वर्गीकरण कियाहै।

द्वितीय अध्यायमें हिन्दी-कहानीपर पड़नेवाले विभिन्न आन्तरिक एवं मुख्यतः पाश्चात्य प्रभावोंकी चर्चा की गयीहै। इन प्रभावोंके अध्ययनके अन्तर्गत लेखकने फ्रायडीय मनोविश्लेषण, अस्तित्ववाद, आदर्शवाद, प्रगतिवाद, यथार्थवाद, प्रयोगवाद आदिके प्रभावो

१. प्रका. : लोकवाणी संस्थान, शाहदरा, दिल्ली-९३। पष्ठ : ३२८; प्र. ब. ९२; मूल्य : २५०.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का विवेचन करते हुए सुविधानुसार हिन्दीकी बहुत सारी कहानियों एवं लेखकोंकी सूची भी दीहै। इसके साथही अध्यात्मवाद, सामाजिकता एवं वैयक्तिकता, राष्ट्रीयता एवं अन्तर्राष्ट्रीयता, नारी-स्वातंत्र्य, प्रेम एवं यौन भावना तथा भावक्षेत्रमें विद्रोह आदिका भी अध्ययन प्रस्तुत किथाहै।

तृतीय अध्यायके अन्तर्गत हिन्दी कहानीके सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्षोंका निरूपण है। यहां आदर्श समाज, स्वजाति प्रेम, राष्ट्रीयता, आध्यात्मिकता तथा नारीका महत्त्व लेखकके अध्ययनका मुख्य केन्द्र रहाहै।

चतुर्थ अध्यायमें हिन्दी कहानीका मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया गयाहै। कई अर्थोंमें यह महत्त्वपूर्ण अध्याय है क्योंकि सही अर्थोंमें लेखकने अपने शोधकार्यका सुनियोजित समारम्भ यहींसे कियाहै क्योंकि इसके पूर्वके अध्यायोंमें विषयका विवेचन समाज-मनोवैज्ञानिक की अपेक्षा समाजशास्त्रीय अधिक है।

पंचम अध्याय इस शोध.प्रबन्धके विषयको ध्यानमें रखते हुए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है जिसमें प्रथम बार लेखकने समाज-मनोवैज्ञानिक अध्ययन-पद्धतिका विवेचन करते हुए—संज्ञान, प्रेरणा, मूल प्रवृत्ति, संवेदना, चिंतन, मनोवृत्ति आदिके सन्दर्भोंमें हिन्दी-कहानीका विवेचन-विश्लेषण कियाहै।

छठा अध्याय—कहानियोंमें समाज-मनोविज्ञान एवं तुलना—शीर्षकसे लिखा गयाहै। इसके अन्तर्गत लेखक ने हिन्दी-कहानीपर समाज-मनोविज्ञानके प्रभावोंका अध्ययन करते हुए उसके सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक पक्षोंका विवेचन कियाहै।

सप्तम अध्याय इस शोध-प्रबन्धका अंतिम अध्याय है जो—'हिन्दी कहानीका आधुनिकतम स्वरूप' शीर्षक से लिखा गयाहै। लेखकने इस अध्यायमें सामाजिक, राजनीतिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवर्तनकी तीव्र प्रक्रिया से गुजरती हुई हिन्दी-कहानीके युगधर्मी व्यक्तित्वका विश्लेषण कियाहै तथा उसकी इन उपलब्धियोंके लिए समांज-मनोविज्ञानके प्रति आभार व्यक्त कियाहै। इस अध्यायका समापन इन शब्दोंमें किया गयाहै—"समाज-मनोविज्ञानकी अध्ययन-पद्धतियों, सिद्धान्तों, और प्रेरक कारकोंके प्रभावके फलस्वरूप स्थापित नवीन आयामोंने बीसवीं शताब्दी उत्तरार्धकी हिन्दी-कहानीके स्वभावको स्थापित हीं नहीं किया, अपितु उसे जीवन समाज और साहित्यका दूर तक अनौपचारिक माध्यम बना दिया। इस कहानीने प्राचीन आयामोंको बड़े ही साहस के साथ तोड़ दिया। वस्तुतः यह आश्चर्यकी बात है कि इतने दीर्घकाल (सन् १९०१ से १९८०) में हिन्दी-कहानीने स्वयंको केवल विकसित और स्थापित ही नहीं किया, बल्कि उसने कलात्मकताके समृद्ध सोपान भी छुए हैं और इस उपलब्धिका मूल श्रेय निःसन्देह समाज-मनोविज्ञानको है।"

पूरे शोध-प्रबन्धपर लेखकके परिश्रमकी छाप है परन्तु बार-बार ऐतिहासिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्थितियोंका करीब-करीब एकही प्रकारका विश्लेषण, कहानियों एवं लेखकोंकी बार-बार अनावश्यक रूपसे बड़ी-बड़ी सूची देना, एक ही कहानीके विभिन्न सन्दर्भों में कई बार उद्धृत करना, आदि कुछ ऐसी बातें हैं जिनसे बचाजा सकताथा।

इस प्रकारके शोध-कार्यमें कुछ असावधानियां बहुत खटकतीहैं—जैसे 'रोज' तथा 'ग्रेंग्रीन' अज्ञेयकी एक कहानीके दो शीर्षक हैं, परन्तु पृष्ठ सं. २८ पर उन्हें दो स्वतंत्र कहानियोंके रूपमें प्रस्तुत किया गयाहै। पृष्ठ २७० पर 'अकबरी लोटा' को अमृतलाल नागरकी कहानी बताया गयाहै, जबकि उसके लेखक अन्नपूर्णानन्द वर्मा हैं। ▭

कृपया ध्यान दें

अनेक पाठकों और संस्थाओंने 'प्रकर' का वार्षिक शुल्क भेजाहै, परन्तु कुछ स्थानोंसे पावती न मिलनेकी शिकायत आयीहै। निवेदन है कि जिन पाठकों और संस्थाओंको पावती न मिली हो, वे कृपया तत्काल सूचना दें जिससे पावती पुनः भेजी जा सके। कृपया अपनी ग्राहक संख्या लिखना न भूलें।

—व्यवस्थापक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान और भारतका भूगोल

[अंश : ३, खण्ड : ३]

[डा. रामविलास शर्माका भाषा-चिन्तन]

—डा. राजमल बोरा

भारतीय व्याकरण परम्परा और ऐतिहासिक भाषाविज्ञान

भारतकी व्याकरण परम्परा अति प्राचीन है और इस परम्पराका सम्बन्ध संस्कृत व्याकरणसे है। प्रधान नाम पाणिनिके व्याकरणका—अष्टाध्यायीका—है। इसीको आधार मानकर यह अध्याय लिखा गयाहै।

यह सत्य है कि अष्टाध्यायीमें संस्कृत भाषाका जैसा विवरण है, वैसा ग्रीक, लैटिन या अन्य किसी भाषाका विवरण उपलब्ध नहीं है। अष्टाध्यायीने आधुनिक भाषा-विज्ञानको बहुत प्रभावित कियाहै। भाषा-विज्ञान के प्रत्येक अंशपर उक्त व्याकरणका प्रभाव पड़ाहै। उन्नीसवीं शताब्दीका ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान और बीसवीं शताब्दीका विवरणात्मक भाषा-विज्ञान—दोनों ही अष्टाध्यायीसे प्रभावित हैं।

अष्टाध्यायीको विवरणात्मक भाषा-विज्ञानका ग्रन्थ ही नहीं अपितु उसे तुलनात्मक और ऐतिहासिक भाषा-विज्ञानका अद्वितीय ग्रन्थ भी कहाहै।

पाणिनिका समय ८०० ई. पू. के आसपास माना गयाहै। इस समयको स्वीकार कर लेनेपर व्याकरण-परम्पराका अनुमान करते हुए कहा गयाहै :

> "यदि ८०० ई. पू. तक एक प्रशस्त व्याकरण-परम्परा निर्मित हो चुकीहै, तो यह सहज अनुमेय है कि उसका प्रारम्भिक काल ८०० ई. पू. से काफी पहले होगा। इस प्रारम्भिक कालके अन्तर्गत हम अनेक प्रकारके भाषा सम्बन्धी चिन्तनका समय नहीं लेते; वह चिन्तन तो औरभी पुराना है। जिस व्याकरण-परम्पराने अपनी विश्लेषण विधि निश्चित कर लीहो, सूत्र शैलीका व्यवहार व्यापक रूपसे कियाहो, शब्दोंके वर्ग निश्चित कर लियेहों कि किसी वर्गका प्रथम शब्द कहनेसे विशेषज्ञोंको शेष शब्दोंका ज्ञान हो जाये, जिससे व्याकरणके ऐसे पारिभाषिक शब्द स्थिर कर लियेहों, जो सर्वत्र स्वीकृत हों, **ऐसी व्याकरण परम्पराका प्रारंभिक काल दूसरी सहस्राब्दी ई. पू. का उत्तरार्द्ध होगा। भारतकी व्याकरण-परम्परा कम-से-कम इतनी प्राचीन है।**" [तीसरा खण्ड, पृ. २६४]

पाणिनिने जिस संस्कृतके आधारपर व्याकरण लिखाहै, वह संस्कृत उत्तर वैदिक कालकी हैं। उसे महाकाव्योंकी संस्कृतके पहलेकी संस्कृत कहना चाहिये। रामकृष्ण गोपाल भण्डारकरका कहनाहै कि पाणिनिकी भाषा वेदोंके अतिरिक्त महाकाव्योंकी भाषा से भिन्न है। इस बातको डा. रामविलास शर्मा भी स्वीकार करतेहैं।

लेखकका कहनाहै कि बरोको पाणिनिकी भाषा और बादकी संस्कृतका भेद पहचाननेमें कठिनाई हुई, इसीलिए बरोने पाणिनिका समय चौथी शताब्दी ई. पू. माना है।

पाणिनिके व्याकरणकी कुछ विशेषताएं उजागर की गयीहै। जनपदीय भेदको पहचाननेके प्रयत्न कियेहैं। लिखा :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पाणिनि भाषाई भूगोल लिख रहेहैं या मानक भाषाका रूप स्थिर कर रहेहैं ?·· रूपों और प्रयोगों की विविधता, प्रत्येक नियमके साथ अपवादोंकी भरमार, नियमोंके बारेमें अन्य वैयाकरणोंके मतों का आदर, अष्टाध्यायीकी प्रमुख विशेषताएं हैं। पाणिनिके समयमें संस्कृत अन्तःजनपदीय भाषा बन चुकीहै, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु यह समय गण भाषाओंके समयके युगसे बहुत दूर नहीं है। पाणिनि अपने या किसी अन्यके जनपदकी भाषाका व्याकरण नहीं लिख रहे, वे अन्तःजनपदीय भाषा का व्याकरण लिख रहेहैं, और यह शिष्ट जनोंके सामान्य व्यवहारकी भाषा है, केवल ब्राह्मणोंके व्यवहारकी भाषा नहीं है। इसी कारण इसके व्यवहारमें जनपदीय भेद है। पाणिनि शिष्टजनों के प्रयोग-भेदको अस्वीकार नहीं करते; इसीलिए प्रयोग-भिन्नताको शब्दानुशासनमें शामिल करनेके लिए वे बहुत-से सूत्र बनातेहैं। यदि भाषा को स्थिर करनेके लिए अस्थिर (या अनस्थिर !) रूपोंको छांटना शुरू करते तो आठ अध्यायके बदले दो से काम चल जाता।" [तीसरा खण्ड, पृ. २६७-२६८]

वासुदेवशरण अग्रवालने पाणिनिकालीन भारतका भूगोल दर्शानेवाला मानचित्र दियाहै। उसमें आर्यभाषा परिवारका पूरा क्षेत्र आ जाताहै। दक्षिण भारतका भौगोलिक परिचय पाणिनिने नहीं दिया। संभवतः पाणिनिके समय तक [उत्तर वैदिक कालमें] संस्कृतका प्रसार दक्षिण भारतमें नहीं था। इस सम्बन्धमें जांच आवश्यक है।

पाणिनिने जिस समय व्याकरण लिखा, उस समय का संस्कृत वाङ्मय अब उपलब्ध नहीं हैं। संस्कृतके जो रूप जनपदीय क्षेत्रोंमें अलग-अलग थे, उनका समाहार पाणिनिने कियाहै। प्रचलित रूपोंका सर्वेक्षण पाणिनिने कियाहै। इसी विशेषताके सम्बन्धमें लिखाहै—

"यह प्रयोग शुद्ध है और यह अशुद्ध है, यह बतानेके लिए पाणिनिने सूत्र नहीं रचे; यहां ऐसा होताहै वहां ऐसा होताहै, यह बतानेके लिए उन्होंने सूत्र रचेहैं। सर्वत्र एक ही प्रयोग होताहै, यह स्थितिका एक पक्ष है; इसके बिना विभिन्न जनपदोंमें एक ही भाषा सामान्य संचार साधन बन नहीं सकती। पर इसके साथ ही जनपदोंमें प्रयोग विविधता है, यह स्थिति का दूसरा पक्ष है।" [तीसरा खण्ड, पृ. २६८-२६९]

पाणिनिके व्याकरणकी विशेषताएं बताते हुए **'लोकभाषाओंके विवेचनकी परम्परा'** शीर्षकके अन्तर्गत प्राकृतोंके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा गयाहै, उससे संस्कृत और प्राकृतके सम्बन्धका विवेचन ठीक-ठीक बतलाया नहीं जा सकाहै। प्राकृतको लोकभाषाएं मानना ठीक नहीं समझाहै। लिखाहै :

"जिस संस्कृतके आधारपर प्राकृतोंकी रचना हुईहै, उसमें जनपदीय विविधताकी अपेक्षा एकरूपतापर अधिक बल है। प्राकृतें यदि वास्तविक लोक-भाषाएं होतीं, तो उनके ध्वनितंत्र और रूपतन्त्रमें पाणिनि-भाषाकी अपेक्षा कहीं अधिक विविधता होती। यह विविधता लगभग वैसी होती जैसी आजकल जनपदीय भाषाओंमें दिखायी देतीहैं। मानक भाषाओंमें जो भिन्नता है, उससे अधिक जनपदीय भाषाओंमें है··यह भिन्नता और विविधता प्राकृतोंमें दिखायी देनी चाहियेथी। पाणिनि शिष्ट जनोंकी भाषाका व्याकरण लिख रहेथे, प्राकृतें तो लोकभाषाएं थीं किन्तु पाणिनिकी शिष्ट जनभाषाकी तुलनामें इनका मानक रूप औरभी स्थिर हो चुकाथा। **साहित्यमें प्राकृतोंका व्यवहार संस्कृतके विरुद्ध लोकभाषाओंका विद्रोह है, यह एक बचकानी मान्यता है। प्राकृतोंमें भाषाई विकासकी जानकारीके लिए जो सामग्री है, उसका सही उपयोग सही रूपमें तभी हो सकता है, जब पाणिनिकालीन भाषामें जनपदीय प्रयोग भिन्नता ध्यानमें रखें। वर्ना जो संस्कृतमें न मिले, वह सब देशज है। देशज और प्राकृतका भेद ही यह बताताहै कि प्राकृतका आधार संस्कृत है।"** [तीसरा खण्ड, पृ. २९०)

प्राकृत भाषाके सम्बन्धमें जो कुछ अंश ऊपरके अनुच्छेदमें उद्धृत हैं, उसपर पुनर्विचारकी आवश्यकता है। यहांपर डा. रामविलास शर्मा प्राकृतोंके सम्बन्धमें—उत्तरकालीन प्राकृत भाषाको आधार मानकर कहना चाहिये—जो कुछ कह रहेहैं, उसे वे लोकभाषा न मान-कर कह रहेहैं। पाणिनि जब व्याकरण लिख रहेथे, उस समयकी प्राकृतोंके सम्बन्धमें वे चुप हैं। पाणिनि जब व्याकरण लिख रहेथे, उस समयमें संस्कृत भौगोलिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपमें—किसी प्रदेश विशेषमें—बोलचालकी भाषा थी क्या ? इस बातकी जांच आवश्यक है। संस्कृतके साथ-साथ अलग-अलग प्रदेशोंमें [डा. रामविलास शर्माके शब्दोंमें गणभाषाओंके रूपमें] कौनसी भाषाएं प्रचलित थी ? क्या वे प्राकृतोंके अलग-अलग रूप [प्रादेशिक रूप में] नहीं थे। पाणिनिके समयकी प्राकृतोंके सम्बन्धमें कुछ भी बतलाया नहीं गयाहै।

गौतम बुद्धने प्राकृत भाषाका व्यवहार लोकभाषाके रूपमें कियाहै और वह पैशाची प्राकृत हैं [डा. श्रीधर व्यंकटेश केतकरका यही कहनाहै]। गौतम बुद्ध पालि प्राकृतमें नहीं बोलतेथे। जिन प्राकृतोंमें साहित्य मिलताहै, वह बहुत बादका है और उपलब्ध प्राकृत वाङ्मय संस्कृत वाङ्मयसे प्रभावित है। सत्य यह है संस्कृत स्वयं प्राकृतोंके बलपर विकसित हुईहैं, इस बातको प्रमाणित करताहै।

डा. श्रीधर व्यंकटेश केतकर कहतेहैं—

"कौन-कौनसे प्रदेशोंमें किन किन कारणोंसे प्राकृत वाङ्मयका विकास हुआ, इसका पूरा आकलन प्रस्तुत करना आज कठिन है। क्योंकि आज भी सम्पूर्ण प्राकृत वाङ्मयकी खोज कर ली गयीहै, यह कहना कठिन है।' वैदिक भाषा एक प्रकारकी प्राकृत ही है। उसीका संस्कार होते होते वह संस्कृतमें परिणति हुईहै। कुरु युद्ध [महाभारतका युद्ध] के कालमें शौरसेनी और मागधी—दोनों भाषाएं उत्तर हिन्दुस्तानमें तथा महाराष्ट्रमें महाराष्ट्री महत्त्वपूर्ण 'भाषाएं (प्राकृतके रूप) थीं। मागधीको महत्त्व प्राप्त होनेका कारण सूत-वृत्तोंका मागधीमें होनाहै। मागधोंका व्यवसाय भाटोंने बादमें स्वीकार कियाहै। उनके काव्योंके कारण मागधीको महत्त्व प्राप्त हुआहै। किन्तु सच्चाई यह है कि मागधी काव्य ठीक ठीक मगधकी भाषामें संवृद्ध न होते हुए शौरसेनीमें मागधोंकी ओरसे ही तैयार हुए, ऐसा प्रतीत होताहै और कवियोंकी वर्ग विशेषताओंके कारण, उनमें कुछ विकृतियां आयी हों और इसी प्रकारका वाङ्मय वररुचिको देखने को मिलाहो। इसीलिए वह मागधी भाषाको शौरसेनीकी विकृति समझताहै। पैशाची भाषाको प्रधान महत्त्व कैकेयोंकी विजयोंके कारण मिला हो।"[1]

डा. केतकरका कथन प्राकृतोंकी जानकारी ठीक-ठीक प्रस्तुत करनेवाला हैं। डा. केतकरका तो कहना यह है कि भरतमुनिके नाट्यशास्त्रका आधार प्राकृत वाङ्मय हैं। नाट्यशास्त्रका समय वे ई. पू. दूसरी शताब्दी बतातेहैं।[2]

संस्कृतका भौगोलिक प्रसार आर्यभाषा-क्षेत्रोंमें पाणिनिके समयमें ही हो गयाथा। संभवतः संस्कृत पाणिनिके समयमें दक्षिण भारतमें भौगोलिक प्रसार पा रही हो। इसके पुष्ट प्रमाणकी आवश्यकता है। किन्तु यह सत्य है कि पाणिनिके बादमें और गौतम बुद्धके काल तक संस्कृत भाषाका भौगोलिक प्रसार सुदूर दक्षिणमें हो गयाथा। गौतमबुद्ध और भगवान महावीरके समय तक संस्कृत भाषाका भौगोलिक प्रसार अखिल भारत वर्षमें हो गयाथा।

अष्टाध्यायीके सूत्रोंकी विशेषताएं डा. रामविलास शर्माने बतलायीहैं, वे बहुत ठीक हैं। इन विशेषताओंमें भाषा विज्ञानका महत्त्व स्थापित हुआहै। पाणिनिका व्याकरण रूढ़ न होकर गत्यात्मक और भाषाके प्रचलित रूपोंको [प्रयोगोंको ध्यानमें रखते हुए] अपनाकर चलने वाला है। व्याकरणोंके बलपर लिखा हुआ वह व्याकरण नहीं है। उसमें भाषाके व्यावहारिक रूपोंको स्थान दिया गयाहै। इस नाते वैदिक भाषासे पाणिनिके संस्कृत तक—संस्कृतके बदलते रूपोंकी पहचान की जानी चाहिये। ऐसी पहचान अभी भाषा विज्ञानके सिद्धान्तों के संदर्भमें नहीं हुईहै। डा. रामविलास शर्माने इस पहचानका प्रयत्न कियाहै।

पाणिनिके व्याकरण [अष्टाध्यायी] के बाद व्याकरण-परम्पराका विवेचन करते हुए पं. किशोरीदास वाजपेयी के शब्दानुशासन तक पहुंचेहैं। इस परम्परामें प्राकृतों के व्याकरणोंको छोड़ दिया गयाहै। अष्टाध्यायीके बाद तुरन्त दामोदर पण्डितके उक्ति-व्यक्ति प्रकरणपर आ गये। सत्य तो यह है कि प्राकृतके व्याकरणोंकी परम्परा भी है और इन व्याकरणोंके आधारपर आधुनिक भाषाओंका स्वरूप और भी स्पष्ट किया जा सकताहैं। ऐसा नहीं हुआहै। कम-से-कम वररुचिके '**प्राकृत-प्रकाश** पर कुछ तो लिखना चाहियेथा। डा. श्रीधर व्यंकटेश'

---

१. प्राचीन महाराष्ट्र, भाग दूसरा, श्रीधर व्यंकटेश केतकर, (मराठी पुस्तक), व्हीनस प्रकाशन पुणे, प्रथम संस्करण, अगस्त १९६३ ई., पृ. ६९।

२. वही—पृ. ७०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केतकरने उक्त व्याकरणको बहुत महत्त्वपूर्ण मानाहै और उसपर विस्तारसे लिखा भी है। इस परम्परामें पं. किशोरीदास वाजपेयीके शब्दानुशासनके सम्बन्धमें जो कुछ लिखाहै, वह ठीक है।

हिन्दी शब्दानुशासनके सम्बन्धमें डॉ. रामविलास शर्मा खुले हृदयसे लिखतेहैं :

"गर्वसे मैं किशोरीदास वाजपेयीका स्मरण करता हूं। वे भारतीय व्याकरण-परम्पराके श्रेष्ठ प्रतिनिधि हैं, पाणिनिकी विश्लेषण-पद्धतिका रचनात्मक उपयोग करनेवाले वे समर्थ भाषाशास्त्री हैं। उन्होंने हिन्दी भाषाका विवेचन करते हुए जो दृष्टिकोण अपनायाहै, वह केवल हिन्दीके लिए नहीं, समस्त भारतीय भाषाओंके विवेचनके लिए महत्त्वपूर्ण है।...**हिन्दी शब्दानुशासन**की स्थापनाओंको समझानेके लिए वार्तिक दरकार नहीं है, वह सरस हिन्दी गद्यमें रचा हुआ सुपाठ्य ग्रन्थ है। उसकी गद्य शैली वर्तमान परिस्थितियोंमें भाषाई विवेचनके लिए आदर्श है। सूत्रोंको बीजगणितका महत्त्व देकर, सूत्रोंसे या गणित-बीजगणितके फार्मूलोंसे, विवेचनको दुरूह बनाना वर्तमान काल में भाषा-विज्ञानकी प्रगतिको रोकनाहै। शैली-भेद के कारण **हिन्दी शब्दानुशासन** पाणिनिके **शब्दानुशासनकी** परम्परासे विच्छिन्न नहीं होता; वह उसका विच्छिन्न अंग है, वर्तमान परिस्थितियोंमें उस परम्पराका आवश्यक विकास है।' [तीसरा खण्ड, पृ. ३००]

हिन्दी शब्दानुशासनकी अनेक विशेषताएं सोदाहरण बतायी गयीहैं। विशेष बात यह कि हिन्दीके स्वरूपकी ठीक ठीक पहचान वाजपेयीजीने प्रस्तुत कीहै। लिखाहै :

मानक भाषाओंके विकासमें जो पेचीदा सामाजिक प्रक्रिया घटित होतीहै, उसमें यह अनिवार्य है कि मानक भाषा जनपदीय भाषातत्त्व ग्रहण करे। मानक हिन्दीकी आधार बांगरु ब्रजसे प्रभावित है, ब्रज अवधीसे। एक ओर ब्रज और दूसरी ओर बांगरु, दोनों अवधीसे कुछ तत्त्व ग्रहण करतीहैं, विवेचनकी यह भूमि **हिन्दी शब्दानुशासन**में विद्यमान है।" [तीसरा खण्ड, पृ. ३०५]

'हिन्दी शब्दानुशासन' को **'अष्टाध्यायी'** के समकक्ष रखनेका प्रयत्न डा. रामविलास शर्माने कियाहै। इस रूपमें उनकी पंक्तियां इस प्रकार हैं—

"अंग्रेजी राज न होता तो भी **हिन्दी शब्दानुशासन** होता। **अष्टाध्यायी** न होती तो भी पाश्चात्य भाषाविज्ञान अपने आधुनिक रूपमें विकसित होता, इसमें सन्देह है।" तीसरा खण्ड, पृ. ३०५]

भारतीय व्याकरणके तीन प्रधान स्तंभ मानेहैं—वे हैं अक्षर, धातु और कारक। तदनुसार कहा कि ऐतिहासिक भाषा-विज्ञानकी इमारतें इन्हीं तीन स्तंभोंपर खड़ी हुईहैं।

भाषा विज्ञान और भौतिकवाद

प्राचीन भारतीय भौतिकवादको लोकायत कहा गयाहै। भौतिकवादकी प्राचीन परम्पराका उल्लेख करते हुए इस विषयकी महत्ताकी ओर ध्यान आकृष्ट किया गयाहै। डा. रामविलास शर्माका यह प्रिय विषय है। यों तो इससे पूर्व लिखे गये अध्यायोंमें बीच-बीचमें उनके वाक्य इस प्रकारके मिल जातेहैं और वे वाक्य अलगसे प्रतीत होतेहैं। किन्तु वहांपर उन्हें भाषा-विज्ञानके साथ भौतिकवादकी संगति बैठानेका अवसर नहीं मिला। इसीलिए तीसरे खण्डका अन्तिम अध्याय यह रखा गयाहै। इसे तीनों खण्डोंका उपसंहार भी कह सकतेहै। इसमें उनका भाषिक चिन्तन अधिक उजागर हुआहै।

इस अन्तिम अध्यायके निम्नलिखित शीर्षक हैं :

१. भौतिकवादकी प्राचीनता २. अनेकान्तवाद ३. एकान्तवाद और यान्त्रिक भौतिकवाद ४. भाषाविज्ञान में एकान्तवाद और यान्त्रिक भौतिकवाद ५. मानव चेतना और प्रतिबिम्ब सिद्धान्त ६. भौतिकवाद, द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक और भाषा ७. भौतिकवाद और भाववाद ८. भौतिकवाद और नियतिवाद ९. प्रकृति सम्बन्धी निरंकुश स्थापनाएं और विज्ञान १०. श्रम और संख्या सूचक शब्द ११. पुरानी विश्लेषण-पद्धतिकी सीमा

अध्यायके उपशीर्षक स्वयं बता रहेहैं कि भाषा विज्ञानके सिद्धान्तोंसे हटकर अन्य सिद्धान्तोंके परिप्रेक्ष्य में **भाषाविज्ञान** विषयपर, विचार किया गयाहै। यों ये सारे विचार तीनों ही खण्डोंमें बिखरे हुएहैं किन्तु यहां पर एकत्रित रूपमें—समाहारकी दृष्टिसे—लिखा गया हैं।

भाषाविज्ञानका भौतिकवादसे सम्बन्ध जोड़ते हुए

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन प्रमुख बिन्दुओंपर विचार किया गयाहै, वे हैं— ▭ "गणभाषा, जनपदीय भाषा, जातीय भाषा, तीन भिन्न सामाजिक गठनोंकी भाषाएं हैं, तीन भिन्न युगों की भाषाएं हैं। इन तीन युगोंकी अवधि बहुत भिन्न हैं, भाषा तत्त्वोंके विनिमयकी परिस्थितियां बहुत भिन्न हैं। प्राचीनकालमें गणभाषा या जातीय भाषासे अलग कोई भाषा नामकी इकाई नहीं है।" [तीसरा पृष्ठ, पृ. ३१८] ▭ 'दर्शनशास्त्रमें जो भेद अस्ति और नास्तिमें है, ऐतिहासिक भाषाविज्ञानमें वही भेद आर्य और द्रविड़में है। कोई प्राचीन शब्द आर्य हो और द्रविड़ भी हो, यह वैसे ही संभव नहीं है जैसे मनुष्य अस्ति धर्म है तो उसका नास्ति धर्म होना संभव नहीं हैं। भारतमें द्रविड़-सम्पर्कसे शुद्ध आर्य विकृत हुआहो, यह तो संभव है किन्तु यूरोपकी भाषाओंमें, यह नितान्त असम्भव है।" [तीसरा खण्ड, पृ. ३१९] ▭ "द्वन्द्ववाद की स्थापना यह है कि संसारके विभिन्न प्रपंच एक दूसरेसे नितान्त अलग नहीं है वरन् आपसमें जुड़े हुए हैं। यान्त्रिक भौतिकवाद वस्तुओंको जड़, स्थिर इकाइयां मानकर उन्हें निरपेक्ष रूपमें एक दूसरेसे अलग करके देखताहैं। प्राचीन भाषा परिवारोंके संदर्भमें ठीक यही दृष्टिकोण ऐतिहासिक भाषाविज्ञानका है।" [तीसरा खण्ड, पृ. ३१०] ▭ "यान्त्रिक भौतिकवादके लिए भाषा परिवार ऐसा प्रपंच है जिसकी सीमाएं दृढ़तापूर्वक निर्धारित हैं और जब यह भाषा परिवार निर्मित हो रहाथा, तब ये सीमाएं अन्य परिवारोंसे आने वाले भाषा तत्त्वोंके लिए बन्द थीं। यद्यपि बारह कोस पर बोली बदलतीहै, जनसाधारणका पहचाना हुआ यह सुपरिचित सिद्धान्त है, फिर भी भाषा परिवारोंके विवेचक बड़ी दृढ़तासे उनकी सीमाएं निर्धारित कर देते हैं। भाषा परिवारके भीतर भाषाओंकी सीमा करना और कठिन होताहै किन्तु यह दुष्कर कार्य भी वे दृढ़तापूर्वक सम्पन्न कर लेतेहै। भाषाके भीतर बोलियोंकी सीमाएं निर्धारित करना सबसे कठिन कार्य होताहै किन्तु यहांभी वे साहसपूर्वक सीमारेखाएं खींच ही देते हैं। ये सीमारेखाएं भौगोलिक ही नहीं होती भाषातात्विक भी होतीहैं। वे प्रदेशों और जनपदोंके अलावा ध्वनि-शब्द-रूपतन्त्रोंकी सीमारेखाएं भी होतीहैं। जब तक भाषाविज्ञानी यह मानकर चलताहै कि ये सीमारेखाएं अचल नहीं है, सापेक्ष रूपमें ही उचित हैं, तब तक वह भटकावसे बचा रहताहै। जहां उसने इन्हें अस्ति-नास्तिमें भेद करनेवाली निरपेक्ष रेखा माना, वहां भाषाविज्ञानकी प्रगतिके वह आड़े आया।" [तीसरा खण्ड, पृ. ३२०] ▭ "ध्वनि-परिवर्तनके नियम अटल हों, इसके लिए आवश्यक है कि ध्वनि स्वयं अटल हो। ऐतिहासिक भाषाविज्ञानमें जिस ध्वनि-परिवर्तन की बात की जातीहै, उसमें कोई ध्वनि वास्तवमें परिवर्तित नहीं होती, वह अन्य ध्वनिके रूपमें ग्रहण की जातीहै। इसलिए ध्वनिका अटल होना और ध्वनिका परिवर्तित होना, इन दो बातोंमें कोई विरोध नही है। ध्वनि-परिवर्तनकी ध्वनि भाषाविज्ञानीके लिए अपरिवर्तित इकाई है। वह अटल है। उसकी जगह दूसरी अटल ध्वनि आ गयी।इतना ही परिवर्तन है।" [तीसरा खण्ड, पृ. ३२९।

ऊपरके अनुच्छेदमें कुछ बिन्दुओंको उद्धृत किया गयाहै। इन्हें भाषाविज्ञानमें **'एकान्तवाद और यान्त्रिक भौतिकवाद'** शीर्षकके अन्तर्गत लिखा गया है। इनमें भाषाविज्ञानके सिद्धान्तोंकी सीमाएं [अध्ययन एवं क्षेत्रकी सीमाएं कह लीजिये] उजागर हुईहैं। इन्हें भाषाविज्ञानके निष्कर्षों, विषयकी व्यापकता और सीमाओंके रूपमें भी प्रस्तुत किया जा सकताहै। जो सिद्धान्त अटल है, वे अटल रहेंगे और जो अचल है, वे अचल रहेंगे। किसी वादके साथ **भाषाविज्ञान**को क्यों जोड़ा जाये? जो बात ठीक है, वह ठीक मानी जायेगी। **ऐतिहासिक भाषाविज्ञानकी** सीमाओंको हम बतला देतेहैं तबभी हमारा काम चल जाताहै और वह हमारी अपनी उपलब्धियां हैं।

भाषाविज्ञानके साथ कुछ 'वाद' जुड़ गयेहैं और उसे स्पष्ट करना लेखकने आवश्यक मानाहै। यान्त्रिक भौतिकवादके बाद रूपवादकी चर्चा हुईहै। उसके बाद भाववाद है, फिर संरचनावाद है और परिणामवाद भी है। भाषाविज्ञानके क्षेत्रमें इन वादोंकी स्थितियोंकी सीमाएं बतलाकर इन वादोंको भाषाविज्ञानके विकास के लिए निरर्थक बतलायाहै।

एंगेल्सको उद्धृत करते हुए मानव चेतना और प्रतिबिम्ब सिद्धान्तको समझानेका प्रयत्न कियाहै। 'गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न' में रूपवाद और भाववाद दोनोंकी संगतियोंका समाहार खोजा गयाहै। अन्तमें लिखाहै :

"भारतमें भाषाविज्ञानकी प्रगतिके लिए आवश्यक है कि हम अपने दर्शनशास्त्रके निष्कर्षोंको विवेक-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वक आत्मसात् करें और दर्शनशास्त्रके अलावा यहां जो भाषाविज्ञानका विकास हुआथा और हुआहै, उसके निष्कर्षोंको भी विवेकपूर्वक आत्मसात् करें। ज्ञानकी विरासत ठुकराना यांत्रिक भौतिकवादकी विशेषता है।" [तीसरा खण्ड, पृ. ३२७-३२८]।

डा. रामविलास शर्मा भौतिकवादका विश्लेषण द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक संदर्भोंमें प्रस्तुत करतेहैं। अनन्तर वे भौतिकवाद और भाववादकी व्याख्या करते हैं। मार्क्स और एंगेल्सका समर्थन स्थान-स्थानपर करतेहैं। एंगेल्सको अधिक उद्धृत करतेहै। एंगेल्सकी महत्ता बताते हुए लिखतेहैं—

> एंगेल्स १८वीं १९वीं सदीके भाववादकी उस सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमिपर ध्यान देतेहैं जिसकी दो मुख्य विशेषताएं हैं, प्रकृति विज्ञानकी शक्तिशाली प्रगति और उद्योगधन्धोंका द्रुत विकास। इस पृष्ठभूमिसे भाववाद और भौतिकवाद दोनों प्रभावित होतेहैं, भौतिकवादमें यह प्रभाव सतहपर है और स्पष्ट दिखायी देताहै, भाववादमें वह सतहके नीचे है और अस्पष्ट है। जो सतहके नीचे है, उसे सतहपर लाना, जो अस्पष्ट है, उसे स्पष्ट करना एंगेल्सका काम है।" [तीसरा खण्ड, पृ. ३३०]

एंगेल्स का कथन उद्धृत करते हुए लिखा—

> "आकस्मिक रूपसे घटित होनेवाली घटनाओंके समवायने अनिवार्यता सम्बन्धी पुरानी धारणाको ध्वस्त कर दिया। उस धारणाको बनाये रखनेका मतलब था, प्रकृतिपर तानाशाही ढंगसे मनुष्यकी निरंकुश स्थापनाको नियम कहकर लाद देना। यह ऐसी स्थापना थी जो स्वयंके और प्रकृतिके विरोधमें थी। उस धारणाको बनाये रखनेका मतलब था, जीवन्त प्रकृतिमें समस्त आंतरिक अनिवार्यताको नकारना, जीवन्त प्रकृतिमें आकस्मिकताको अराजकताको स्वीकार करना।"

यहां एंगेल्सकी बात समाप्त हुई। [और फिर अपनी ओरसे लिखा]

> "निरंकुश स्थापनाएं प्रकृतिपर तानाशाही ढंगसे नहीं लादी जा सकती। भाषाओंके विकासपर कल्पित नियमितता भी नहीं लादी जा सकती। कल्पित नियमितता लादनेका मतलब है भाषाओंके विकासकी आंतरिक अनिवार्यताको अस्वीकार करना।" [तीसरा खण्ड, पृ. ३३५]

भाषा विज्ञानकी व्याख्या करनेमें द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद सहायक है। इसीका समर्थन करते हुए निष्कर्षात्मक पंक्तियां लिखीहैं। भाषा परिवारको निश्चल इकाई नहीं मानना चाहिये। अन्य परिवारोंसे उसका सपर्क उसकी गतिका एक कारण है। कहा कि ज्ञान की समस्त प्रक्रिया भाषाकी विकास-प्रक्रियासे अभिन्न रूपमें जुड़ी हुईहै। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद इस विकास-प्रक्रियाकी व्याख्या करताहै, साथ ही इस प्रक्रियासे सम्बद्ध होकर वह स्वयं भी विकसित होताहै।

अन्तमें पुरानी विश्लेषण-पद्धतिकी सीमाएं बतायी गयीहैं। विद्वानोंने शब्दोंकी व्याख्या कीहैं। उनकी व्युत्पत्तियाँ बतायीहैं। शब्द यात्राके उदाहरण दियेहैं। और इस आधारपर ऐतिहासिक अनुमान किये गये हैं। ऐसे कई उदाहरण दिये गयेहैं। वासुदेवशरण अग्रवाल को उद्धृत करते हुए डा. चाटुर्ज्या शब्दोंकी मीमांसा करतेहैं। डा. चाटुर्ज्या द्वारा प्रस्तुत शब्दोंकी अर्थ-मीमांसा प्रस्तुत करते हुए ['मन' शब्द का] कहतेहैं कि डा. चाटुर्ज्याकी जानकारी महत्त्वपूर्ण है। उनके कार्यकी खुले मनसे प्रशंसा करते हुए भी उनके मानसिक दबावको पहचानतीहै। इसीमें 'पुरानी विश्लेषण' पद्धतिकी सीमाएं बतलायी।

डा. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्यापर सैद्धांतिक दबावकी व्याख्या करते हुए [उनके अध्ययनकी सीमाएं बताते हुए कहना चाहिये] डा. रामविलास शर्मा लिखतेहैं—

> "आर्योंकी एक नस्ल है। इस नस्लकी एक आदि भाषा थी। आर्य नस्ल निरन्तर शाखाओंमें बंटती चली गयी, उसके साथ वह भाषा भी शाखाओंमें बंटती चली गयी। ईरानमें किसी समय एक ही शाखा थी, फिर वह विभाजित हुई, एक ईरानमें रह गयी, दूसरी भारत आयी। ईरानी और भारतीय आर्यभाषामें कोई सामान्य शब्द मिले तो वह ईरानी स्रोतका होगा। **भारतमें आर्यों के आ जानेके बाद ईरानसे आयं शब्दोंकी आवती होती रही। यही वह सैद्धान्तिक दवाव है जिसके कारण डा. चाटुर्ज्या ईरानसे भारत आनेवाले शब्दोंके ग्रीक या केल्त प्रतिरूप देख नहीं पाते, यूरोपकी भाषाओंमें द्रविड़ भाषा तत्त्वोंका निवेश उनके लिए कल्पनातीत है। डा. सुनीतिकुमार**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाटुर्ज्या जिस ऐतिहासिक भाषा विज्ञानके प्रतिनिधि हैं. उसकी आधारशिला यह नस्ल सिद्धान्त है।" (तीसरा खण्ड, पृ. ३५५)।

यों पुराने भाषाविदोंके अध्ययनकी सीमाएं डा. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्याके माध्यमसे व्यक्त कीहैं। भारत के भाषाविदोंमें डा. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्याके बाद कोई नामी भाषाविद् दिखलायी नहीं देता जिसकी गहरी पैठ ऐतिहासिक भाषाविज्ञानमें हो। उनके कार्य की सराहना डा. रामविलास शर्माने कीहै। व्याकरण (हिन्दीका) लिखनेवालोंमें कामताप्रसाद गुरुको भूलना उचित नहीं है किन्तु डा. रामविलास शर्मा पं. किशोरी दास वाजपेयीको ही अधिक मानतेहैं। चलते ढंगसे भी गुरुका उल्लेख नहीं करते।

मैंने तीनों खण्डोंपर अलग-अलग अध्याय क्रमशः लिखेहैं और यह सब लिखते समय मैंने डा. रामविलास शर्मा द्वारा प्रस्तुत उदाहरणोंकी मीमांसा नहीं के बराबर कीहै। उससे तो और भी विस्तार होता। उद्धरण अधिक दिये हैं और प्रयत्न इस बातका किया है, लेखकने जिस क्रममें सब कुछ लिखाहै, उसी क्रममें सब कुछ (संक्षेपमें ही) प्रस्तुत करूं। चयन और विवेचनकी मेरी अपनी सीमाएं हैं। मैंने अनुभव किया कि हिन्दीमें ऐतिहासिक भाषाविज्ञानपर मौलिक रूपमें चिन्तन करनेवालोंमें डा. रामविलास शर्माका नाम अग्रणी हैही किन्तु मुझे यहभी कहनेमें संकोच नहीं कि डा. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्याके बादमें उसी क्षेत्रमें कार्यको गति देनेमें भारतीय भाषाविदोंमें भी उनका नाम अग्रक्रममें लिखाजा सकताहै। इस रूपमें मौलिक काम करनेपर भी हिन्दीमें भाषाविद्के रूपमें उनकी पहचान नहीं हुई। इसीलिए मुझे इतना विस्तारसे लिखना पड़ाहै। [लेखमाला समाप्त] □

सन्त साहित्य : परिचय

सुन्दर सवैया ग्रन्थ[1]

सम्पादक : डा. रमेशचन्द्र मिश्र
समीक्षक : प्रो. महेन्द्रकुमार

जनसाधारणके बीचसे उभरकर आने तथा जनसामान्यके लिए अपनी वाणीका उपयोग करनेके कारण हिन्दीकी मध्यकालीन ज्ञानाश्रयी धाराके सन्त कवियों की अभिव्यक्तिमें वह आभिजात्य देखनेको नहीं मिलता जो इस कालकी अन्य धाराओंके कवियोंकी रचनाओंमें देखनेको उपलब्ध होताहै। इन कवियोंकी भाषा सामान्यत अनगढ़ एवं अव्यवस्थित तथा अनुभूति प्रायः संस्कारहीन, प्रचण्ड एवं अपरूप रहीहैं। भावनाकी कोमलताके स्थानपर ज्ञानकी प्रखरता, शास्त्रीय प्रमाणोंके स्थानपर आत्मानुभवके सत्यापनकी मुखरता तथा परम्परानुमोदित विनम्रताके स्थानपर विद्रोहभाव-जनित अक्खडताके कारण इनका काव्य-रचना-संसार कलात्मक औदात्यसे शून्य है। इसीलिए इन लोगोंको कवि मानने में यदि किसीको संकोच होताहो तो वह अपने आपमें अनुचित नहीं। किन्तु इसी धाराके रचनाकारोंमें सुन्दरदास अपवाद कहे जा सकतेहैं। उनकी अनुभूति सर्वथा विवेक-संचालित, उनका चिन्तन सामान्य रूपसे शास्त्र मर्यादित, उनका अभिव्यंजना-व्यापार जीवनानुभवोंसे समृद्ध तथा उनकी भाषा पाण्डित्यसे परिष्कृत है। उन्होंने वाणीके संयम, भावनाकी सघनता और चिन्तन की व्यापकता द्वारा अपनी रचनाओंको ऐसी साहित्यिक गरिमा प्रदान कीहै कि ज्ञानाश्रयी शाखाके सभी कवि

१. दोनों ग्रन्थोंके प्रकाशक : जगतराम एंड संस, गांधीनगर, दिल्ली-३१। प्रथम ग्रंथका मूल्य : १६५.०० रु.। दूसरे ग्रंथका मूल्य : १००.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके रचनाकार रूपके समक्ष बौने प्रतीत होते हैं। किन्तु उनका यह दुर्भाग्य रहाहै कि समुचित प्रकाशन-व्यवस्था के अभावके कारण उनकी रचनाएं सुधी पाठकोंकी पहुंचके बाहर रहीहैं। कदाचित् इसीलिए उनका उतना मूल्यांकन नहीं हो सका जितना कबीरआदि इस धाराके अन्य कवियोंका हुआहै। डा. रमेशचन्द्र मिश्रने "सुन्दर सवैया ग्रन्थ" इनकी रचनाओंके बड़े भागको प्रकाशमें लाकर सभी प्रकारके पाठकोंका उपकार कियाहै। हिन्दीके शोधार्थियोंको इससे अपने शोधकार्य-संम्पादनमें सहायता ही नहीं मिलेगी, विद्वानों और आलोचकोंको भी समग्र सन्तकाव्य विषयक हुए अबतक के मूल्यांकन पर पुनर्विचार करनेकी प्रेरणा मिलेगी। डा. मिश्रने उपयोगी भूमिकाके साथ प्रत्येक सवैयेसे सम्बद्ध शब्दों का अर्थ अथवा अभिप्राय स्पष्ट करके केवल साधारण पाठकके लिए सुन्दरदासकी सर्वाधिक कलात्मक रचनाओंको सम्प्रेषणीय ही नहीं बनाया, सन्तकाव्यके विशेषज्ञों एवं शोधार्थियोंकी शंकाओंके समाधानका भी सफल प्रयास कियाहै। कहना न होगा कि इस ग्रंथको इस प्रकारसे सम्पादित करके हिन्दी जगत्को अपने सन्तकाव्य विषयक विस्तृत एवं गहन अध्ययनका जो लाभ पहुंचायाहै वह मुक्तकण्ठसे सराहनीय है मुझे विश्वास है कि वे इसी प्रकारसे अन्य सन्त कवियोंकी अप्रकाशित रचनाओंको प्रकाशमें लाकर हिन्दी जगत्का उपकार करेंगे। ▭

सुन्दर पदावली[1]

सम्पादक : उपर्युक्त

समीक्षक : डा. कृष्णविहारी मिश्र

सन्त साहित्यके मर्मज्ञ विद्वान् डा. रमेशचन्द्र मिश्र ने महाकवि सुन्दरदासकी पदावलीका अत्यंत सौष्ठवके साथ सम्पादन कियाहै।

इसके प्रारम्भमें पद-रचनाकी प्रकृति और स्वरूप पर प्रकाश डालनेवाली भूमिका है। इसके पश्चात् 'सुन्दरदास-जीवन-परिवेश और साहित्य संदर्भ' शीर्षक निबन्धमें उनके जीवनवृत्त और उनके समकालीन सन्तों का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनके अनुयायी सन्तोंका भी उल्लेख है।

समीक्षकोंने सुन्दरदासजीको जो महत्त्व दियाहै उस मूल्यांकनको दृष्टिमें रखते हुए मिश्रजीने सुन्दरदास जीकी कृतियोंके अन्तरंग और बहिरंगका सम्यक् अध्ययन कर उनकी समस्त पदावलीका प्रौढ़ विवेचन कियाहै।

सुन्दर पदावलीका प्रस्तुत संग्रह प्रामाणिक और वैज्ञानिक है और रागोंके आधारपर उसका विभाजन किया गयाहै। विभिन्न ऋतुओंका वर्णन सुन्दरदासजीके प्रकृति-प्रेमकी विशिष्टताको उद्घाटित करताहै। ▭

डा. मिश्रका सन्त साहित्य अध्ययन

लेखक : डा. कृष्णदत्त पालीवाल

महाकवि सुन्दरदासजीके इस सुन्दर संग्रहके सुष्ठु और सुखद सम्पादनके लिए मिश्रजी बधाईके पात्र हैं।

भारतीय सन्त-परम्परा लोक जागरणके आलोककी वाणी है। यह वाणी देश और कालकी सीमाओंको अतिक्रान्तकर मानवको जीनेकी दृष्टि देतीहै। पूरी दरबारी-काव्य-परम्पराके सामन्ती-मूल्योंपर सन्तोंने करारे प्रहार कियेहैं और रचनाकारके मानवतावादका पक्ष प्रशस्त कियाहै। सन्त-साहित्यका सामाजिक-आधार आभिजात्यवादके दम्भसे दूर किसान-मजदूर-जुलाहे-मल्लाह-कारीगर श्रमजीवी मानवपर केन्द्रित है। सन्तों ने इसी जनकी पीडाको अभिव्यक्ति दी है तथा पुरोहितों मौलवियोंको हर-सांसके साथ फटकार लगायीहै। इसलिए सन्तोंके लोकधर्मका मूलाधार जनपर टिकाहै। इन सन्तोंमें कबीर, रैदास, सुन्दरदास, दादू, रज्जन जैसे निर्गुणवादी सन्त हों या तुलसी-सूर, मीरा जैसे सगुण सन्त। यह पूरा सन्त साहित्य भारतीय परिस्थितियोंके भीतरसे पैदा हुआहै—इसे धर्मशास्त्रकी परम्परामें खोजना ठीक नहीं हैं। लोक परम्पराओंकी शक्तिको सन्त-साहित्यमें खोजनेका कार्य डा. रमेशचन्द्र मिश्रने लगभग दो दशकोंसे मनोयोगपूर्वक कियाहै तथा अनेक जटिल गुत्थियोंको सुलझानेमें उन्हें सफलता मिलीहैं।

डा. मिश्रने अपने अध्ययन-अनुसन्धानमें निरन्तर इस बातपर बल दियाहै कि धार्मिक प्रभावोंकी छानबीनसे ही सन्त साहित्यका विश्लेषण मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। सन्तोंने धर्मपर पुरोहितों-मौलवियोंका वर्चस्व खत्म किया और प्रेम-मार्गके महत्त्वकी प्रतिष्ठा की। उनका पूराप्रेम-दर्शन अहिंसाकी एक दुर्निवार शक्तिका विस्फोट है। लोक-चेतना, लोक रक्षा, लोक-मंगल और लोक-धर्म सन्तोंकी भाव-भूमिका अनन्त विस्तार क्षेत्र है। इन सन्तोंको डा. मिश्रने सांस्कृतिक समन्वयका रचनाकार न मानकर जन संस्कृतिका रचनाकार सही दृष्टिसे घोषित कियाहै। भारतीय सांस्कृतिक अस्मिताके उज्ज्वल-पक्ष इन सन्तोंकी अमृत-वाणीमें अभिव्यक्ति पाते रहेहैं। हमारे समाजका लोक-मानसही इन सन्तोंके मुंहसे बोल पड़ाहैं। सन्त-साहित्यके इस सांस्कृतिक-सामाजिक पक्षपर अधिकाधिक ध्यान दिया जाना चाहिये। ▭

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और पसीना बहता रहा[1]

लेखक : अभिमन्यु अनत

समीक्षक : डा. कृष्णचन्द्र गुप्त

अभिमन्यु अनन्तने 'लाल पसीना' तथा 'गांधीजी बोलेथे' की श्रृंखलामें इस उपन्यासके रूपमें मारीशसके जनसामान्यके संघर्षको वाणी देकर सही अर्थोंमें अपने युगके जुझारू मजदूरोंके गौरवपूर्ण इतिहासको अंकित कियाहै। पंडित रामनारायण हरिप्रसादके इतिहास-प्रसिद्ध जनान्दोलनको केन्द्र बनाकर, यह सशक्त, पठनीय, विश्वसनीय, रोमांचक और प्रेरक उपन्यास लिखाहै। विशेषतः ऐसे वातावरणमें, जहां अवदमित कुंठा, रुग्ण-मानसके विकारोंको महिमामंडित किया जा रहाहो या राजनीतिक मतवादसे ग्रस्त होकर विश्वसनीयता ही नष्ट हो रहीहो, या फिर चटपटी रोमांसवादी कपोल कल्पनाकी भूलभुलैयामें पाठकको भटकाया जा रहा हो। प्रेमचन्दके बादके कथा-साहित्यमें अनन्तका यह उपन्यास माना जायेगा, मारीशसके जनसामान्यके अभि-शापोंको व्यक्त करनेके कारण तथा जुझारू, व्यावहारिक, संतुलित, कर्मठ, सुलझे हुए और पिछली गलतियोंसे सबक सीखे हुए व्यक्तिके नेतृत्वमें लड़े जानेवाले संघर्ष का जीवन्त दस्तावेज होनेके कारण। आदर्शके प्रति उत्साहाधिक्य और यथार्थकी विभीषिकाके आतंकसे युक्त अत्यन्त सजगतासे नेतृत्व करनेवाले समर्पित जुझारुओंकी जीवनगाथाको मुखरित करने वाला यह उपन्यास भीड़में नहीं खो जायेगा, ऐसा किसी भी दुरा-ग्रह मुक्त पाठक-आलोचकको लग सकताहै।

मूलतः संघर्ष-गाथा होते हुएभी, इसमें मानवीय अनुभूतियोंके बड़े मार्मिक स्पर्श हैं। हरि और प्रेमाका परस्पर स्नेह, सहदेव ठाकुरका भारतसे मारीशस आकर अपने भतीजोंकी खोजमें बच्चोंको बायस्कोप दिखाते हुए घूमना, मजदूरोंकी परस्पर सेवा, सहानुभूति, हिन्दू ठाकुरका मुस्लिम परिवारमें रहना ऐसा ही है—"तुम्हें हिन्दुस्तानी जानकर अपना देशबन्धु जानकर, तुम्हारे पास आया और तुम हिन्दू-मुसलमानोंकी बात करने लगे ··जब वे (अंग्रेज) हिन्दुस्तानियोंपर गोली दागते हैं तो हिन्दू मुसलमानका सवाल किये बिना हर हिन्दु-स्तानीको बराबरका निशाना बनातेहैं।" (पृ. २७)। यहां धर्म और जातिकी सकीर्णताओंसे ऊपर उठकर विश्व मानवताके भविष्यके प्रति भी आश्वस्ति दिखायी पड़तीहै।

गन्ना खेतोंके पूंजीपति मालिकोंके लोमहर्षक अत्याचारोंसे शनैःशनैः अपनी शक्तिके अनुसार जूझते रहनेकी लम्बी संघर्षगाथा इसमें है, जिसके अनेक उतार-चढ़ाव हैं। मजदूरोंका भय, कायरता और उनसे टकराता हुआ जुझारू नायकोंका आत्मविश्वास, जनशक्तिमें अटूट विश्वास, पराजयको झेलनेकी सामर्थ्य, मार खाकर फिरसे उठ खड़े होनेकी अदम्य जिजीविषाके अनेक दृश्य बड़े रोमांचक और प्रेरक हैं। खेत-कोठी मालिकोंके नित नये अत्याचार, उनसे मिले हुए प्रशासन और पुलिसका उत्पीड़न मजदूरोंके संगठनको ध्वस्त करनेका षड्यन्त्र, हरिको खरीदनेका असफल प्रयास, नौकरीके जालमें फंसाकर उसे बेकार कर देनेकी चाल बड़े विश्वस-नीय रूपमें प्रस्तुत हुईहै। परन्तु इन मजदूर नेताओंमें धनीसे धनी निराशाके अंधकारमें एक न एक नयी योजनाकी चमक आगे बढ़नेके लिए प्रेरित करतीहै। असफलताजन्य निराशा और अवसाद बहुत समय तक मार्ग नहीं रोक पाते। प्रेमचन्दकी भांति अनत भी न काल्पनिक विजयके उन्मादमें तथ्योंको अनदेखा करतेहैं

१. प्रका. : राजकमल प्रकाशन, १-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज. नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : ३२०; डिमा. ९३; मूल्य : १२५.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और न ही उनके पात्र वास्तविक विभीषिकाके आतंकसे जड़ीभूत होकर हार मान बैठतेहैं। संघर्षपूर्ण जीवनकी पाठशालामें इस उपन्यासके नायक हरिने जो सीखाहै, उसके बलपर वह और उसका वकील पूंजीपतियोंके अन्तिम षड्यंत्रको विफल कर देनेमें सफल हो जातेहैं। विधान सभाके सदस्यके लिए शिक्षित होना अनिवार्य है, इसलिए घाघ पूंजीपतियोंके इशारेपर हरिकी सदस्यता समाप्त करनेके लिए किये गये संवैधानिकताके नामपर घिनौने षड्यन्त्रको हरि असफल कर देताहै। जब न्यायाधीश उससे कहताहै आप 'क्रियोली' में बात कर रहेहैं तो क्या विधान सभामें भी आप 'क्रियोली' में बात करेंगे तो इसका मुंहतोड़ उत्तर हरि देताहै—"मैं इस समय विधान सभामें नहीं, बल्कि अदालतमें फ्रेंच भाषामें किये गये आपके प्रश्नका उत्तर दे रहाहूं। यदि आपका प्रश्न अंगरेजीमें होता, तो जवाब भी मैं अंगरेजीमें देता" (पृ. ३१९)। उच्च शिक्षासे वंचित हरिके पक्षमें वकीलकी यह दलील पूरी दुनियांके लोकतांत्रिक देशोंके बुद्धिजीवियोंके बौद्धिक कपटको हटानेमें समर्थ है—

"दुनियांमें बेशुमार लेखक दार्शनिक राजनेता और विद्वान् हुएहैं, जिनके पास कोई शैक्षिक प्रमाणपत्र नहीं था, क्योंकि उन्हें प्रमाणपत्रोंकी फैक्ट्री-कालेज और विश्वविद्यालय जानेका कभी अवसर ही नहीं मिला। ऐसे लोगोंमें एक शेक्सपीयर भी था। प्रमाणपत्रोंके अभावमें यदि शेक्सपीयरको अनपढ़ कहा जा सकताहै तो मेरे क्लायंटको भी स्वयंको अनपढ़ मान लेनेमें कोई दिक्कत नहीं, बल्कि गर्व अनुभव होगा।...यों भी हम कबतक यह चाहेंगे कि हमारी विधानसभा केवल पढ़े-लिखे चालाक लोगोंकी उक्टापैंची और रस्साकशीका अखाड़ा बनी रहे।...देशकी उन्नतिके लिए बड़े-बड़े विद्वानों, डाक्टरों, वकीलों, इंजीनियरों और धनपतियोंसे कहीं अधिक आवश्यकता साहसी निस्वार्थ और ईमानदार लोगोंकी होनी चाहिये।" (पृ. ३२०)। पढ़े-लिखे स्वार्थी और गंवार लोग प्रायः मताधिकार और विधान मंडलोंकी सदस्यताके लिए स्कूली और विश्वविद्यालयी डिग्रियोंकी अनिवार्यताका प्रतिपादन कर तीसरी दुनियां के जनसामान्यको मताधिकारसे वंचित करनेका स्वप्न देखते रहतेहैं क्योंकि जनसामान्यके कारण पढ़े-लिखे लोगोंके सुखबिके परोंको कोई घास नहीं डालता। अपने देशकी अधिसंख्य जनताके बलिदान संवर्ष और श्रमपर अटूट विश्वास रखनेवाले लोग ही कथित पढ़े-लिखे लोगोंके स्वार्थी स्वप्नोंको ध्वस्त करनेके लिए जीवन संघर्षकी पाठशालामें पढ़े जनसामान्यके पक्षमें यह तर्क दे सकतेहैं।

उपन्यासकी गरिमाका साक्षात्कार करानेवाले कुछ प्रसंग द्रष्टव्य हैं। असफल आंदोलनकी स्मृति हरिको निराश न करके दुगने उत्साहसे भर देतीहै, जब वह परकाशसे कहताहै—"मैं आपकी असफलताको नहीं, आपके संघर्षको आगे बढ़ाना चाहताहूं।" (पृ. १८)। यही तो व्यावहारिक राजनीति है—पिछली गलतियोंसे पाठ पढ़कर परम्पराके श्रेष्ठ और उपयोगी अंशको अपनानेमें। कुशल नेतृत्वके अभावमें ही मजदूरोंका शोषण होता रहाहै—'खून चूसनेवाला पूंजीपति और पूंजीपतियोंके लिए खून बहाते रहनेवाले मजदूरोंके बीच के अन्तरको मैं कैसे न मानूं?" (पृ. ३०)। विषम परिस्थितियोंमें जूझनेवाले इन भारत मूलके मजदूरोंको रामचरितमानस, आल्हा और किसनसिंहकी पुस्तक प्रेरणा देती रहीहै। गोरे पूंजीपतिकी पत्नीकी सालगिरहके लिए फूल तुड़वानेके लिए मजदूरके लड़केको चट्टानोंके ऊपर पेड़पर चढ़ाया गया। वहां गिर पड़ने को छिपाया गया। जिनका यह देश है (मारीशस) वे नंगे हैं और जिनका यहां कुछ भी नहीं है, वे मालिक। इसी अंधेरगर्दीके विरुद्ध यह संघर्ष है। असफलतासे जड़ीभूत बड़े बूढ़ोंसे घिरे वातावरणमें जुझारू लोगोंकी यह समस्या कितनी विकट है—"जबभी उधरसे हुए अन्यायके बारेमें कुछ बोलनेका प्रयत्न होताहै कि आप सभी लोग या तो उसे पागलपन करार देतेहैं या ऊटपटांग बातें बताने लगतेहैं।" (पृ. ४८)। ऐसेही हरि का यह प्रश्न बड़ा बेधक है—"लोग कहतेहैं कि यह पानी नहीं, सोना बरस रहाहै पर यह कोई नहीं बताता कि किसके लिए।" (पृ. ५८)। पूंजीपतियोंके द्वारा आयोजित घुड़दौड़में गरीब मजदूर भी रुपए लगातेहैं, उनकी स्त्रियोंको गुण्डे छेड़ते, भीड़भाड़में उनके बच्चे खो जातेहैं। इसको रोकनेका प्रयास हरिने किया—मजदूरोंके बच्चोंकी दौड़ करवाकर। मजदूरोंसे शराब छुड़वानेका भी सफल प्रयास हुआहै। अपने दुःखदर्दसे लड़नेके लिए अपनी दुर्दशा-व्यंजक लोकगीत ये लोग गातेहैं—

'इस देशमें मरके ही जियल जासकी' तथा 'कोल्हूके बैल बने इखवन पीसनको, छोड़ा था अपन देस कुली बननको, क्यों लट्टी। ई गाना तम्हींको चुभत है न,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तभी तो इसे बाहर फेंकता रहताहूं।" (पृ. ७२)। दुर्दशाके कारणोंका भान कराके ही इसे दूर किया जा सकताहै। हरिके लिए साथियोंकी निराशासे जूझकर उन्हें आश्वस्त करना भी सरल नहीं है—"वे डाल-डाल चलेंगे तो हम पात-पात। आप यह कहना चाहतेहैं कि जो प्रयत्न सौ सालसे होता रहाहै, उसे बन्द कर दें।" (पृ. ८६)। हरिकी यह समस्या भी कितनी विकट है—"हरिने कभी यह नहीं सोचाथा कि मजदूरोंके हित की बातें उन्हींके गलेसे उतारनेमें ऐसी कठिनाइयां आ सकतीहैं। बैलका 'अइस' 'हो' कहो तो वह समझ लेता है। एक आप लोग हैं जो ठस पड़े हुएहैं, न आगे चलने के न पीछे होनेके।" (पृ. ८८)। आर्थिक तंगीका यह हाल है कि हरिके घरमें उबली हुई चायकी पत्तियोंको सुखाकर फिर चाय बनतीहै। दियासलाईकी तीलीको बीचसे चीरकर दो बार काममें लाया जाताहै। संघर्षके लिए पैसेसे अधिक मनोबलकी आवश्यकता बतायी गयीहै—"जो धनी बन सका, वह किसी न किसी धांधलीके बाद ही।" परकाशकी यह दृष्टि बड़ी सार्थक है संघर्षके लिए—"मैं तो दोस्त थकानमें सुकून पानेवालों में हूं और रही गम गलत करनेकी बात, तो मुझे नहीं लगता कि गम गलत करनेमें गमको जीने-सा अधिक आनन्द आता होगा।" पृ. (१२६)। यही परकाश पिछले संघर्षोंकी असफलताके लिए अपनी जल्दबाजीको अधिक उत्तर-दायी मानताहै मजदूरोंके असहयोग तथा मालिककी धांधलियोंसे। (द्रष्टव्य पृ. १३१)। यह प्रखर सूक्ष्म पर्यवेक्षण ही हरिको व्यावहारिक राजनीति अपनानेकी प्रेरणा देताहै। मजदूरोंकी हड़तालको विफल करनेके षड्यन्त्रमें पूंजीपति सफल हो जातेहैं। स्वार्थी बुद्धि-जीवियोंपर बड़ा तीखा व्यंग्य है—"अनपढ़ उसे कहतेहैं जो बहुत पढ़ा-लिखा होकर भी यह नहीं जान पाता कि आदमीको आदमीके शोषणका कोई अधिकार नहीं है।" (पृ. १६०)।

पूंजीपतियोंके अत्याचारका विरोध करनेके कारण मजदूरोंको नौकरीसे निकाल दिया जाताहै तो मजदूर संतोष सरदारकी लातके प्रत्युत्तरमें उसके मुंहपर मुक्का जड़ देताहै। मजदूरोंका संगठन अब अन्याय नहीं सहता। इस नितांत भीषण संघर्षमें इन मजदूरोंको भोजपुरी लोकगीत विलक्षण प्रेरणा देतेहैं। हरिकी प्रेयसी प्रभा उसे संघर्षके लिए प्रेरित करतीहै—"तुम्हारे दूर जानेका दुख तो है मुझे, पर तुम्हारे संकल्पकी खुशी भी है।" (पृ. १६७)।

भोजपुरी मजदूर अपने पूरे लोक-सांस्कृतिक परि-वेशको मारीशसमें बचाये हुएहैं, यहां तक कि टोने-टोटके भी, यद्यपि उन्हें असफल दिखाकर लेखकने अंध-विश्वासको तोड़नेका प्रयास कियाहै। मजदूरोंको कुत्तों से नुचवाना, उनके नंगे बदनको ईखके रसमें डुबोकर तबतक पेड़से बांधे रखा जाताहै, जबतक लाल चींटियों उसे कंकालमें न बदल दें। ऐसे भीषण लोम-हर्षक अन्यायके विरुद्ध कटिबद्ध हरि और उसके साथियों की यह समरगाथा बड़ी प्रेरक है—अन्यायसे जूझनेके लिए। सत्याग्रहके लिए मजदूरोंको तैयार करना बड़े कौशलका काम है—"अपने पसीनेकी कमाईको हम लेकर रहेंगे। जितनी देरसे, उतनी शानसे।" (पृ. १८७)। इन जुझारू लोगोंके परिवारकी विपन्नताके दृश्य इस समरगाथाको प्रामाणिक बनातेहैं, मूसाकी इस मानवीय दुर्बलताका यह अंकन—"सुबह घरसे निकल रहाथा तो बीबी तो चुप रही, पर बच्चे पूछते रहे कि लौटूंगा तो दाल चावल तो लाऊंगा। मुझे तो कभी-कभी लगताहै कि बाहर हम लोग मसीहाई करते फिर रहेहैं और घरमें हत्यारे हैं।" (पृ. २११) "···जबकि गाँवमें हमारे बीमार बच्चे दूधकी बूंद-बूंद के लिए तड़पतेहैं और उधर कुत्तोंको दूध पिलाकर उनसे शिकार कराया जाताहै।" (पृ. २११)। यही सब इन मजदूर नेताओंके लिखे गीतोंमें मुखर हो रहाहै। यहां साहित्य जीवनका दस्तावेज बनता जा रहाहै। इस प्रेरक संघर्षगाथाकी उपेक्षा करके शासक अपने पिट्ठुओं से इतिहासके नामपर जो लिखा रहेहैं, उसमें सच्चाई पर झूठकी परतें है। ऐसाही भंडाफोड़ महाश्वेतादेवी ने कियाथा संथालोंके संघर्षको बदनाम करके उन्हें हतोत्साहित करनेके षड्यन्त्रका। यही बात अनंत लिखतेहैं—"भारतसे आये हुए मजदूर फूहड़ और काम-चोर हैं···हमें (ऐसी) पुस्तकें जलानेकी जरूरत नहीं है। हम तो उन गलत इतिहासोंका उत्तर इतिहास जीनेवाले लोगोंके बयानोंसे देंगे।" (पृ. २२५)।

अपनी बहनकी शादीके लिए विवशतामें हरि प्रभा से विवाह करनेसे रोक दिया जाताहै अपनी मां के द्वारा, और प्रभाका विवाह कहीं और हो जाताहै उसकी इच्छा के विरुद्ध जातपातके कारण। हारकर दुखी होनेपर उसकी बहन देवी उसे समझातीहै—"जब तुम कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं कर पाये तो वह क्या कर सकतीथी ? तुमभी तो उतने ही बेबस हो गयेथे भैया।"(पृ २६५)। प्रभा वहांसे असंतुष्ट हो छोड़कर चली आतीहै और फिर हरिके जेल में बंद किये जानेके विरुद्ध अट्ठारह दिनका उपवास कर शासनको हरिको छोड देनेके लिए विवश करतीहै। यही प्रभा हरिके संघर्षकी सहायक होकर उसकी जीवन-संगिनी बन जातीहै बड़ी सादगीसे विवाह करके। अब मजदूरमें संघर्षकी चेतना और शक्ति इतनी आ गयीहै कि माँकी गाली देनेपर वह सरदार से कहताहै—"गन्ने की तरह तुम्हें काटकर डिब्बेमें लाद दूंगा।" (पृ. २५०)। लेकिन यह समाधान नहीं है, क्षणिक उत्तेजनावश सहज भले ही हो। इसलिए हरि कहताहै—"जिस समय तूफान आताहै तो क्या उस समय उसके मुकाबलेके लिए आप भी तूफानका रूप ले लेतेहैं या दिमागसे काम करके अपने घर-द्वारको मजबूत करनेमें जुट जातेहैं ?" (पृ. २५३)। बौखलाये हुए मजदूरोंको नियंत्रणमें रखना बड़ा कठिन है लेकिन अनिवार्य भी है। हरिने नौकरी छोडदी—"यदि मैं सरकारी नौकरी पर नहीं होता तो मजदूरोंके साथ होता। और मेरी छाती इतनी चौड़ी है कि उन कातिलोंकी गोलियोंको अपनी छातीपर रोक पाता। मैं इसी वक्त अपनेको इस नौकरीसे अलग कर रहाहूं ताकि एक बार फिर मजदूरों के संघर्षसे पल भरके लिए भी दूर न रह सकूं और भविष्यमें जब भी मजदूरोंपर गोलियाँ चलें, पहले वे मेरे सीनेसे होकर गुजरें।" (पृ. २६०)। इस निष्ठाके वैषम्यमें नेताओंकी खोखली छलपूर्ण हमदर्दियाँ भी दिखायी गयीहैं। इस प्रकार दुर्बल और प्रबल दोनों पक्षोंको दिखाकर ही इस संघर्षकी विश्वसनीयता प्रतिष्ठित हुईहै। अदम्य जिजीविषा और अटूट विश्वास ही संघर्ष करनेवालोंमें प्राणोंका संचार करताहै। परकाशने कहा—"हर अंधेरेके भीतर एक अदृश्य प्रकाश होताहै और दुःखके भीतर सुखको ढूंढ निकालनेमें ही जीवन की सार्थकता है।" (पृ. २६५)। जो कुछभी मजदूरोंने पाया, वह संघर्षसे ही पायाहै—"यदि इन लोगोंने अपना खून नहीं बहाया होता तो मजदूर आज भी उसी प्रकार अभावग्रस्त और दारुण जीवन बितानेको बाध्य होते। बलिदान होनेथे और वे आपके बरसें हुए, इसके लिए आपको गर्व होना चाहिये।" (पृ. २६६)। इसी प्रकार परस्पर प्रेरणा मिलतीहै।

इस संघर्ष-गाथामें 'मजदूर' समाचार-पत्रकी भी भूमिका है, जिसे सहदेव ठाकुर निकालतेहैं। शराब विरोधी आंदोलनोंमें बंदी लोगोंको छुड़ानेके लिए प्रभा भूख हड़तालपर बैठी हुईहै। हरि यह जानकर बड़ा संतुष्ट होताहै। औरतोंके घास काटनेके अधिकारकी सुरक्षाके लिए हरि न्यायाधीशसे बहस करताहै। अपने नादान हितैषियोंसे हरि कहताहै—"तुम लोगोंको मेरे जेल जानेका डर है पर देशभर की गायोंकी तनिक भी चिंता नहीं है। गरीब औरतें एक-एक मुट्ठी घासके लिए मार खा रहीहैं, जलील की जा रहीहैं, इसे तुम क्यों नहीं देखते ?" (पृ. २९१)। सक्रिय राजनीतिमें प्रवेशके दुरुपयोगकी हारकी आशंकाको मूसा निर्मूल करताहै—यदि राजनीतिमें घुसना तुम्हारे लिए इतना आसान है तो एक झटकेके साथ उससे बाहर निकलना बहुत कठिन होगा क्या ?"(पृ. २९७)।इस समय राजनीतिको अछूत मानकर नहीं चला जा सकता—"आज की दुनियामें राजनीति एक बहुत बड़ी शक्ति है। यह भी कहूंगा कि राजनीतिसे जुड़े हुए कई लोग दुश्चरित्र और दिमागी तौर पर सड़े हुए होतेहैं, पर इसका मतलब नहीं कि राजनीतिमें आदमी यदि चाहे तो पूरी तरह ईमानदार निःस्वार्थ और नेक नहीं हो सकते।" (पृ. २९९)। यह है स्वस्थ, व्यावहारिक और वांछनीय दृष्टिकोण—राजनीतिके प्रति। इसीलिए हरिको सचेत भी किया जाताहै—"अपने इर्द-गिर्दके लोगोंकी चालाकी और स्वार्थसे हमेशा सावधान रहना तथा अपने और मजदूरोंके बीच किसी तीसरेको मत आने देना।" (पृ. वही)। यह है मूलमंत्र—मजदूर संगठनोंके नेताओंके लिए। इस संघर्षकी कटुतामें रस घोलतेहैं, हरिको लिखे प्रभाके पत्र। इनसे अधिक सुखद कुछ नहीं पढ़ा उसने, न रामचरितमानस, न आल्हा और न ही किशन सिंहकी किताब। डा. शिवसागर रामगुलामने भी हरिके सहयोगको अपने दलकी विजयका कारण बताया।

इस प्रकार अनेक असफलताओं, प्रवंचनाओं और विश्वासघातोंसे जूझते हुए अन्तमें हरिका आंदोलन सफल होताहै। प्रायः संघर्षपूर्ण कथा साहित्य नीरस, बौद्धिक विवेचनसे बोझिल होताहै पर यहां दाम्पत्य जीवनके आधार और मधुर प्रसंगोंकी फुहारोंसे पाठकको अचानक आनन्द मिलताहै। जो इस बातका प्रमाण है कि कथा मजदूर-आंदोलनोंकी रिपोर्टोंसे अलग होतीहै। अनेक प्रसंग ऐसे हैं जो इस संघर्ष-गाथाको उपन्यास बनाये रखतेहैं। यद्यपि बड़ा तार्किक और बौद्धिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवेचन और विश्लेषण है, परंतु एक तो यह प्रसंगानुकूल है, फिर बहुत कम है। पार्टीके सिद्धांतोंको कहीं बघारा नहीं है पर सहज वादविवादके बीचमें बड़े स्वाभाविक ढंगसे व्यावहारिक राजनीतिक गतिविधियोंपर बातचीत हुईहै जो ऊबाऊ कदापि नहीं है।

एक ही उदाहरण भाषाकी जीवन्तताका पर्याप्त होगा—"मूत दो साली उस तरहकी हराम नौकरीपर" (पृ. ८६)। कहीं-कहीं भोजपुरी शब्द अभिव्यक्तिकी तीखी धार तक पहुंचनेमें बाधक होतेहैं। क्रियोली वाक्य भी अनुवाद या व्याख्याके अभावमें असम्प्रेषित रह जातेहैं। पर ऐसे स्थल बहुत कम हैं। संथालोंके लोम-हर्षक संघर्षको कथाबद्ध करनेवाले महाश्वेता देवीके साहित्यसे ही इसकी तुलना की जा सकतीहै, यद्यपि यह उतना वेधक नहीं है। महाश्वेता देवीकी ही भांति उन्नत भी इस संघर्षके दर्शक नहीं अपितु भागीदार लगतेहैं। □

दीक्षान्त[1]

लेखिका : सूर्यबाला

समीक्षक : डा. मदनमोहन तरुण

शिक्षण-संस्थाओंमें शिक्षेतर शक्तियोंके निरन्तर बढ़ते प्रभाव, अन्य व्यावसायिक संस्थानों जैसा ही मूल्यविरहित वातावरण, साधना, अध्यवसाय तथा उच्चादर्शोंके कठिन मार्गसे जीवनका परिष्कार करते हुए एवं अधीत विषयोंपर अधिकारके स्थानपर शीघ्रातिशीघ्र सफलताकी होड़ाहोड़ीमें मूल्यों एवं ज्ञान-साधनाके प्रति समर्पित अध्यापकोंका निरन्तर घटता प्रभाव, उनके भीतर गहराती निराशा एवं वातावरणमें अपनी आवश्यकताकी तीव्रानुभूति ही इस उपन्यासका मुख्य विषय है।

'दीक्षान्त' की मर्मस्पर्शी यातना-कथा स्वाधीनता संग्रामके त्याग एवं कर्तव्योंके प्रति निष्काम समर्पणके मूल्योंसे प्रेरित एक ग्रामीण विद्यालयके आदर्शनिष्ठ अध्यापकके पुत्र डा. विद्याभूषण शर्माके माध्यमसे कही गयीहै।

'बी. ए. की परीक्षामें टॉपर, एम. ए. में गोल्ड मेडलिस्ट तथा पी-एच. डी.' विद्याभूषण अपनी आंखों में भविष्यके सपने संजोये, कठिन साधनासे अर्जित अपने ज्ञानका सर्वस्व अपने विद्यार्थियों अथवा भारतके भविष्यको सौंप देनेकी आकांक्षासे प्रेरित हो इस महा-विद्यालयमें आयाथा, परन्तु उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि प्रशासनकी दृष्टिमें वह जूनियर कॉलेजमें नियुक्तिके लिए ओवर क्वालिफायड है तथा सीनियर कॉलेजका पद अन्य व्यक्तिको दिया जा चुकाहै। अभी बी. एड. न होनेके बावजूद जूनियर कॉलेजमें उसे जो नियुक्ति दी गयीहै, वह उसकी विद्वत्ताकी स्वीकृति नहीं, प्राचार्यकी कृपाका परिणाम है। उसे यह जानकर औरभी दुःख हुआ कि अपना ज्ञान वह जिन विद्यार्थियोंमें लुटाकर अपने राष्ट्रके प्रति अपने कर्तव्यों के पालनका सुख प्राप्त करना चाहताथा वे विद्यार्थी ज्ञान जैसे शुष्क अथवा अनावश्यक विषयोंमें अपना समय नष्ट करनेकी अपेक्षा नैतिक अथवा अनैतिक किसीभी माध्यमसे परीक्षा पास करनेमें विश्वास रखते थे। उनकी दृष्टिमें श्रेष्ठ शिक्षक वह है जो उनके मार्ग में बाधा तो नहीं ही बने, क्षमता भर समस्त अनैतिक माध्यमोंके उपयोगमें उनकी सहायता कर उनके भविष्यका मार्ग प्रशस्त कर सके। यही कारण है कि जहाँ अन्य अध्यापक परीक्षामें विद्यार्थियोंके नकल करते समय अपनी आंखें मूंद लेतेहैं तथा फेल होते विद्यार्थीके अतिरिक्त प्रभावोंको ध्यानमें रखते हुए अधिक-से अधिक अंक प्रदानकर निःसंकोच भावसे उसकी सफलता में सहायता करतेहैं, वहीं विद्याभूषणके लिए यह सब शिक्षाके महान आदर्शोंके विपरीत है। वह इस स्थितिसे समझौता नहीं कर पाता। स्थान-स्थानपर अपने सिद्धान्तोंपर अड़कर वह प्रशासन तथा विद्यार्थियोंकी आंखोंकी किरकिरी बन जाताहै। विद्यार्थियोंसे सम्मान पानेकी जगह स्थान-स्थानपर उसे अपमानित होना पड़ताहै तथा कक्षाओंमें वह 'हूट' किया जाताहै। वहीं दूसरी ओर उससे कम योग्यताके किन्तु तिकड़मबाज विभागाध्यक्ष विद्यार्थियों एवं व्यवस्थापर अपनी पकड़ मजबूत बनाये रखनेके लिए एक ओर जहां विद्यार्थियों को उसके विरुद्ध भड़काता रहताहै वहीं दूसरी ओर वह प्रशासन तक यह सूचना भी पहुंचाता रहताहै कि उसकी आवाज कक्षाके अंतिम छात्र तक नहीं पहुंचती तथा वह विद्यार्थियोंपर नियंत्रण रखनेमें असमर्थ है।

---

१. प्रका. : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १२२; क्रा. ९२; मूल्य : ५०.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्याभूषणको यह देखकर आश्चर्य होताहै कि इस महाविद्यालयमें उन अध्यापिकाओंको, जो सम्पन्न घराने की स्त्रियां हैं तथा जिन्होंने पार्टियों तथा समाजसेवा आदिसे बचा ढेर सारा समय तथा अपनी साड़ियों एवं आभूषणोंके प्रदर्शनके लिए इस महाविद्यालयको कृपा-पूर्वक अपनी सेवाएं प्रदान कीहैं, वे चाहे जैसा पढ़ायें, उन्हें कोई कुछ नहीं कहता। विद्यार्थी उन्हें 'हूट' करने का साहस नहीं कर सकते। प्राचार्यसे लेकर सभी सदस्य उनका सम्मान करतेहैं क्योंकि वे ज्ञानका नहीं इस महाविद्यालयको चलानेवाले फंडका स्रोत हैं। उनके पति या पिता या तो इस महाविद्यालयकी मैनेजिंग बॉडीके प्रभावशाली सदस्य हैं अथवा इस नगरके कोई प्रभावशाली पूंजीपति हैं। दूसरी ओर पोलिटिकल साइंसके चन्द्रभानसिंह यहांके प्रतिष्ठित एवं प्रभाव-शाली अध्यापक हैं। वे परमानेंट हैं। कभी भी छुट्टी ले सकतेहैं। क्लास लेना, न लेना उनकी इच्छापर निर्भर करताहैं। उन्हें कोई कुछ कहनेका साहस नहीं कर सकता। कहतेहैं उनकी पहुंच मिनिस्ट्री तक हैं। वे शत्रुओंसे धमकी ही नही, छुरेंकी नोंक तक दिखलवाकर निबट सकतेहैं। वे कमीनोंके बीच जीनेके लिए कमीन-पन आवश्यक समझतेहैं। विद्याभूषण इन स्थितियोंमें कहीं भी अपनी भूमिका निश्चित कर पानेमें अपने आपको असमर्थ पाताहै।

विद्याभूषण एक ओर जहां शिक्षेतर प्रतिमानोंपर अपने मूल्यांकनके निमित्त उसी जीवन-पद्धतिमें ढल जाने को तैयार नही, वहीं वह इतना प्रचण्ड चरित्र भी नहीं कि ऐसी शक्तियोंसे टकराकर वह उन्हें उनकी सीमाए बता दे। इस पूरे वातावरणमें वह अपनेको सर्वथा अर-क्षित, अपमानित तथा असहाय अनुभव करताहै।

राधिकादेवी बिसारिया कालेज अपने-आपमें पूरे भारतके उन महाविद्यालयोंका प्रतीक है जो बाहर-बाहर से शिक्षा और ज्ञानके रूपमें ख्यात है, किन्तु मूलतः वे समाजके शक्तिशाली लोगोंकी व्यावसायिक महत्त्वा-कांक्षाओंकी सिद्धिके कर-मुक्त एवं घाटेके खतरोंसे सुर-क्षित साधन हैं। यहां किसी व्यक्तिका मूल्यांकन उसकी विद्वत्ताके आधारपर नहीं, हानि और लाभकी कसौटी पर किया जाताहैं। इस व्यवस्थामें जो जितना ही काइयां हैं, वह उतना ही प्रतिष्ठित है। व्यवसायके मार्ग में आनेवाली विद्वत्ता, आदर्श तथा व्यक्ति यहांसे एक झटकेमें बाहर फेंक दिये जातेहैं।

विद्याभूषण इस व्यवस्थाके लिए पूर्णतः व्यर्थ तो हैही, आदर्शनिष्ठ एवं नैतिकवादी होनेके कारण खतर-नाक भी।

बिसारिया कॉलेजपर एक मंत्री महोदयने अपार कृपा कीहै। कॉलेजके पिछले एकांउटके जिस घपलेमें कई प्रभावशाली सदस्योंकी गर्दनें फंसीथीं तथा जिसके कारण कॉलेजकी ग्रांट भी करीब-करीब आधी हो गयी थी, उसे उन्होंने रफा-दफा कर दिया। लोगोंकी प्रतिष्ठा बच गयीहै तथा ग्रांटकी गंगा भी पूरे प्रवाहसे उसके खजानेमें बहने लगीहै। इन सबके बदले मंत्री महोदय की एक बहुत ही छोटी-सी इच्छा है। उनका भतीजा, जो अभी-अभी एम. ए. पास हुआहै, उसकी बिसारिया कॉलेजमें प्राध्यापकके रूपमें नियुक्ति हो जाये। इस नौकरीके लिए आवश्यकता है रिक्त स्थानकी। मंत्री महोदयकी इस छोटी-सी इच्छाकी पूर्तिके लिए महा-विद्यालयने अपने सबसे अरक्षित अध्यापक विद्याभूषणके चारों ओर चक्रव्यूहका जाल बुन दियाहै। इससे निक-लना विद्याभूषण जैसे निरीह अध्यापकके लिए असम्भव है क्योंकि उसके विरुद्ध आरोपोंकी कमी नहीं। वह बी. एड नहीं है। उसकी आवाज कक्षाके अंतिम छात्र तक नहीं पहुंचती। छात्रोंपर उसका नियंत्रण नहीं क्योंकि एक बार कक्षाके छात्रोंको क्रोधमें 'गेट-आउट' कहनेपर सारे छात्र बाहर चले गयेथे। शहरके पूंजीपति बरुआके पुत्रकी परीक्षामें कड़ाई करने, अंक न बढ़ानेकी शत्रुता के बदले पूरे शहरमें उनके गुंडों द्वारा पीटे जानेकी अफवाह फैलायी जा चुकीहै। यह कॉलेजकी प्रतिष्ठाके लिए घातक है। अब ऐसे अध्यापककी नौकरी कोई नहीं बचा सकता।

कहां तो विद्याभूषण प्राचार्यके पास अपनी योग्यता के आधारपर दो ही वर्षोंके लिए सही, सीनियर कॉलेज की रिक्त जगहपर अपनी नियुक्तिका अनुरोध लेकर गयाथा, कहां प्राचार्यने उसे अगले सत्र तक अपने लिए नयी नौकरी ढूंढ़ लेनेका अल्टीमेटम दे दिया।

यही अंततः विद्याभूषणकी मृत्यु आत्महत्या अथवा हत्याका कारण भी बना।

लेखिकाने उपन्यासकी भूमिकामें 'शर्मा सर' (विद्याभूषण) की मृत्युको बेगमबुर्जसे अंधेरेमें संतुलन बिगड़ जानेसे गिरनेके कारण मृत्यु माननेका आग्रह रखा है क्योंकि 'सारिका' में जब यह उपन्यास पहली बार छपाथा तो 'एडिटिंगकी लाचारी' के कारण परवर्ती अध्यायोंमें से कुछ अंश (यह उपन्यास परिसर, यंत्रणाके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोण, चक्रव्यूह, प्रयाण, लोग तथा आलोक-बिन्दु शीर्षक अध्यायोंमें निबद्ध है) अप्रकाशित रह जानेके कारण कुछ पाठकोंको उनकी मृत्यु आत्महत्या लगीथी। किन्तु, जिस असाधारण मोह-भंग एवं चारों ओरसे अरक्षा, उपहास एवं उपेक्षाकी हाहाकार करती आत्यंतिक मानसिक तनावोंकी स्थितिमें विद्याभूषणकी मृत्यु हुई वह सुनिश्चित रूपसे स्वाभाविक या मात्र संतुलन बिगड़नेसे गिर जानेके कारण मृत्यु नहीं मानी जा सकती, भले ही वह आत्महत्या न हो। सच पूछा जाये तो यह शिक्षा-क्षेत्रकी अस्मितापर शिक्षेतर शक्तियोंका निर्मम बर्बर तथा पूर्वनियोजित आक्रमण है जिसमें विद्याभूषण अपनेही छात्रों, अपनेही शिक्षक समाज, अपनेही प्राचार्य तथा अपनीही व्यवस्थाके अभिभावकों का मुखौटा पहने लोगों द्वारा सर्वथा निजी स्वार्थोंकी पूर्तिके लिए चारों ओरसे घेरकर इतना निःसत्व कर दिया गया कि उसके पास अपने आपको जीवित रखने का कोई तर्क ही शेष नहीं रह गया। अतः प्रत्यक्षतः विद्याभूषणकी मृत्युको आप आत्महत्या अथवा मृत्यु जो मानना हो मानें, इससे कोई अंतर नही पड़ता किन्तु प्रतीकतः यह एक निर्मम हत्या है—अपनी समग्रतामें यही सत्य यह उपन्यास अपने पाठकों तक सम्प्रेषित भी करताहै—और यही उसकी सबसे बड़ी शक्ति और सफलता भी है।

चक्रव्यूहमें घिरा हुआ विद्याभूषण कोई अभिमन्यु नहीं है, बल्कि शिक्षेतर व्यावसायिक शक्तियोंसे समय-असमय उसके आदर्श-तेजस व्यक्तित्वको कुचल-रौंदकर पूरी तरह अस्तित्वविहीन बना दियाहैं। उसमें सत्तासे टकरानेकी शक्ति नहीं। वह कभी मुखर विद्रोह नहीं कर पाता, चाहे विद्यार्थी उसे कक्षामें 'हूट' कर रहेहों, अथवा बरामदेसे गुजरते समय उसपर फब्तियां कस रहे हों अथवा प्रिंसिपलके चपरासीने उसे घंटों बाहर प्रतीक्षा करा दियाहो, जबकि ठेकेदार किस्मके लोग उससे बेरोक-टोक मिल रहेहों, अथवा ठक्करके बेटेको ट्यूशन पढ़ाते समय दी गयी चायके बदले घर लौटते समय उसे सब्जी लानेकी थैली या रजिस्ट्रीके लिए चिट्ठी थमाकर उसे उसकी हैसियत बतला दी गयीहो। इन क्षणोंमें अपमानसे पूर्णतः व्यथित होकर भी वह मात्र मन मसोस कर रह जाताहै, क्योंकि यह सब उसकी जीविका के साधनोंका एक अपरिहार्य अंग बन चुकाहै। इसीमें उसके उन बच्चोंका भविष्य है जो आजभी दूसरोंसे उधार मांगे पी. टी. के जूते पहनकर स्कूल जातेहैं।

ऐसे निरीह, ऐसे अरक्षित, इस प्रकारके अभावग्रस्त व्यक्तिकी ऐसी मृत्यु/हत्या मनको दहला देतीहै क्योंकि ऐसी निर्मम और स्वार्थी शक्तियोंके शिकंजेने केवल विद्याभूषणको ही नहीं जकड़ रखाहै, ऐसे सैकड़ों लोग हैं जिनका वह प्रतीक बन गयाहै। विद्याभूषणके भीतर व्याप्त अकेलेपन, असहायता एवं उपहासकी व्यथाकी अभिव्यक्तिकी तीव्रता इस उपन्यासकी शक्ति है जिसके कारण उसकी मृत्युका नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता। अपनेसे अशेषगुणा शक्तिशाली व्यवसायियोंके घेरेमें तड़प-तड़पकर मरता वह निष्ठावान् अध्यापक, प्रिंसिपल राजदानके ग्लानि और पश्चातापोंमें, इस उपन्यास के पाठकोंमें पुनर्जीवित हो उठताहै। मृत्युके अंतिम क्षणोंमें अपने आदर्शप्राण पिताकी स्मृतियोंमें डूबती-उतराती छविसे वह जो पूछताहै— वह आजकी अत्यंत शक्तिशाली व्यवस्थामें एक सर्वथा अरक्षित किन्तु मूल्य समर्पित व्यक्तिका प्रश्न हैं, जिससे उसकी अपनी आस्थाओंके साथ जीनेका अधिकार छीन लिया गयाहै। यहाँ तक कि बचपनमें राष्ट्रीय दिवस के अवसरपर गाया जानेवाला—अरुण यह मधुमय देश हमारा—वाला गीत उसे अपने देशका गीत नहीं लगता, क्योंकि उसे उस देशका कहीं ओर-छोर नहीं मिल रहाहै, जो उसका है, जहांका क्षितिज अरुण है, जो उसे सहारा दे सकताहो। क्या ये प्रश्न नकारात्मक हैं। कम-से-कम इसके उत्तरकी अपेक्षा हम एक अतिरिक्त अध्याय (आलोक-बिन्दु) के रूपमें नहीं करते। यह उत्तर स्वयं उपन्यासके भीतरसे फूटकर बाहर आना चाहिये।

'दीक्षान्त' की कथा—परिसर, यंत्रणाके कोण, चक्रव्यूह, प्रयाण, लोग तथा आलोक-बिन्दु—शीर्षकोंमें उपन्यस्त है। पुस्तकाकार प्रकाशित होनेके पूर्व यह उपन्यास 'सारिका' मे प्रकाशित हुआथा, जहां सम्पादक द्वारा विद्याभूषणकी मृत्युसे आगेका अंश 'एडिट' कर दिया गयाथा। फलस्वरूप, पाठकोंको शंका हुईथी कि विद्याभूषणने अंतमें आत्महत्या कर ली। कई ऐसेभी पाठक थे जिन्हें विद्याभूषणके जीवनमें अपनी छवि दिखायी पड़ीथी, किन्तु उन्हें उसकी ऐसी मृत्युसे झटका लगाथा। जब यह उपन्यास पुस्तकाकार प्रकाशित होने लगा तो लेखिकाको पाठकोंकी शंकाओंके निवारणका अवसर मिला। उन्होंने इस उपन्यासका वह भाग फिर से जोड़ दिया जो 'सारिका' सम्पादक द्वारा 'एडिट' कर दिया गयाथा। यही नहीं, जहां 'सारिका' के पाठकोंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसे एक दुःखान्त उपन्यासके रूपमें पढाथा। वही लेखिकाने 'आलोक-बिन्दु' शीर्षकसे अंतमे एक परिशिष्ट जोड़कर इसकी निराशामें आशाकी एक जोत जगादी।

मेरी दृष्टिमें 'प्रयाण' ही इस उपन्यासका क्लाइ-मेक्स भी है और सहज-स्वाभाविक समापन-बिन्दु भी जो पाठककी मूल्य-चेतनाको झिंझोड़ता हुआ अपनी गहन व्यथाकी तीव्रताके साथ उसकी अन्तश्चेतनामें उतर जाताहै तथा उसे मथता रहताहै। यही इस उपन्यासकी उपलब्धि है। यह प्रभावतः नकारात्मक अंत नहीं अतः लेखिकाकी ओरसे कोई अतिरिक्त संदेश भी अपेक्षित नहीं। 'प्रयाण' के पश्चात् जोड़े गये दोनों अध्याय 'लोग' तथा 'आलोक-बिन्दु' संक्षेपमें जल्दी-जल्दी समेटे गये अध्याय हैं जिनका पूर्ण परिपाक नहीं हुआहै। यही कारण है कि 'आलोक-बिन्दु' लेखिकाका कांक्षित सत्य बनकर रह गयाहै, वह इस उपन्यासका अन्तर्भूत सम्प्रेषण नहीं बन पायाहै फलतः अपना कोई प्रभाव छोड़ नहीं पाता, इसके विपरीत उपन्यासकी कसावटको थोड़ा प्रभावित करताहै।

'दीक्षान्त' एक मूल्य-केन्द्रित उपन्यास है जो शिल्प की दृष्टिसे लम्बी कहानीके अधिक निकट है। इसकी पूरी कथा एकोन्मुख भावसे लक्ष्य-प्रेरित है जिसके कारण लेखिकाको आस-पासके परिवेशकी और पूरे रूप में दृष्टि डालनेका अवसर नहीं मिल पाता। वस्तुतः यही इस उपन्यासकी शक्ति भी है। लक्ष्यकी यही एकोन्मुखता उसके प्रभावकी तीव्रताको निरन्तर बनाये रखतीहै। यह उपन्यास अपने विवेचन-विश्लेषणसे नहीं, अपनी सांवेगिक तीव्रतासे पाठकको झिंझोड़ताहै।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'दीक्षान्त' गहरी संवेदना, समर्पित निष्ठा एवं अत्यंत तन्मयतापूर्वक लिखा गया एक मर्मस्पर्शी उपन्यास है। ▭

जलकुंभी[1]

लेखक : मधुर कमल

समीक्षक : डा. सूर्यनारायण रणसुभे

आधुनिक भारतीय मनुष्यकी त्रासदीको व्यक्त करनेके लिए नये-नये प्रतीकों, मिथकोंका उपयोग किया जा रहाहै। प्रचलित प्रतीक या मिथक भी धीरे-धीरे अपना अर्थ खो बैठतेहैं या यूं कहें कि आजके मनुष्यकी छटपटाहटको व्यक्त करनेमें वे भी अधूरे-से जान पड़ते हैं। ऐसी स्थितिमें सृजनात्मक लेखक पुराने शब्दोंको नया अर्थ देकर उससे वह अर्थ निकाल लेताहै, जो उसे अपेक्षित है। "जलकुंभी" इस शब्दको नये संदर्भमें प्रयुक्त करनेका सफल प्रयास इसके लेखक मधुर कमल ने कियाहै। "जलकुंभी" का अर्थ है, पानी पर तैरता हुआ वह पौधा जिसकी जड़ जमीनमें नहीं धंस पातीहै, पानीमें तैरती रहतीहै, और जब पानी सूख जाताहै तो उसकी हरियाली हल्दिया जातीहै, जड़ें सूख जातीहैं।" (अलगावका दस्तावेज : डा. मधुसूदन साहाकी भूमिका, पृष्ठ ८)।

स्वतंत्रताके सैंतालिस वर्षों बाद इस देशका संवेदनशील मनुष्य बड़ी गहराईसे यह अनुभव कर रहाहै कि धीरे-धीरे इस देशमें मूल्यहीनताकी, संवेदनशून्यताकी स्थिति उभर रही है। और यह स्थिति केवल महानगरों तक ही सीमित नहीं है, देहातोंमें भी इस प्रकारका परिवर्तन हो रहाहै। कहाँ तो हमने तय कियाथा कि मनुष्यता और केवल मनुष्यता ही हमारी मंजिल रहेगी। मार्ग भी मनुष्यताका होगा और लक्ष्य भी। संविधानमें हमने मनुष्यको एक मूल्यके रूपमें स्वीकार किया। हमने शपथ ली कि यहां धर्म, जाति, भाषा, लिंग, प्रदेश आदिके परे जाकर केवल मनुष्यकी ही पहचान बनी रहेगी। परन्तु सच्चाई क्या है ? क्या आज धर्म, जाति प्रदेश, भाषा, वर्ण आदिको नकारकर कोई जी सकताहै ? यदि वह जीना भी चाहेगा तो क्या उसे जीने दिया जायेगा। धर्म, जाति, प्रदेशकी तो जाने दीजिये क्या परिवारमें ही उसके साथ विशुद्ध मानवीयतासे व्यवहार किया जाताहै ? इन सारे प्रश्नोंके उत्तर क्या मिलतेहैं, इसे हम सभी जानतेहैं।

आजके भारतीय मनुष्यकी इस बदलती मानसिकताका विवरण देना आसान है परन्तु सृजनात्मक स्तरपर जाकर इस बदली मानसिकताके कारण उत्पन्न छटपटाहटको शब्दबद्ध करना वास्तवमें एक चुनौतीहै। इस चुनौतीको भी मधुर कमलने 'जलकुंभी' में न केवल स्वीकारा है, अपितु उसे झेला भी है।

यह उपन्यास उमापति नामक एक संवेदनशील युवककी मानसिकतासे जुड़ा हुआहै। रघुवर दयालकी

१. प्रका. : अयन प्रकाशन, १/२० महरौली, नयी दिल्ली-११००३० । पृष्ठ : १६९; क्रा. ९३; मूल्य : ७०.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहली पत्नीका लड़का उमापति पिताकी मृत्युके बादके दायित्वोंको निभानेके लिए असममें चला जाताहै। उमापतिकी सौतली मांने उसके साथ कभी परायेपनका व्यवहार नहीं किया, न उमापतिने उसे कभी सौतेली माना। इस दूसरी मांसे प्राप्त संतानोंको भी वह अपने सगे भाई-बहन समझताहै। जातिके नामपर किये जाने वाले परायेपनके व्यवहारसे वह क्षुब्ध हो उठताहै। इसी कारण अछूत भीमा चाचासे वह सहज मानवीय व्यवहार करताहै। गोहाटी (असम) में यही भीमा चाचा उसके लिए बहुत बड़ा आधार बन जातेहैं। परिश्रम, ईमानदारी तथा चरित्र सपन्नताके कारण वह सैकिया परिवारमें अपना अलग-अलग स्थान बना लेताहै। इस सैकिया परिवारकी दूसरी लड़की वल्लरी उसे चाहती है। वल्लरीकी मां भी उमापतिको अपना दामाद बनाना चाहतीहै। परन्तु यह सब कुछ नहीं होपाता। यहांसे इस उपन्यासकी कथावस्तु तेजीसे आगे बढ़ने लगतीहै तथा आजकी भारतीय जीवनपर छा जानेवाली भयावह छायाओंका यथार्थ चित्रण शुरू हो जाताहै। उमापति भाषा और प्रदेशके कारण गोहाटीके लोगों द्वारा नकारा जाताहै। हारकर जब वह अपने घर लौटताहै तो वहां उसे पराये व्यक्तिके रूपमें देखा जाताहै। जिस भाईको उसने आजतक लाखों रुपए दियेथे, वह अब बंटबारेकी बात करने लगताहै। उमापति सभी ओरसे नकारा जाताहै। जीवनके कई वर्ष अपने गांवमें बितानेपर भी गांववाले उसे अपना नहीं मानते क्योंकि पिछले २०-२५ वर्षोंसे वह उस गांवसे जुड़ा हुआ नहीं था। गोहाटीके लोग उसे अपना नहीं समझते क्योंकि उसकी मातृभाषा असमी नहीं है। भाई उसे अपना भाई नहीं मानता क्योंकि वह सौतेला है। कहनेके लिए तो देश एक है, संविधान एक है, कानून एक है परन्तु आचरणके स्तर पर तो यहां मनुष्यकी पहचान जाति, धर्म, भाषा आदि पर ही होतीहै। ऐसी स्थितिमें वह क्या करे जो इन सभीके परे जाकर केवल मनुष्यके रूपमें जीना चाहता है। ऐसे मनुष्यके लिए इस व्यवस्थामें कोई स्थान नहीं है। इस ज्वलंत यथार्थको इस उपन्यासमें पूरे तीखेपन के साथ व्यक्त किया गयाहै।

यह स्थिति बिहारके उमापतिकी ही नहीं, बल्कि इस देशके उन सभीकी है, जिनकी जन्मभूमि और कर्मभूमि अलग-अलग होतीहै। ऐसे व्यक्ति आज दोनों ओर से नकारे जातेहैं, उनकी स्थिति जलकुंभी जैसी हो जाती है। "आउट साइडर" बनकर जीनेकी यह नियति केवल यूरोपीय मनुष्यकी ही नहीं, भारतीय मनुष्य भी इसके लिए अभिशप्त हैं।

इस उपन्यासमें कहीं भी अनावश्यक प्रसंग अथवा अनावश्यक विस्तार नहीं है। प्रकाशकने इसे समसामयिक उपन्यास भलेही कहाहो, परन्तु यह उपन्यास "समसामयिकताको लांघकर प्रत्येक युगमें जीनेवाले संवेदनशील मनुष्यकी व्यथाको पूरी शक्तिके साथ उजागर करताहै। संभवतः इसी कारण डा. मधुसूदन साहा इसे 'अलगाव का दस्तावेज' कहतेहैं। भाषा, शिल्प और संवेदनाके स्तर पर यह उपन्यास लेखककी महत्वपूर्ण उपलब्धि है। ▭

काव्य

सपना अभी भी[1]

कवि : धर्मवीर भारती

समीक्षक : डा. मूलचन्द सेठिया

चौंतीस बरसके लम्बे अन्तरालके बाद धर्मवीर भारतीका नवीनतम कविता-संग्रह 'सपना अभी भी' के नामसे प्रकाशित हुआहै। सन् साठमें 'धर्मयुग' का सम्पादक बननेके पश्चात् भारतीने कविता, कहानी, उपन्यास और आलोचनाके क्षेत्रमें सृजनात्मक लेखन बहुत कम कियाहै। इसमें कविकी सन् '६९ से लेकर ९३ तक की कविताएं संगृहीत हैं। भारती मूलतः एक रोमानी कवि रहेहैं, परन्तु उनका भावावेश पार्थिव प्रेम और ऐन्द्रिक सौन्दर्यके प्रति एक मांसल प्यासको अभिव्यक्त

१. प्रका. : बाणी प्रकाशन, २१-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १०३; डिमा. ९३; मूल्य : ७०.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हुए भी वैचारिकतासे विच्छिन्न नहीं रहाहै। 'सपना अभी भी' की कविताओंमें विक्षोभ, आक्रोश, जिजीविषा और युयुत्साके स्वर भी सुनायी पड़तेहैं, परन्तु, अभीभी उनके मनपर प्रणयका सतरंगी ताना-बाना ही बुना हुआहै। कविने कभी जिस कपूरी तनको अपने कुंआरे तन-मनकी तृष्णाका अर्पण कियाथा, उसका 'सपना अभी भी' उसकी पलकोंमें पल रहाहै। चार दशक पहलेकी कविताओंमें उसने जिस 'धूप, फूल और रेशमकी भाषा' का प्रयोग कियाथा, उसके मोहसे वह अब भी मुक्त नहीं हो सकाहै। राग-रंग, रूप और रोमानकी दुनियां अब भी उन्हें लुभातीहै और उनका मन बार-बार उस ओर दौड़कर जाताहै :

वह संसार जो बनाया सिर्फ
फूल और धूप और नशे और प्याससे
और छतपर चांदनीमें पीपलके पत्तोंसे कांपते
निर्वसन शरीरके उजाससे

जीवनके राग और रस-रंगके प्रति कविका वह सम्मोहन आजभी वैसाही उद्दाम है, परन्तु, जब कभी वह प्यारके साथ यथार्थकी टकराहटको देखताहै और अपने प्रेमको प्रियसे ही चोट खाकर एक टूटते ज्वारकी भांति लौटता हुआ पाताहै तो सोचताहै।

काश कि मैं एक जाल फेंककर
वापस खींच ला पाता अपना वह कच्चा मन
जिसमें उगा था कभी रस सतरंग तारवाला प्यार।

परन्तु, यह सोचना भ्रम होगा कि कविका मन-प्रणय-रागसे उपरत हो गयाहै। अबभी वह गंगासे यही प्रार्थना करताहै कि लहरोंके टूटने-बननेके इस अनन्त क्रममें यदि उसके पास वह एक लहर बचीहो तो उसे लौटा दे। यह वही लहर है जिसपर उसकी प्रणयिनी की परछाईं अंकित है। यौवनके उतारपर आनेके बाद भी उसके मनमें यह एक चाह अभी बची हुईहै :

एक पूरी उम्रके बाद
इस पूजा-वेलामें उन पांवोंको अंजुरी भर-भरकर
तुम्हारे जलसे धोना चाहताहूं

भारती अपनी कविताओंमें आरम्भसे ही नारीके प्रति अपने ऐन्द्रिक आकर्षणको व्यक्त करनेके लिए पूजा और पवित्रताके एक छद्म आवरणका सृजन करते रहेहैं। 'ठण्डा लोहा' में कविकी प्रेयसीके सरल निष्काम पूजासे रूपको अर्चनाकी धूप चूमती रहतीहै और अपने अधरोंपर रखे हुए प्रेयसीके होंठ यों प्रतीत होतेहैं, 'बांसुरी रखी हुई ज्यों भागवतके पृष्ठपर।' आलोच्य संग्रहमें भी कवि अपनी वासनाको उपासनाका रूप देनेकी प्रवृत्तिसे मुक्त नहीं हो सकाहै। तभी तो दो देहोंकी युगबद्धताको उसने प्रणाममें जुड़े हुए हाथोंसे उपमित कियाहै।" और "दो तन प्रगाढ़ कसावमें/किसी अज्ञातको निवेदित प्रणाम की तरह आबद्ध भरपूर।" पता नहीं भारती "कामाध्यात्म (!)के इस अद्भुत प्रयोग द्वारा कामका अध्यात्मीकरण करना चाहते हैं या अध्यात्मको कामकी भाषामें अभिव्यक्त करना चाहतेहैं।"

'सपना अभी भी' में प्रणयके प्रथम ज्वारकी उद्दामताको ही चित्रित नहीं किया गयाहै; पकी उम्रके उस परिपक्व प्रेमको भी अभिव्यक्त किया गयाहैं, जो 'कुछ उदास कुछ सर्द' हो जानेके कारण अधिक बोलता नहीं, पर 'गहरे झगड़ोंकी खरोंचके कभी-कभी पिरा उठनेके बावजूद उसका दर्द आजभी मीठा लगताहै।' इस प्यार की पृष्ठभूमिमें अब केवल मान-मनुहार और अभिसार ही नहीं है, प्रतिदिनके रगड़ों-झगड़ोंका तनाव, थकान और तकरार भी अनजानेही आकर उसमें जुड़ गयाहै। फिरभी, उसका अपना एक आकर्षण है :

किस प्रकार/बरस-दर-बरस गाढ़ा होता जाताहै
एक प्यार—अनदेखे-अनजाने—
घरके कामकाजमें बारीक धागे-सा पिरोया/एक संसार
हजार-हजार बार ताजा हो उठताहै।

कविने प्रौढ़िका प्रभाव केवल प्रणायानुभूतिमें ही नहीं, प्रेयसीके अंगोंमें भी चिह्नित कियाहै। उम्रके साथ प्रेम ही प्रगाढ़ नहीं हुआहै, आंगिक आकर्षण भी उद्दाम हो गयाहै "कभी क्षीण कटाववाले बदनके/अब पके गह्वर ढलानोंमें/बहुत ज्यादा, बहुत गाढ़े नशे हैं।" प्रणयकी अनेक भाव-छायाओंको चित्रित करते हुए कभी-कभी कविको यह सन्देह होने लगताहै :

कितना होताहै सचमुच प्यार
कितना प्यार करनेका जिद्दी अहंकार,
जिसे हम बुन लेतेहैं अपने चारों ओर।

प्रकृति के अनेक रम्य और उन्मादक चित्र भारतीने अपनी कविताओंमें अंकित कियेहैं। सांझ होतेही गहरा जानेवाली उदासीके कितने ही मार्मिक प्रसंग उनकी कविताओंमें भरे पड़ेहैं। परन्तु, उसकी काव्य-चेतनामें प्रकृति और नारीके सौदर्य्य-बिम्ब ऐसे घुल-मिल जातेहैं कि एकको दूसरेसे पृथक् करना असंभव हो जाताहै। 'सपना अभी भी' की कविताओंमें भी नारी और प्रकृति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का यह गुम्फन कई चित्रोंमें स्पष्ट दिखलायी पड़ताहै। बम्बईके समुद्र तटपर सूर्यास्तका दृश्य देखते हुए कविके सम्मुख नारी-मूर्तिमान् हो उठतीहै :

पंचमीकी चांदनीके
क्षीण और कटाववाले वदनको
घेरतीहै एक आतुर बांह।

कविको सूर्य सागरकी सतहपर वैसे ही लुढ़कता दिखायी पड़ताहै जैसे सेजकी सलवटोंमें सिरसे छूटकर बेंदी गिर पड़ीहो। एक विराट् और भव्य दृश्यकी कविके रूमानी मिजाजके कारण कैसी अभव्य परिणति होती है! 'सपना अभी भी' की कविताओंमें भी भारती नारी के यौवन और सौन्दर्यके प्रति अपनी आसक्तिसे पूर्णतया मुक्त नहीं हो सकेहैं; इसलिए इनमें भी 'नैनके बादल' और होंठके पाटल घूम-फिरकर झलक ही जातेहैं। वक्त की रगड़ खाकर उनके उपमानोंकी चमक थोड़ी फीकी पड़ गयीहै। इसीलिए 'सात गीत वर्ष' में जो 'सोनेके हंसों-सी धूप यह नवम्बरकी' थी, वह इस कृतिमें 'दूबके चदरेपर हलदीके छींटे-सी घाम' हो गयीहै। यह सौन्दर्य पूजा उनके लिए पाप या अभिशाप हो या न हो; परंतु इस रंगीन-मिजाजीके कारण समयका प्रभाव उनकी चेतनामें गहरा नहीं उतर सकाहै और वे उसकी बद-रंगियोंका एक सतही साक्षात्कार भर करके रह गयेहैं।

धर्मवीर भारतीकी कविताओंमें अपने भूले हुए बचपन और छूटे हुए आवासके प्रति एक 'नॉस्टेल्जिया' का भाव सदा-से रहाहै। उनका जीवन इलाहाबाद और बम्बईमें बीताहै परन्तु ग्राम्य जीवन और ग्राम्य-प्रकृतिके प्रति उनका उत्कट आकर्षण रहाहै। बम्बईके महानगरमें आकर बसनेके बाद, जो पहली कविता लिखी उसके झरोखे के गांवकी याद झांक-झांक जातीहै "दीदीके धूलभरे पांव/बरसोंके बाद आज/फिर यह मन लौटाहै क्यों अपने गांव?" परन्तु, एक बार जो स्थान छूट जाताहैं, वह फिर वैसेही कभी नहीं मिलता। 'अन्तरात्माः एक खाली शाम की बातचीत' यह कविता पूरीकी पूरी आत्म-कथात्मक है, जिसमें कविने इलाहाबादमें बिताये गये अपने बचपन के दिनोंको फिरसे जीनेका प्रयास कियाहै। परन्तु, वह इलाहाबाद तो अब केवल भारतीकी स्मृतियोंमें ही जीवित है। कवि जानताहै कि गांवकी पगडंडी बहुत पीछे छूट गयीहै, उसे अब फिर पकड़ा नहीं जा सकता। परन्तु, महानगरके खामोश, खालीपनको जीते हुए अब भी उसके मनमें 'जाने कबका छूटा गांवका कच्चा घर उभर आताहै। मनकी इस उधेड़ बुनको भारतीने मार्मिक अभिव्यक्ति प्रदान कीहै :

दोस्तो मनको क्या करूं
कि आजके दिन कभी-कभी लौटताहै फिर उसी गांव गोकि
मालूम है कि लौटायेगी नहीं
नदी वे पांवके निशान जो पोंछकर ले गयी।

यह निश्चित है कि भारतीकी कविताके केन्द्रमें रूपासक्ति और कैशोर प्रणय भावना ही है परन्तु परिधि पर जीवनका व्यर्थता-बोध और उसकी प्रतिक्रियामें उत्पन्न होनेवाला आक्रोश और विद्रोह भी परिलक्षित होताहै। जीवन और जगत्की विसंगतियोंको विदीर्ण कर देनेवाले व्यंग्यकी तीखी धारभी कहीं-कहीं गहरी मार करती हुई लगतीहै। कविको लगताहै कि जीवनमें बहुत कुछ पानेकी चाह आखिर एक आह पर आकर ठहरतीहै और उपलब्धियोंके नामपर एक विराट् शून्य दिखायी पड़ताहै।

हमको लेने कब आया कोई चन्दनका रथ?
लगते ही जरा कहीं आंच/निकला हर मणि-दाना कांच
शेष रहे लुटे-थके हम, शेष वही अन्तहीन पथ।

"अंधा युग" में भय, संशय, किंकर्तव्य विमूढ़ता और मूल्यगत विभ्रमकी जिन स्थितियोंको चित्रित किया गयाहै, वे वस्तुतः आजके युगकी ही स्थितियां है, जिन्हें पौराणिक युगमें प्रक्षेपित किया गयाहै। इस कृतिमें भी भारतीने जहां अपने आत्मीयके माथे और दीवारके बीच या ट्रकके पहिए और डरे हुए कबूतरके बीच उन्हें बचाने के लिए अपना हाथ डाल देनेकी सजग संवेदना और सक्रिय पक्षधरताका परिचय दियाहै, वहां सम्पातीके मुखसे निर्मम निर्लिप्तताके साथ यह भी कहलायाहै :

नहीं कोई संघर्ष अब मुझे छूता नहीं
वह मैं नहीं/मेरा भाई जटायु था
जो व्यर्थके लिए जाकर भिड़ गया दशाननसे
कौन है सीता? और किसको बचाये? क्यों?

जब सत्य-असत्य और पाप-अन्यायके बीचकी लकीर धुंधली पड़ जातीहै तो सत्य और न्यायकी पक्षधरतापर भी प्रश्नचिन्ह लगने लगताहै। तब एक निर्वीर्य तटस्थता के साथ व्यक्ति यह घोषित करने लगताहै "न मैं पक्षमें हूं, न विरोधमें हूं, युगसे असंगत हूं।" परन्तु, आश्चर्य यह है कि भारतीकी कवितामें कहीं मूल्यहीनताको ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल्यके रूपमें स्वीकार करनेवाले 'सिनिकल' उद्गार व्यक्त किये गयेहैं तो कहीं आदर्श और आस्थाके लिए अन्त तक निर्णायक चुनौतीको स्वीकार करनेकी साहसिकताका परिचय दिया गयाहै :

कौन दुश्मन कौन अपने लोग सब कुछ धुन्ध धूमिल

किन्तु, कायम युद्धका संकल्प है अपना अभी भी ।

मनुष्यको चयनकी स्वतंत्रता है परन्तु इस स्वतंत्रता के लिए बहुत ऊंचा मूल्य चुकाना पड़ताहै । कांटेटार सच्चाईके विकल्पको स्वीकार करनेके लिए अपने चारों ओर बुने हुए झूठके जालको तोड़कर उसको बाहर निकालना पड़ताहै ।

भारतीकी कविताओंपर सामान्यतः समयका दवाव बहुत कम रहाहै और 'सपना अभी भी' इसका अपवाद नहीं है । फिरभी इस संग्रहमें कुछ ऐसी कविताएं हैं, जिनमें कविका आक्रोश उबला पड़ता है । इनमें जो व्यंग्य है वह गहरी तिलमिलाहट पैदा करताहै, उसमें केवल फब्तियां कसनेका अन्दाज भर नहीं है । 'पुराना किला' में सन् ६३-६४ की उस विडम्बनागयी स्थितिका चित्रण है, जब प्रधानमंत्री नेहरू चीनकी वंचना और पक्षाघातके प्रहारसे आहत होकर रोग शय्या पर पड़ेथे और सत्ताके गलियारोंमें एक ही प्रश्न गूंज रहाथा ! "नेहरूके बाद कौन ?" देशके भाग्यसे उदासीन होकर राजनेता सत्ताके शतरंजपर अपनी-अपनी गोटियां बिछानेमें लगे हुएथे और अपनी पिछली कारगुजारियों को भुनानेकी चेष्टामें अजीबोगरीब हरकतें कर रहे थे ।

ये हैं जिन्होंने दरबारको हर संकटमें राहत दी
कत्लगाहमें लुढ़कते हर विद्रोही सिरको
इन्होंने गेंदकी तरह उछालकर दरबारको
हंसाया··
अगर मरते वक्त भी ये जहांपनाहसे शिरोपेंच
और दक्षिणा लेने गये
तो इनपर खीजो मत·· तरस खाओ ।

सन् ७४-७५ में जयप्रकाश नारायणने लोक-जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचारके विरुद्ध एक प्रबल आन्दोलनका नेतृत्व कियाथा, जो इन्दिरा सरकारको रास नहीं आया । पटनाकी रैलीमें सत्तर वर्षीय जयप्रकाशपर लाठीसे निर्मम प्रहार किया गया और जब आंदोलन अपनी पराकाष्ठापर पहुंचा तो देशपर एमर्जेन्सी ठोक दी गयी । एक बार तो ऐसा लगा :

तो क्या शब्दकोशसे मिटा दिया गया
एक गैर जरूर शब्द—स्वतन्त्रता

उस दमन और घुटनभरे वातावरणमें भी लोकतान्त्रिक शक्तियां स्वतन्त्रताके लिए संघर्ष करती रहीं । एक चिड़ियाको चोंचमें तिनका उठाकर उड़ते देखकर कवि प्रार्थना करताहै :

पंख भी छिन जायें जिसके
उसे भी दो-चार कण आकाश मिलता रहे—
नीड़ रह पाये न पाये ।

उन दिनों राजनेताओंने ही नहीं, कुछ सन्तों, बुद्धिजीवियों और पत्रकारोंने जिस निकृष्ट कोटिकी अवसरवादिताका परिचय दियाथा, उसपर भारतीने करारी चोट कीहै :

ओहो आप समझतेहैं कि आप बहुत बड़े हैं
ईमानमें, बुद्धिमें, रंगमें, रूपमें
जनाब ! वहां मार्केटकी सीढ़ियोंपर धूपमें
बड़े-से-बड़े बिकाऊ लोग खड़ेहैं
गिरती हुई कीमतोंकी पर्चियां लगाये
क्रांतिकी डलियामें समर्पण सजाये

धर्मवीर भारतीके इस नवीनतम संग्रहका 'सपना अभी भी' नाम बहुत सार्थक है । 'दूसरा सप्तक' से ही कविने 'किशोरावस्थाके प्रणय, रूपासक्ति और आकुल निराशा'का जो स्वप्न देखाथा, इस संग्रहकी गिनी-चुनी कविताओंको छोड़ दें तो वह 'सपना अभी भी' अखंडित रूपसे जिया जा रहाहै । यदि उपन्यासोंके समान्तर चर्चा करें तो ये कविताएं 'सूरजका सातवां घोड़ा' की अपेक्षा 'गुनाहोंका देवता' के अधिक निकट प्रतीत होती हैं । अब भी उनमें रागावेशकी वही प्रबलता है, जो उनकी यथार्थ-दृष्टिको धुन्धला देतीहै और 'पुराना किला' जैसी इतिहास-सत्यके धरातलपर उभरनेवाली कविताको भी अन्ततः फैण्टेसी बनाकर छोड़तीहै । नये कवियोंमें भावनाको बुद्धिके द्वारा संयमितकर स्थितियों का तटस्थ आकलन करनेकी जो वस्तुपरक प्रवृत्ति रही है, उसे भारती शुरूसे ही दरकिनार करते रहेहैं । परंतु, मनकी रंगीन कल्पनाओं और मदिर-मधुर भावनाओंको परिमल-परागकी रेशमी भाषा और प्रियतर परिवेशमें प्रस्तुत करनेके कारण भारतीकी कविताके प्रशंसक बड़ी संख्यामें रहेहैं और प्रस्तुत संग्रह 'सपना अभी भी' उन्हें निराश नहीं करेगा । वे कितने ही लम्बे अन्तरालके बाद क्यों न लिखें, उनकी कलममें कहीं जंग नहीं लगता, कल्पना और भाषाकी रंगीनी कभी उनका साथ नहीं छोड़ती । इतने लम्बे समय तक उनकी सृजनधर्मिताके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थगित रहनेकी बात सन्देह नहीं तो आश्चर्य अवश्य पैदा करतीहै। अल्प लेखन हमेशा ही उत्कृष्ट लेखनकी गारंटी नहीं होता। स्वयं कविके मनमें प्रश्न उठाहै "इन दो-दो वनवासोंकी समवेत अवधिके बाद भी घर लौट पायाहूं या नहीं—पता नहीं।" उनके घर लौट पानेमें सन्देह नहीं क्योंकि अपने घरके बाहर वे कभी गये ही नहीं। हां, यह प्रश्न अवश्य उठताहै कि इस प्रलम्ब अन्तरालके बाद भी उनकी कविता समयकी बदलती हुई करवटोंको अपनेमें सहेजकर नयी जमीन तोड़ती हुई दिखायी क्यों नहीं पड़ती? कुछ भी हो, भारतीकी कविताओंकी राहसे गुजरना एक प्रीतिकर अनुभव है और यह भी अपने आपमें कम नहीं है।

विश्व काव्यके विद्रोही स्वर[1]

सम्पादक-अनुवादक : रणजीत
समीक्षक : डा. वसन्त चक्रवर्ती

आधुनिक युगमें, बोलशेविक रूसी क्रान्तिके बाद मार्क्सवादी विचारधाराने जितना राजनीतिको प्रभावित किया, उससे कहीं अधिक विश्व-साहित्यको भौतिकवादी चिन्तन और वर्ग-संघर्षकी अवधारणासे अनुस्यूत कर दिया। पुरानी क्लासिकल और रोमांटिक कविताके विरोधमें जन-संघर्षकी गाथा जनभाषामें फूट पड़ी। सरलीकरण और बोधगम्यताके आग्रहके कारण, साम्यवादी, मनोविश्लेषणवादी और अस्तित्ववादी वैचारिक आन्दोलनोंने विश्व-काव्यको नया रूप नयी ध्वनि और नया स्वर दिया। दासता और उपनिवेशवादके विरुद्ध जन-आन्दोलनोंने विद्रोहीं काव्य तीव्र रूपसे और मुखरित किया। संकलनके सात विद्रोही कवियोंका सप्त-स्वर, बींसवी शताब्दीके स्वतंत्रता आन्दोलनोंका शंखनाद है।

ख़लील जिब्रानका जन्म लेबनानके बशरी ग्राममें हुआ, जो उस समय सीरियाका अंग था। अपने युवाकालमें देशके भयंकर अकालसे पीड़ित देशवासियोंको और निर्मम शासनके शोषणको देखकर उसकी लेखनीने शासकोंके विरुद्ध आवाज उठायी। 'मेरे लोग भूखसे मर गयेहैं/और जो भूखसे नहीं मरे है, /तलवारके घाट उतार दिये गयेहैं।' (पृ. २३)। उन्हें निर्वासनका दण्ड मिला। वे पेरिसमें १९०८ से १० तक रहे, फिर अमरीका चले गये। सन् १९१२ से न्यूयार्कमें रहे जहां उनकी एक सड़क दुर्घटना में १० अप्रैल १९३१ को मृत्यु हो गयी।

उनकी अरबी और अंग्रेजी कविताने परवर्ती अरबी और अंग्रेजी काव्यको बहुत प्रभावित किया। रणजीतने रहस्यवादी कवि-चित्रकारकी क्रान्तिकारी विचारधाराकी चार कविताओं—'हम और तुम', 'अपने देशवासियोंसे', 'कब्र खोदनेवाला', और 'मृत हैं मेरे लोग' को अनूदित किया जिसमें काव्यानुवादकी भाषा शिथिल होनेके कारण मूल भाव सीमित होता गया और अर्थ सौन्दर्य जीवन्त नहीं रह पाया। जैसे—'और जब-जब एक घंटेके लिए भी जीतेहो/ मेढकोंकी तरह चिल्लाये हो/पर हम एक युग तक तुम्हें परास्त करके भी चुप रहेहैं।'

जियोर्जियाके कुर्वेसी क्षेत्रके ग्राम बगदादीमें मायकोवस्कीका जन्म ७ जुलाई १८९४ में हुआथा। किशोरावस्थामें ही क्रान्तिकारी विचारोंसे परिचित होने पर अध्ययन छोड़कर क्रान्तिकारी दलमें भरती होगये। कामरेड कान्स्टाटिनके छद्म नामसे पुलिस रिकार्डमें रहे। दो बार जेलकी यात्रा की। ब्लादीमीर मायकोवस्वी रूसी क्रान्ति और साम्यवादके प्रखर हस्ताक्षर ही नहीं, जन-क्रान्तिके बाद, साम्यवादी सौन्दर्य, कला और नाटकके भी प्रवर्तक चिन्तकके रूपमें प्रतिष्ठित होगये। उनके आत्मविश्वासके स्वरने, सामूहिक संकल्पकी अभिव्यक्तिको एक नवीन पैनी और बेलाग भाषा दी। रणजीतने क्रान्तिके उस महान् कविकी सात कविताओं—'टैक्स इन्सपेक्टरसे कविताके बारेमें बातचीत', 'रुचियों की भिन्नता', 'जवाबके लिए', ब्लादीमीर मायकोवस्कीका एक चौंधियानेवाला दुस्साहस', 'ब्लादीमीर इल्यिच लेनिन', 'मेरा सोवियत पासपोर्ट', और 'घरकी ओर' का अनुवाद प्रस्तुत किया। रणजीतके आमुखमें स्वीकारोक्ति है कि 'मायकोवस्की और पाब्लो नेरूदासे मैं काव्य रचनाके स्तरपर प्रभावित नहीं हुआ' और 'अधिकांश' रफ पाण्डुलिपि रूपमें जो उनके पास बरसों पड़ीथी, 'बिना उन पाण्डुलिपियोंको दोबारा लिखे, ज्योंका त्यों भेज दिया प्रकाशनार्थ। स्पष्ट है कि मायकोवस्कीसे वे न प्रभावित थे और न काव्यानुवादकी प्रक्रियासे भिज्ञ।

१. प्रका. : समकालीन प्रकाशन, २७६२ राजगुरु मार्ग, पहाड़गंज, नयी दिल्ली-११००५२। पृष्ठ : ११४; डिमा. ९३; मूल्य : ८०.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दसे अर्थकी अभिव्यक्ति होतीहै किन्तु काव्यानुवादसे काव्यार्थकी अन्विति।

अंग्रेजी शीर्षक 'एन अमेजिंग एडवेन्चर' का अनुवाद 'चौंधियानेवाला दुस्साहस' भलेही भ्रमपूर्ण, हो, कोई अन्तर नही पड़ता क्योंकि उनकी हर यात्रा दुस्साहसपूर्ण थी। कविको इस प्रभावशाली और प्रासंगिक कविता (जो १३१ पंक्तियोंकी है) की मात्र ५४ पंक्तियोंको अनूदित कर कविकी सारी समझ और संवेदनाके रचनात्मक आयोजनको अनुवादकने सीमित ही नहीं कर दिया, वरन् काव्य संघटन और संश्लेषणकी प्रतिबद्धता, उनके जीवन-चित्रको उभारनेके प्रयत्न और उनकी जन-भाषाकी चमकको अनजाने ही छोड़ दिया। तथ्यात्मक अनुवादकी गलतियोंसे जब मूल काव्यकी गरिमा नष्ट होतीहै, तब तो अनुवादक अक्षम्य होताहै। 'द सनसेट ब्लेज्ड लाईक सिक्सटी सन्स' का अनुवाद 'सौ सूर्योंकी भांति सूर्यास्त चमका' में 'स' का अनुप्रास मिलानेका प्रयोजन भी सिद्ध नहीं होता। 'द स्लोप नियर पुश्किनो स्वेल्ड अप इन्टू आकुलोव हिल्स' का यहां अनुवाद है—'पुश्किनों पहाड़ीने आकुलोव शृंगकी ओर हाथ बढ़ाया।' भावात्मक अनुवाद होता तो उचित था। पुश्किनों समतल क्षेत्र है, पहाड़ी नहीं। सहज अनुवाद है कि पुश्किनोंकी तराईसे उठती हुई चढ़ाई ही आकुलोव पहाड़ी बन गयी। एक और भ्रमपूर्ण अनुवाद का उद्धरण प्रस्तुत है। 'इन्टु दैट होल द सन डड रोल टु स्लीप' का अनुवाद दिया गयाहै कि 'सूरज उस गड्डे में लुढ़ककर, गिर जायेगा।'' कविकी अभिव्यंजना थी कि सूर्य लुढ़ककर सो जायेगा। अनुवादकने 'स्लीप' (सो जाना) को 'स्लिप' (गिर जाना) के अर्थमें लिया। मात्र लापरवाही है।

बर्टोल्ट ब्रेख्ट का जन्म १० फरवरी १८९८ को जर्मनीके आऊसवर्ग नगरके एक निर्धन परिवारमें हुआ। 'बेचारे ब्रेख्टके बारे' नामक कवितामें वे लिखते हैं—''इस डामर नगरमें ''शुरूसे ही मुझे यहींसे अपना हर मल्हम मिला ''तम्बाकू और ब्राण्डी और अखबार / और अन्तमें अविश्वास, आलस्य और संतुष्टि।'' प्रथम महायुद्धमें जर्मन सेनामें उन्होंने चिकित्सा सहायक के रूपमें कार्य किया। ब्रेख्टका क्रान्तिकारी कवि प्रखर था किन्तु १९२२ में उनका नाटक 'अंधेरेमें बजे नगाड़ा' पुरस्कृत हुआ। सन १९३३ से अन्य यूरोपीय देशों और रूसमें रहे। फिर अमरीकामें जा बसे। द्वितीय महायुद्ध के बाद वे जर्मनी लौट गये जहाँ १९५९ में उनकी मृत्यु हो गयी। प्रस्तुत संकलनमें गरीबी, शोषण, अपमान अत्याचार आदिके विरुद्ध उनकी सात कविताएं—'विचारे ब्रेख्टके बारेमें', 'आनेवाली पीढ़ीके नाम', 'धान ढोनेवाले मल्लाहोंका गीत', एक निर्वेद गीत', 'धुआं', 'समाधान', 'क्या जनता कभी गलती नहीं करती' अनूदित हैं। उनकी इन कविताओंमें क्रमशः आत्मकथा है, नयी पीढ़ीके नाम एक भुक्त-भोगीका सन्देश है, मल्लाहोंकी गरीबी और विवशता है, दुराव-लगावसे मुक्त उस क्रान्तिकारी कविके निर्वेदकी मनस्थितिका चित्रण है, कुछ तथ्यपरक शब्द-चित्र और अन्तमें उस निरपराध मार्ग-दर्शक, गुरु-मित्र और नाटककारके मृत्यु-दण्डका चित्रण है। सम्भवतः जर्मनसे अंग्रेजी और अंग्रेजीसे हिन्दी तक आते-आते इन अनुवादोंमें ब्रेख्टकी व्यंग्योक्तिका पैनापन और उनकी भाषाकी प्रखरताका निर्वाह शिथिल होगया।

नाजिम हिकमत आधुनिक तुर्की भाषाके प्रवर्त्तक माने जातेहैं। सन १९०२ में इस्ताम्बूलमें जनमे इस कवि-नाटककारका अध्ययन मास्कोमें सम्पन्न हुआ। साम्यवादसे प्रभावित इस क्रान्तिकारी कविने तुर्की काव्यमें बिम्बात्मकता और अप्रत्याशित शब्दोंका प्रयोग किया। प्रस्तुत संकलनमें उनकी तीन कविताओं—'पाल रॉबसनसे', 'तुम्हारे हाथ और उनका झूठ', और 'जेलसे लिखे गये पत्र' के अनुवाद हैं। 'पाल राबसनसे' नामक कवितामें अश्वेतीको सम्बोधन हैं और श्वेतोंके भयका चित्रण। अंतिम दो कविताओंमें जेल जीवनकी यंत्रणा का मार्मिक चिवण है। इन काव्यानुवादोंमें कविकी भावोष्मा और भावागत गरिमाकी रक्षा हुईहै। उनकी वैचारिक स्वायत्तता और बौद्धिक-दृढ़तामें जीवनधर्मी संवेदनाका सही अनुवाद हुआहै।

पाब्लो नेरुदाका जन्म, १२ जुलाई १९०४ में चिलीके पराल ग्राममें हुआ और निधन २४ सितम्बर १९७३ को शांतियागो (राजधानी) में हुआ। उनका असली नाम 'नेफ्ताली रिकार्डो रेयेस इ बासो आल्तो' था। एक चेक लेखक 'यान नेरुदा' से आकृष्ट होकर उन्होंने अपना नाम पाब्लो नेरुदा रखा। वे लातिन अमरीकाके ही नहीं, स्पेनी भाषाके विश्वविख्यात कवि हैं। उनकी प्रथम रचना १९१७ में छपी और प्रथम काव्य-कृति 'बीस प्रेम कविकाएं और एक निराश गीत' १९२४ में पुरस्कृत हुई। इससे उनकी ख्याति बढ़ गयी। १९२७ में चिली सरकारने उन्हे दक्षिणपूर्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एशियाके देशोंमें कॉन्सल बनाकर भेजा, जहां वे सन् '३२ तक रहे। फिर वे बार्सीलोना, माद्रिद, पेरिस और मेक्सिकोमें भी उसी पदपर रहे। माद्रिदमें ही उन्होंने कविताका 'हरा घोड़ा' नामक कविताकी एक पत्रिका निकाली। वहीं सन् '३३ में उनका काव्य 'रेसीडेंसी आ एन ला तीएस' प्रकाशित हुआ और सन' ३७ में 'एस्पाना एदकोरासान'। इन काव्योंने उन्हें विश्व विख्यात बना दिया। स्पेनके गृहयुद्ध छिड़नेपर, उन्होंने 'इन्टरनेशनल ब्रिग्रेडका मैड्रिड प्रवेश' लिखा। सन ४५, में वे चिली लौट गये। जब चिलीमें कम्युनिस्ट पार्टीपर प्रतिबन्ध लगा तब नेरुदा भूमिगत होगये। और तभी उन्होंने पूर्वी यूरोप, रूस, चीन और एशियाके देशोंकी यात्रा की। सन् '५० में उन्हें विश्व शान्ति पुरस्कार, ५३ में स्तालिन पुरस्कार, सन् '६५ में आक्सफोर्ड विश्व-विद्यालयसे डी. लिट्. की मानद उपाधि और सन् '६९ में साहित्यका नोबल पुरस्कार मिला। वे लातिन अमरीकामें जनक्रान्तिके अगुआ थे और मानव-मुक्तिके प्रवक्ता। प्रस्तुत संकलनमें उनकी तीन कविताओंका अनुवाद है—'इन्टरनेशनल ब्रिगेडका मेड्रिड प्रवेश', 'स्तालिनग्रादके नाम' और 'लट्टे चीरनेवालोंको जगाने दो'। इन कविताओंमें ऐतिहासिक स्पर्श, चाक्षुष युग-संवेदना और अपनी धरतीके साथ मानवीय सम्बन्धोंका बड़ा मार्मिक एवं संश्लिष्ट चित्रण है। नेरुदाने विराट् धरतीपर अपनी कविताका जो जाल बुनाहै, उसमें बहु-अर्थवाली शौर बिम्बविधानकी निरन्तरताको बांधकर। अनुवादक, उनकी संवेदनशीलता और चेतनाके निरूपण में समर्थ और सफल रहाहै। महमूद दरशीशः इसराइली अधिकृत क्षेत्रमें पले और सन् साठके बाद फिलिस्तीनी प्रतिरोध साहित्यके प्रमुख प्रवक्ता बन गये। वे 'अलशेर अल-जदीद' (नई कविता आन्दोलन) के प्रतिनिधि कवि माने जातेहैं। प्रस्तुत संकलनमें उनकी आठ कविताओं—'तहकीकात', 'शेष', 'ललकार', 'आशाके बारेमें', 'अल आसिफा का वादा', 'एक आदमीके बारेमें' 'फिलिस्तीन का एक प्रेमी', और 'शोकगीत' का अनुवाद है। इन कविताओंको श्री प्रेमस्वरूप शर्माने अनूदित किया जो सुगढ़ एवं सुन्दर हैं। काव्य शैली, भाषा एवं अप्रस्तुत विधानकी जीवन्तताका पूर्णतः निर्वाह हुआहै।

ए. एन. सी. कुमालो दक्षिण अफ्रीकी जातीय सरकारके विरुद्ध सशस्त्र विरोधके कर्मठ सेनानी और अफ्रीकन नेशनल कांग्रेसके क्रान्तिकारी कवि हैं। प्रस्तुत संकलनमें उनकी चार कविताओं—'लाल हमारा रंग, सोवेटोके अंगारे', दूबे और टीरोंके नामपर', और 'लिलियन नगाई' का अनुवाद है। इन कविताओंका अनुवाद श्रीमती प्रभा खेतानने कियाहै जिसे उनके काव्य संकलन 'सांकलोंके कैद क्षितिज' से लिया गयाहै। उनका काव्यानुवाद निस्सन्देह उत्कृष्ट है। ▭

कैकेयीका मनस्ताप[1]

कवयित्री : रंजना वर्मा

समीक्षक : डा. रामानन्द शर्मा

'कैकेयीका मनस्ताप' एक सरस एवं सफल प्रबन्ध कृति है, जिसमें दया, उपेक्षा और तिरस्कारसे परिपूर्ण कैकेयीके परम्परागत चरित्रको चिन्तनशील ममतामयी माताके रूपमें प्रस्तुत किया गयाहै। उसे रामको वन भेजनेकी पीड़ा अवश्य है, पर अपने पुत्र भरतके लिए राज्य मांगनेका कोई पश्चाताप नहीं हैं, क्योंकि केकय-राजने अपनी पुत्रीका विवाह ही इस शर्तपर कियाथा कि उनका दौहित्र ही युवराज बनेगा। भरतको अभिषेक पर न बुलानेमें उसे षड्यन्त्रकी गन्ध दिखायी दी और दो वरदानोंमें अभीष्ट-प्राप्तिका आधार। यही कारण है कि रामके वनगमनसे दुःखी होकर भी वह अपने कृत्यको अनुचित नहीं समझती। राक्षसोंसे संघर्ष हेतु दशरथ द्वारा बालक रामके वनगमनपर प्राणविसर्जन की बात निश्चय ही कल्पनातीत है। वस्तुतः कैकेयी विशुद्ध वात्सल्यमयी माता हैं, मात्र विधिकी विडम्बना से ही वह हतभाग्या और कलंकिनी बन गयी। 'कैकेयी का मनस्ताप' में कवयित्री श्रीमती रंजना वर्माने कैकेयी को इस भाव-भूमिपर प्रतिष्ठित कियाहै जो तर्कसंगत मनोवैज्ञानिक एवं मानवतावादी है।

कृति सात सर्गोंमें विभक्त है। प्रथम सर्गमें कैकेयी पूर्व कृत्योंका स्मरण करती वेदनानिमग्न पाषाण प्रतिमा के रूपमें सामने आतीहै। एक-एक घटना मानस-पटल पर उभरती और विलीन होतीहै। द्वितीय सर्गमें पूर्व दीप्ति शैलीमें देवासुर-संग्राममें दशरथका सम्मिलित होना, कैकेयीका रथचक्रमें अंगुलि डालकर दशरथकी प्राण-रक्षा करना फलतः दशरथका दो वरदान देना

---

१. प्रका. : हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ। पृष्ठ : ११४; का. ९२; मूल्य : ३०.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णित है। कैकेयीका वरदानका प्रतिदान न स्वीकारना उसके चरित्रको ऊंचा उठाताहै। तृतीय सर्गमें रामके राज्याभिषेकके समय भरतको न बुलाने, कैकेयीको विधिवत् सूचना न देने, मन्थरा द्वारा उत्तेजित करने आदिका वर्णन है। यहां प्रतिपादित किया गयाहै कि कैकेयी-पुत्रके राज्याभिषेककी बातको रघुकुल-रीतिके कारण विस्मृत कर चुकीथी, परन्तु दशरथके कूटनीतिक षड्यन्त्रकी गन्धने उसे वर मांगनेको प्रेरित किया। फलतः दशरथका परलोकगमन और भरत द्वारा ग्राम-वास हुआ जिसकी उसे कोई कल्पना भी नहीं थी। चतुर्थ सर्गमें कैकेयीका मनस्ताप अत्यधिक गहरायाहै क्योंकि विधवा सपत्नियां, विरह व्यथिता पुत्रवधुएं दीन-हीन पुरवासी उसके समक्ष हैं और वह अपने कृत्य का परिणाम साक्षात् देख रहीहै। पंचम सर्गमें हनुमान के भूमिपातसे सीताहरण, राम-रावण-युद्ध, लक्ष्मण मूर्च्छाका ज्ञान होताहै। कवयित्रीने अत्यन्त सफलता-पूर्वक इन सभी घटनाओंका चित्रण कियाहै। षष्ठ सर्गमें रामके आगमनके पूर्वके हर्षोल्लासका सुन्दर चित्रण है। राम आतेही कैकेयीके भवनमें पहुंचतेहैं जहां पश्चाताप से ग्रस्त कैकेयी अपनी पीड़ा सुनाती हुई संज्ञाशून्य हो जातीहैं। सप्तम सर्गमें विविध उपचारों द्वारा उन्हें सचेत करनेके साथ रामका यह प्रतिपादन भी है कि तुम विशुद्ध ममतामयी माता हो, तुम्हारे कारणही हम लोकविख्यात हुएहैं और तुम्हें केवल हेय व्यक्ति ही तिरस्कृत मानेंगे। रामके इस समाश्वासनके साथ ही प्रबन्ध पूर्ण हो जाताहै।

'कैकेयीका मनस्ताप' का कथानक रामकथापर आधारित है। कवयित्रीने कैकेयीके चरित्रके उन्नयनके लिए कुछ नवीन तथ्य जोड़ेहैं जैसे दौहित्राभिषेककी शर्त पर ही केकयराजका विवाह करना। कथानक अत्यन्त सुगठित और सुसम्बद्ध है और तर्कसंगत चिन्तनसे परि-पूर्ण है। कैकेयी विशुद्ध ममतामयी माता है, वह रामको भी कम स्नेह नहीं करती। परिस्थितियोंने भी उसे विडम्बनापूर्ण स्थितिमें खड़ा कर दियाहै। विशुद्ध मनो-वैज्ञानिक एवं तर्कसंगत घटनाक्रममें देवताओंका उल्लेख और मन्थराको माध्यम दिखाना निश्चय ही खटकता है।

कवयित्रीका काव्यशिल्पपर अच्छा अधिकार है। भाषा संयत एवं गम्भीर है, व्यापक संस्कृत अध्ययन उसे अत्यधिक प्रभावपूर्ण बनाताहैं। अलंकारोंको अधिक मान नहीं दिया गयाहै, पर छन्दोयोजनापर कवयित्रीकी अच्छी पकड़ है। सम्पूर्ण काव्यमें प्रभावपूर्ण प्रवाह है। प्रातिभ एवं सशक्त रचनाकार कवयित्रीसे महाकाव्यकी रचनाकी आशा उचित होगी।

कहानी

दूत[1]

कहानीकार : मंजुल भगत
समीक्षक : डा. भगीरथ बड़ोले

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा लेखिकाओंमें मंजुल भगत बहुप्रशंसित लेखिकाके रूपमें मान्य हैं। अबतक आपके छोटे बड़े पांच उपन्यास और चार कहानी संग्रह प्रका-शित हो चुकेहैं। अनेक देशी-विदेशी भाषाओंमें अनूदित मंजुल भगतकी रचनाएं उनकी लेखकीय क्षमताको उद्घाटित करतीहैं। प्रस्तुत समीक्ष्य कहानी-संकलन 'दूत' इसी क्रममें उनकी रचनात्मक सामर्थ्यके ऐसे आयामोंका सूचक संकलन है, जो निश्चितही विकासके नये चरणोंको प्रतिभासित करताहै। इस संकलनमें

१. प्रका. : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १२२; क्रा. ६२; मूल्य : ५०.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंजुल भगतकी दस कहानियां सम्मिलित हैं, जो समाज के विविध वर्गोंसे संबंधित होकर मानव जीवन और विशेषकर नारी जीवनकी त्रासदियोंकी अभिव्यंजना करती हुई नर-नारी-संबंधोंकी पड़ताल करतीहैं।

प्रस्तुत संकलनकी पहली कहानी **'दूत'** नर-नारी-संबंधोंका पुनः परीक्षण करती हुई आधुनिक स्थितियोंसे असामान्य अस्थिर हुए नारी चरित्रोंको पूरी सामर्थ्यसे व्यंजित करतीहै। नायिका तनु अपने अहं के कारण द्वंद्व-ग्रस्त है और विपरीत स्थितियोंमें उसे अपने विचार ही उलझाते रहतेहै। पहली बार अबार्शन कराने, दूसरी बार मृत शिशुके जन्म लेने तथा कैंसरग्रस्त पति के अनवरत शराब पीते रहनेकी स्थितियोंके दबावके बीच तनुका चरित्र क्रमशः असामान्य होने लगताहै। इसी क्रममें किसी देवदूतकी तरह कम्पाउण्डर सक्सेना का आगमन उसके पति मयंकको तो स्वस्थ बनानेमें सफलता पा लेताहै, किन्तु तनावों और अहंसे ग्रस्त तनु को अनुकूल नहीं बना पाता। वस्तुतः सशक्त मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्यमें लिखी गयी यह कहानी किसी अहंग्रस्त नारीकी स्थिति-सत्ताके यथार्थ तथा उसके असामान्य मासिक द्वंद्वको प्रस्तुत करती हुई यह भी निरूपित करतीहै कि जिसे भगवान्‌के दूतकी भूमिका निबाहनीहै, वह आधुनिक चिन्तनके जालमें घिरकर कितनी दिग्भ्रमित हो गयीहै। इस प्रकार यह कहानी आजकी नारी के द्वंद्वग्रस्त मनको गहराईसे विश्लेषित कर अप्रत्यक्ष ही कुछ दिशाओंकी ओर सार्थक संकेतभी प्रक्षेपित करतीहै।

'तीसरी औरत' कहानी एक ओर नारीके उद्वेलित मनको सजीवतासे प्रस्तुत करतीहै तो दूसरी ओर पुरुष की स्वार्थ-प्रवृत्तिपर व्यंग्य प्रहार भी करतीहै। यद्यपि गौरव विवाहित था, तथापि ताशा उसे बहुत चाहती थी और चाहतीथी कि उसकी चाहत कभी तिकोनी न हो। गौरवके लिए वह अपनों तकको भूल जातीहै। इस अपरिभाषित रिश्तेको जीती हुई ताशाको एक दिन जब पता चलताहै कि गौरव उसे छोड़ किसी और के साथ जुड़ गयाहै तथा घरकी औरतोंकी आड़ लेकर परदोंमें छिपनेकी कोशिश कर रहाहै, तो वह अव्यवस्थित हो जातीहै। गौरवके मुखसे निकले 'जरूरत' और 'मदद' शब्द उसे चुभने लगतेहैं। तमाम भ्रमोंके टूट जानेपर भी टूटती हुई ताशा धीरे-धीरे स्वयंको सम्हालतीहै तथा सच्चाईका सामना करनेका संकल्प लेकर सोचतीहै कि यह केवल उस अनाम रिश्तेका अंत है, उसके अपने जीवनका अंत नहीं है। इसीलिए बदली हुई मानसिकताके कारण उसे अपनी क्षमताओं और संभावनाओंका सारा संसार सामने खड़ा दिखायी देताहै। इस प्रकार यह कहानी नारी मनकी व्यथा-कथाको मनोवैज्ञानिक धरातलपर व्यंजित करती हुई उसके शक्ति सम्मत होनेके नये संदर्भोंको आकारित करतीहैं। अब वह विवश विवाहित नहीं, प्लेटोनिक प्रेममें खोई नारी नहीं, शक्ति सामर्थ्यसे संपन्न नारी थी। पुरुष-प्रवृत्तिके विरुद्ध नारीका यह निर्णय सर्वथा संगत निर्णय था।

'चिनार अपने अपने' कहानी मानवीय दर्दकी तरल सघनताको उकेरनेवाली एक सशक्त कहानी है। आग की तरह लगनेवाले चिनारके लाल लाल पत्ते हर किसी को उनके अपने विगत जीवनके त्रासद क्षणोंकी याद दिला देतेहैं और सहजतासे प्रारंभ चर्चा दर्दकी गहरी झीलमें खो जातीहै। दर्द चाहे रेशमाके अपने असफल वैवाहिक जीवनका हो या चाँदका, जिसकी बेटीको अमानुषिक अत्याचार सहने पड़े थे और जिससे त्रस्त-सी चांदको ये चिनार लाल-लाल गर्म तपते हुए दाग जैसे प्रतीत होतेहैं, या फिर रमणीक, शरद और मखमूरका निजी दर्द हो—इन सभी पात्रोंकी रचनाओंमें उसी असह्य यथार्थका आलेखन है। सम्बन्धोंके उलट-पुलट जानेके उपरांत भी इन सभीने कठोर यथार्थका सामना कियाहै और अपने जीवन क्षणोंको मोड़नेमें सफलताएं पायीहैं। वस्तुतः मानवीय जीवनके दुःखद क्षणोंको उकेरती यह कहानी अंततः स्थितियोंके स्वीकरणकी विवशताको भी द्योतित करतीहै।

'कीलपर अटकी कागजकी चिंदी' में भी लेखिका ने नारी मनकी उस वेदनाको समेटा है, जहां निम्न मध्यमवर्गीय यात्रा फुलवा परिस्थितियोंके चक्रमें घिरकर उपेक्षिता और परित्यक्ता-सा जीवन जीनेको विवश होतीहै। ब्याहके उपरांत ही पतिसे उसका मिलना सास को सहन नहीं हुआ। अपने सिंहासनके डोलनेकी आशंकासे ग्रस्त सासने फुलवाको निरंतर अपमानित किया और अपने बेटेके लिए एक दूसरी स्त्री ले आयी। सासको मनानेके सभी प्रयास असफल होते देख अंततः सौतके आनेपर निरंतर गलती हुई फुलवा घर छोड़नेको विवश हो जातीहै। अब एक लम्बा रिक्त जीवन उस अकेलीके सामने था। ऐसी विरुद्ध परिस्थितिमें उसकी यह यात्रा कीलपर अटकी कागजकी चिंदीकी भांति थी। वस्तुतः निम्नवर्गीय जीवन जीनेवाली यात्राकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थितियोंको सामने रखकर लेखिकाने नारी मनकी कल्पनाएं और जीवनमें आनेवाले कड़वे यथार्थके संघर्ष-चित्रोंको प्रस्तुत कियाहै।

'गुल दुपहरिया' कहानी द्वारा लेखिकाने नारी जीवनकी दुर्भाग्यपूर्ण स्थितियोंको सजीव रूपमें व्यंजित कियाहै। परंपरागत संस्कारोंके प्रति समर्पित तथा पति की चाहतपर गुमान अनुभव करनेवाली निम्नवर्गीय पात्रा गुल दुपहरिया पुण्यकार्य समझकर ही गांवसे बीमार श्वसुरको बुलाकर अपनी सेवा-सुश्रुषासे स्वस्थ बना देतीहै, किन्तु उसकी नजरमें खोट देखकर बिफर पड़तीहै। गाँव जानेपर वहांकी पंचायतमें जब श्वसुर गणेशिया उल्टे उसपर ही कुलटा होनेका खुला आरोप लगातेहैं और ऐसी स्थितिमें भी जब पति अशरफी उसका साथ न दे घृणा तथा अविश्वास प्रकट करताहै तब गुल दुपहरियासे यह सब कुछ सहन नहीं होता और वह अपने प्राण दे देतीहै। गुलदुपहरियाकी यह नियति एक ओर पुरुष मनोवृत्तिपर प्रबल प्रहार है तो दूसरी ओर नारीकी करुण जीवन स्थितियों तथा उसके उदात्त स्वाभिमानको भी प्रकट करतीहै।

'सैलानियोंका कश्मीर' पूरी चमक दमकके बीच मानवीय आकांक्षाओं तथा पीड़ाओंको अभिव्यक्त करनेवाली कहानी है। लोग यहां चमक दमक देखने-दिखानेके लिए मौज मजेके उद्देश्यसे आतेहैं, किन्तु जीवनकी इस बाहरी चमकदमकके बीच जीवनकी वे सच्चाइयां भी हैं, जिन्हें यहांके लोग अभावग्रस्त रहकर अनवरत भोगते रहतेहैं। वस्तुतः सौंदर्यसे पटी इस धरतीके निवासियोंकी दरिद्रता किसीको भी सहानुभूति पूर्ण कर सकतीहै। किन्तु सैलानियोंका कश्मीर तो इन घरोंके भीतर नहीं, बाहर है। इसीलिए भीतर झाँकने का प्रत्येक प्रयत्न एक गहरे दर्दको सामने लाताहै। इसी क्रममें जब जीवनमें थकी हारी अभिनेत्री तरला अपने भीतरको स्पष्ट करती हुई बतातीहै कि उसकी बेटीको देखोगे, तो कश्मीर भूल जाओगे, तब लगताहै कि यह भीतरकी यात्रा कहीं अधिक अर्थवान् है तथा दर्दसे भरी पूरी है। इस प्रकार यत्किंचित् व्यंग्यात्मक भाषा शैलीमें रची गयी यह रचना मानवीय संवेदनाके मूल स्वरूपको पूरे सामर्थ्यसे प्रस्तुत करतीहै।

'मलबा' विभाजनकी समस्या तथा तद्जन्य शरणार्थियोंके दुःख-दर्दको अत्यंत सजीव रूपमें प्रस्तुत करतीहै। देशके जब दो फाड़ हुए, तो सब कुछ ही फट गयाथा। संबंधोंके धरातल और मानवीयताके रिश्ते राख हो चुकेथे और फैली दरारोंके बीच चतुर लोग एक दूसरेको दबाने और लूटनेके प्रयत्नोंमें लगेथे। किन्तु जो वैसे नहीं चल सके, उनके लिए जीवन ही मलबा बन चुकाथा। कठिन जीवनके विविध संदर्भ उकेरते हुए लेखिकाने एक वृद्ध परिवारकी जीवन कथा अंकित कर बतायाहै कि जब तक बूढ़ा जीवित रहा, अपने अधिकारके लिए अर्थात् जीवनके लिए जूझता रहा, किन्तु उसकी मौतके बाद शेष सब कुछ तहस नहस हो गया। इसी क्रममें एक पागल-से पात्रको प्रस्तुत कर लेखिकाने मानवीयताके संदर्भोंमें युग प्रवृत्तियों पर भी सशक्त प्रहार कियाहै।

'अंतिम चोट' द्वारा लेखिकाने आधुनिक युगमें नर-नारी संबंधोंके खोखलेपपको व्यंजित कर पुरुष शासित समाजकी विसंगत प्रवृत्तियोंपर प्रबल प्रहार कियेहैं। यद्यपि विवाहका अर्थ पति-पत्नीमें आपसी समझ और प्यार होना चाहिये, तथापि पुरुष सदैव ही नारीको हीन समझ उसके आत्मसम्मानके साथ खिलवाड़ करता रहाहै। जहां एक ओर नारी पुरुषके लिए स्वयं को बहुत कुछ बदल लेतीहैं, वहां आजभी पुरुष अपने उच्चताके दंभको छोड़ना नहीं चाहता। नारी द्वारा सब कुछ सहनेके उपरांत भी अंततः जब पुरुष उसे मात्र गुडिया या छिपकलीकी संज्ञा देताहै तो वह अपने दांपत्य और नारीत्वपर जड़ा गया यह भरपूर तमाचा सह नहीं पाती। यहां उसका दबाया हुआ विद्रोह उभरने लगताहै। इस प्रकार प्रस्तुत कहानी एक ओर पुरुषके विसंगति चक्रको प्रस्तुत करतीहै, तो दूसरी ओर इसी परिप्रेक्ष्यमें नारीकी दयनीय स्थितिका आलेखनकर असह्य स्थितियोंमें विद्रोहकी भूमिका भी निर्मित करती है।

'बेनूर चेहरोंकी दावत' जहां एक ओर अपने जमाने में ऊंचे पदोंपर रह चुके परिवारोंकी वर्तमान वृद्धावस्थाका सजीव चित्रण करनेवाली कहानी है, वहां दूसरी ओर नयी पीढ़ी द्वारा आज जीनेकी विवेकहीन अक्षमताओंको भी उजागर करतीहैं। बूढ़ी पीढ़ीमें कोई आज कैंसरग्रस्त है, तो कोई उच्च रक्तचापका शिकार, किसीको माइग्रेन है तो किसीको मधुमेह। इसके उपरांत भी उनकी शानशौकतसे युक्त संयमित जीवन क्रम में कोई अंतर नहीं आता और वे जीते चले जातेहैं, जबकि इन बूढ़ोंके सिमटे-से दायरोंमें खुलकर जीवन जी लेनेवाला युवा राजन अंततः मरणासन्न हो जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। जीवनके प्रति दायित्वहीनता वाली युवा प्रवृत्ति उसे बेनूर बना देतीहै। इस प्रकार प्रस्तुत कहानी द्वारा लेखिकाने आजकी पीढ़ीसे बेतरतीब जीवन क्रमपर भरपूर व्यंग्यात्मक चोट कीहै।

संग्रहकी अंतिम कहानी **'वह जो एक चाहत हुआ करतीथी'** यथार्थके कठिन परिवेशमें व्यतीत किसी दर्द को उभारनेवाली भावनात्मक कहानी है। अपनी घर गृहस्थीमें व्यक्ति बोधसे रिक्त नायिका लालिमा गुलाब की सूखी पंखुड़ियां देख तीस साल पहलेके अतीतका स्मरण करने लगतीहै। उस कालमें कितना उन्मुक्त जीवन जियाथा उसने। किन्तु अब उसे लगताहै कि चाहतकी एक उम्र होतीहै, एक स्थिति विशेष होती है। तीस साल बाद अपने पति अमितको चाहतसे बेसरोकार अनासक्त देखकर उसे अनुभव होताहै कि समय बीत जानेपर जीवनचक्रके पाटोंमें पिसता मनुष्य भावनाके धरातलपर कितना निर्जीव होता जाताहै। सचमुच ही उम्रके गुजर जानेपर उस व्यतीतको तलाशना कितना निरर्थक है। अब उसका ताजमहल माना हुआ घर चाहतका चिह्न नहीं, मकबरेके अहसासको अधिक व्यंजित करताहै। इस प्रकार प्रस्तुत कहानी मानवीय जीवनके विविध पड़ावोंपर उठती और टूटती हुई भावनाओंका यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करतीहै।

मंजुल भगतका प्रस्तुत कहानी संग्रह 'दूत' जहां एक ओर नारी जीवनकी दुर्भाग्यपूर्ण नियतिको प्रस्तुत करताहै, दूसरी ओर नर-नारी संबंधोंमें आये बदलावों को रेखांकित करता हुआ आधुनिक मानवीय जीवनकी व्यंजना भी प्रस्तुत करताहै। संग्रहकी अधिकांश कहानियां सशक्त मनोवैज्ञानिक धरातलपर नारीके मानसिक द्वंद्वको प्रस्तुत करती हुई स्त्री-पुरुष संबंधोंकी चेतनाको उजागर करतीहैं। इन कहानियोंकी वस्तु व्यंजना संवेदनाके तरल धरातलको आधार बनाकर चलीहै। इसीलिए भाषा शिल्पकी प्रयोग क्षमताओंके अंतर्गत काव्यात्मकताकी अनुगूंज परिलक्षित होतीहै। वैसे भी लेखिका भाषा और शिल्पगत प्रयोगोंके प्रति सचेत है। व्यंजनापूर्ण प्रवाहमयी भाषा और कलात्मक शिल्प प्रयोग प्रस्तुत संग्रहका वैशिष्ट्य है। कथा शिल्पकी बारीकियां रेशे-रेशेसे उभरती प्रतीत होतीहैं। इनके द्वारा वातावरण जीवंत हो गयाहै। लेखिकामें भाषा प्रयोग एवं कथा शिल्पके माध्यमसे वातावरणको सजीवता एवं प्रभावशीलतासे उभारनेकी कौशलपूर्ण क्षमता है, जो वस्तुविधानका अभिन्न अंग है। वस्तुतः प्रस्तुत कहानी संग्रह अनेकानेक विशिष्टताओंको संयोजित करने तथा लेखिकाकी रचनात्मक सामर्थ्यको उद्‌घाटित करनेवाला एक श्रेष्ठ संकलन है। □

इतिहासके नुपूर[1]

कथाकार : श्री आनन्द शर्मा
समीक्षक : डा. विजय कुलश्रेष्ट

राजस्थान शौर्य गाथाओंका प्रदेश ही नहीं, शौर्यकी जीवन्तताका उदाहरण है। इतिहास और साहित्यके सम्बन्धोंकी सटीक पारस्परिकतामें राजस्थानकी विविध रियासतोंके कथाओंके नूपुर एक ऐसी झंकृति लेकर हमारे समक्ष आतेहैं जिनमें श्रृंगार, शौर्य, त्याग एवं स्वाभिमानकी अनुगूंज रोमांचित कर जातीहैं। इतिहास मात्र इतिहास होताहै निर्जीव एवं तथ्यपरक और घटनायुक्त, परन्तु कथाएं इतिहासकी गहनतामें न डूबकर केवल इतिहास सरोवरके जल तटका स्पर्शकर अपनी अंजलि भरकर अपने आपकी भावमयताका निर्माण कर, कथा न्यायके ऐसे स्तम्भोंकी गर्जना करती जिसे युग-युग तक सराहा जाताहै। इसी परिप्रेक्ष्यमें आनन्द शर्माका आलोच्य कथा संग्रह इतिहासके नूपुर झनकारता हमारे पाठकोंके बीच अपनी पहचानका आग्रह लिये आताहै।

आनन्द शर्माने इतिहास सम्मत वृत्तान्तोंके परिपार्श्वसे कुछ मोती चुनकर ऐसी कथाओंके रूपमें हमारे समक्ष प्रस्तुत कियाहै जो रोचक, शोधात्मक, भाव प्रवण, प्रांजल रूपमें कथा नायक-नायिकाओंके चरित्राख्यानके साथ उनकी आन-बान-शानका उद्‌घोष करतीहैं। संग्रहकी बारह कथाओंके साथ आनन्द शर्माने 'लेखकीय कथन' भी मूल पुस्तकका अंग रखते हुए यह स्पष्ट कियाहै कि—प्रत्येक कहानीका अपना अलग महत्त्व है। इतिहासमें ऐसे भी अवसर आयेहैं, जब निरुपाय-निस्सहाय पुरुष शौर्यको नारीने अपने चातुर्य और प्रेरणासे सक्रिय कर, सफलताके शिखरोंपर पहुचाया (पृ. १) है। नखद-मुप्यार दे, रानी सोनगरी;

१. प्रका. : हंसा प्रकाशन, ३१६ खूंटेटोंका रास्ता, किशनपोल बाजार, जबलपुर-३०२००१। पृष्ठ : १२८; डिमा. ९२; मूल्य : ७०.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जसवंत दे, सूर्यकुमारी, रसकपूर, माधवी, सवाई जय सिंह, चितौड़का जनयुद्ध, महाराव बुद्धसिंह, विजय स्तम्भ, प्रतिस्पर्धा, मारवाड़का कर्ण—शीर्षकोंसे सम्पन्न बारह कहानियां मेवाड़, मारवाड़ ढूढाड़, बूंदी (हाड़ौत क्षेत्र) से चुनी हुई सामग्रीमें अनावृत्त शौर्य एवं त्यागके कथावृत्त सहेजेहैं। निश्चितही आनंद शर्माके श्रम, शोध, लग्न और अध्यवसायने इन कथावृत्तोंमें सोनेमें सुहागा लगायाहै। सेनाओंकी सेवासे निवृत्ति ग्रहण कर पत्रकारिताके क्षेत्रमें स्वतंत्र लेखनके धनी आनंदकी रुचि ऐतिहासिक चिन्तना प्रमुख रहीहै। उसका परिणाम ही यह कथा संकलन है जो सुप्त एवं गुप्त ऐतिहासिक प्रसंगोंके रूपमें राजस्थान (तत्कालीन राजपूताने) के शौर्य, साहस त्याग एवं नैतिक मूल्योंके रूपमें सर्वमान्य बने हुएहैं।

प्रथम कथा नखद और सुप्यारिदेकी प्रेम कथाके रूपमें विकसित है जो चौदहवीं शतीके पूर्वार्द्ध में प्रेमिका के अन्यत्र विवाहित हो जानेपर सम्मानपूर्वक अपनी पत्नीके रूपमें स्वीकार करना नरवद राठौड़की सामर्थ्य की ही बात थी अन्यथा ऐसा होता नहीं है। इसी प्रकार दूसरी कथा रानी सोनगरी है जिसमें मेवाड़के राणा हम्मीर सिंह द्वारा चित्तौड़पर पुनः कब्जा करने की साध, रानी सोनगरीके बिना असम्भव लगताहै और रानीके चातुर्यसे चित्तौड़ विजय हम्मीरके शौर्यकी परिणति बनतीहै। वैधव्य भोगती रानी सोनगरीसे राजपूती परम्पराके विरुद्ध विवाह करके हम्मीरने तेरहवीं शताब्दीमें अनूठा आदर्श प्रस्तुत कियाथा। तीसरी कहानीकी कालगणना सोलहवीं शताब्दी है। औरंगजेबकी आंशंकासे हिन्दू मुस्लिम भयभीत रहतेहैं, पर वह स्वयं जोधपुरके राजा जसवंत सिंह और आम्बेर के राजा मिर्जा जयसिंहसे भयभीत रहताथा। जसवंत सिंहको औरंगजेबके विरुद्ध सचेष्ट बनाये रखनेके पीछे हाड़ी रानी जसवंत देके व्यंग्य बाण और परामर्श ही थे तभी राजा जसवंतसिंहकी जीवनधारा बदल गयी।

पांचवीं कहानी जोधपुर महाराजा अजीतसिंहकी पुत्रीसे सम्बन्धित है जो अपने पिताकी हत्याका षड्यंत्र जानकर भी कुछ न कर सकी परन्तु अपने पिताके हत्यारे अपने ही सगे भाईको क्षमा न कर विष बुझे गुलाब द्वार पिताका प्रतिशोध लेनेमें सफल होतीहै। छठी कहानी रस कपूरपर आधारित है जो जयपुर (ढुढाड़ क्षेत्र) के महाराजा जगतसिंहपर ऐसा प्रभाव जमा चुकीथी कि वह स्वयं राज्यका वित्त, सेना, न्याय प्रबन्ध—स्वयं देखतीथी। साधारण नर्तकीसे उठकर वैभवशाली राज्यकी शासिकाको अन्तःपुर और सामन्तोंके षड्यंत्रोंने कैद कराके मृत्यु दण्ड दिला दिया, पर मृत्युदण्ड पूरा होनेसे पूर्वही रसकपूर लुप्त हो चुकी थी। सातवीं कहानी ऐतिहासिक कथावृत न होकर पौराणिक है। गुरु विश्वामित्रके शिष्य गालवको महाराजा ययातिने अपनी पुत्री माधवी भेंट कर दी तथा पुत्रीके देहदानके बदले गालवको अश्व प्राप्तिका अधिकार दे दियाथा परन्तु चौथी बार स्वयं विश्वामित्रकी यौन लिप्सा पूर्तिके लिए भेंट की गयी माधवीने पशुओं के साथ शेष जीवन बितानेका निश्चय कियाथा। नारी शोषणकी यह कथा ऐतिहासिक वृत्तपरक संकलनमें 'मिसफिट' है।

आठवीं कहानी सत्रहवी शतीमें सवाई जयसिंह जैसे विद्याव्यसनी, कूटनीति एवं स्वाभिमानी नरेशकी है जिसने सारे राजपूतानेको एक सूत्रमें बांधकर मुगल सल्तनतको चुनौती दे डालीथी तथा मुगल बादशाहोंको अपनी बेटियां देनेका प्रतिबन्ध खड़ाकर अपने साम्राज्य की अभिवृद्धिकी रोमांचक कहानी है। नवीं कहानी पन्द्रहवीं शतीमें चित्तौड़में हुए जौहरके बाद उत्तरार्द्ध कालमें अकबरके विरुद्ध जयमल राठौड़ और फत्ता सीसोदियाके नेतृत्वमें राजपूतों, ब्राह्मणों एवं शेष नागरिकोंके युद्धका उल्लेख है। महानरसंहारमें किलेमें एक भी जीवित प्राणी शेष नहीं था। जनयुद्धके रूपमें इस कहानीका महत्त्व है। दसवीं कहानी बूंदीके महारावके अवगुणोंसे सम्बन्धित है जो अपने ज्येष्ट पुत्रकी हत्याका कारण और राजपूतोंके विरुद्ध लुटेरे मराठोंको बुलानेका अपयश लेताहै।

ग्यारहवीं कहानी चौदहवीं शतीके कथावृत्तसे जुड़ी है जिसमें मेवाड़ महाराणा कुम्भा अपने पिताकी मृत्युका बदला लेनेके प्रयासमें मालवाके बादशाह महमूद खिलजीके विरुद्ध युद्धमें विजय प्राप्तिकी स्मृतिमें बनाये गये विजय या कीर्त्ति स्तम्भकी कहानी है। यह महाराणा कुम्भाके शौर्य एवं औदार्यकी इतिहास-कथा है। बारहवीं कहानीमें युद्धके समय हरावलमें रहकर मेवाडके चूण्डावतों और शक्तावतोंमें छिड़ी प्रतिस्पर्धाका उल्लेख लियेहै और अन्तिम कहानी मारवाड़के दानवीर नरवद ने अपनी एकमात्र आंख दान कर महाराणा कुम्भाको आजीवन पश्चातापके लिए बाध्य कर दियाथा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस कथा संग्रहमें जहां ऐतिहासिक वृत्तोंका उपयोग किया गयाहै वहीं जागरूक लेखक एवं पत्रकारिता व्यवसायसे सम्पन्न दृष्टिके श्री आनंद शर्मासे यह अपेक्षा सामान्यतः की ही जा सकतीथी कि ये समस्त कहानियाँ कालक्रमके परिगणनामें रखी जा सकतीथी या फिर क्षेत्र विशेषके क्रममें, पर ऐसा न कर पाना ही इस प्रस्तुतिकी अवैज्ञानिक योजना कहीं जा सकतीहै। ▭

नाटक

प्रतिबिम्ब और आत्मकथा[1]

नाटककार : महेश एलकुंचवार
अनुवादिका : श्रीमती विमल देव
समीक्षक : डा. भानुदेव शुक्ल

मराठी नाटककार महेश एलकुंचवारके दो मराठी नाटकोंके हिन्दी अनुवाद आलोच्य पुस्तकमें संकलित हैं। पुस्तकके मुखपृष्ठपर अनुवादकके रूपमें 'वसंतदेवका नाम दिया गयाहै। अन्दरके पृष्ठपर सही नाम—श्रीमती विमल देवके नामकी सूचना दी गयीहै। इस प्रकाशकीय भ्रामक स्थितिपर ध्यान दिलाना आवश्यक लगाहै। संभवतः वसंतदेवने नाटकका अंग्रेजीमें अनुवाद किया होगा जिसका एक संकेत पुस्तकसे फ्लैपसे लियाजा सकताहै। हिन्दी अनुवादमें वसंतदेवका नाम कहीं भी देनेकी आवश्यकता नहीं थी।

पुस्तकमें दो नाटक संकलित हैं—'प्रतिबिम्ब' और 'आत्मकथा'। दोनोंमें कथानक क्षीण हैं, घटनाओंसे अधिक महत्त्व मानसिक ऊहापोहके सूचक संवादोंका है। 'प्रतिबिम्ब' में व्यंजना प्रतीकात्मक है। 'आत्मकथा' में पूर्वदीप्ति तथा परिवर्तित अहं (आल्टर ईगो) के कुशल उपयोग हुएहैं। उपन्यासकार द्वारा रचित एक उपन्यास के पात्र भी नाटकके पात्र हैं। ये पात्र उपन्यासमें परिवर्तित (या स्थानापन्न ?) ईगो हैं जो नाटकमें बीच-बीचमें उपस्थित होकर उपन्यासकारके अन्तर्मनको दर्शकके सामने ला खड़ा करतेहैं।

कथानकोंकी क्षीणताके अनुरूप नाटकोंमें पात्र सीमित संख्यामें हैं—केवल चार-चार पात्र ही हैं। 'प्रतिबिम्ब' के केन्द्रमें एक विचार है जिसकी प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति कुछ जटिल हो गयीहै। नाटक जैसी सतत गतिशील कलामें जटिलता दोष होतीहै। नाटक में दर्शकको नाटककी गतिके साथ निरंतर चलना आवश्यक है, कहीं रुके तो नाटक आगे बढ़ जाताहै और नाटकका प्रभाव खण्डित होने लगताहै। दुर्बोधता दर्शक की गतिमें अवरोध बनतीहै। असंगत शैलीके नाटक अपनी आन्तरिक जटिलताके कारण ही आम दर्शक को कुछ दिन नयेपनसे आकर्षित करनेके बाद रंगमंचसे हटा दिये गये। नाटककार और रंगकर्मी यदि सामान्य दर्शकको संबोधित करना चाहतेहैं तो उनको बौद्धिक—अभिजात्यकी मीनारोंसे उतरकर धरतीके निकट आना ही होगा, धरतीपर पांव टिकायें तो अधिक समय स्वीकृति पा सकेंगे।

'प्रतिबिम्ब' का नायक 'वह' एक दिन दर्पणमें अपना प्रतिबिम्ब न देख व्याकुल हो उठताहै। उसका प्रतिबिम्ब खो गयाहै। उसके कार्यालयमें कार्यरत 'लड़की' को कुछ पहलेसे यह तथ्य ज्ञात है। लड़की भी अपना प्रतिबिम्ब खो चुकीहै। औरत, जिसके घरमें वह पेईंग-गैस्ट है, वह की सहायतामें असमर्थ है। विशिष्टता-सूचक नाम विहीन स्थितिसे उबारनेमें झंडाबाबू भी असमर्थ हैं क्योंकि उनके पास केवल खोखले

१. प्रका. : राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली। पृष्ठ : ८+१०३; डिमा. ९४; मूल्य : ६०.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारे हैं। लड़की वहके सामने प्रस्ताव रखतीहै कि दोनों व्यक्तित्वहीन व्यक्ति अपनी नियतिको साथ रह-कर भोगें। किन्तु वह हताश होकर पांचवें मालेसे कूद कर आत्महत्या कर लेताहै। उसके टूटे-बिखरे शरीरसे उबलते खूनके बजाय काला चीकट तेल सड़कपर फैल जाताहै और सड़कपर आने-जानेवाले, अपने धंधोंमें लगे व्यक्ति, उसकी ओर ध्यान भी नहीं देते। नाटककी विभीषिका यूजीन बाएनेस्कीके नाटकोंके स्मरण कराती है किन्तु नाटकको असंगतकी मानसिकताके बजाय हम एक प्रकारकी सोद्देश्यतासे जुड़ा हुआ पातेहैं। यह असंगतका नहीं बल्कि प्रतीक शैलीका नाटक है।

'प्रतिबिम्ब' के विपरीत 'आत्मकथा' के पात्र निजी व्यक्तित्वोंसे सम्पन्न हैं। किन्तु, प्रज्ञाको छोड़कर शेष तीनों पात्र अपने आपमें सिमटे बंदी व्यक्तित्व हैं। मानों पात्र रेशमके कीड़े हों जो अपने कोएमें बंदी हो गयेहैं। शोध छात्रा प्रज्ञा इस दुर्भाग्यसे मुक्त है क्योंकि उसको बंदी बनानेवाला कोई अतीत उसपर हावी नहीं है। बंदी तीनों पात्रोंके वर्तमान जिस अतीतसे बंदी हैं उसके पाशोंको काट फेंकनेमें तीनों सक्षम हैं किन्तु तीनों अपनी कुंठाओंके कारण उसमें असमर्थ हो चुकेहैं।

प्रतिष्ठित उपन्यासकार अनंतराव राजाध्यक्ष, उनकी पत्नी उत्तरा तथा पच्चीस वर्ष छोटी साली वासंती अतीतबद्ध त्रिकोण बनातेहैं। प्रज्ञा नामक नवयुवती राजाध्यक्षके उपन्यासोंपर शोध-कार्य कर रहीहै। वह उनके जीवनके संबंधमें जानकारी लेने आतीहै। राजा-ध्यक्ष भी आत्मकथा लिखना चाहतेहैं। प्रज्ञासे वे सह-योग लेतेहैं राजाध्यक्षका अतीत पर्त-दर-पर्त खुलने लगता है। जो कुछ वे अपने संबंधमें छिपाये हुएहैं वह उनके आत्मकथात्मक उपन्यासके पात्रोंके माध्यमसे खुलने लगताहै। वासंती कभी अपनी बड़ी बहिन तथा जीजा के साथ रहने गाँवसे आयीथी। कुछ दिनोंके लिए पत्नी उत्तराको जाना पडा। एक अवसरपर राजाध्यक्षका वासन्तीके यौवनके आगे पाँव फिसल गया। उसमें अपने जीजाकी अपने प्रति उदासीनताको तोड़नेकी वासंतीकी चेष्टा भी थी। उत्तराको जब यह बात पता चली तब वह पतिको छोड़ कर चली गयी। इस घटनाको तीस बीत चुकेहैं। अब पति और पत्नी बीते हुएको भूलकर साथ रहनेको इच्छुक हैं। किन्तु इसमें पहल कौन करे? अहं आड़े आ जातेहैं तथा दोनों अपने अकेलेपनके साथ शेष जीवन बितानेको अभिशप्त हैं। अंतमें रंगमंचपर पर अंधेरेमें राजाध्यक्ष, वासंती तथा उत्तरा अलग-अलग बैठे हैं, तीनोंके हृदयोंके अंधकार और भी घने हैं। पूर्व-दीप्तिके प्रसंग चेतना-प्रवाहकी शैलीके काफी निकट हैं। इसमें चेतना-प्रवाहकी अंतर्मुखता भी विद्यमान है।

नाटकोंमें मंचीय विधानकी कुशल रंग-युक्तियोंके विधान हैं। 'प्रतिबिम्ब' में मंचपर पर एक खिड़कीकी योजना है। खिड़कीसे एक पात्र दूसरेके हृदयमें प्रवेश कर सकताहै। वह खिड़की नीचे सड़ककी ओर खुली है और वह नीचे सड़कपर इसीसे होकर कूदताहै। 'आत्मकथा' में रंगमंच तीन हिस्सोंमें बंटा हुआहै। 'क' में मुख्य रूपसे उपन्यासके पात्र उपस्थित होतेहैं; 'ब' में उत्तराका दीवानखाना है तथा 'अ' में राजाध्यक्षका अध्ययन-कक्ष हैं। प्रकाश इनमें किसीको प्रस्तुत कर देताहै। रंग-विधानकी ये व्यवस्थाएं बहुत सार्थक हैं। संवाद कौशल तथा कुशल रंग-युक्तियां कथानककी क्षीणताको ढक लेतीहैं। 'प्रतिबिम्ब' में प्रतीककी जटि-लता अवश्य इनसे नहीं ढक पायीहै। हमारा अनुमान है कि प्रस्तुतिके विचारसे 'आत्मकथा' अधिक सफल नाटक सिद्ध होगा।

श्रीमती विमल देवके अनुवाद उत्तम हैं। हमारी दृष्टिमें उत्तम अनुवादका प्रमुखतम लक्षण है कि वह अनुवाद लगे ही नहीं। एक-दो स्थलोंपर अवश्य अनु-वादिकाकी मातृभाषाकी झलक आ गयीहै किन्तु ये प्रयोग हमको खटकनेवाले नहीं लगेहैं—"तुम मुझसे ज्यादा देख लेतीहो, ज्यादा उत्कट हो ···"तथा 'खोखला रीता स्वप्न रंजनवाद"। मराठी-भाषाके अनेक शब्द हमको ऐसे लगते रहेहैं जो हिन्दीकी अभिव्यंजना शक्ति को बढ़ा सकतेहैं। अन्य भारतीय भाषाओंसे हिन्दी की प्रकृतिके अनुकूल शब्द मिलें और हम लोग उनको व्यवहारमें लाने लगें तो हिन्दीका लाभ ही होगा।

भाषाकी एक-दो अशुद्धियां या चूकें भी हैं। ये मराठीसे नहीं आयीहैं—"हम भुला दिये जायेंगे यह आत्म-विश्वास क्यों?" 'आशंका' के स्थानपर आत्म-विश्वास' का प्रयोग मराठीमें भी शायद ही होता होगा। समग्रतः नाटकोंमें अनुवादिकाने नाटकके अनुकूल सहज और गतिशील भाषाके प्रयोग किये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तककी सूचनाके अनुसार विजय मेहता, डा. श्री राम बाबू तथा सत्यदेव दुबे द्वारा इन नाटकोंके मंचन हो चुकेहैं। ये रंग प्रस्तुतियां महानगरोंकी हैं जहां आसानीसे दर्शकोंकी सम्मानजनक संख्या जुटायी जा सकतीहै।' (यहां 'संख्या' शब्द जान बूझकर हमने रखा है। अनेक दर्शक बिना रुचिके भी अपने कला-प्रेमके प्रदर्शनके लिए ऐसे नाटकोंकी प्रस्तुतियोंमें उपस्थित भी रहतेहैं तथा उचित अवसरपर उस नाटकके संबंधमें निर्णय भी देतेहैं)। छोटे नगरोंमें तथा सामान्य दर्शकके बीच इन नाटकोंकी किसी पहुंचकी कोई जानकारी नहीं दी गयीहै। जानकारी है भी, यह शंकास्पद है। इस दृष्टिसे ये नाटक अत्यंत सीमित वर्गपर प्रभाव डालनेवाले हैं। हिन्दीमें 'चंद्रावली' जैसे गोष्ठी-नाटकों की परम्परा रहीहै। किन्तु अनुवादसे हम कुछ और ही अपेक्षा रखतेहैं। क्योंकि, अनुवादमें रचनाओंमें छांटकर किसी रचनाको किसी विशेषताके आधारपर ही स्वीकार किया जाताहै। हमें आशा है कि 'आत्मकथा' के मंचनके लिए अधिक व्यापक दर्शक वर्ग मिल सकेगा। उत्तम अनुवादोंके लिए श्रीमती विमल देवको हम साधुवाद देना भी आवश्यक समझतेहैं। ▭

विविध

वन सम्पदा

व्रजनिधि:वनश्री

लेखिका : डा. हर्षनंदिनी भाटिया

समीक्षक : वेदप्रकाश अमिताभ

'ब्रजक्षेत्र' और 'ब्रजसंस्कृति' डा. हर्षनंदिनी भाटिया के लेखनके प्रमुख विषय हैं। 'ब्रज लोक कला', 'ब्रज लोकगीत', ब्रजकी सांस्कृतिक शब्दावली' आदि कृतियों से स्पष्ट है कि 'ब्रज' पर उन्होंने बहुत समर्पित और आत्मीय भावसे लिखाहै। उनकी नयी कृति 'ब्रजनिधि: वनश्री' उनके समर्पित और आत्मीय लेखनकी नयी कड़ी है। संभवत: अभीतक ऐसी कोई कृति प्रकाशित नहीं हुई है, जिसमें ब्रजकी वन:संपदाका परिचय देते हुए ब्रजकी पर्यावरण संबंधी समस्याओंकी चर्चा हुईहै। इस दृष्टिसे यह अद्वितीय और अकेली कृति जान पड़तीहै। इसमें ब्रजक्षेत्रकी वृक्षावलीका परिचयात्मक विवरण मात्र न देकर उनके साहित्यिक और सांस्कृतिक महत्व को भी रेखांकित किया गयाहै। ब्रजमें प्राकृतिक वन-संपदाके निरंतर विनाशके फलस्वरूप हो रहे पर्यावरण-प्रदूषणके दुष्परिणामोंका भय और चिन्ता इस कृतिको अतिरिक्त महत्त्व और वैशिष्ट्य प्रदान करतेहैं। इसकी भूमिकामें डा. शरणबिहारी गोस्वामीने लिखाहै कि पर्यावरण-रक्षण आंदोलनके लिए जो जीवन-दृष्टि चाहिये वह भारतके पास है : "भक्तिकालमें ब्रजभूमिकी परिकल्पनामें उसकी सहज साकारताहै। यह हमारे लिए परम्परागत भी है और उसके स्मरण और उसे महत्त्व देनेकी आवश्यकता है।"

प्रारम्भके चार आलेखोंमें ब्रजके वनों, ब्रजकी संस्कृतिमें वनोंके महत्त्व और वनयात्राओंकी महत्ताका कथन है। लेखिकाने इस बातपर गहरी चिन्ता व्यक्त कीहै कि भारतका केवल तेइस प्रतिशत भूभाग वनोंसे आच्छादित है, जबकि राष्ट्रीय वननीतिके अनुसार तैंतीस प्रतिशत भूमिमें वन होने चाहियें। ब्रज-भूमिकी स्थिति और भी दयनीय है। हालांकि छठें दशकमें

१. प्रका. : श्री मदनमोहन व्रजलोक समिति, वृन्दावन। मूल्य : ७५.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्यपाल के. एम. मुंशीने यहां वृक्षोंकी कटाईपर और पौधोंका रोपण रोक लगाकर अच्छी शुरूआत कीथी, परन्तु कालान्तर में स्थिति फिर ज्योंकी त्यों होगयी। 'वन (संरक्षण) अधिनियम १९८०' को लेखिका इस संबंधमें एक कारगर कदम मानतीहै। 'चिपको आँदोलन' और खेजड़ली की घटनाको सामने रखकर लेखिकाने स्पष्ट कियाहै, केवल सरकारी प्रयासोंसे कुछ नहीं होगा, इसके लिए जन-चेतनाका उभार आवश्यक है। डा. भाटियाके अनुसार : "वृक्षारोपणको जनान्दोलनके रूपमें स्वीकार करना चाहिये। पर्यावरणको शुद्ध रखनेके लिए सबसे सरल उपाय वृक्षारोपण है। सब नागरिकोंमें यह भाव पनपना चाहिये कि उनके जीवन-यापनका मूलाधार वन है, अतएव उनका संरक्षण होना ही चाहिये" (पृ. १२)।

ब्रज संस्कृतिमें वनका महत्त्व' शीर्षक आलेखमें ब्रजके प्रमुख वनों—मधुवन, वृन्दावन, तालवन, कामवन, महावन, लोहवन आदिका परिचय दिया गयाहै। आज ये वन संकुचित और विकृत रूपमें शेष रह गयेहै। लेखिकाने ब्रजके चौबीस उपवनों और कदम्बखंडियोंकी संक्षिप्त चर्चा करते हुए सघन वनों और वनखंडियों के निरन्तर कम होते जानेपर गहरी चिन्ता व्यक्त की है। इसका समाधान उन्होंने 'वन बचाओ : वृक्ष उगाओ' अभियानमें पाया है। 'वन यात्रा' शीर्षक अध्यायमें ब्रज यात्राओको वन यात्राका पर्याय माना गयाहै। वल्लभाचार्य और चैतन्य महाप्रभु आदि आचार्यों और भक्तोंकी ब्रजयात्राओंसे संबंधित पर्याप्त जानकारी इस अध्यायमें उपलब्ध है। ब्रजयात्रासे संबंधित कृतियों—'ब्रज भक्ति विलास' (श्री नारायण भट्ट), 'वनयात्रा' (जगतनंद), 'ब्रजभूमि प्रकाश' (नवलसिंह प्रधान) आदिके उल्लेख द्वारा अतीतमें वनोंके प्रति ब्रजबासियों तथा तीर्थ-यात्रियोंके लगावको व्यक्त किया गयाहै। इस अध्यायमें 'ब्रजभूमि प्रकाश' के एक अध्याय 'वन-उपवन वर्णन' को अविकल उद्धृत किया गयाहै, ताकि उन्नीसवीं शतीके प्रारंभमें ब्रजके वनों-उपवनोंकी स्थिति और दशापर विहंगम दृष्टिपात कियाजा सके। इन वर्णनोंसे पता चलताहै कि बहुतसे वन, कुंड और सरोवर जो उन्नीसवीं शती तक सुरक्षित थे, या तो आज उनका अस्तित्व नहीं है या उनका स्वरूप विकृत हो गयाहै।

आगेके अध्यायोंमें ब्रजभूमिमें पाये जानेवाले वृक्षों दिया गयाहै। कदम्ब, करील, वट, पीपल, छोंकर, तमाल, पलाश, जामुन, नीम, आम- बेल, सेमर, आंवला—ये ब्रजके विशिष्ट वृक्ष हैं। इनके अतिरिक्त बेर, पपीता, तुलसी, करौंदा, बथुआ, नींबू, मेंहदी आदिकी चर्चा 'परिशिष्ट' के अन्तर्गत हुईहै।

यद्यपि वृक्ष-परिचयसे वृक्ष और उसके फल-फूल आदिकी उपादेयताको ध्यानमें रखा गयाहै, फिरभी परिचयका तेवर सांस्कृतिक-साहित्यिक अधिक हैं। उदाहरणके लिए, 'कदम्ब' से परिचित कराते समय लेखिका पहले इसके विभिन्न पर्यायोंसे अवगत कराती है। इसकी ऊंचाई आदिका ब्यौरा देनेके बाद उपयोगिताकी ओर ध्यान खींचा गयाहै 'लकड़ीसे प्रायः नाव, दियासलाईकी तीली तथा चायके डिब्बे बनानेके काममें प्रयोग होताहै। गूदेसे भी कागज बनाया जाता है।" (पृ. ६३)। इसके बाद पुराणों तथा अन्य काव्यकृतियोंमें कदम्ब-वर्णनको रेखांकित करनेका लम्बा क्रम हैं। वही पद्धति प्रायः सभी वृक्षोंके वर्णनमें अपनायी गयीहै। कुछ वृक्ष-वर्णन एक शोध आलेखके रूपमें हैं और लेखिकाके श्रम और अध्ययनकी गवाही देतेहैं। इस वृक्ष-विवेचनसे साहित्य संबंधी कई महत्त्वपूर्ण जानकारियां भी मिलतीहैं। सुभद्राकुमारी चौहानने 'कदम्ब' शीर्षक एक मार्मिक कविता लिखीथी (पृ. ७४), 'प्रियप्रवास' में ब्रजकी वन-संपदाके वर्णनमें लवंग और इलायची तो ब्रजमें उगा दिये गयेहैं, करीलका वहां कोई उल्लेख नहीं हैं (पृ. ८३), श्री वल्लभाचार्य एवं श्री विट्ठलनाथने अपने प्रवचन छोंकरके वृक्षके नीचे बैठकर दियेथे (पृ. १००) आदि सूचनाएं निश्चय ही नयी हैं। 'वट' के वर्णनमें इससे संबंधित 'लोककथा' दी गयीहै, जो 'बड़ मावस' के अवसरपर सुनी जातीहै। वृक्षोंके विभिन्न नाम क्यों हैं, इनके कारण भी कुछ स्थलोंपर दिये गयेहैं। उदाहरणके लिए 'पीपल' के प्रसंगमें कहा गयाहै—"पीपलको मांगलिक कार्योंमें प्रयोग किये जानेपर 'मांगल्य', शुभकार्योंमें प्रयुक्त होने के कारण शुभद, औषधिके रूपमें सेव्य···पत्तोंके झड़ने के कारण चलदल व चलपत्र कहलाये। शीघ्र झुक जाने के कारण धनुवृक्ष, पवित्रताके कारण विप्र, प्लक्ष, कपीतन एवं वासुदेवके रूपमें प्रसिद्ध हुए" (पृ. ९३)। स्थान-स्थानपर लोकगीतोंकी पंक्तियां दी गयीहैं। ये लोकजीवनमें इन वृक्षोंके महत्त्वको उभारनेके साथ-साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकगीतोंमें लेखिकाकी गहरी सूझ और जानकारी का प्रमाण भी देतीहैं।

लेखिकाने कुछ पेड़ोंके वनस्पति शास्त्रीय नाम दिये हैं। अच्छा होता कि सभी वृक्षोंके वैज्ञानिक नाम दे दिये जाते। जो गंभीर विषय डा. भाटियाने लियाहैं, उसे वहन करने योग्य भाषा और कथन-पद्धति उनके पास है। लेकिन इस महत्त्वपूर्ण कार्यमें जहां-तहां कतिपय असावधानियां दिखायी देतीहैं। 'प्रियप्रवास' को मैथिलीशरण गुप्तकी रचना (पृ. ८२) बताना एक चिंत्य असावधानी है। एकही पृष्ठपर 'कदमखंडी' और 'कदम्ब खंडी' (पृ. १६) का प्रयोग वर्तनीकी एकरूपता की दृष्टिसे उचित नहीं है। एक स्थानपर (पृ २९) पश्चिमी सीमापर के स्थानपर 'दक्षिणी सीमापर' उपहार वन (दक्षिणी सीमापर) मुद्रित हुआहै। कुछ संदर्भभी स्पष्टीकरणकी अपेक्षा रखतेहैं। 'ह्वेनसांगके समयका भारत' (अशोक चांदोरकर) (पृ. ११५) किसी पुस्तकका नाम है या किसी आलेखका शीर्षक, यह स्पष्ट नहीं होता। अकेला पलाश (पृ. १०७(किसकी रचना है, यह जाननेकी जिज्ञासा अतृप्त रह जातीहै। 'भारतके कतिपय विचित्र पेड़-पौधे' आलेख इस पुस्तक में 'मिसफिट' है, क्योंकि ये वृक्ष व्रजभूमिमें नहीं पाये जाते। परन्तु ये छुटपुट आपत्तियां इस कृतिका अवमूल्यन नहीं कर पाती। अपने उद्देश्यमें यह कृति पूर्णतः सफल है। अपनी सांस्कृतिक जड़ोंसे जुड़ने और पहचाननेका यह सास्वत-कर्म डा. हर्षनंदिनी भाटियाको निश्चय ही यश प्रदान करेगा। ▭

यात्रा-वृत्तान्त [1]

सूरज चमके सारी रात[1]

लेखक : डा. कुमुद
समीक्षक : विराज

'बदरी-केदारके पथपर', 'आधी रातका सूरज', और 'हिमाचलके आंगनमें' के बाद 'सूरज चमके सारी रात' डा. कुमुदका चौथा यात्रा वृत्तान्त हैं। 'आधी रात का सूरज' में स्वीडनकी यात्राका ज्ञानवर्धक विवरण था, 'सूरज चमके सारी रात' में स्वीडन, फिनलैंड तथा नार्वेके उत्तरी ध्रुव अंचलकी यात्रा कथा प्रस्तुत की गयीहै। पुस्तक बढ़िया कागजपर छपीहै। आठ पृष्ठ आर्ट पेपरपर रंगीन चित्रोंके दिये गयेहैं, जिससे पुस्तक का आकर्षण बढ़ाहै। १४ पाइंट टाइपमें छपी होनेके कारण पुस्तक आंखोंको प्रिय लगतीहै।

डा. कुमुदको पर्यटनका शौक है और उसका वृत्तान्त लिखनेमें उन्हें आनन्द आताहैं। जिन प्रदेशोंमें वे जातेहैं, उन्हें केवल आंखोंसे देखकर वे तृप्त नहीं हो जाते, अपितु यत्नपूर्वक पूछताछकर, पढ़कर विस्तृत जानकारी भी प्राप्त कर लेतेहैं। इस प्रकार उस प्रदेश का वर्तमान अपितु भूत और भविष्य भी काफी कुछ पाठकके सामने आ जाताहै।

डा. कुमुद अपने यात्रा वृत्तान्तोंमें इस प्रदेशके प्राकृतिक स्वरूपके अतिरिक्त वहांके निवासियोंके रूप रंग, वेश-भूषा, आचार-विचार, रीति रिवाज, पर्व-त्यौहार, आदिका विशद वर्णन करके वहांके समाजका सांगोपांग चित्र-सा प्रस्तुत कर देतेहैं।

उनकी यह यात्रा जमशेदपुर (बिहार) से शुरू हुई है। भारतीय विमान सेवाएं अन्य देशोंकी विमान सेवाओंकी तुलनामें कितनी घटिया हैं, यह शुरूमें ही स्पष्ट हो जाताहै। भारतीय विमान न केवल समयपर नहीं पहुंच पाते, अपितु हवाई अड्डोंपर सामान ढोनेके लिए रखी ट्रालियां भी बढ़िया हालतमें नही होतीं। जो ट्रालियां हैं, उनपर पेशेवर कुली कब्जा किये खड़े रहते हैं। वे आपके न चाहते हुए आपका सामान थोड़ी-सी दूर पहुंचा देतेहैं और बेहिसाब पैसे मांगतेहै। विमान पत्तनोंपर जांच-पड़ताल और सुरक्षाकी व्यवस्था भी ढीली-ढाली है। दिल्लीसे बम्बई होकर लंदन तक की यात्रा एयर इंडियाके विमानमें की गयीहै। विमान विलम्बसे अवश्य उड़ाहै, किन्तु अल्पाहार और भोजन अच्छा रहा। विमानमें उड़ते समयके अनुभवों, सहयात्रियोंकी दशा और विमानकी कार्य प्रणालीका भी अच्छा वर्णन है।

लंदनमें विमान पत्तनकी व्यवस्था अधिक अच्छी है। लोग अधिक सहयोग परायण हैं। कर्मचारियोंमें स्त्रियोंकी बहुलता है। लंदनसे स्वीडनकी राजधानी

१. प्रका. : शील प्रकाशन, ए/३५, सोनारी पश्चिम, जमशेदपुर-८३१०११। पृष्ठ : १३६; डिमा. ९३; मूल्य : ७०.०० रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्टाकहोमकी यात्रा अधिक सुखद रही। शाकाहारी भोजन भी रुचिकर रहा—फलोंका रस, गोल पाव रोटियां, मक्खन, चीज़ और सलाद, और आइसक्रीम। परिचारिकाओंका व्यवहार विनम्र और शिष्ट।

स्वीडनमें लेखकके पुत्र रहतेहैं। उन्होंने ही साथ रहकर यह लम्बा भ्रमण करायाहैं। कई बातें रोचक है: कारमें बैठकर कमरमें बैल्ट न बांधो, तो पुलिस जुर्माना कर सकतीहै। पश्चिमी देशोंमें सड़कपर गाड़ी का हार्न नहीं बजाया जाता (भारतमें हर वाहनवाला निरन्तर हार्न बजाते रहनेमें हीं आनन्द अनुभव करता है)। वाहन द्वारा गति सीमाका उल्लंघन कानूनी अपराध है और इसका कठोरतासे पालन होताहै। मदिरा के नशेमें गाड़ी चलाना दंडनीय अपराध हैं।

यात्राके दौरान देखे गये वनों, पर्वतों, नदियों और नगरोंके वर्णन अच्छे हैं। लेखकके कवि हृदयने उनका भरपूर आनन्द लियाहै।

ये तो बेस्तरआसमें भी ग्रीष्मकालमें मध्य रात्रि तक सूर्यका प्रकाश रहताहै, परन्तु इस यात्राका महत्त्वपूर्ण भाग है स्वीडनके उत्तरी अंचलकी, जो उत्तरी ध्रुव प्रदेशके निकट पड़ताहै, यात्रा। वहां १४ मई से २९ जुलाई भगवान् भास्कर प्रसन्न मुद्रामें चौबीसों घंटे देदीप्यमान रहतेहैं। स्वीडनका उत्तरी भाग लैपलैंड कहलाताहै।

लैपलैंडके बाद फिनलैंड और नार्वेकी यात्राएं भी मनोरंजक और ज्ञानवर्धक है। यात्राका कुछ भाग तो समुद्री जहाजमें तय किया गयाहै।

डा. कुमुद संस्कृतके भी रसिक है और जगह-जगह इन्होंने वेद, गीता, कालिदास, रामायण आदिसे संस्कृतकी सूक्तियां उद्धृत कीहैं, जो स्थानोपयुक्त हैं; जैसे, आरोग्यं भास्करादिच्छेदत्; चक्षुभिरिव पिबन्ति; महत्सु भृंगेषु महीधराणां विभ्रम्य विभ्रम्य पुनः प्रयान्ति, इत्यादि।

अध्यायोंके शीर्षकोंका चयन भी आकर्षक है: चरैवेति; अभी दूर है नागरिया; थम गये सूरजके घोड़े, आदि।

अवलोकन, प्रेक्षण एवं अध्ययनका संगम इस पुस्तककी त्रिवेणीमें है। □

रोचक, उत्साहक, उत्प्रेरक
विराज-साहित्य

वनराजके राजमें
वन भ्रमण, शिकार एवं साहस भरे प्रसंग — रु. २०.००

वनशाला
शिक्षामें वनों तथा वन-पशुओंके निकट सम्पर्कका महत्त्व, वनशाला शिविरोंका वृत्तान्त — रु. ५०.००

वे चिंघाड़ते हाथी
जंगली हाथियोंसे सामनेके रोमांचकारी प्रसंग — रु. ७०.००

तीन गांधी हत्याएं
सर्वश्री मोहनदास गांधी, इन्दिरा गांधी और राजीव गांधी की हत्याओं का मर्मस्पर्शी वृत्तान्त — रु. ३५.००

हर की पैड़ी
शृंगार रसका सरस काव्य — रु. ४०.००

अपने पुस्तक विक्रेतासे लीजिये अथवा हमसे मंगाइये।
कोई भी दो पुस्तकें मंगाने पर डाकव्यय हम देंगे।

हेमगंगा प्रकाशन

२७ डी राजपुर रोड, दिल्ली-११००५४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'पुरस्कृत भारतीय साहित्य'

'प्रकर' के "पुरस्कृत भारतीय साहित्य" विशेषांक वार्षिक-शृंखलाके अबतक बारह अंक प्रकाशित हो चुकेहै। इसके साथ पूरक रूपमें नवम्बर ९३ अंक भी प्रकाशित है। भारतीय साहित्यमें समग्र रूपसे जिस प्रवृत्तिके दर्शन होते हैं, उसके अन्तर्गत उसमें अपनी प्रादेशिक और क्षेत्रीय विशिष्टता होते हुए भी मूलतः समग्र भारतीय साहित्यकी एकात्मक अन्तश्चेतनाके दर्शन होतेहैं और अन्तःस्फूर्तिके समान स्रोत प्रबल रूपसे उभरकर दृष्टिगोचर होतेहैं। यह भी लक्षित किया जा सकताहै कि समग्र भारतीय साहित्य राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक प्रभावों एवं रूप-शैली-शिल्प, चिन्तन (बहुधा वादग्रस्त चिन्तन) यूरोपसे प्रचुर और आन्तरिक रूपसे प्रभावित है।

न हिन्दी, न अन्य भारतीय भाषाओंके साहित्यका इस दृष्टिसे योजनाबद्ध रूपमें अध्ययन प्रस्तुत हुआ है। उसके भारतीय साहित्यपर चेतनात्मक प्रभावकी सामान्य चर्चा भी नहीं हुई। फिरभी, 'प्रकर' संभावित अध्ययनकी चेतनाको जागृत करनेके लिए इन विशेषांकोंके माध्यमसे प्रयत्नशील है।

अबतक पूरक अंक सहित इन बारह विशेषांकोंमें विभिन्न भारतीय भाषाओंके ग्रन्थोंपर जो समीक्षा-सामग्री प्रस्तुत हुईहै, उनकी संख्या इस प्रकार है :

भाषा	ग्रन्थ संख्या	भाषा	ग्रन्थ संख्या	भाषा	ग्रन्थ संख्या
असमी	१०	डोगरी	१०	मराठी	१३
उड़िया	१३	तमिल	१३	मलयालम	१०
उर्दू	३	तेलुगु	११	मैथिली	१२
कन्नड़	१३	नेपाली	९	राजस्थानी	१२
कश्मीरी	६	पंजाबी	११	संस्कृत	९
कोंकणी	११	बंगाली	९	सिन्धी	११
गुजराती	१४	मणिपुरी	१२	हिन्दी	३५

सभी अंकोंकी कुल पृष्ठ संख्या : १३००

कुल समीक्षित ग्रन्थ २२७

इन ग्रन्थोंकी समीक्षाओंसे विदेशी साहित्यके स्पष्ट, प्रबल और गहरे (अनेक बार प्रचारात्मक) प्रभावका जिस रूपमें साक्षात्कार होताहै, वह हिन्दी तथा भारतीय भाषाओंकी गहरी अनुकरणी-प्रवृत्तिका संकेत है। साहित्यिक दृष्टिके साथ वैज्ञानिक विश्लेषणके लिए यह सामग्री सहायक है।

१९८३ से अबतक प्रकाशित 'पुरस्कृत भारतीय साहित्य' विशेषांकोंके पृथक्-पृथक् मूल्य इस प्रकार है : ८३—२०.०० रु.; ८४—२०.००; ८५—२०.००; ८६—३०.००; ८७—३०.००; ८८—३०.००; ८९—३५.००; ९०—३५.००; ९१—३५.००; ९२—४०.००; ९३—४०.०० रु.; नवम्बर' ९३—१०.००; ९४—४०.०० रु.।

अध्ययन और शोधकी दृष्टिसे यह सामग्री प्रत्येक पुस्तकालयमें संग्रहणीय है।

सभी बारह अंकोंका डाकव्यय सहित मूल्य : ३७५.०० रु.

'प्रकर'—वैशाख'२०५२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीक्षा पत्रिका 'प्रकर' : परिचय

प्रथम अंक

'प्रकर' का प्रथम अंक मकर संक्रान्ति २०२५ विक्रमी संवत्, तदनुसार १४ जनवरी १९६९ को शित हुआथा। तबसे पत्रिका निरन्तर प्रकाशित हो रहीहै ।

क्षेत्र

'प्रकर' का क्षेत्र मुख्य रूपसे हिन्दीके साहित्यिक प्रकाशनोंकी समीक्षा रहाहै। परन्तु साथ **भारतीय भाषाओंके** विशिष्ट साहित्यिक प्रकाशनों परिचय, विवेचन और समीक्षाएं भी प्रस्तुत की जाती रहीहै।

क. अब तक 'प्रकर' ने प्रतिवर्ष लगभग २५० पुस्तकोंकी समीक्षाएं, उनका परिचय और टि प्रकाशित कीहैं। २६ वर्षमें यह संख्या ६५०० से भी ऊपर चली गयीहै।

ख. इनके अतिरिक्त हिन्दीतर भारतीय भाषाओंके प्रकाशनोंकी समीक्षाएं अधिकांशत; भाषाओंके हिन्दी सेवी विद्वानों द्वारा लिखी हुईहैं। अबतक भारतीय भाषाओंकी ४०० से उल्लेखनीय एवं पुरस्कृत कृतियोंकी समीक्षाएं प्रकाशित हुईहैं।

विशेषांक

'प्रकर' का कमसे कम एक विशेषांक प्रतिवर्ष प्रकाशित हुआहै। कुछ वर्षोंमें दो-दो विशेषांक भी शित हुएहैं। इनमें कुछ विशेषांक पूर्व वर्षकी उल्लेखनीय कृतियोंका समीक्षात्मक विवेचन हैं। इनमें १९७० और के उल्लेखनीय प्रकाशनोंने विशेष रूपसे ध्यान खींचा है।

१९७१ में ही 'अहिन्दी भाषियोंका हिन्दी साहित्य' प्रकाशित हुआ। वह एक स्मरणीय विशे जिसमें सभी राज्योंके हिन्दी योगदानका विवरण है।

'पुरस्कृत भारतीय साहित्य' विशेषांक

गत १२ वर्षोंसे प्रतिवर्ष पुरस्कृत एवं विशिष्ट प्रकाशनोंका एक विशेषांक प्रकाशित हो रहाहै। भारतीय साहित्यके ये महत्त्वपूर्ण अंग हैं। इनकी विशेषता है :

क. प्रत्येक भारतीय भाषाकी अपनी प्रादेशिक एवं क्षेत्रीय विशिष्टताका परिचय

ख. भारतीय साहित्यकी एकात्मक अन्तःचेतनाके दर्शन

ग. भारतीय साहित्यकी अन्तःस्फूर्तिके समान स्रोतोंका अध्ययनात्मक उद्घाटन

घ. समग्र भारतीय साहित्यपर राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक प्रभावों एवं रूप-शैली-शिल्प- (बहुधा वादग्रस्त चिन्तन) का प्रचुर रूपमें और गहराईसे यूरोपीय प्रभाव

'प्रकर' के प्रयत्नोंकी दिशा

भारतीय साहित्यपर अपनी परम्परासे विकसित चिन्तन और चेतनात्मक प्रभावका एवं वै सम्पर्कसे जागृत राजनीतिक चेतना और उसके कारण प्रगति और अवगतिकी स्थितिकी ओर खींचना

आमन्त्रण

इस व्यापक परन्तु महत्त्वपूर्ण कार्यमें सक्रिय रचनात्मक एवं आर्थिक योगदानके लिए आप आम हैं।

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार : मुद्रक : संगीता कम्पोजिंग एजेंन्सी द्वारा रायसीना प्रिंटरी चमेलिया रोड, दिल्ली-६।

प्रकाशन स्थान : ए-८/४२ राणा प्रताप बागा, दिल्ली-७ दूरभाष : ७११३७६३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Entered in Database
Signature with Date 29/12/04

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri